प्यारेलाल भार्गव,
राजप्रिंटिंग प्रेस, कमच्छा, वाराणसी १ ।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक तर्कशास्त्र का द्वितीय भाग है। लेखक को इस बात की प्रसन्नता है कि विद्यार्थियों और अध्यापकों ने तर्क-शास्त्र को अपनाया है। कई युनिवर्सिटियों ने तो अपनी इन्टर मीडियेट (Intermediate) परीक्षा के पाठ्यक्रम मे इसको निर्धारित किया है। प्रथम भाग की तरह इसमे भी विषय-विवेचन विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार ही किया गया है। भारतीय विश्वविद्यालयों मे विशेषानुमान के पश्चात् ही सामान्यानुमान के पढ़ाने की पद्धति है। अत गतवर्ष हमने विशेषानुमान विषयक प्रथम भाग पाठकों की सेवा मे उपस्थित किया था। द्वितीय भाग के छपने मे कुछ देरी हुई है। अब वह सामान्यानुमान-विषयक द्वितीय भाग पाठकों की सेवा मे उपस्थित किया जा रहा है।

इस द्वितीय भाग के निर्माण मे शब्दावली का विशेष ध्यान रखा गया है। प्रायः करके समग्र शब्दावली अभिप्रेत अर्थ की द्योतक है। तर्क सदृश विषय के प्रतिपादन मे प्रत्येक शब्द को समझ-सोच कर प्रयोग करना पड़ता है। हमने इस पर विशेष ध्यान देकर समुचित शब्दावली का ही प्रयोग किया है। हमारा उद्देश्य प्रथम भाग की तरह इस द्वितीय भाग मे भी यही रहा है कि किसी प्रकार विद्यार्थी लोग सरलतापूर्वक सामान्यानुमान के सिद्धान्तों को भली भाँति समझ सकें। यदि विद्यार्थी सावधानी के साथ इसका अध्ययन करेंगे तो उनको कहीं किसी प्रकार की दिक्कत न उठानी पड़ेगी। वे सरलता से तर्कशास्त्र के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।

प्रत्येक अध्याय के अन्त में अभ्यास प्रश्न दिये गये हैं। इनसे विद्यार्थियों को विषय के समझने मे सरलता होगी। इन प्रश्नों को हल करने से उनको परीक्षा के प्रश्नों को हल करने मे भी

सहायता मिलेगी। अन्त में हमने हिन्दी में अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों के साथ अपने पारिभाषिक शब्दों की सूची दी है। इससे भी विद्यार्थियों को शब्दों का ज्ञान करने में अत्यन्त सहूलियत होगी।

इस पुस्तक के निर्माण में मुझे जिन जिन तर्कशास्त्रियों के ग्रन्थों का उपयोग करने को मिला है मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता के भाव को प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। वे हैं, ग्रेव्हले, योसांके, मिल, बीपी, जोसेफ, स्टेबिंग म्याहटन, वेल्टन भोलानाथ, रे आदि। ये सब महानुभाव मेरे विद्यागुरु हैं। इनके अध्ययन के अभाव में मेरे लिये यह कदापि सम्भव नहीं था कि मैं इतनी सुन्दर किताब लिख सकता।

मुझे पूर्ण आशा है कि प्रथम भाग की तरह तर्कशास्त्र के इस द्वितीय भाग का भी उसी प्रकार स्वागत किया जायगा। अध्यापकों से मेरी एक विशेष प्रार्थना यह है कि यदि इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गई हों तो वे मुझे द्वितीय संस्करण के लिये अपनी नेक सलाहें भेजने का अवश्य कष्ट करें। मैं उनका इस कृपा के लिये अपने को अत्यन्त आभारी समझूँगा। मुझे यह तो पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक के पढ़ने से विद्यार्थियों को तो अवश्य लाभ होगा। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों की आर्थिक कठिनाइयों को अनुभव करते हुए प्रकाशक महोदय ने पुस्तक का मूल्य भी कम ही रक्खा है।

विमलदास कोंदिया
न्यायतीर्थ, शास्त्री
१२-९-५१
M A (Phil.) M. A. (Sans) LL B
प्रो दर्शन विभाग, हि वि वि
वाराणसी

द्वितीय संस्करण

तर्कशास्त्र के लेखक को यह जानकर प्रसन्नता है कि प्रथम भाग के समान द्वितीय भाग का भी द्वितीय संस्करण निकल रहा है। इससे पुस्तक की उपयोगिता स्वय सिद्ध है। इस संस्करण मे पहिले की अशुद्धियाँ समाप्त कर दी गई है। साथ-साथ एक परिशिष्ट भी जोड दिया गया है। परिशिष्ट जोड़ने की आवश्यकता इसलिये हुई, क्योंकि भारतवर्ष की कई युनवर्सिटियों मे कारणता के सम्बन्ध मे भारतीय दृष्टिकोण को लेकर भी प्रश्न पूछे जाते है। यह परिशिष्ट उन प्रश्नों को हल करने मे सहायक होगा। पुस्तक की उपयोगिता के विषय मे लेखक के पास अनेक अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के पत्र आये हैं और उन्होंने पुस्तक की भूरि-भूरि प्रसशा की है। इससे लेखक को अत्यन्त संतोष है। लेखक और प्रकाशक को पूर्ण आशा है कि अध्यापक तथा विद्यार्थी वर्ग इसका समुचित उपयोग कर तर्कशास्त्र के ज्ञान के प्रसार मे सहायक होंगे।

ता० २०-१०-५६

विमलदास कौंदिया जैन
M A LL B.

विषय-सूची

अध्याय १

१. वि. १

२ सामान्यानुमान का उपपाद्य विषय ८

३. सामान्यानुमान का वैज्ञानिक स्वरूप १२

४. सामान्यानुमान के प्रकार २०

५. सदोष सामान्यानुमान २१

६. पूर्ण और अपूर्ण सामान्यानुमान २३

७. अयुक्त सामान्यानुमान २४

८. निर्दोष सामान्यानुमान . २४

९ क्या निर्दोष सामान्यानुमान को सामान्यानुमान मानना चाहिये ? २६

१०. तर्क-निष्ठ-समानता-जन्य-सामान्यानुमान २८

११. तर्क-निष्ठ-समानता-जन्य-सामान्यानुमान और निर्दोष सामान्यानुमान २९

१२ तर्क-निष्ठ-समानता-जन्य-सामान्यानुमान और युक्त सामान्यानुमान . ३०

१३ घटना-सकलन ३४

१४. घटना-संकलन और सामान्यानुमान ३५

१५. युक्त-सामान्यानुमान . ३७

१६. वैज्ञानिक-सामान्यानुमान .. ३७

१७ अवैज्ञानिक-सामान्यानुमान ३८

१८ साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान की सार्थकता ४०

१९ गणना-जन्य-सामान्यानुमान, पूर्ण-गणना और अपूर्ण-गणना ४५

२० उपमा-जन्य-सामान्यानुमान ४६

२१ सामान्यानुमान का उपयोग और आवश्यकता ४७
२२ अभ्यास प्रश्न ४८

अध्याय २

१ सामान्यानुमान की विधि और इसके भिन्न २ क्रम ५१
२ सामान्यानुमान की विधि की भिन्न अवस्थाओं की आपेक्षिक प्रधानता ६०
३ सामान्यानुमानीय तर्क की अवस्थाएँ .. ६२
४ सामान्यानुमान का विशेषानुमान से सम्बन्ध ६४
५ सामान्यानुमान की उपयोगिता .. ७४
६ सामान्यानुमानीय सिलाजिस्म ७६
७ मिल का सामान्यानुमानीय सिलाजिस्म ८०
८ सामान्यानुमान का संक्षिप्त इतिहास .. ८२
९ अभ्यास प्रश्न ९१

अध्याय ३

१ सामान्यानुमान के मूल हेतु ९३
२ प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त ९४
३ एकरूपता के दो अर्थ ९७
४ मिल का प्रश्न ९८
५ मौलिक एकरूपताओं के प्रकार १००
६ कारणता का सिद्धान्त १०१
७ कारणता और प्रकृति की एकरूपता १०२
८ प्रकृति की एकरूपता के विश्वास के कारण १०३
९ कारणता का लक्षण १०७
१० शक्ति की यथावस्थितता और कारणता का सम्बन्ध ११३
११ यथावस्थितता के नियम का कारणता से सम्बन्ध ११५
१२ अरस्तू का कारणता का सिद्धान्त ११६
१३ कारण और अवस्था ११८

१४. गतिमती शक्ति और सामग्री ... १२२
१५ कर्ता और करणीय ... १२३
१६. कारणता के सिद्धान्त .. १२४
१७ बहुकारणवाद ... १२७
१८. कारण-समुच्चय और कार्य-संमिश्रण .. १३०
१९. कारण और कार्य का पारस्परिक सम्बन्ध . १३३
२०. प्रवृत्ति . १३५
२१. प्रगतिशील-कार्य .. १३६
२२. अभ्यास प्रश्न १३७

अध्याय ४

१. विषय-विषयक सामान्यानुमान के हेतु ... १४०
२. प्रत्यक्षीकरण . १४१
३. प्रत्यक्षीकरण और वैज्ञानिक यंत्र . १४४
४. प्रत्यक्षीकरण की साधारण अवस्थाएँ ... १४५
५ प्रत्यक्षीकरण के दोष . १४७
६. प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग १५०
७. स्वाभाविक प्रयोग .. १५६
८. प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग के आपेक्षिक लाभ १५६
९ अभ्यास प्रश्न . १६१

अध्याय ५

१. प्राक्कल्पना की सृष्टि . १६३
२ प्राक्कल्पना का विशेष अर्थ . १६६
३. प्राक्कल्पना का उद्गम . १६९
४ प्राक्कल्पनाओं के रूप . १७२
५ प्राक्कल्पनाओं के अन्य भेद ... १७४
६ उपयुक्त प्राक्कल्पना की अवस्थाएँ ... १७५
७ प्राक्कल्पना का सबूत १८०
८ प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त शोधक उदाहरणों के निदर्शन १८४

९ प्रयोग से प्राप्त शोधक उदाहरणों के निदर्शन १८५
१० सामान्यानुमानों की अनुरूपता १८५
११ ह्वेवेल का मन्तव्य १८६
१२ भ्रम फैलानेवाली प्राक्कल्पना १८७
१३ व्याख्यात्मक और वर्णनात्मक प्राक्कल्पनाएँ १८७
१४ प्रतिनिध्यात्मक कल्पनाएँ १८८
१५ प्राक्कल्पना और माप-पृथक्करण १८९
१६ न्यूटन और प्राक्कल्पना १९०
१७ प्राक्कल्पना की उपयोगिता १९१
१८ प्राक्कल्पना की सिद्धि १९४
१९ अभ्यास प्रश्न १९४

अध्याय ६

१ प्रायोगिक विधियाँ १९६
२ पृथक्करण के सिद्धान्त और उनका प्रायोगिक विधियों से सम्बन्ध १९९
३ अन्वय विधि २०१
४ अन्वय-विधि के दोष तथा उनको दूर करने के सम्भव उपाय २०५
५ अन्वय-विधि से हम कारणता और सहवर्तित्व इन दोनों के भेद को नहीं जान सकते २०९
६ अन्वय-विधि और साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान २१०
७ अन्वय और व्यतिरेक की सम्मिलित विधि २११
८ व्यतिरेक विधि २१६
९ व्यतिरेकान्वय की सम्मिलित विधि २२१
१० सहगामि-विचरण-विधि २२४
११ सहगामि-विचरण-विधि की विशेषताएँ २२८
१२ सहगामि-विचरण-विधि की सीमाएँ २२९

१३. अवशेष-विधि . २३०
१४. अवशेष-विधि की विशेषताएँ .. २३४
१५. उपर्युक्त पाँच विधियों का परस्पर सम्बन्ध ... २३५
१६. प्रत्यक्षीकरण की विधियाँ तथा प्रयोग की विधियाँ २३७
१७. अनुसंधान की विधियाँ और सिद्धि की विधियाँ २३८
१८. विधियों की समालोचना ... २३९
१९ अभ्यास प्रश्न ... २४५

अध्याय ७

१ प्रायोगिक विधियों की कठिनाइयाँ और उनको दूर करने के उपाय .. २४७
२. कार्य समिश्रण और प्रायोगिक विधियाँ ... २४७
३. विशेषानुमानीय विधि २४९
४. विशेषानुमानीय विधि का औचित्य २५४
५. अभ्यास प्रश्न २५४

अध्याय ८

१. संयोग और इसका पृथक्-करण .. २५५
२. संयोग ... २५५
३ संयोग का पृथक्-करण २५८
४ सम्भावना .. २५९
५ सम्भावना के आधार . २६१
६. सम्भावना और सामान्यानुमान .. २६३
७ सम्भावना का तार्किक आधार ... २६५
८. सम्भावना की परिगणना के नियम . २६६
९. सम्भावनात्मक तर्क और सन्निकट-सामान्यीकरण २६९
१०. अभ्यास प्रश्न ... २७१

अध्याय ९

१. उपमाजन्य-सामान्यानुमान २७३
२. उपमाजन्य-सामान्यानुमान का स्वरूप ... २७६

३ उपमाजन्य-सामान्यानुमान और सामान्यानुमान — २७७
४ उपमाजन्य-सामान्यानुमान और वैज्ञानिक सामान्यानुमान २७९
५. उपमाजन्य-सामान्यानुमान और साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान .. २८१
६ उपमाजन्य-सामान्यानुमान की शक्ति २८२
७ सम्यक् उपमाजन्य-सामान्यानुमान और मिथ्या उपमाजन्य-सामान्यानुमान २८५
८ अभ्यास प्रश्न २८७

अध्याय १०

१ नियम के भिन्न-भिन्न अर्थ २८८
नियमों का वर्गीकरण २९१
३ अन्य प्रकार के सहायक नियम २९७
४ क्रमवर्ती और सहवर्ती सहायक नियम २९९
५ विश्व एक नियामक सगठन है ३०१
६ अभ्यास प्रश्न ३०३

अध्याय ११

१ स्पष्टीकरण — ३०५
२ वैज्ञानिक स्पष्टीकरण ३०८
३ वैज्ञानिक स्पष्टीकरण के रूप ३१०
४ वैज्ञानिक स्पष्टीकरण की सीमाएँ ३१२
५. स्पष्टीकरण के दोष ३१४
६ अभ्यास प्रश्न ३१५

अध्याय १२

१ वर्गीकरण ३१७
२. स्वाभाविक और कृत्रिम वर्गीकरण ३१८

३ स्वाभाविक और कृत्रिम वर्गीकरण में भेद का अभाव ३१९
४ स्वाभाविक वर्गीकरण और स्वाभाविक प्रकार ३१९
५ वर्गीकरण के नियम ... ३२१
६ नमूने या लक्षण के द्वारा वर्गीकरण .. ३२२
७ श्रेणी के द्वारा वर्गीकरण .. ३२३
८ वर्गीकरण और विभाग ३२३
९ वर्गीकरण और लक्षण ३२५
१०. वैज्ञानिक वर्गीकरण की सीमाएँ ३२५
११ अभ्यास प्रश्न ३२६

अध्याय १३

१. परिभाषा और नामकरण . ३२८
२ नामों का असाक्षात् प्रयोग ३२९
३. नामों का साक्षात् प्रयोग . ३२९
४ वैज्ञानिक भाषा की आवश्यकताएँ ३३०
५ शब्दों के अर्थ-परिवर्तन का इतिहास ३३२
६ अभ्यास प्रश्न .. ३३४

अध्याय १४

१ सामान्यानुमान के दोष ३३६
२ अतर्क-सम्बन्धी-सामान्यानुमान के दोष . ३३७
३ तर्क-सम्बन्धी सामान्यानुमानीय दोष ... ३४०
४ तर्कबाह्य या अतर्क सम्बन्धी दोष .. ३४४
५ अभ्यास प्रश्न . ३५२

अध्याय १५

१. परिशिष्ट ... ३५६
२ अभ्यास प्रश्न ३५९
पारिभाषिक शब्दों की सूची . १–१३

तर्कशास्त्र

भाग २

(सामान्यानुमान या आगमन)

अध्याय १

(१) विषय-प्रवेश

प्रथम भाग में विशेषानुमान (Deduction) का वर्णन और पर्यालोचन किया गया था। प्रस्तुत द्वितीय भाग में सामान्यानुमान (Induction) का वर्णन और प्रत्यालोचन किया जायगा। अनुमान के हमने दो भेद किये हैं (१) विशेषानुमान और (२) सामान्यानुमान। विशेषानुमान में हम दिये हुए प्रतिज्ञा वाक्यों से निष्कर्ष निकालते हैं। यदि हमारे प्रतिज्ञा वाक्य निर्दोष हैं तो उनसे निकाला हुआ निष्कर्ष भी सत्य होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि विशेषानुमान में हम रूप-विषयक सत्यता[1] पर अधिक ध्यान देते हैं, विषय-विषयक सत्यता[2] पर अधिक ध्यान नहीं देते। अब हम एक विशेषानुमान का उदाहरण लेते हैं जिससे हमारे उपर्युक्त कथन की पूर्ण पुष्टि हो जायगी—

"सब मनुष्य मरणशील हैं।
नागार्जुन मनुष्य है।
∴ नागार्जुन मरणशील है।"

इस तर्क में यह स्पष्ट है कि मुख्य वाक्य और अमुख्य वाक्य हमारे प्रदत्त को बनाते हैं। अर्थात्, जिसका विषय हमको दिया हुआ है और

---

(1) Formal Truth (2) Material Truth

जिसको हमने सत्य मान लिया है। इसकी न कोई परीक्षा की गई है और न इसपर कोई विशेष विचार किया गया है। हमें यहाँ केवल इतना ही देखना है कि इस अनुमान में हमने सिलाजिज्म के पूरा नियमों का पालन किया है या नहीं। यदि किया है तो हमारा अनुमान सत्य होगा। क्योंकि यह अनुमान 'बारबारा' है इसलिये रूप की दृष्टि से यह अनुमान सत्य है इसमें कोई सन्देह नहीं। यह निष्कासन-विधि (Deductive-method) है। इसमें हमें अधिक चिन्तन करने की आवश्यकता नहीं। जो कुछ दिया हुआ है उसको मानकर तर्क किया गया है अतः यह ठीक है। यह निष्कर्षण-विधि के बाहर की बात है कि वह प्रतिज्ञा वाक्यों की सत्यता पर विचार करे। यहाँ तो केवल यही मान लिया जाता है कि ये सत्य हैं। इसके लिये इतना ही पर्याप्त है। ये प्रतिज्ञा वाक्य या अनुमान विषय की दृष्टि से भी सत्य हैं या नहीं—यह विशेषानुमान के क्षेत्र[1] या परिधि से बाहर की बात है। जब हम विशेषानुमान के क्षेत्र से बाहर होकर इस अनुमान के अंगों की सत्यता पर विचार करना आरम्भ करते हैं और सोचते हैं कि यह अनुमान विषय की दृष्टि से भी ठीक है तो प्रतीत होता है कि इस अनुमान में आये हुए वाक्यों की संगति वस्तुस्थिति से भी ठीक है। विषय की दृष्टि से "सब मनुष्य मरणशील हैं नागार्जुन मनुष्य है; इसलिये नागार्जुन मरणशील है" — यह अनुमान सत्य है क्योंकि इसमें केवल विशेषानुमान के रूप विषयक नियमों का ही पालन नहीं किया गया है किन्तु प्रतिज्ञा वाक्यों द्वारा प्रस्तुत विचार और वस्तुस्थिति में पूरा सामञ्जस्य[2] भी देखा गया है। इसी सामञ्जस्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह अनुमान विषय की दृष्टि से भी परिपूर्ण है। इस प्रकार उपर्युक्त अनुमान रूप और विषय दोनों की दृष्टि से सर्वथा सत्य है।

इस कथन से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि प्रत्येक अनुमान रूप और विषय की दृष्टि से अवश्य सत्य होगा। रूप-विषयक सत्य और

---

(1) Scope (2) Conformity

विषय-विषयक सत्य आवश्यक रूप से सर्वदा एक साथ नहीं रहते। यह सर्वथा सम्भव है कि एक विशेषानुमान रूप की दृष्टि से सत्य हो और विषय की दृष्टि से असत्य। उदाहरणार्थ,

"सब मनुष्य अमर है।
सब नेता मनुष्य है।
∴ सब नेता अमर है।"

इस अनुमान पर विचार कीजिये। देखिये, यहाँ सिलाजिज्म के सब नियमों का पूर्णतया पालन किया गया है। रूप भी 'बारबारा' है। अत जहाँ तक इसकी रूप-विषयक सत्यता का सम्बन्ध है, इसमें कोई सन्देह नहीं, यह ठीक है, किन्तु निष्कर्ष "सब नेता अमर हैं", गलत है। इस बात को किसी प्रमाण से कोई मनुष्य स्वीकार नहीं कर सकता कि 'सब नेता अमर हैं'। इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त अनुमान रूप की दृष्टि से सत्य है किन्तु विषय की दृष्टि से असत्य, क्योंकि इसमें निष्कर्ष, वस्तुस्थिति से सामञ्जस्यता को प्राप्त नहीं होता। तथा यदि इस अनुमान की परीक्षा की जाय तो प्रतीत होगा कि मुख्य वाक्य 'सब मनुष्य अमर हैं' यह विषय की दृष्टि से गलत है। इसलिये इसके आधार पर जो निष्कर्ष निकाला गया है वह अवश्य गलत होगा। पहले सिलाजिज्म में जो निष्कर्ष निकाला गया है वह सत्य है क्योंकि उसके मुख्य वाक्य और अमुख्य वाक्य दोनों की सगति वस्तुस्थिति से सब ग ठीक बैठती है। वस्तुस्थिति से प्रतिज्ञा वाक्यों की सगति के अभाव के कारण ही द्वितीय अनुमान बिलकुल गलत है। इस पर्यालोचन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि किसी विशेषानुमान की रूप-विषयक सत्यता उसके रूप के नियमों को पालने पर निर्भर होती है और विषय-विषयक सत्यता उसके वाक्यों की वस्तुस्थिति के साथ सगति पर अवलबित होती है। अत यदि विशेषानुमान के वाक्य, विषय की दृष्टि से सत्य हैं और सिलाजिज्म के समग्र नियमों का पूर्ण रूप से पालन किया गया है तो अनुमान निस्सन्देह सत्य और सही होगा।

इस तथ्य को 'कारवेथ रीड' (Carveth Read) महोदय

ने यह सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है। वे लिखते हैं— "किसी सत्य सिलाजिज्म के वाक्यों और इसके निष्कर्ष में सम्बन्ध उसी प्रकार का है जैसे कि एक हेतुहेतुमद् वाक्य के हेतु और हेतुमद् में होता है।" उदाहरणार्थ "यदि 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है माना कि 'क', 'ख' है तो 'ग' 'घ' अवश्य होगा। इसी प्रकार यदि सिलाजिज्म के वाक्यों की सत्यता स्वीकार कर ली जाय तो निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा। तथा यदि मान लिया जाय "कि 'ग', 'घ' नहीं है तो 'क', 'ख' नहीं होगा। उसी प्रकार यदि किसी सत्य सिलाजिज्म का निष्कर्ष गलत है तो यह निश्चित है कि कोई न कोई प्रतिज्ञा वाक्य अवश्य गलत होगा।

उपर्युक्त विवेचन से यह निश्चित हो गया कि निगमनानुमान रूप विषयक सत्य पर ही विचार करता है विषय-विषयक सत्य पर नहीं। किन्तु तर्कशास्त्र तो रूप-विषयक और विषय-विषयक दोनों ही प्रकार के सत्यों पर विचार करता है। इसलिये प्रश्न उठता है कि विषय-विषयक सत्य का किस प्रकार निर्णय किया जाय?

इसका उत्तर जितना सरल है उतना ही कठिन है। यदि अनुमान के वाक्य विशेष हों तो उनकी सत्यता सहज ही सरलता से स्थापित की जा सकती है; क्योंकि अनुभव के बल पर हम कह सकते हैं कि अमुक वाक्य हमारे अनुभवगम्य[1] हैं इसलिये वे सत्य हैं। उदाहरणार्थ हमारा सामान्य-अवलोकन[2] हमें यह बतलाता है कि "कुछ मनुष्य मरणशील हैं।" वास्तव में हम उन्हें मरते हुए देखते हैं इसलिये हमारे लिये यह बहुत सरल बात है कि हम कुछ मनुष्यों के विषय में निश्चित रूप से अपने अनुभव के आधार पर कह दें कि जो कुछ हमने कुछ मनुष्यों के विषय में कहा है वह सत्य है। इसी प्रकार अपने अनुभव के आधार पर हो हम कह सकते हैं कि 'कुछ मनुष्य ईमानदार हैं' यह सत्य है और 'कुछ बेईमान मनुष्य हैं' यह भी सत्य है इत्यादि। किन्तु सिलाजिज्म के नियमानुसार सिलाजिज्म के दोनों वाक्य विशेष

(1) Based on experience (2) Common observation.

नहीं हो सकते। क्योंकि "दो विशेष वाक्यों से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।" अब प्रश्न होता है कि सामान्य वाक्य[1] की विषय-विषयक सत्यता किस प्रकार स्थापित की जाय?

यदि सामान्य वाक्य विश्लेषणात्मक (Analytical) हो तब भी कोई कठिनता उपस्थित नहीं होती। उसे हम सरलतापूर्वक स्थापित कर सकते हैं। **'विश्लेषणात्मक वाक्य[2] वह है जिसमें विधेय केवल उद्देश्य का भावार्थ प्रकट करता है'।** इसके विपरीत **संश्लेषणात्मक वाक्य[3] वह है जिसमे विधेय उद्देश्य के भावार्थ के अतिरिक्त कुछ अधिक बात प्रकट करता है जिसको उद्देश्य का भावार्थ प्रकट नहीं कर सकता।** इस प्रकार "सब मनुष्य समझदार हैं' यह वाक्य विश्लेषणात्मक है क्योंकि इसमे विधेय उद्देश्य के भावार्थ का एक अंश है। इससे यह बिलकुल स्पष्ट है कि इस प्रकार के वाक्यों को स्थापित करने में कोई कठिनता नहीं होती। हम मनुष्य शब्द का विश्लेषण करें तो प्रतीत होगा कि मनुष्य वह है जिसमें जीवत्व और समझदारी ये दो गुण पाए जाते हैं। इनमें से एक को हम विधेय बनाकर बड़ी सरलता से विश्लेषणात्मक वाक्य स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकार के वाक्यों की स्थापना करने के लिये हमें अपने अनुभव को साक्षी बनाने की भी आवश्यकता नहीं है। हमारे अनुभव के बिना ही हम इस प्रकार के वाक्यों को केवल विश्लेषण-प्रक्रिया द्वारा स्थापित कर सकते हैं। किन्तु प्रश्न फिर उपस्थित होता है कि संश्लेषणात्मक सामान्य-वाक्य[4] किस प्रकार स्थापित किये जायँ? इनके स्थापित करने में न तो अनुभव ही हमारी सहायता कर सकता है और न हम उद्देश्य का विश्लेषण करके ही इस प्रकार के वाक्य स्थापित कर सकते हैं।

---

(1) General Proposition (2) Analytic Proposition (3) Synthetic proposition (4) Synthetic general proposition

अश्लेषणात्मक सामान्य वाक्य के तीन स्रोत हैं जिनसे हमें इस प्रकार के वाक्य मिल सकते हैं—(१) स्वयंसिद्ध (२) अधिक सामान्य वाक्यों से निकाले हुए निष्कर्ष (३) सामान्यानुमान।

स्वयंसिद्ध (Axioms) वाक्य वे कहलाते हैं जिनकी मान्यता स्वयंसिद्ध होती है अर्थात् जिनकी सत्यता की सिद्धि के लिये हमें किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। ये अश्लेषणात्मक-वाक्य सामान्य-वाक्य के रूपों में रक्खे जाते हैं। इनके द्वारा अनेक सिद्धान्तों की सिद्धि की जाती है किन्तु इनकी सत्यता को सब विद्वान् यथावत् स्वीकार करते हैं। इस प्रकार के मौलिक सिद्धान्त तर्कशास्त्र में भी माने किये गये हैं। जैसे तादात्म्य का सिद्धान्त[1] व्याघात-विरोध का सिद्धान्त[2] मध्य-पद-परिहार का सिद्धान्त[3] इत्यादि। इस प्रकार के सिद्धान्तों की संख्या बहुत कम है और अधिकतर अश्लेषणात्मक सामान्य वाक्य स्वयंसिद्ध नहीं होते हैं।

अधिक सामान्य वाक्यों से निकाले हुए निष्कर्ष (Deduction from more general propositions) वे वाक्य कहलाते हैं जिन्हें हम अधिक सामान्य वाक्यों से सिलाजिज्म की प्रक्रिया द्वारा निकालते हैं। यह अवश्य सम्भव है कि सामान्य वाक्य भी एक सिलाजिज्म का वाक्य है यह दूसरे सिलाजिज्म का निष्कर्ष हो और इस दूसरे सिलाजिज्म का सामान्य वाक्य किसी तीसरे, सिलाजिज्म का निष्कर्ष हो इत्यादि। जैसे सब मनुष्य मरणशील हैं, क्योंकि सब जानदार मरणशील हैं तथा सब मनुष्य जानदार हैं। फिर सब जानदार मरणशील हैं क्योंकि सब जीवित पदार्थ मरणशील हैं तथा जानदार जीवित पदार्थ हैं इत्यादि। इससे स्पष्ट है कि हम इस प्रकार के अश्लेषणात्मक सामान्य वाक्य की स्थापना से कोई विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। यह तो केवल हमारे

---

(1) The Principle of Identity (2) The Principle of Contradiction, (3) The Principle of Excluded Middle

कठिनाई को टालने का उपाय है—इससे हम अनवस्था[1] में पड़ जायेंगे, अर्थात् हमारी प्रक्रिया का कोई अन्त नहीं होगा—चाहे हम पीछे की ओर अनन्त काल तक इसी प्रक्रिया को करते चले जायँ। इस प्रश्न का कोई उत्तम हल नहीं है। पीछे की ओर जानेवाली अनवस्था का अन्त होना चाहिये। इस प्रकार करते-करते अन्त में हम उच्चतम सामान्य वाक्यों पर ही पहुँचेंगे जिनको हम रूप की दृष्टि से स्थापित नहीं कर सकते। इसी हेतु से किसी तार्किक ने ठीक कहा है "**किसी तर्कमाला का अन्तिम सामान्य वाक्य सामान्यानुमान का परिणाम होता है न कि विशेषानुमान का**"। हम तर्क करते-करते चले जायँ, जब हम अन्तिम सिलाजिज्म पर पहुँचेंगे तो प्रतीत होगा कि इनका सामान्य वाक्य केवल सामान्यानुमान से ही सिद्ध होगा, विशेषानुमान से नहीं।

सामान्यानुमान (Induction) **वह प्रक्रिया है जिसमें हम विशेष वाक्यों द्वारा समान्य वाक्य की स्थापना करते हैं।** प्रश्न उपस्थित होता है कि सश्लेषणात्मक सामान्य वाक्य जो न तो स्वयसिद्ध हैं और न विशेषानुमान, उनकी किस प्रकार स्थापना की जाय ? इसका उत्तर यही है कि '**सामान्यानुमान द्वारा**'। यह सामान्यानुमान ही है जो अधिक सख्यक सश्लेषणात्मक सामान्य वाक्यों की स्थापना करता है। विशेषानुमान तो अपने सामान्य वाक्यों की सत्यता को मान कर चलता है किन्तु सामान्यानुमान उनको सिद्ध करता है। विशेषानुमान में हम यह मान कर चलते है कि यदि प्रतिज्ञा-वाक्य सत्य हैं तो निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा। हमें उसके निष्कर्ष में कोई सशय नहीं होता। हम उसे बिना किसी प्रमाण के स्वीकार कर लेते हैं किन्तु सामान्यानुमान इस बात को सिद्ध करता है कि सामान्य वाक्य विषय की दृष्टि से सत्य हैं अर्थात् वे वस्तुस्थिति से सामञ्जस्य रखते हैं। वस्तुस्थिति के आधार पर विचारों की सामञ्जस्यता होने पर ही सामान्यानुमान सश्लेषणात्मक सामान्य वाक्यों की स्थापना करता है। इसलिये

---

(1) Regressus ad Infinitum

यह ठीक कहा गया है कि 'सामान्यानुमान विशेषानुमान के सामान्य वाक्यों की स्थापना करता है'।

(२) सामान्यानुमान का उपपाद्य विषय

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो चुका है कि सामान्यानुमान संश्लेषणात्मक[1] सामान्य वाक्य की विषय सम्बन्धी सत्यता को स्थापित करता है। किन्तु यह तभी सम्भव है जब वाक्य, जिनसे हम सामान्य वाक्यों का निर्माण करते हैं, विषय की दृष्टि से भी सत्य हों; अर्थात् वे हमारे अनुभव[2] पर आधारित हों। जहाँ तक अनुभव का सम्बन्ध है यह प्रारम्भिक रूप से विशेष वाक्यों का ज्ञान कराता है। यह सामान्य वाक्यों के निर्माण में सर्वथा असमर्थ होता है। अनुभव तो वास्तव में, हमें इतना ही ज्ञान देता है कि रामलाल, श्यामलाल, हरिप्रसाद, गोविन्दराम, किशनदास, अमरनाथ जिनको मैं जानता था मर गये हैं। यह सब मनुष्यों की मरणशीलता के बारे में कुछ नहीं कह सकता। इसी प्रकार हम अनुभव से यह जानते हैं कि पानी से लोहे के टुकड़ों को जंग लग जाती है किन्तु अनुभव यह निश्चयपूर्वक कभी नहीं कह सकता कि पानी के सम्पर्क से लोहे के टुकड़ों को हमेशा जंग लग जाती है। न्यूटन महोदय ने अवश्य कुछ भौतिक पदार्थों को नीचे गिरते देख कर कहा होगा कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। सब भौतिक पदार्थों को जमीन पर गिरते हुए देखना उनके लिये असम्भव था। बल्कि उन्होंने तो केवल एक वृक्ष से सेब के जमीन पर गिरने मात्र से ही यह तर्क किया था कि यह ऊपर क्यों नहीं गया नीचे क्या आया—इसका कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिये और वह है आकर्षण शक्ति। इसी से उन्होंने एक सामान्य नियम की स्थापना की जिसके कारण आज भौतिक जगत् में कितना परिवर्तन हुआ है।

ऐसे ही विशेष अनुभवों के आधार पर साधारण मनुष्य सामान्य वाक्यों को बनाते चले आ रहे हैं। वैज्ञानिकों का तो कहना ही क्या!

---

(1) Synthetic. (2) Experience.

इस प्रकार जब सामान्य वाक्य बनाए जाते हैं उस समय केवल उन्हीं उदाहरणों को सग्रहीत नहीं किया जाता जो हमारे अनुभव में आए हुए हैं, किन्तु उस प्रकार के सब उदाहरणों को सम्मिलित कर लिया जाता है चाहे वे अनुभव के अन्दर हों या अनुभव से बाहर हों। तब हम इस प्रकार के सामान्य वाक्य बनाने में कभी सकोच नहीं करते। जैसे, 'सब मनुष्य मरणशील हैं' 'सब अवस्थाओं में जल, लोहे में जग पैदा करता है' 'सब भौतिक पदार्थ एक दूसरे को आकर्षित करते हैं' इत्यादि। इन सामान्य वाक्यों मे साधारण अनुभव का ही प्रयोग किया गया है। इस अनुभव के द्वारा कुछ थोड़े से उदाहरणों का ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है किन्तु कथन सब अवस्थाओं के बारे में किया गया है और वह सामान्य का बोधक है। किन्हीं-किन्हीं अवस्थाओं में तो यहाँ तक होता है कि केवल एक उदाहरण ही अच्छी तरह परीक्षित, सामान्य निष्कर्ष के निकालने के लिये पर्याप्त होता है और उसी की सत्यता पर से हम सामान्यीकरण करके सामान्य वाक्य तय्यार कर लेते हैं, और उसमें कोई दोष नहीं होता।

इससे सिद्ध होता है कि सामान्यानुमान मे सामान्यीकरण की आवश्यकता होती है। **सामान्यीकरण (Generalisation) वह प्रक्रिया है जिसमें विशेष अनुभवों के आधार पर सामान्य सत्य की स्थापना की जाती है।** यह सामान्यानुमान का कार्य है कि वह उन अवस्थाओं का परीक्षण करके उनको निश्चित रूप दे दे जिससे कि सामान्यीकरण सत्य सिद्ध हो जायँ। जोइसे (Joyce) महोदय ने सामान्यानुमान का लक्षण बनाते हुए लिखा है कि **'सामान्यानुमान वह प्रक्रिया है जिसमे विशेष उदाहरण द्वारा सामान्य नियमों को स्थापना को जाती है।** फाउलर (Fowler) महोदय भी सामान्यानुमान का इसी प्रकार लक्षण बनाते हैं और कहते हैं कि **"सामान्यानुमान, विशेष उदाहरणों के द्वारा सामान्य** का अनुमान करता है या जो कम सामान्य हैं उससे अधिक सामान्यों का अनुमान करता है। वेल्टन (Welton) महोदय ने भी सामान्यानुमान का यही लक्षण

बतलाया है कि 'यह वह प्रक्रिया है जिसमें सामान्य वाक्यों का निर्माण किया जाता है'।

पर किन अवस्थाओं में इस प्रकार के सामान्य वाक्यों का निर्माण सम्भव है? हमारे सामान्य वाक्य किस प्रकार सत्य हो सकते हैं? हम अपने अनुभव के आधार पर किस प्रकार संश्लेषणात्मक सामान्य वाक्यों को बनाने में समर्थ हो सकेंगे? हम कहाँ तक विशेष से सामान्य का अनुमान करने में या कम सामान्य से अधिक सामान्य का अनुमान करने में न्याययुक्त हैं? ये सब प्रश्न सामान्यानुमान के अध्याय विषय को उपस्थित करते हैं। मिल महोदय ने इन प्रश्नों का बहुत सुन्दरता से उत्तर दिया है। वे लिखते हैं "कुछ अवस्थाओं में केवल एक उदाहरण और अन्य अवस्थाओं में अनेक उदाहरण, बिना किसी अपवाद[1] के सामान्य वाक्य बनाने में समर्थ होते हैं" जो मनुष्य इस रहस्य को जानता है वह सारे तर्कशास्त्र के रहस्य को जानता है और यही सामान्यानुमान की गुत्थियों को सुलझा सकता है। सीमित ज्ञान से असीम ज्ञान की ओर किस प्रकार प्रवृत्ति होती है—इस गुत्थी को सुलझाना साधारण बात नहीं है। यह मिल के रहस्य की कुञ्जी है।

इन प्रश्नों का उत्तर इसी अनुभव में है कि 'मनुष्य की बुद्धि सर्वदा दृश्य से अदृश्य की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, स्वाभाविक रूप से चलती है।' यदि ऐसा न होता तो हम पशुओं के ही स्तर[2] पर रह जाते। आज जो ज्ञान विज्ञान की उन्नति दृष्टि गोचर हो रही है वह कदाचित् न होती। आजतक की ज्ञान-विज्ञान की उन्नति इस बात की साक्षी है कि मनुष्य अनादिकाल से विशेष से सामान्य की ओर निरन्तर बढ़ता आया है। उक्त सामान्यीकरण की प्रवृत्ति का कोई न कोई हेतु अवश्य है। वह यह है कि हम विश्व की एकरूपता और उसकी व्यवस्था में भी विश्वास करते हैं। 'विश्वास, ज्ञान

---

(1) Exception (2) Level.

का प्रथम आधार है।' बिना विश्वास के हम ज्ञान में प्रवृत्ति नहीं कर सकते। हमें कुछ न कुछ मानकर ही आगे चलना पड़ता है। सत्य भी है, बिना किसी स्थान पर पैर रक्खे आगे कदम कैसे बढ़ाया जा सकता है। अत. यह मानना उचित है कि सामान्यानुमान, दो सिद्धान्त—(१) **प्रकृति की एक रूपता का सिद्धान्त** (The Principle of Uniformity of Nature) और (२) **कारणता का सिद्धान्त** (The Principle of Causation) पर आश्रित रहता है। कारणता का सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि **'प्रत्येक कार्य या घटना का कोई न कोई कारण अवश्य होता है।'** तथा प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त यह बतलाता है कि **'सामान्य अवस्थाओं में वही कारण उसी कार्य या घटना को पैदा करता है।'** सामान्यानुमान में हम क्या करते हैं? मान लो हमने एक मनुष्य के मरने की घटना देखी और उसे देख कर अन्दाजा लगाया कि मनुष्यत्व में कुछ ऐसी बात है जिसके कारण मृत्यु होती है। इसी अनुभव को हम अन्य उदाहरणों पर भी लागू करके यह कल्पना करते हैं कि वही कारण उन्हीं अवस्थाओं में, उन्हीं जगहों में और उन्हीं समयों में उसी प्रकार की घटनाओं या कार्यों को पैदा करेगा। इसका अभिप्राय यह है कि हम विशेष उदाहरणों में सामान्य तत्व का अन्वेषण करते हैं। इस प्रकार के सामान्य-तत्व का अन्वेषण करना ही सामान्यानुमान की गुत्थी को सुलझाना है। यदि हम और गहरा चिन्तन करें तो प्रतीत होगा कि विशेष उदाहरणों में कुछ साधारण और असाधारण गुण पाए जाते हैं। उनमें से कुछ तो आवश्यक गुण होते हैं और कुछ परिवर्तनीय और कुछ आकस्मिक। जो आकस्मिक गुण होते हैं उन्हें हम निकाल देते हैं या अलग कर देते हैं और हमारा ध्यान[1] आवश्यक गुणों पर स्थिर हो जाता है जो विशेष उदाहरणों के अन्तस्तत्व[2] का निर्माण करते हैं। विशेष उदाहरण केवल विशेष ही

---

(1) Attention (2) Inner reality

नहीं पाते उनमें सामान्य का तत्त्व अन्तर्निहित होता है या यह कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी कि विशेष उदाहरण सामान्य के ही प्रकट-रूप[1] हैं। जब हमें इस सामान्य-तत्त्व का पता लग जाय और उसे सिद्ध कर दें तो समझ लेना चाहिये कि हमारे सामान्यानुमान का प्रधान कार्य कुछ हद तक हो गया।

(३) सामान्यानुमान का वैज्ञानिक स्वरूप

सामान्यानुमान का वैज्ञानिक स्वरूप भी होता है। उसे हम वैज्ञानिक सामान्यानुमान (Scientific Induction) कहते हैं। यथार्थ में, 'वैज्ञानिक सामान्यानुमान वह है जिसमें हम, विशेष उदाहरणों को देखकर प्रकृति की एकरूपता के सिद्धांत और कारणता के सिद्धांत के आधार पर, सामान्य संश्लेषणात्मक वाक्यों की रचना करते हैं'। अब हम इस लक्षण का विश्लेषणात्मक विवेचन करेंगे और उसके द्वारा यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि वैज्ञानिक सामान्यानुमान की क्या क्या विशेषतायें हैं। इस के साथ साथ हम वैज्ञानिक सामान्यानुमान की अन्य तार्किक प्रक्रियाओं के साथ तुलना भी करेंगे।

(१) सामान्यानुमान सामान्य संश्लेषणात्मक वाक्यों की रचना करता है। सामान्यानुमान में वाक्यों का निर्माण होता है। सामान्यानुमान के वाक्य व्याकरण के वाक्यों से भिन्न होते हैं। इन्हें न्याय-वाक्य भी कहा जाता है। प्रत्येक वाक्य में एक उद्देश्य और विधेय होता है। वाक्य या न्याय-वाक्य इन दोनों के सम्बन्ध को स्थापित कर के हमारे सामने एक नियम को उपस्थित करता है। सामान्यानुमान में निष्कर्ष एक वाक्य का होता है जिसमें हम दो पदों के बीच एक सम्बन्ध को स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। जैसे 'मनुष्य मरणशील है' इस वाक्य के अन्दर हम 'मनुष्य' और 'मरणशीलता' में कुछ सम्बन्ध पाते हैं और उस सम्बन्ध के आधार पर हम यह सिद्ध

[1] Obvious forms.

करते हैं कि मनुष्य मरणशील है। क्योंकि सामान्यानुमान में हम सामान्य वाक्यों की स्थापना करते हैं। इसलिये हम विचार[1] और लक्षण[2] को इससे भिन्न प्रक्रियाएँ मानते हैं।

सामान्यानुमान में हम सामान्य वाक्यों की स्थापना करते हैं। **सामान्य वाक्य हम उसे कहते हैं जिसमें हम अपरिमित व्यक्तियों के बारे में किसी विधेय की या तो विधि करते हैं या निषेध करते हैं।** उदाहरणार्थ 'सब मनुष्य मरणशील हैं'। यहाँ विधेय 'मरणशील' की अपरिमित व्यक्तियों के साथ विधि की गई है। इससे स्पष्ट है कि सामान्य-वाक्य में उद्देश्य की इयत्ता नहीं रहती। उसमें हम सर्वदा अगणित व्यक्तियों के विषय में विधि करते हैं या निषेध करते हैं। सामान्यवाक्य विशेष वाक्य से इसलिए भिन्न माना जाता है क्योंकि विशेष वाक्य में हम कुछ व्यक्तियों के बारे में विषय की विधि या निषेध करते हैं, किन्तु, इसके विपरीत, सामान्य वाक्य में हम असंख्य व्यक्तियों के बारे में विधेय की विधि या निषेध करते हैं। तथा इसके अतिरिक्त संश्लेषणात्मक वाक्यों को, जो केवल बाह्य रूप में सामान्य वाक्य होते हैं, उनसे भी इनको पृथक् किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, सब ज्ञात महाद्वीपों में बड़ी-बड़ी नदियाँ पाई जाती हैं—यह वाक्य केवल बाह्य रूप में सामान्य प्रतीत होता है किन्तु यथार्थ में सामान्य नहीं है, क्योंकि इसमें विधेय की असंख्य व्यक्तियों के बारे में न तो विधि की गयी है और न निषेध किया गया है, किन्तु केवल सात महाद्वीपों के बारे में ही ऐसा कहा गया है। मान लीजिये अतलान्तिक[3] महासागर में एक नवीन महाद्वीप उत्पन्न हो गया है तो क्या यह नियम उसमें भी लागू होगा? इसमें सन्देह है। किन्तु जब हम संश्लेषणात्मक वाक्य बनाते हैं जैसे 'सब मनुष्य मरणशील हैं' तब देखेंगे कि इस वाक्य में जो विधेय 'मरणशील' है वह सब मनुष्यों के लिये लागू हो सकता है चाहे वे ज्ञात हों या अज्ञात। यह भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल, सब क्षेत्र, सब अवस्थाओं

(1) Thought (2) Definition (3) Atlantic

में लागू हो सकता है। इसका एक पक्ष है। इसका उत्तर हम तब देंगे जब हम सामान्यीकरण की विधि में 'छलांग'[1] का विचार करेंगे क्योंकि सामान्यानुमान में हम ज्ञात से अज्ञात में कूद जाते हैं। इस छलांग में ही सामान्यानुमान का महत्त्व है। यह सर्वथा सम्भव है कि सामान्यानुमान द्वारा हम जिन सामान्य वाक्यों की स्थापना करते हैं उनकी माप भिन्न-भिन्न हों। कुछ सामान्यानुमान अधिक सामान्य रूप के हो सकते हैं और उनके अन्दर दूसरों की अपेक्षा अधिक उदाहरण संगृहीत किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ 'सब मनुष्य मरणशील हैं' यह वाक्य अपेक्षाकृत 'सब प्राणधारी मरणशील हैं' इस वाक्य के कम सामान्य के भाव का द्योतक है। किन्तु इसके कारण पूर्व वाक्य के सामान्यानुमान होने में कमी नहीं आ सकती। यह हो सकता है कि जो अधिक सामान्य भाव को प्रदर्शित करते हैं वे ज्ञानवृद्धि में अधिक सहायक हों; किन्तु इस आधार पर उत्तर वाक्य को हम सामान्यानुमान की दृष्टि से कम मूल्यवाला नहीं मान सकते। सामान्यानुमान में जिन सामान्य वाक्यों की स्थापना की जाती है वे संश्लेषणात्मक वाक्य होते हैं विश्लेषणात्मक नहीं। विश्लेषणात्मक वाक्य, केवल वाक्यगत उद्देश्य का भावार्थ या उसके एक भाग का प्रतिपादन विधेय के रूप में करता है। जैसे, 'सब मनुष्य समझदार हैं'। इस वाक्य में 'समझदार होना' उद्देश्य का एक भाग है। संश्लेषणात्मक वाक्य केवल वाक्यगत उद्देश्य का विश्लेषण ही नहीं करता, किन्तु हमारे ज्ञान में उद्देश्य-विषयक कुछ वृद्धि भी करता है—अर्थात् हमें उसके विषय में कोई नया विचार बतलाता है। जैसे, 'मनुष्य मरणशील है'—यह वाक्य संश्लेषणात्मक है क्योंकि इसमें विधेय 'मरणशील' एक गुण है जो भावार्थ का केवल अंश ही नहीं है किन्तु उद्देश्य के विषय में एक नवीन सूचना देता है। अतः सामान्यानुमान में संश्लेषणात्मक वाक्यों की ही स्थापना की जाती है।

---

(1) Leap

(२) **सामान्यानुमान उदाहरणों के निरीक्षण पर निर्भर रहता है।** सामान्यानुमान में हम सामान्य वाक्यों की प्रतिष्ठापना करते हैं। किन्तु इस प्रकार के वाक्यों की स्थापना उदाहरणों के निरीक्षण पर निर्भर रहती है। इस हेतु से ही हम उन्हें स्वयंसिद्धों से भिन्न मानते हैं तथा इन्हे विशेषानुमान से भी भिन्न मानते हैं। स्वयसिद्ध तो अपने आप सिद्ध सामान्य-वाक्य होते हैं जिन्हें सिद्ध नहीं किया जाता किन्तु वे जिस प्रकार हैं उन्हे उसी प्रकार स्वीकार किया जाता है। इसके विपरीत सामान्यानुमान में सामान्य वाक्यों को सिद्ध करना पडता है। इसी प्रकार विशेषानुमान मे सामान्य वाक्यों को अधिक सामान्य वाक्यों से निकालना पड़ता है। किन्तु सामान्यानुमान मे सामान्य वाक्य, विशेष उदाहरणों के निरीक्षण से प्राप्त किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, सब मनुष्य मरणशील हैं—यह सामान्य वाक्य, विशेष मृत्यु के उदाहरणों के निरीक्षण के बाद ही बनाए जा सकते हैं। अत यह स्पष्ट है कि सामान्यानुमान की प्रक्रिया मे उदाहरणों का निरीक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है। बिना इसके सामान्य वाक्य नही बनाए जा सकते। इसके अतिरिक्त यह भी बतलाया जा चुका है कि सामान्यानुमान विषय विषयक सत्य से सम्बन्ध रखता है। इसका अभिप्राय यह है कि सामान्यानुमान में जो सामान्य वाक्य स्थापित किये जाते हैं उनका सामञ्जस्य वस्तुस्थिति से अवश्य होना चाहिए। (३) **सामान्यानुमान में सामान्यानुमानीय कुदान** (Inductive Leap) **या आरोहण होता है।**

जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं कि मिल महोदय के विचार के अनुसार **सामान्यानुमान वह प्रक्रिया है जिसमें हम ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करते हैं।** मिल का ही आश्रयण करते हुए वेन कहता है कि यह सामान्यानुमानीय कुदान है। इसको सामान्यानुमान का आरोहण भी कह सकते हैं। अत सामान्यानुमानीय कुदान का अभिप्राय यह है कि इसमें हम निरीक्षित उदाहरणों से अनिरीक्षित उदाहरणों का अनुमान करते हैं। अर्थात् सामान्यानुमान में हम भूत

का अनुमान करते हैं जो बीत चुका है, भविष्यत् का अनुमान करते हैं जो अभी हुआ नहीं है, तथा दूरवर्ती पदार्थों का अनुमान करते हैं जिन तक हमारी पहुँच नहीं है। इसमें कोई संशय नहीं कि हम ज्ञात से अज्ञात को जानने की प्रक्रिया में या निरीक्षित से अनिरीक्षित का ज्ञान करने की प्रक्रिया में एक बड़ा भारी कदम है। मिल और बेन दोनों महाशयों के मतानुसार यह सामान्यानुमानीय कुदान, सामान्यानुमान का स्वरूप है इसके अभाव में सामान्यानुमान की प्रक्रिया चल ही नहीं सकती। यह कुदान सामान्यानुमान की मूलाधार है। इसी हेतु से सामान्यानुमान को निर्दोष (Perfect) सामान्यानुमान से भिन्न गिना गया है।

इस पर मेलोन (Mellone) महाशय की आपत्ति विचारणीय है। वे लिखते हैं कि सामान्यानुमान के मूलतत्त्व की विवेचना इस प्रकार से है क्योंकि सामान्यानुमान में हम सामान्य वाक्य की स्थापना करते हैं जिसमें अनेक अनिरीक्षित उदाहरण अन्तर्भूत किये जाते हैं। यह कहना कुछ अयुक्त-सा जान पड़ता है कि सामान्यानुमान में विशेष से सामान्य की ओर गति होती है या हम ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करते हैं या भूत या भविष्यत् का अनुमान करते हैं। इसमें नवीन, अज्ञात, अनिरीक्षित भविष्यत्, भूत उदाहरण ऐसे नहीं हैं जो अवश्य नवीन, अज्ञात, अनिरीक्षित भविष्यत् भूत हों—क्योंकि हमारा अनुमान तभी ठीक कहलाया जा सकता है जब हम यह जानते हों कि अज्ञात उदाहरण, मुख्य गुणों में, ज्ञात उदाहरणों से मिलते-जुलते हों अन्यथा हमारा अनुमान सत्य नहीं हो सकता। मेलोन के ही शब्दों में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि "सामान्यानुमान में हम सामान्य वाक्य स्थापित करते हैं बजाय इसके कि हम ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करते हैं।" वास्तव में अनुमान में हम कदापि अज्ञात का अनुमान नहीं करते और न कर ही सकते हैं। सामान्यानुमान हमेशा ज्ञात को आधार मानकर अज्ञात को जानने का प्रयत्न करता है किन्तु यह विचार हमारे हृदय में पक्का रहता है कि अज्ञात ज्ञात सदृश ही होगा।

(४) सामान्यानुमान के दो मुख्य आधार हैं

(१) **कारणता का सिद्धान्त** और (२) **प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त**। अत हम कह सकते हैं कि सामान्यानुमान, कारणता के सिद्धान्त और प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त पर अवलम्बित रहता है। ये दोनों सिद्धान्त, सामान्यानुमान के रूपविषयक आधार कहे जाते हैं। वैज्ञानिक सामान्यानुमान इनकी सत्यता को, बिना किसी सिद्धि के स्वीकार करता है और इनकी सत्यता के मानने पर ही हम सामान्यानुमान द्वारा अनुमान कर सकते हैं। अन्यथा विशेष उदाहरणों को देख कर हम सामान्य की स्थापना कर ही नही सकते। सामान्य की स्थापना इन्हीं के आधार पर होती है। इसलिये इनको सामान्यानुमान के मौलिक सिद्धान्त कहा गया है।

कारणता का सिद्धान्त—यह प्रतिपादन करता है कि **प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता है**। ससार में बिना कारण के कोई घटना घट ही नहीं सकती। वैज्ञानिक सामान्यानुमान इस कारणता के सिद्धान्त पर आधारित है। उदाहरणार्थ, मनुष्यत्व और मरणशीलता में कारणता-सम्बन्ध सिद्ध है और इसी कारणता-सम्बन्ध के आधार पर "सब मनुष्य मरणशील हैं" यह वाक्य स्थापित किया गया है। इस विशिष्ट गुण के कारण ही हम इसको अवैज्ञानिक-सामान्यानुमान या केवल गणना-जन्य-सामान्यानुमान से पृथक् गिनते हैं, जिनमें कारणता-सम्बन्ध का अभाव होता है। वैज्ञानिक अनुमान में कारणता-सम्बन्ध का होना अत्यन्त आवश्यक है।

सामान्यानुमान का आधार **प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त** भी है। इसका साधारण अर्थ यह है कि **प्रकृति अपने अटल नियमों के अनुसार एकरूप है**। यदि कारणता का सिद्धान्त यह प्रतिपादन करता है कि प्रत्येक कार्य का कारण अवश्य होता है तो प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त यह बतलाता है कि समान अवस्थाओं में वही कारण उसी कार्य को उत्पन्न करता है। जब हमें यह ज्ञात है कि 'मनुष्यत्व' और

'मरणशीलता में कारणता-सम्बन्ध है तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि समान अवस्थाओं के उपस्थित होने पर मनुष्यत्व मृत्यु को भी अवश्य पैदा करेगा। इस नियम की व्यापकता में तनिक भी संदेह की गुंजाइश नहीं है। ये दोनों नियम स्वतः हैं। यही प्रकृति का स्वभाव है। इसमें तर्क की भी आवश्यकता नहीं। कहा भी है 'स्वभाव तर्कातीत होता है'।

इस प्रकार हम जान गये कि सामान्यानुमान, कारणता के सिद्धान्त तथा प्रकृति के एकरूपता के सिद्धान्त के आधार पर, विशेष उदाहरणों का निरीक्षण कर, संश्लेषणात्मक सामान्य वाक्यों की स्थापना करता है। यह सामान्यानुमान का वैज्ञानिक रूप है। सामान्यानुमान अन्य प्रकार के भी होते हैं।

इस प्रकरण में सामान्यानुमान की विचार-प्रक्रिया और लक्षण के साथ तुलना करना अनुपयुक्त न होगा।

सामान्यानुमान और विचार प्रक्रिया। विचार-प्रक्रिया[1] में हम विचारों का निर्माण करते हैं। विशेषानुमान के प्रकरण में यह बतलाया जा चुका है कि विचारों का किस प्रकार निर्माण किया जाता है। तथापि विचारों के निर्माण में सर्वप्रथम कुछ व्यक्तियों की एक दूसरे से तुलना करते हैं और उनमें आवश्यक गुणों को खोजते हैं जो उन सब में पाये जाते हैं। इन आवश्यक और साधारण गुणों को हम अलग कर लेते हैं और जो अनावश्यक या परिवर्तनीय या आकस्मिक गुण होते हैं उनको छोड़ दिया जाता है। अन्त में आवश्यक साधारण गुणों का सामान्यीकरण कर के इन गुणों के समूह का एक नाम रख दिया जाता है। इस प्रकार की विचार-प्रक्रिया में जब हम मनुष्य का विचार बनाते हैं तब हम अनेक मनुष्य-व्यक्तियों की आपस में तुलना करते हैं और तुलना करने के पश्चात् जो आवश्यक साधारण गुण हैं उनको पृथक् कर लेते हैं, जैसे, शरीरधारी और जीवत्व। इनके अतिरिक्त अनावश्यक, परिवर्तनीय और आकस्मिक गुणों को छोड़ देते हैं। अनन्तर

[1] Thought process.

उन आवश्यक गुणों के समूह को हम 'मनुष्य' नाम दे देते हैं। इस प्रकार विचार-निर्माण में तुलना, भाव-पृथक्-करण सामान्यीकरण, तथा नाम करण, ये प्रक्रियाएँ उपयोग मे लाई जाती हैं।

इसके विपरीत सामान्यानुमान को देखा जाय तो प्रतीत होगा कि सामान्यानुमान की प्रक्रिया विचार की प्रक्रिया के समान ही है। विचार प्रक्रिया के समान सामान्यानुमान मे भी, तुलना, प्रथक्करण, और सामान्यीकरण काम में लाए जाते हैं। सामान्यानुमान के द्वारा और उसी प्रकार विचार के द्वारा मनुष्य का मस्तिष्क वस्तु के आवश्यक गुणों को ग्रहण करता है। दोनों प्रक्रियाओं में भेद केवल इतना है कि सामान्यानुमान मे हम सामान्य वाक्य का निर्माण करते हैं और विचार-प्रक्रिया मे केवल विचार की स्थापना करते है। तथापि दोनों प्रक्रियाओं मे बहुत कुछ समानता है।

लक्षण[1] और सामान्यानुमान—लक्षण किसी पद के पूर्ण भावार्थ का प्रतिपादन करता है। इस दृष्टि से लक्षण एक विचार के अन्तस्तत्व के आविर्भाव के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह केवल विचार का विश्लेषण करता है। साधारण भाषा में यह कहा जा सकता है कि लक्षण, विचार के अर्थ को प्रकट करता है। जहाँ तक लक्षण और सामान्यानुमान की तुलना का सम्बन्ध है हम वेकन के ही शब्दों में लिखना अधिक उपयुक्त समझते हैं —"सामान्यानुमान और लक्षण में भेद करना अत्यन्त सूक्ष्मता से सम्बन्ध रखता है। अत. इन दोनों के मध्य परिधि बनाना मुश्किल है, तथापि इतना तो स्पष्ट है कि दोनों के विचार में हमें यह प्रश्न करना पड़ता है कि इन में सम्बन्ध-वाचक[2] अवस्था पर जोर दिया गया है या नहीं ? लक्षण में हम सम्बन्ध वाचक को शान्तिपूर्वक मान लेते हैं किन्तु सामान्यानुमान में हमे उसी की सिद्धि या असिद्धि करनी पड़ती है। इन दोनों में यही भेद है। अन्यथा दोनों में बहुत कुछ समानता है।"

---

(1) Definition (2) Conjunction

(४) सामान्यानुमान के प्रकार

गत प्रकरण में वैज्ञानिक सामान्यानुमान का विवेचन किया गया है। सामान्यानुमान शब्द अनेक अर्थों में प्रयोग किया जाता है। वास्तव में इस शब्द का प्रयोग तक की उन सब प्रक्रियाओं के लिये किया जाता है जो कुछ न कुछ वैज्ञानिक सामान्यानुमान के विशिष्ट गुणों को धारण करती हैं; किन्तु वस्तुतः वे वैज्ञानिक सामान्यानुमान से भिन्न हैं। अतः हम सर्वप्रथम मिल महोदय के वर्गीकरण की प्रक्रिया के अनुसार सामान्यानुमान को दो भेदों में विभक्त करते हैं:—(१) अयुक्त[1] सामान्यानुमान और (२) युक्त[2] सामान्यानुमान।

जहाँ तक अयुक्त सामान्यानुमान का सम्बन्ध है उसको नाममात्र से सामान्यानुमान कह दिया गया है। वस्तुतः वह सामान्यानुमान कहलाने के योग्य नहीं है। इस वर्ग के अन्दर तीन प्रकार के सामान्यानुमान प्रविष्ट किये जाते हैं (१) निर्दोष सामान्यानुमान (२) तर्क नियुक्त-समानता जन्य-सामान्यानुमान और (३) घटना-संकलन।

युक्त सामान्यानुमान के भी तीन भेद हैं —(१) वैज्ञानिक सामान्यानुमान (२) अवैज्ञानिक सामान्यानुमान (३) उपमाजन्य सामान्यानुमान। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि कुछ तार्किक लोग केवल वैज्ञानिक सामान्यानुमान को ही सामान्यानुमान कहने को तैयार हैं, अन्य को नहीं। उनके सिद्धान्त के अनुसार अवैज्ञानिक सामान्यानुमान और उपमा-जन्य सामान्यानुमान सामान्यानुमान की प्रक्रिया के सदृश हैं अर्थात् वे कुछ अर्थों में सामान्यानुमान के समान हैं; किन्तु पूर्णतया सामान्यानुमान के समान नहीं हैं। निम्न-लिखित तालिका से इनका वर्गीकरण सर्वथा स्पष्ट हो जायगा।

---

(1) Improperly So-called (2) Proper

सामान्यानुमान
- (१) अयुक्त (Improperly socalled)
  - (१) निर्दोष
  - (२) तर्कनिष्ठ-समानताजन्य
  - (३) घटना-सकलन
- (२) युक्त (Proper)
  - वैज्ञानिक
  - अवैज्ञानिक
  - उपमाजन्य
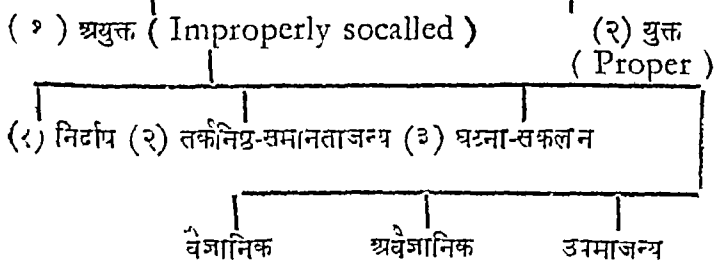
(५) सदोष सामान्यानुमान

उपर्युक्त वर्गीकरण में हमने जान बूझकर सदोष-सामान्यानुमान[1] का नाम ग्रहण नहीं किया है। यद्यपि सदोष-सामान्यानुमान का शब्द बहुत साधारण है, तथापि इस शब्द का प्रयोग स्पष्ट नहीं है। इसके अतिरिक्त तार्किकों ने इसका स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया है। मध्य युग के तार्किक, जो स्कूलमेन के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन्होंने इसका प्रयोग निर्दोष सामान्यानुमान के विरुद्ध प्रयोग किया है। निर्दोष सामान्यानुमान[2] का लक्षण उनके अनुसार इस प्रकार है—'**निर्दोष सामान्यानुमान वह है जिसमें सामान्य वाक्य की स्थापना की जाती है अथवा उन सब उदाहरणों की परीक्षा की जाती है जो इसके घेरे में आते हैं**'। इसके विपरीत—**सदोष सामान्यानुमान वह है जिसमें कुछ उदाहरणों की परीक्षा करने के बाद सामान्य वाक्य की स्थापना की जाती है**। यदि इस लक्षण को स्वीकार किया जाय तो सदोष सामान्यानुमान के अन्दर अवैज्ञानिक सामान्यानुमान (साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान) और उसके साथ-साथ वैज्ञानिक सामान्यानुमान को भी अन्तर्भूत करना पड़ेगा। मध्य युगीय स्कूलमेनों का वैज्ञानिक-सामान्यानुमान के विषय में बड़ा अस्पष्ट और अयुक्त विचार था और वे वैज्ञानिक सामान्यानुमान को इसके अन्दर अन्तर्भूत नहीं

(1) Imperfect Induction (2) Perfect Induction

करते थे। स्कूलमेनों की वैज्ञानिक सामान्यानुमान के विषय में बड़ी अस्पष्ट सी धारणा थी। वे इसको सामान्यानुमान कहने के लिये तय्यार ही न थे। वे इसको अनुभव-जन्य-सिद्धि[1] कहा करते थे।

वर्तमानयुग के तार्किकों ने स्कूलमेनों के सदोष सामान्यानुमान को अवश्य कुछ व्यापक रूप से स्वीकार कर सदोष सामान्यानुमान के कई उपभेद कर डाले हैं। वे इसके अन्दर सदोष-अविध्यात्मक सामान्यानुमान जैसे, अवैज्ञानिक सामान्यानुमान या समान्य-गणना जन्य-सामान्यानुमान और सदोष-विध्यात्मक सामान्यानुमान के भेदों को अन्तर्भूत करते हैं। इस प्रकार स्कूलमेनों की अपेक्षा से *निम्नलिखित* तालिका बनेगी:—

- सामान्यानुमान
  - निर्दोष
  - सदोष
    - अविध्यात्मक (अवैज्ञानिक)
    - विध्यात्मक (वैज्ञानिक)
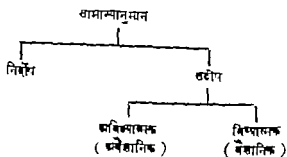
आजकल तार्किक लोग प्रायः सदोष सामान्यानुमान का वैज्ञानिक सामान्यानुमान के विरोध में प्रयोग करते हैं और इस रूप में हम सामान्यानुमान के अन्दर साधारण-गणनाजन्य-सामान्यानुमान तथा उपमाजन्य-सामान्यानुमान को अन्तर्भूत कर लेते हैं। ये तर्क के प्रकार सदोष कहलाते हैं क्योंकि इनका आधार कारणता का तत्त्व-ज्ञान नहीं है और इसी लिये वैज्ञानिक सामान्यानुमान का लक्षण इनमें पूर्ण रूप से लागू नहीं होता। यहाँ निम्नलिखित तालिका ध्यान देने योग्य है:—

(1) Proof by experience

(६) पूर्ण और अपूर्ण सामान्यानुमान

सामान्यानुमान का पूर्ण और अपूर्ण मे भेद करना भी कुछ तार्किकों का मन्तव्य है। वे पूर्ण सामान्यानुमान[1] को वैज्ञानिक सामान्यानुमान का पर्यायवाची मानते हैं। तथा इसके विपरीत अपूर्ण-सामान्यानुमान[2] का प्रयोग वे अवैज्ञानिक सामान्यानुमान तथा उपमाजन्य-सामान्यानुमान दोनों के लिये करते है। इनको अपूर्ण इस लिये कहा गया है क्योंकि इसमें कारणता के सम्बन्ध का सर्वथा अभाव रहता है। बेन (Bain) वगैरह पूर्ण सामान्यानुमान शब्द को वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक सामान्यानुमान दोनों के लिये प्रयोग करते हैं। बेन का कहना है 'पूर्ण सामान्यानुमान वह है जिसमें सामान्य वाक्य की स्थापना की जाती है और जिसकी व्याप्ति सार्वदेशिक और सार्वकालिक होती है। इस प्रयोग को लक्ष्य में रखते हुए पूर्ण सामान्यानुमान को इस प्रकार विभक्त किया जा सकता है:—

(१) पूर्ण विध्यात्मक सामान्यानुमान (Complete methodical Induction) अर्थात् वैज्ञानिक सामान्यानुमान।

(२) पूर्ण अविध्यात्मक सामान्यानुमान (Complete Immethodical Induction) इस व्यापक अर्थ को विचार मे रखते हुए पूर्ण सामान्यानुमान के विपरीत अपूर्ण सामान्यानुमान मे केवल उपमाजन्य-सामान्यानुमान को ही अन्तर्भूत किया जायगा। उपमाजन्य-सामान्यानुमान, विशेष से विशेष का अनुमान है और इस हेतु से ही इसे अपूर्ण कहा जाता है, क्योंकि इसमें सामान्यीकरण नहीं

(1) Complete Induction (2) Incomplete Induction

किया जाता अर्थात् इस प्रक्रिया में हम सामान्यवाक्य की स्थापना नहीं करते।

(७) अयुक्त सामान्यानुमान

अयुक्त सामान्यानुमान से हमारा अभिप्राय उन प्रक्रियाओं से है जो युक्त सामान्यानुमान से भिन्न हैं किन्तु देखने में ऐसी प्रतीत होती हैं मानों ये युक्त सामान्यानुमान सदृश्य ही हों। इनमें सामान्यानुमान के कई विशिष्ट गुण पाए जाते हैं। इसलिए आभास रूप से इन्हें 'सामान्यानुमान सदृश प्रक्रियाएँ' कहा जाता है। ये सामान्यानुमान के समान प्रतीत होती हैं, किन्तु वस्तुतः ये उनसे भिन्न हैं। मिल महोदय इस प्रकार की प्रक्रियाओं के तीन प्रकार मानते हैं, (१) निर्दोष सामान्यानुमान (२) तर्कसिद्ध-समानता-जन्य सामान्यानुमान तथा (३) घटना-संकलन।

(८) निर्दोष सामान्यानुमान

निर्दोष सामान्यानुमान (Perfect Induction) या पूर्ण-गणनाजन्य-सामान्यानुमान (Induction by complete Enumeration) सामान्यानुमान की वह प्रक्रिया है जिसमें सामान्य वाक्य की, सब विशेष उदाहरणों की परीक्षा करने के बाद स्थापना की जाती है। इसके विरोध सदोष सामान्यानुमान वह है जिसमें केवल कुछ उदाहरणों की परीक्षा करने के बाद ही सामान्य वाक्य की स्थापना की जाती है। यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिये कि स्कॉलेस्टिक तार्किकों ने सामान्यानुमान के निर्दोष और सदोष ऐसे दो भेद किये हैं। निर्दोष सामान्यानुमान में हम इसके क्षेत्रान्तर्गत प्रत्येक उदाहरण की परीक्षा करते हैं और यह जानकर कि अमुक बात प्रत्येक उदाहरण के विषय में सत्य है हम अपने निरीक्षण का परिणाम सामान्य वाक्य के रूप में उपस्थित करते हैं। उदाहरणार्थ प्रत्येक ग्रह को हम देखते हैं कि वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। इस आधार पर हम सामान्य वाक्य बनाते हैं कि सब ग्रह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं

तो यह हमारा सामान्य वाक्य निर्दोष सामान्यानुमान का उदाहरण बन जाता है। यदि इसके विपरीत कुछ ग्रहों को सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित देख कर सब ज्ञात और अज्ञात ग्रहों के विषय में हम इस प्रकार का सामान्य वाक्य बनावें कि 'सब ग्रह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं' तो हमारा सामान्य वाक्य सदोष सामान्यानुमान का उदाहरण बन जाता है। यहाँ निर्दोष सामान्यानुमान के अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। जैसे, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, मुहम्मद, क्राइस्ट ये सब एशियावासी थे। अत 'सब महापुरुष एशियोत्पन्न हैं।' जनवरी, फरवरी, मार्च—इत्यादि मासों के दिन ३२ से कम होते हैं। अत. साल के सब महीने ३२ से कम दिन के होते हैं। कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी ने तर्कशास्त्र विषय लिया है। अत 'अमुक कक्षा के विद्यार्थी तर्कशास्त्र के विद्यार्थी हैं।' यूरोप, एशिया, अफ्रीका आदि देशों मे बड़ी बड़ी नदियाँ हैं।' अत' 'सब ज्ञात महाद्वीपों में बड़ी नदियाँ होती हैं।' हम पुस्तकालय के एक विभाग की समस्त पुस्तकों का निरीक्षण कर यह जानते हैं कि ये सब पुस्तकें उपन्यास हैं। अत 'अमुक विभाग की सब पुस्तकें उपन्यास हैं।' इत्यादि सामान्य वाक्य निर्दोष सामान्यानुमान के उदाहरण हैं और इसी प्रकार अन्य भी बनाए जा सकते हैं।

यहाँ यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि निर्दोष सामान्यानुमान में उदाहरणों का संक्षिप्त योग होता है अर्थात् इसमें समग्र के अन्दर परिमित वस्तुएँ या उदाहरण ग्रहण किये जाते हैं। यदि समग्र में अपरिमित उदाहरण हों तो उस अवस्था में निर्दोष सामान्यानुमान में 'सब मनुष्य मरणशील' हैं इस वाक्य की स्थापना नहीं कर सकते, क्योंकि इसमें मनुष्यों की संख्या अपरिमित होती है। सब का निरीक्षण करना मानवीय शक्ति से बाहर है। स्कॉलेस्टिक तार्किकों के निर्दोष सामान्यानुमान का अपर नाम, पूर्ण-गणनाजन्य सामान्यानुमान (Induction by Complete Enumeration) रक्खा गया है, क्योंकि इसमें सामान्य वाक्य की स्थापना सब उदाहरणों की परीक्षा करने के बाद निश्चित की जाती है। पूर्ण गणनाजन्य-सामान्यानुमान का साधारण

गणनात्मक-सामान्यानुमान या अवैज्ञानिक सामान्यानुमान से अन्तर इसलिये दिखलाया जाता है क्योंकि अवैज्ञानिक सामान्यानुमान में सामान्य वाक्य का निर्माण केवल कुछ उदाहरणों की गणना करने पर ही होता है।

(६) क्या निर्दोष सामान्यानुमान को सामान्यानुमान मानना चाहिये ?

जहाँ तक सामान्यानुमान का सम्बन्ध है मिल और बेन का कहना है कि निर्दोष सामान्यानुमान की निर्दोष होने की बात तो दूर रही हम इसे सामान्यानुमान ही स्वीकार करने के लिये तय्यार नहीं हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

प्रथम मिल और बेन के कथनानुसार सामान्यानुमान का मुख्य तत्त्व सामान्यानुमानीय कुदान में है जिससे हम ज्ञात से अज्ञात की ओर कूद जाते हैं। किन्तु निर्दोष सामान्यानुमान में इसका सर्वथा अभाव है। इसमें वास्तविक अनुमान का कोई तत्त्व नहीं है। इसमें ज्ञान सम्बन्धी कोई नवीन वृद्धि नहीं होती। मिल महोदय के शब्दों में यह केवल ज्ञात उदाहरणों की संक्षिप्त लिखावट है—अर्थात् इसके निष्कर्ष में प्रतिज्ञा वाक्यों में दी हुई बात के अतिरिक्त कुछ भी अधिक नहीं निकाला जा सकता। द्वितीय निर्दोष सामान्यानुमान में स्थापित वाक्य केवल दिखावट में सामान्य वाक्य होता है यथार्थ में यह कुछ विशेष वाक्यों के संक्षेप रूप में समाहार के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। उदाहरणार्थ 'सब ज्ञात महाद्वीपों में बड़ी-बड़ी नदियाँ पाई जाती हैं' इस निर्दोष सामान्यानुमान में केवल चार विशेष वाक्यों—'एशिया में बड़ी-बड़ी नदियाँ पाई जाती हैं' 'यूरोप में बड़ी-बड़ी नदियाँ पाई जाती हैं' अफ्रीका में बड़ी बड़ी नदियाँ पाई जाती हैं अमेरिका में बड़ी बड़ी नदियाँ पाई जाती हैं'—को छोड़ कर और कुछ नहीं है। इसी प्रकार अन्य वाक्यों के विश्लेषण करने पर यही प्रतीत होगा। डाक्टर पी के राय महोदय का विचार इन दोनों महोदयों से भिन्न है। उनका कहना यह है कि निर्दोष सामान्यानुमान को सामान्यानुमान के समुदाय से भिन्न नहीं माना

जा सकता, इसलिये निर्दोष सामान्यानुमान सामान्यानुमान ही है; क्योंकि उसमें भी हमें प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त पर अवलम्बित रहना पड़ता है। जैसे हम सब ग्रहों को निरीक्षण करने के बाद प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त के आधार पर कहते हैं कि 'सब ज्ञात ग्रह सूर्य की रश्मियों से प्रकाशित होते हैं"। हमारा यह अनुभव केवल भूत के अनुभव पर ही निर्भर नहीं है किन्तु हमें यह भी विश्वास है कि भविष्य में भी ऐसा ही होता रहेगा। अत निर्दोष सामान्यानुमान को भी निर्दोष सच्चे सामान्यानुमान का रूप समझना चाहिये।

निर्दोष सामान्यानुमान को इस कारण निर्दोष गिना जाता है, क्योंकि इसमें निष्कर्ष सम्बन्धी पूर्ण निश्चायकता होती है और सदोष सामान्यानुमान को इसलिये सदोष गिना जाता है, क्योंकि उसमें सामान्य वाक्य की स्थापना सब उदाहरणों की परीक्षा करने पर नहीं होती। अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि हमारा सामान्य वाक्य सर्वथा सत्य होगा। वर्तमान युग के तार्किकों में जेवन्स (Jevons) साहब का इस विषय में यह मन्तव्य है —"हमें यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये कि सदोष सामान्यानुमान में हमें निश्चित निष्कर्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता"। यह अधिक सम्भव, या करीब-करीब निश्चित ही समझना चाहिये कि जिन उदाहरणों की हमने परीक्षा नहीं की है वे उन्हीं के समान होंगे जिनकी हमने परीक्षा की है, किन्तु यह सर्वथा निश्चित रूप से कदापि नहीं कहा जा सकता। निर्दोष सामान्यानुमान, इसके विपरीत, हमें आवश्यक और निश्चित निष्कर्ष प्रदान करता है। फाउलर (Fowler) महोदय जेवन्स के इस विचार को नहीं मानते और कहते हैं कि अधिक सव्यक्त सामान्यानुमान के रूप प्राय निश्चायकता को ही बतलाते हैं। मानवीय ज्ञान की निश्चायकता इसी में है। जब कारणता का सम्बन्ध दो घटनाओं में स्थापित कर दिया जाता है तब सामान्यानुमान में निश्चायकता की सम्भावना सर्वाधिक होती है। निर्दोष सामान्यानुमान मे सब उदाहरणों की परीक्षा ही निश्चायकता का आधार है, किन्तु वैज्ञानिक सामान्यानुमान में तो कारणता

की सिद्धि पर अनुमान की निश्चायकता सिद्ध की जाती है। कुछ तार्किकों का यह कहना है कि निर्दोष सामान्यानुमान में निष्कर्ष की निश्चायकता जो कारणता के सम्बन्ध से उत्पन्न होती है वह उसमें कम दर्जे की होती है। जैसे ग्रमले (Grumley) महोदय कहते हैं "यद्यपि गणना पूर्ण हो सकती है किन्तु इससे हमें वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता यह हो सकता है कि एक गुण जो एक जाति के सब व्यक्तियों में पाया जाता है वह पृथक् न होने वाले आकस्मिक गुण के अतिरिक्त कुछ नहीं हो। अतः यह सिद्ध है कि पूर्ण गणना हमें विषय के पूर्ण स्वभाव का परिचय नहीं देती। उसके पूर्ण स्वभाव का परिचय तो कारणता-सम्बन्ध के पूर्ण ज्ञान से ही हो सकता है। जहाँ तक कि निर्दोष सामान्यानुमान के मूल्यांकन का प्रश्न है तार्किक लोग जेवन्स महोदय के मत से सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं "यद्यपि निर्दोष सामान्यानुमान विशेष उदाहरणों को संक्षिप्त करके संग्रह करने के अतिरिक्त कुछ नहीं है तथापि इसका महत्व इसलिये है क्योंकि इसका जीवन में और वैज्ञानिक क्षेत्र में अत्यधिक उपयोग होता है। बिना इसके हम कभी सामान्य वक्तव्य प्रकाशित नहीं कर सकते। हमें हमेशा विशेष उदाहरणों का उल्लेख करके ही वैज्ञानिक और जीवन के क्षेत्रों में कार्य करना पड़ेगा। अनेक उदाहरणों को इकट्ठा करके संक्षिप्त रखने की प्रक्रिया ने वैज्ञानिक क्षेत्र में बड़ा काम किया है और इससे वैज्ञानिक-उन्नति में बड़ी सहायता मिली है। अतः निर्दोष सामान्यानुमान की उपयोगिता में संशय करने के लिये कोई स्थान नहीं है। इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए मिल महोदय कहते हैं—"अनेक उदाहरणों को संक्षिप्त रूप देकर संग्रह रूप से वर्णन करना अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि इससे ज्ञान के अन्वेषण में अत्यधिक सामग्री प्राप्त होती है। इसको सर्वथा निरर्थक समझना बड़ी भूल है।

(१०) तर्क निष्ठ समानतामन्य-सामान्यानुमान

अब हम पहले बता चुके हैं कि तर्कनिष्ठसमानतामूलक[1] सामान्यानुमान

(1) Induction by Parity of Reasoning

तर्क का एक भेद है जिसको हमने सामान्यानुमान कहा है किन्तु वास्तव में वह सामान्यानुमान नहीं है। यह यथार्थतः युक्त सामान्यानुमान से भिन्न है। **तर्क-निष्ठ-समानता-जन्य-सामान्यानुमान वह प्रक्रिया है जिसमें हम यह अनुमान करते हैं कि एक तर्क, जो एक विशेष उदाहरण की सत्यता को स्थापित करता है वही तर्क उसके समान अन्य उदाहरणों की भी, जो सामान्य वाक्य के अन्तर अन्तर्भूत होते हैं, सत्यता स्थापित करेगा।** इस प्रक्रिया को हम तर्क-निष्ठ समानता से पैदा होने वाली इसीलिये कहते हैं क्योंकि इसमें तर्क का आधार समानता है जिसके द्वारा हम एक विशेष उदाहरण की सत्यता को जानकर सामान्य वाक्य की सत्यता स्थापित करते हैं। इसके उदाहरण हमें रेखागणित के साध्यों में मिल सकते हैं। जैसे हम 'अ ब स' एक △त्रिभुज बनाते हैं और सिद्ध करते हैं कि इसके भीतरी तीन कोण दो समकोण के बराबर हैं। इसको सिद्ध करके उसकी आकृति के आधार पर हम एक सामान्य वाक्य स्थापित करते हैं—"सब त्रिभुजों के भीतरी तीन कोण दो समकोणों के बराबर होते हैं क्योंकि वही तर्क जो एक विशेष उदाहरण में लागू होता है वह उसी प्रकार के प्रत्येक उदाहरण में लागू होगा।

(११) तर्कनिष्ठ-समानता-जन्य सामान्यानुमान और निर्दोष सामान्यानुमान

तर्कनिष्ठ-समानता-जन्य सामान्यानुमान में निष्कर्ष सामान्य वाक्य होते हैं, जैसे निर्दोष सामान्यानुमान में। निर्दोष सामान्यानुमान में निष्कर्ष केवल दिखावट मे सामान्य होता है, वास्तव में देखा जाय तो यह केवल अनेक विशेष वाक्यों का संक्षिप्त रूप है। "सब त्रिभुजों के भीतरी तीन कोण दो समकोणों के बराबर होते हैं" यह वाक्य वास्तव मे सामान्य-वाक्य है। तथा 'सब महाद्वीपों में बड़ी-बड़ी नदियाँ होती हैं' -यह वाक्य भी चार विशेष वाक्यों का साराश है। क्योंकि इसमें निम्नलिखित वाक्य अन्तर्भूत हैं—एशिया में बड़ी बड़ी नदियाँ है, यूरोप में बड़ी बड़ी नदियाँ हैं, अफ्रीका में बड़ी बड़ी नदियाँ हैं और अमरीका में बड़ी बड़ी

नदियाँ हैं। इससे यह स्पष्ट है कि तर्कनिष्ठ-समानताजन्य-सामान्यानुमान में निष्कर्ष सामान्य होता है किन्तु निर्दोष सामान्यानुमान में निष्कर्ष सामान्य नहीं होता।

(१२) तर्कनिष्ठ-समानताजन्य-सामान्यानुमान और युक्त सामान्यानुमान

मिल महाशय का यह कथन है कि तर्क-निष्ठ-समानता-जन्य सामान्यानुमान अयुक्त रीति से कहा हुआ सामान्यानुमान है क्योंकि इसमें सामान्यानुमान का विशेष गुण—उदाहरणों के निरीक्षण पर निर्भर नहीं पाया जाता। युक्त सामान्यानुमान में सामान्य वाक्य का निर्णय विशेष उदाहरणों के निरीक्षण पर निर्भर रहता है। जैसे, सब मनुष्य मरणशील हैं यह वाक्य कई मृत्यु के उदाहरणों का निरीक्षण करके बनाया गया है। युक्त सामान्यानुमान में सामान्य वाक्यों का इसी प्रकार निर्णय किया जाता है। इसके विपरीत तर्क-निष्ठ-समानता-जन्य-सामान्यानुमान में कई उदाहरणों का निरीक्षण आवश्य नहीं होता। "सब त्रिभुजों के भीतरी तीन कोण दो समकोणों के बराबर होते हैं—यह वाक्य कई त्रिभुजों के निरीक्षण पर निर्भर नहीं है। हम रेखागणित में इस प्रकार कभी नहीं सोचते कि अमुक गुण क ख ग, च छ ज, ट ठ ड आदि त्रिभुजों में पाया जाता है इसलिये यह सब त्रिभुजों में भी अवश्य पाया जायगा। वास्तव में हम करते क्या हैं? हम एक आकृति को लेते हैं और उस एक विशेष आकृति के आधार पर सामान्य वाक्य का निर्णय करते हैं। अब जब हमने एक आकृति को सिद्ध कर लिया तो उससे हमारी सब आकृतियाँ जो उस आकृति के समान हैं स्वयं सिद्ध हो जायँगी। उस समय हम खास त्रिभुजों के विशिष्ट गुणों के समझने का प्रयत्न नहीं करते—जैसे किस त्रिभुज की कितनी लम्बी रेखाएं हैं या किस के कितने बड़े कोण हैं इत्यादि। आकृति का उपयोग एक तत्त्व को स्पष्ट करने के लिये किया जाता है। जैसा कि कारवेथ रीड ने कहा है" आकृतियों को हम प्रमाण के उदाहरण की तरह प्रयोग में नहीं लाते हैं किन्तु इसलिये प्रयोग में लाते हैं कि साधारण तर्क पर हमारा

ध्यान स्थिर रहे। इसी हेतु से तर्कनिष्ठ-समानता- जन्य सामान्यानुमान को हम युक्त सामान्यानुमान मानने के लिये तय्यार नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त रेखागणित सम्बन्धी आकृतियाँ, भावात्मक विचार हैं। इस हेतु से तर्कनिष्ठ-समानता-जन्य-सामान्यानुमान मे उदाहरणो का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। इस बात को और भी सुचारु रूप से समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम रेखागणित सम्बन्धी आकृतियों को अच्छी तरह समझ लें। जैसे, 'त्रिभुज वह समतल क्षेत्र है जो तीन सरल रेखाओं स घिरा हुआ हो।' 'बिन्दु वह है जिसका स्थान नियत होता है किन्तु उसके लिये कहा जाता है कि उसका परिमाण नहीं होता।' अनुभव मे हमे ऐसी कोई चीज नहीं मिलती जिसका स्थान हो और उसमे कुछ न कुछ लम्बाई-चौडाई न हो। मानना पड़ता है कि यह एक भावात्मक विचार है, इसकी द्रव्यात्मक कोई सत्ता नहीं है। रेखा-गणित में कहा जाता है कि 'रेखा वह है जिसकी लम्बाई होती है और कहा जाता है कि उसमे चौड़ाई नहीं होती।' क्या अनुभव में ऐसी भी कोई वस्तु आ सकती है जिसमें लम्बाई तो हो किन्तु चौड़ाई न हो। अतः मानना पड़ता है कि यह भी भावात्मक विचार है। फिर त्रिभुज, जो रेखाओं का ही बनता है वह भी भावात्मक विचार ही होगा। वस्तुत सब रेखागणित की आकृतियाँ भावात्मक होती हैं, द्रव्यात्मक नहीं। इसलिये रेखागणित मे जब हम कोई एक विशेष आकृति खींचते हैं तो वह सामान्य की द्योतक होती है। त्रिभुज की आकृति त्रिभुज नहीं होती किन्तु वह तो उसका प्रतीक होती है। उससे सब त्रिभुजा का सकेत ग्रहण किया जा सकता है। यही कारण है कि रेखा-गणित में हम यह नहीं कहते कि 'अ ब स' एक त्रिभुज है किन्तु— 'मान लिया कि 'अ ब स' एक त्रिभुज है।' इसके विपरीत, मनुष्यों के विषय में हम ऐसा कभी व्यवहार नहीं करते कि—मान लिया कि 'नागार्जुन एक मनुष्य है'। नागार्जुन तो एक व्यक्ति विशेष है, किन्तु त्रिभुज को व्यक्ति-विशेष त्रिभुज नहीं कहा जा सकता। अत यदि हम कोई बात नागार्जुन के विषय में सिद्ध करना चाहते हैं तो वह समस्त

मनुष्य समाज के विषय में सत्य नहीं हो सकती। नागार्जुन एक गम्भीर दार्शनिक था। इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी मनुष्य दार्शनिक ही गये। किसी आकृति या लिखित रूप के विषय में वही बात लागू नहीं हो सकती क्योंकि आकृतियों के विषय में तो यह कहा जा सकता है कि यदि कोई बात एक आकृति के विषय में सत्य है तो उसी प्रकार की अन्य आकृतियों के विषय में भी वह बात सत्य होगी जिनकी वह आकृति, या प्रतीक है। इसलिये यदि यह सत्य है कि एक त्रिभुज के भीतरी तीन कोण मिलकर दो समकोण के बराबर होते हैं तो यह विशिष्ट गुण सब त्रिभुजों के विषय में सत्य होगा। इसके अतिरिक्त रेखागणित सम्बन्धी निष्कर्ष स्वरूप में विशेषानुमान की भाँति होते हैं। रेखागणित सम्बन्धी तर्कों को हम कभी सामान्यानुमान रूप नहीं कह सकते; वे केवल विशेषानुमान रूप ही होते हैं। रेखागणित में हम कुछ स्वयं-सिद्धों को आधार मानकर चलते हैं तथा इनके साथ-साथ अन्य सिद्धान्त और लक्षणों का भी उपयोग करते हैं। हमारे निष्कर्ष इसमें प्रायः विशेषानुमान रूप ही होते हैं। जैसे, 'त्रिभुज वह समतल क्षेत्र है जो तीन रेखाओं से घिरा हुआ हो।' इस प्रतिज्ञा वाक्य से हम यह निष्कर्ष साधारण रीति से निकाल लेते हैं कि प्रत्येक त्रिभुज के अन्तवर्ती तीन कोण दो समकोण के बराबर होते हैं। त्रिभुज के अन्तवर्ती तीन कोणों का दो समकोणों के बराबर होना त्रिभुज का भावार्थापन्न गुण है क्योंकि यह त्रिभुज के भावार्थ से निकलता है। अतः यह स्पष्ट है कि त्रिभुज के लक्षण से ही उसकी सिद्धि निष्पन्न होती है। इस प्रकार के उपर्युक्त विचार के आधार पर यह कहना पड़ेगा कि लक्षणित-समानता-जन्य-सामान्यानुमान सामान्यानुमान की प्रक्रिया नहीं है किन्तु विशेषानुमान की प्रक्रिया है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि सामान्यानुमान का प्रयोग गणित शास्त्र में भी किया जाता है। इसके उदाहरण (१) रेखागणित में (२) बीजगणित में और (३) साधारण-गणित में मिल जाते हैं।

यहाँ तक रेखागणित-सम्बन्धी सामान्यानुमान का सम्बन्ध है

उसका तो हम स्पष्ट विवेचन ऊपर कर चुके हैं। वहाँ यह भी बतलाया गया है कि रेखागणित सम्बन्धी सामान्यानुमान, स्वरूप में सामान्यानुमान रूप न हो कर विषयानुमान रूप ही होता है।

बीजगणित-सम्बन्धी-सामान्यानुमान एक उदाहरण में सत्य सिद्ध होने पर उसका प्रयोग अन्य में भी किया जा सकता है। जैसे,

$$(\text{अ} + \text{ब})(\text{अ} - \text{ब}) = \text{अ}^2 - \text{ब}^2$$

इस उदाहरण में निष्कर्ष की सामान्यात्मक सिद्धि है, चाहे इन अक्षरों से हमें किसी भी संख्या का बोध क्यों न हो। यह प्रक्रिया रेखा-गणित के तर्क के समान सामान्यानुमान रूप नहीं है, क्योंकि इसमें सिद्धि लक्षणों से प्राप्त है और बीजगणित के नियम विशेषानुमान की प्रक्रिया से निकाले हुए हैं, विशेष उदाहरणों के निरीक्षण से नहीं। साधारण गणित-सम्बन्धी प्रक्रियाओं में उपर्युक्त दोनों प्रक्रियाएँ तथा अन्य प्रक्रियाएँ भी शामिल हैं, जिन्हे स्पष्ट करना है। साधारण गणित प्रक्रियाओ के अन्दर निम्नलिखित प्रक्रियाओं को ही सम्मिलित करना चाहिये। गणित सम्बन्धी सामान्यानुमान (Mathematical Induction) एक प्रक्रिया है जिसमें हम बीजगणित सम्बन्धी और अंकगणित सम्बन्धी श्रेणियों के अंक पदों की गणना करके सामान्य निष्कर्ष निकालते हैं। निम्नलिखित उदाहरण इस बात को स्पष्ट कर देगा। यदि हम दो प्रथम विषमाङ्क १, ३ को ग्रहण करें और उन दोनों को जोड़ें तो दोनों का योग ४ होगा अर्थात् ठीक दो का दुगुना होगा। यदि इसी प्रकार हम तीन प्रथम विषमाङ्क १, ३, ५ को लें तो योग ९ होगा अर्थात् तीन का तिगुना और अन्य भी इसी प्रकार होंगे—जैसे:—

$$१ + ३ = २^2$$

$$१ + ३ + ५ = ३^2$$

$$१ + ३ + ५ + ७ = ४^2 \text{ इत्यादि}$$

इससे हम यह सामान्य सिद्धान्त निश्चित कर सकते है कि श्रेणी १, ३, ५, ७ · न पदों तक $= \text{न}^2$। इस सामान्य नियम को हम इस प्रकार भी लिख सकते हैं:— "एक संख्या से लेकर कितने ही

विषमाङ्कों का योग उस संख्या के वर्ग के बराबर होता है"। इस पर मिल महोदय की यह आपत्ति है कि यह कुछ सामान्यानुमान ही नहीं है, क्योंकि गणितज्ञ इसमें पूर्व-सिद्ध विचारों के आधार पर ही इस सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचा है। तथा यह स्पष्ट है कि बाद में आनेवाले पदों के निर्माण का तरीका उन पदों के निर्माण के समान होना चाहिये जिनकी परिगणना अभी की गई है। मेलन महोदय का यह विचार है कि गणितों के सामान्य नियम दो शर्तों पर बनाया जा सकता है—(१) हमें इस बात का निश्चय होना चाहिये कि विशेष उदाहरणों में हमें कुछ विशिष्ट गुण प्रथक् करने के लिये मिल गए हैं और हम आकस्मिक गुणों के आधार पर तो नहीं तर्क नहीं कर रहे हैं (२) हमें इस बात का निश्चय होना चाहिये कि कोई नवीन उदाहरण उन विशिष्ट गुणों के आधार पर समानता रखता है या नहीं, जिन पर हमारी सिद्धि निर्भर है। वास्तव में गणित सम्बन्धी सामान्यानुमान और भौतिक[1] सामान्यानुमान में यही भेद है कि गणित सम्बन्धी सामान्यानुमान में दोनों शर्तों को केवल मान्य किया जाता है और भौतिक सामान्यानुमान में प्रथम आवश्यक शर्तों का आविष्कार किया जाता है और पश्चात् उनको सिद्ध किया जाता है। अस्तु, गणितज्ञ स्वयं अपने उदाहरण बना कर तर्क करते हैं किन्तु भौतिक-वस्तुवेत्ता ऐसा नहीं करते।

(१२) घटना-संकलन

घटना संकलन (Colligation of facts) का सब प्रथम उल्लेख ह्वेवेल महोदय ने किया है। मिल महोदय के अनुसार तो घटना संकलन एक भिन्न प्रकार की प्रक्रिया है जिसको अशुद्ध रीति से सामान्यानुमान कहा गया है। घटना-संकलन का यौगिक अर्थ है—घटनाओं को इकट्ठा करना। घटना-संकलन (Colligation of facts) एक प्रकार की प्रक्रिया है जिसमें हम एक समुपयुक्त विचार के अनुसार कुछ घटनाओं को एकत्रित कर सामान्य रूप से उनका उल्लेख करते हैं। मिल महोदय घटना-संकलन का यह लक्षण

(1) Physical.

बतलाते हैं—'घटना-संकलन वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम ठीक प्रकार से निरीक्षित घटनाओं को एकत्रित कर वर्णन करते हैं, अथवा जिसके द्वारा हम बहुत सी विस्तृत घटनाओं को एकत्रित कर एक वाक्य द्वारा वर्णन करते हैं'। जैसे, कोई पोतवाहक[1] (जहाज़ चलानेवाला) समुद्र के मध्य में जहाज़ चलाता हुआ एक द्वीप पर पहुँचता है। वहाँ पहुँच कर वह यह निश्चय नहीं कर पाता है कि यह महाद्वीप है या द्वीप है, किन्तु धीरे-धीरे किनारे-किनारे खेता चला जाता है और कुछ दिनों के बाद यह निश्चय करता है कि यह द्वीप है, महाद्वीप नहीं। यह उदाहरण घटना-सकलन का है क्योंकि इसमें पोतवाहक ने एक योग्य विचार के अन्दर अपनी द्वीप सम्बन्धी घटनाओं को एकत्रित करके एक सामान्य सा वाक्य कह डाला है। इसी प्रकार जब केपलर (Kepler) महोदय अपने ज्योतिष के अनुसधान में लगे हुए थे उस समय उन्होंने मगल ग्रह की कक्षा का अनुसधान किया। उनका उद्देश्य था कि किसी प्रकार मगल ग्रह का, सूर्य के चारों तरफ घूमने का मार्ग निश्चित करना चाहिये। वह पोत-वाहक की तरह मगल ग्रह की गति का निरीक्षण भली-भाँति न कर सका। इसके लिये उसने दूरवीक्षण यत्र लगाकर मगल ग्रह की गति के भिन्न-भिन्न स्थानों का निरीक्षण कर उनको लिख लिया। इस प्रकार के निरीक्षण करने में उसको कई वर्ष लग गये किन्तु अन्तत उन सब का हिसाब लगाकर उसने यह घोषित कर दिया कि मगल की कक्षा अडवृत्त है। यह उदाहरण घटना-सकलन का ह्वेवेल महोदय ने दिया है।

(१४) घटना-संकलन और सामान्यानुमान

घटना-सकलन की प्रक्रिया लगभग उसी प्रकार की है जैसी कि विचार-निर्माण की या सामान्य विचार बनाने की, किन्तु सामान्यानुमान इसके विपरीत एक सामान्य वाक्य का निर्माण करता है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि घटना-सकलन केवल विचार निर्माण से सम्बन्ध रखता है किन्तु सामान्यानुमान सामान्य वाक्यों का निर्माण करता है। अत

(1) Navigator

घटना-संकलन को सामान्यानुमान मानना अनुचित है। मिल और ह्वेवेल इस विषय में एक मत नहीं हैं। ह्वेवेल महोदय का यह विचार है कि घटना-संकलन और सामान्यानुमान दोनों एक ही प्रकार की प्रक्रियाएँ हैं। इसके विपरीत मिल महोदय का कहना है कि घटना संकलन का सामान्यानुमान से कोई प्रयोजन नहीं। मिल महोदय की निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं :—

(१) प्रथम घटना-संकलन में अनुमान प्रक्रिया का नाम-लेश तक नहीं है। इसमें कुछ बातों का निरीक्षण किया जाता है और उसके आधार पर एक समुचित विचार द्वारा उन बातों का संकलन करके एक वाक्य बना दिया जाता है जिसको हम अपने अन्दर पहले ही से रखते हैं। जैसे पोतवाहक के मन में द्वीपविषयक विचार पहले से ही विद्यमान होता है अब तो वह केवल द्वीप सम्बन्धी घटनाओं को एकत्रित कर इसी विचार द्वारा उनको प्रकट कर देता है। वह ज्ञात बातों से अज्ञात विषय का अनुमान नहीं लगाता। सामान्यानुमान में इसके विपरीत हम ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करते हैं। अतः यह मानना पड़ेगा कि घटना संकलन में अनुमान की प्रक्रिया प्रतीत नहीं होती।

(२) द्वितीय, घटना संकलन में हम केवल घटनाओं[1] को देखते हैं और उनको देखकर एक विचार के अन्दर संग्रह कर देते हैं किन्तु सामान्यानुमान में, इसके विपरीत हम उनका व्याख्यान करने का प्रयत्न करते हैं। सामान्यानुमान में हम इतना ही कहकर संतोष नहीं कर बैठते कि मनुष्य मरणशील है, किन्तु इसका व्याख्यान भी करते हैं और सोचते हैं कि ऐसा क्यों है और उसकी कारणता का सम्बन्ध खोजते हैं। घटना-संकलन में बातों की व्याख्या का कोई उद्देश्य नहीं है और न उनमें कोई कारणता के सम्बन्ध को खोजने की आवश्यकता है। इन दो आपत्तियों के आधार पर मिल महोदय का कहना है कि घटना-संकलन सामान्यानुमान की सहायक प्रक्रिया है। सामान्यानुमान घटना-संकलन से कई गुना अधिक है।

(1) Facts

सामान्यानुमान को घटना-संकलन कहा जा सकता है किन्तु घटना सकलन को सामान्यानुमान नहीं कहा जा सकता।

यहाँ यह बतलाना अनुपयुक्त न होगा कि, दो उदाहरण, जो घटना सकलन के दिये हुए हैं, वे परस्पर भिन्न हैं। प्रथम उदाहरण में, पोत-वाहक, द्वीप के समग्र किनारों का दिग्दर्शन करता है तथा द्वितीय उदाहरण में केपलर केवल मगल के कुछ स्थानों का या अवस्थाओं का ही निरीक्षण करता है। तथापि मिल महोदय का कहना यह है कि दोनों प्रक्रियाओं में कोई विशेष भेद नहीं हैं। स्वरूप में भेद अवश्य है इसलिये घटना-सकलन को सामान्यानुमान नहीं कहा जा सकता। बेन का तो यहाँ तक कहना है कि द्वितीय उदाहरण तो केवल विशेषानुमान का ही रूप है, क्योंकि अण्डाकार कक्षा के वाक्य, तर्क के मुख्य वाक्य को बनाते हैं, किन्तु केपलर के निरीक्षणों ने अमुख्य वाक्य को तर्क के लिये दिया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि मंगल के स्थान, अण्डाकार कक्षा-गत स्थानों से समानता रखते हैं। उनके अनुसार यह कहा जा सकता है कि जो कुछ अण्डाकार वृत्त के विषय में सत्य है वह मगल की कक्षा के विषय में भी सत्य है। अतः घटना-सकलन को सामान्यानुमान का प्रकार कहना अधिक उपयुक्त है।

(१५) युक्तसामान्यानुमान

युक्त सामान्यानुमान (Induction Proper) के तीन भेद बतलाए गये हैं (१) वैज्ञानिक सामान्यानुमान (२) अवैज्ञानिक सामान्यानुमान अथवा साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान[1] अथवा सदोष सामान्यानुमान और (३) उपमाजन्य सामान्यानुमान या केवल उपमान।

(१६) वैज्ञानिक सामान्यानुमान

इसका सुविशद वर्णन पहले किया जा चुका है। यहाँ पुनः दुहराने की आवश्यकता नहीं।

---

(1) Induction per Simple Enumeration

(१६) अवैज्ञानिक सामान्यानुमान

अवैज्ञानिक सामान्यानुमान (Unscientific Induction) अनुमान की एक प्रक्रिया है जिसमें हम संश्लेषणात्मक सामान्य वाक्य की प्रतिष्ठापना केवल समान और आत्यन्तिक विरोध रहित अनुभव के आधार पर बिना किसी कारणता के सम्बन्ध के दिखलाए हुए, करते हैं। इस प्रक्रिया को साधारण गणना-जन्य सामान्यानुमान (Induction per Simple Enumeration) भी कहा जाता है। बेकन (Bacon) इसका वर्णन इस प्रकार करता है कि यह एक सामान्यानुमान का प्रकार है और इस प्रक्रिया में हमें कोई विरुद्ध उदाहरण प्राप्त नहीं होता। मिल का कहना है कि 'यह तमाम वास्तविक सामान्य सत्य को प्रकट करता है जो प्रत्येक उदाहरण के विषय में सत्य सिद्ध होता है। यह एक अविरोधात्मक अनुभव से तर्क करने की प्रक्रिया है। इसका रूप यह है—इस प्रकार यह वाक्य सत्य सिद्ध हुआ है और विरुद्ध उदाहरण कोई मिलता नहीं, अतः इसे सत्य मानना चाहिये'। जैसे, सब कौए काले हैं जहाँ तक हमारे अनुभव का सम्बन्ध है हमारे अनुभव में अभी-तक यही आया है कि सब कौए काले होते हैं। हमने अभी तक दूसरे रंग का कोई कौआ नहीं देखा है और न सुना है कि किसी अन्य रंग का भी कौआ होता है। इस एकरूप और आत्यन्तिक विरोध से रहित अनुभव के आधार पर ही हम एक प्रकार का सामान्य वाक्य बनाते हैं। यह सामान्य और संश्लेषणात्मक वाक्य है जिसका निर्माण विशेष उदाहरणों के निरीक्षण पर हुआ है। इसमें सामान्यानुमानीय कुदान भी है क्योंकि इसमें हम ज्ञात से अज्ञात की ओर कूदते हैं। यह कुदान वस्तुतः प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त के दीखनेवाले प्रयोग पर निर्भर है कारणता के सिद्धान्त पर नहीं। कौओं में और कालेपन में हमने कोई कारणता का सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है। यदि हम कारणता के सम्बन्ध पर यह स्थापित करते तो यह अनुमान वैज्ञानिक होता और हम इसे अवैज्ञानिक कहने का साहस न करते। किन्तु अवैज्ञानिक सामान्यानुमान में हमारा

दृढ़ विश्वास होता है कि अनिरीक्षित उदाहरण अवश्य ही उस प्रकार के होंगे जिनको हमने देखा है।

सामान्यानुमान का यह भेद युक्त इसलिये कहलाता है क्योंकि इसमें सामान्यानुमान का विशेष गुण, सामान्यानुमानीय कुदान है। इसमें हम ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने का प्रयत्न करते हैं। यथार्थ में यह सामान्यानुमानीय कुदान ही सामान्यानुमान की आत्मा है जिसके आधार पर हम सामान्यानुमान का निर्माण करते हैं। किन्तु इस प्रकार के सामान्यानुमान को हम अवैज्ञानिक या लोकप्रिय अनुमान कहते हैं क्योंकि इसमें कारण सम्बन्ध की स्थापना करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यह **साधरण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान** भी कहलाता है क्योंकि इसमें निष्कर्ष केवल कुछ उदाहरणों की सामान्य गणना पर निर्भर रहता है। इसको हम **अपूर्ण(1)-गणना-जन्य-सामान्यानुमान** भी कहते हैं जिससे हम इसको निर्दोष सामान्यानुमान या मिश्र गणना-जन्य-सामान्यानुमान से, जिनमें हम समग्र उदाहरणों की गणना और उनका परीक्षण कर लेते हैं, पृथक् दिखला सकें।

हमारे लोकप्रिय सामान्यीकरण प्राय इसी प्रकार के होते हैं। साधारण मनुष्य के पास न तो इतना समय ही है और न उसमें इच्छा या योग्यता ही होती है कि वह वैज्ञानिक अनुसधान करे और सामान्य नियम बनावे। उस गरीब के पास न तो साधन-ही होते हैं और न वह इतना परिश्रम कर सकता है जिससे वह वैज्ञानिक विधि को अपना कर कुछ कर मके। वह प्राय करके अपने सामान्य वाक्य के निर्माण करने में जल्दी करता है और समझता है कि यदि अविचारित स्वाभिमत दृढ़तापूर्वक कहा जाय तो वह सत्य होगा, अत्यधिक शान्ति और परिश्रम से स्थापित किये हुए वाक्यों का विशेष प्रयोजन नहीं। जैसे एक मनुष्य किसी देश को जाता है और वहाँ कुछ अच्छी बातें देखता है। उन्हें देखकर वह उस देश के विषय में अच्छी बातें

(1) Imperfect Enumeration.

करता है। वहाँ के मनुष्यों की, स्त्रियों की, रीति रिवाज की प्रशंसा तारीफ़ करता है। इस प्रकार के वर्णन सब वैज्ञानिक दृष्टि से निरर्थक होते हैं। कभी-कभी तो ये केवल अर्थंबद रूप होते हैं। इसका कारण है। इस प्रकार के वर्णन में कुछ सत्यता इसलिये होती है कि वह सब वर्णन अपूर्ण अनुभव पर स्थिर रहता है। तथा इसका आधार भी होता है क्योंकि बिना कुछ न कुछ अनुभव के ऐसा लिखा भी नहीं जाता और न वर्णन ही किया जाता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति किसी बनारस की दुकान के पास जाकर दुकानदार से कुछ चीजें खरीदता है और ठगा जाता है। इस अनुभव के आधार पर वह यह कहने लगे कि 'बनारस में रहनेवाले सब ठग होते हैं' उसका यह कहना बिलकुल व्यर्थ है। इसी तरह कोई व्यक्ति किसी बम्बई के होटल में जाता है और वहाँ उसे अधिक दाम देना पड़ता है। इससे उसने यह अनुमान किया कि 'बम्बई के होटलों में ही सबसे अधिक दाम करते हैं। यह भी उसी प्रकार का सीमतायुक्त सामान्यीकरण है जिसकी सत्यता संदेहास्पद होती है। किसी व्यक्ति ने किसी मौके पर झूठ बोल दिया। लोगों को प्रतीत हो गया कि यह झूठा है। अब इस प्रकार का सामान्य नियम बना लेना कि 'यह व्यक्ति तो सदा झूठ बोलता है' यह भी ग़लत अनुमान है। इस प्रकार जो लोक-प्रचलित सामान्य वाक्य बनाए जाते हैं उन्हें अधिक प्रमाणभूत नहीं माना जा सकता। सामान्य-गणनाजन्य सामान्यानुमानों का भी रूप इसी प्रकार का होता है। इस कारण इनको हम अवैज्ञानिक सामान्यानुमान कहते हैं।

(१८) साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान की सार्थकता

यह कहा जाता है कि साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान में निष्कर्ष सम्भाव्य होता है और वैज्ञानिक सामान्यानुमान में वह निश्चित होता है। बेन के सिद्धान्तानुसार साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान का कोई महत्व नहीं है। वे कहते हैं कि सामान्यानुमान जो केवल उदाहरणों के देने मात्र से निकाला जाता है वह बच्चों का खेल है और इसका कोई

अनुमान का सिद्धान्त काम में नहीं लाया जाता। इस प्रकार का अनुमान एक आत्यन्तिक विरोधी उदाहरण देने मात्र से खण्डित हो सकता है। साधारण रूप से यह कहना बेकन का ठीक प्रतीत होता है कि अधिक सख्या में लोक-सम्मत सामान्य वाक्य ठीक नहीं होते हैं। किन्तु यह अवश्य मानना पड़ेगा कि साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान में निष्कर्ष सम्भाव्य होता है और वैज्ञानिक सामान्यानुमान में निष्कर्ष निश्चित होता है। हाँ, यह अवश्य है कि सम्भावना की मात्राएँ[1] होती हैं। जो जितनी मात्रा में अधिक सम्भाव्य होगा वह उतना ही अधिक सत्य होगा। ये मात्राएँ शून्य से शुरू होकर कुछ कम निश्चिति[2] तक हो सकती हैं। यह सत्य है कि साधारण गणना के आधार पर जितने वाक्य इस प्रकार बनाए जाते हैं वे प्राय. निरर्थक होते हैं। इसमें कोई सशय नहीं कि जहाँ तक मनुष्य के स्वभाव का सम्बन्ध है और जहाँ तक मनुष्य का अनुभव आत्यन्तिक विरोध से रहित है, मनुष्य ससार के किसी भी भाग में क्यों न रहे और चाहे वह इतिहास के किसी युग से क्यों न सम्बन्ध रक्खे, यह मालूम किया जा सकता है कि यदि कोई विरुद्ध उदाहरण है तो वह मनुष्य के अनुभव से अज्ञात नहीं रहेगा। बस इतनी सत्यता की उच्च मात्रा उसकी सम्भावना के लिये पर्याप्त है।

फाउलर महोदय का साधारण गणना-जन्य सामान्यानुमान के विषय में विचार अधिक युक्त प्रतीत होता है। वे लिखते हैं कि साधारण गणना-जन्य सामान्यानुमान की सार्थकता निम्नलिखित दो विचारों पर अवलम्बित है—(१) जितने अधिक विधिरूप उदाहरण होंगे उस अनुमान की उतनी ही अधिक प्रामाणिकता होगी। इसका अभिप्राय यह है कि हम किसी सामान्य वाक्य के निर्माण के लिये प्रायः दो प्रकार के उदाहरणों को खोजते हैं। पहला समूह वह होता है जिसमें हमारे यथेच्छित गुण मिल जाते हैं। दूसरा समूह वह होता है जिनमें आवश्यक गुण नहीं पाए जाते हैं। प्रथम को हम विध्यात्मक समूह कहते हैं और दूसरे को निषेधात्मक।

(1) Degrees (2) Certainty

नियम यह है कि सामान्यानुमान के निर्माण में जितने अधिक विध्यात्मक उदाहरण होंगे उसमें उतनी ही अधिक सम्भवता होगी। यदि इस प्रकार के उदाहरणों की जितनी संख्या कम होगी उस उदाहरण का मूल्य उतना ही कम होगा। मिल के शब्दों में इसका उत्तम रीति से वर्णन किया जा सकता है— 'सामान्य गणना के सिद्धान्त की अस्थिरता अनुभव के सर्वांश की दृष्टि से सामान्यीकरण की अधिकता में है। अर्थात् जिसमें जितने अधिक उदाहरण मिलेंगे उसकी उतनी ही सम्भवता अधिक होगी।

(२) निषेधात्मक उदाहरणों का अभाव यह घोषित करता है कि हमारे अनुभव की परिधि में वे जितने कम होंगे हमारा अनुमान उतना अधिक बलवान होगा। यदि कोई निषेधात्मक या विरुद्ध उदाहरण हो भी तो वह हमारे अनुभव में अवश्य आ जाना चाहिये। निषेधात्मक उदाहरण के सर्वथा अभाव में गणना-जन्य-अनुमान की प्रामाणिकता की सबसे अधिक सम्भावना है। अरस्तू (Aristotle) का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि निषेधात्मक उदाहरण विद्यमान हैं तो उनको बतलाने का भार उसी व्यक्ति पर रहता है जो इस प्रकार के उदाहरणों के विषय में ज्ञान रखता है। साधारण-गणना-जन्य सामान्यानुमान में जो अनुभव किया जाता है वह वास्तव में आकस्मिक विरोधरहित अनुभव होता है। यदि उसमें विरोध हो जाय तो साधारण गणना-जन्य-सामान्यानुमान की व्यापकता खंडित हो जाती है और उसके मूल्य में कम पड़ जाता है।

तथापि निष्कर्ष को हम इसलिए सम्भाव्य कहते हैं कि इसमें कारणता के सम्बन्ध का विशेष उपयोग नहीं किया जाता। सामान्य गणनाजन्य सामान्यानुमान को हम कभी भी प्रमाणरूप से प्रयोग में नहीं ला सकते, चाहे उसमें कितनी ही अधिक सम्भावना की मात्रा क्यों न हो। साधारण गणना-जन्य-सामान्यानुमान वैज्ञानिक सामान्यानुमान के स्थान को प्राप्त नहीं कर सकता। साधारण गणना-जन्य सामान्यानुमान में निष्कर्ष विध्यात्मक उदाहरणों की निरीक्षित संख्या पर निर्भर रहता है। यद्यपि हम इसके व्यापक क्षेत्र का ध्यान रखते हैं और सीखते हैं

कि कोई निषेधात्मक उदाहरण प्राप्त न हो जाय। वैज्ञानिक सामान्यानुमान में विध्यात्मक उदाहरणों की संख्या अधिक होने या न होने पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। वैज्ञानिक सामान्यानुमान में तो कभी-कभी एक उदाहरण जिसकी अच्छी तरह परीक्षा कर ली गई है वह भी सामान्य निष्कर्ष देने में पर्याप्त होता है। हमें इसमें केवल यह सोचना पड़ता है कि कारणता का सम्बन्ध है या नहीं। यदि कारणता का सम्बन्ध अबाध है तो हमारे अनुमान में कोई संशय नहीं रहता। अन्त में यह लिखना पर्याप्त होगा कि साधारण-गणना-जन्य सामान्यानुमान, बहुत से उदाहरणों में वैज्ञानिक सामान्यानुमान का शुरुआत या आरम्भ बिन्दु होता है। अमली महोदय ने ठीक लिखा है —मुख्य रूप से साधारण-गणनाजन्य-सामान्यानुमान का मूल्य इसी में है कि वह वैज्ञानिक सामान्यानुमान के लिये कारणता के सम्बन्ध का भान करा दे। यदि दो घटनाएँ—एक उद्देश्य और दूसरा विधेय—आपस में इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि एक को दूसरी का कारण कहा जा सकता है और दूसरी को कार्य कहा जा सकता है—तो हमारी यह पूर्व कल्पना वैज्ञानिक सामान्यानुमान के लिये अच्छा आधार तय्यार कर सकती है। अत यह मानना पड़ेगा कि सामान्यानुमान वैज्ञानिक दृष्टि से सर्वथा निरर्थक नहीं है। इसकी इतनी सार्थकता तो अवश्य है कि यह वैज्ञानिक सामान्यानुमान में अत्यधिक सहायक है।

वस्तुत साधारण गणना-जन्य-सामान्यानुमान में हमें निश्चित ज्ञान नहीं होता, किन्तु एक ऐसा विश्वास सा होता है कि दो घटनाओं में परस्पर अवश्य ही कारणता का सम्बन्ध होगा। हमने साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान को सदोष सामान्यानुमान कहा है। इसको सदोष कहने का अभिप्राय यह है कि इसमें हम निष्कर्ष के बारे में कभी भी निश्चित नहीं हो सकते। इसके निष्कर्ष सदा सम्भाव्य होते हैं तथा इसमें कोई कारणता का सम्बन्ध नहीं होता। यह ठीक है कि साधारण-गणना जन्य सामान्यानुमान में कारणता के सम्बन्ध का अभाव होता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उसके सम्बन्ध में विश्वास भी नहीं होता।

यदि हमें सर्वथा यह निश्चय हो जाय कि दो घटनाओं में कारणता का सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है तो हमारा सामान्य वाक्य का बनाना बिल्कुल निरर्थक सिद्ध होगा। वस्तुतः साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान में हमें कारणता सम्बन्ध का अभाव ही रहता है। इसके अतिरिक्त यद्यपि हम जानते हैं कि इसमें कारणता का सम्बन्ध नहीं है तथापि हम अस्पष्ट रूप से यह विश्वास करते हैं कि उपर्युक्त घटनाओं में कारणता का सम्बन्ध अवश्य होगा। यह ठीक है कि कारणता का हमें ज्ञान नहीं रहता, फिर भी हमें कुछ न कुछ विश्वास अवश्य होता है। उदाहरणार्थ, हम नहीं जानते कि कालेपन और कौओं में कौन कार्य-कारण सम्बन्ध है। यह ठीक भी है कि इन दोनों में परस्पर कार्यकारणसम्बन्ध नहीं है। हमें दोनों में से किसी तरह का ज्ञान नहीं है। यदि यह निश्चय हो जाय कि दोनों घटनाओं में कोई कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है तो वास्तव में हम सामान्य वाक्य को उठाकर फेंक देंगे और विशेष वाक्य से संतोष कर लेंगे। जैसे कुछ कौए काले होते हैं। और यह समझ लेंगे कि कौओं में कालापन एक आकस्मिक गुण है। लेकिन चूँकि हम यह नहीं जानते कि इन दोनों में कारणता का सम्बन्ध नहीं है अतः हम इस प्रकार का सामान्य वाक्य बनाते हैं—"सब कौए काले होते हैं"—और इस प्रकार के वाक्य बनाने में हमारा यह विश्वास होता है कि इन दोनों में कुछ न कुछ अवश्य कारणता का सम्बन्ध होगा। कुछ समय के बीत जाने पर तथा और वैज्ञानिक ध्यान करने पर या तो यह निश्चित हो जायगा कि वास्तव में इन दोनों में कारणता का सम्बन्ध है या उस विश्वास को अलग निकाल दिया जायगा। यदि कारणता का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान वैज्ञानिक सामान्यानुमान के स्थान को ग्रहण कर लेगा। अतः यह कहना पड़ेगा कि साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान अनिश्चित अवस्था में रहता है। इसको या तो वैज्ञानिक सामान्यानुमान में परिवर्तित हो जाना चाहिये या अपने को केवल विशेष वाक्य के रूप में ही रखना चाहिये।

(१६) गणना-जन्य-सामान्यानुमान, पूर्ण-गणना और अपूर्ण गणना

गणना जन्य सामान्यानुमान से यह अभिप्राय है कि जो अनुमान गणना के आधार पर बनाया जाता है उसे गणना-जन्य-सामान्यानुमान कहते हैं इसमें उदाहरणों को गिन लिया जाता है और गिनकर यह निश्चित कर दिया जाता है कि ये गुण इनमें आवश्यक हैं और उन आवश्यक गुणों के आधार पर हम सामान्य वाक्य बना डालते हैं। इसके विपरीत वैज्ञानिक सामान्यानुमान वह है जिसमें सामान्य वाक्य की स्थापना, कारणता के सम्बन्ध के आधार पर की जाती है। गणना पूर्ण हो सकती है और अपूर्ण भी। पूर्ण गणना में समग्र उदाहरणों को गिन लिया जाता है। जिसमें सब उदाहरणों को गिनकर अनुमान बनाये जाते हैं उन्हें निर्दोष सामान्यानुमान कहते हैं। अपूर्ण गणना में सब उदाहरणों को गिनने की आवश्यकता नहीं। इसमें तो केवल यही देखा जाता है कि अमुक कुछ उदाहरणों में ये आवश्यक गुण हैं। इसी आधार पर हम सोचते हैं कि इसी प्रकार के अन्य उदाहरणों में भी अमुक आवश्यक गुण अवश्य पाए जायेंगे। इस प्रकार सोचकर सामान्य वाक्य बनाना साधारण गणना जन्य सामान्यानुमान कहलाता है। इसको अवैज्ञानिक सामान्यानुमान या सदोष-गणना-जन्य सामान्यानुमान भी कहते हैं। स्कॉलेस्टिक दार्शनिक सामान्यानुमान के सदोष और निर्दोष सामान्यानुमान के रूप में जो दो भेद करते हैं, वे सामान्यानुमान को, उसके सब उदाहरणों को गिनने या न गिनने के आधार पर ही, स्थापित करते हैं। इस प्रकार की पूर्ण या अपूर्ण गणना से ही सामान्यानुमान के दो भेदों की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। उपर्युक्त विवेचना से इतना तो अवश्य ज्ञात हो जायगा कि गणना-जन्य-सामान्यानुमान में हमें कभी भी निश्चित निष्कर्ष नहीं मिल सकता। आधुनिक तार्किकों के विचार से यह स्पष्ट है कि यदि सामान्यानुमान का आधार केवल गणना का पूर्णत्व या अपूर्णत्व ही स्वीकार किया जाय तो सामान्या-

नुमान वैज्ञानिक रूप को धारण नहीं कर सकता। यहाँ तक कि सदोष सामान्यानुमान का सम्बन्ध है गणना उसमें अपूर्ण रहती है और इससे यह स्पष्ट है कि यदि गणना को ही केवल आधार माना जाय तो हमारी खोज वहीं समाप्त हो जायगी जहाँ गिनना समाप्त हो जायगा। केवल गणना के आधार पर हमें यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि तीन या चार आम एक टोकरी में पके हैं इसलिये सब आम पके होंगे। इससे यह सिद्ध है कि अपूर्ण गणना हमें कभी भी निश्चयात्मक निष्कर्ष नहीं दे सकती। तथापि यह कहा जाता है कि यदि गणना पूर्ण हो जैसा कि निर्दोष सामान्यानुमान में किया जाता है तो हमारा निष्कर्ष निश्चित होगा। यह मत वेवन्स महोदय का है कि निर्दोष सामान्यानुमान में निष्कर्ष निश्चित होता है। वे यहाँ तक मानते हैं कि वैज्ञानिक सामान्यानुमान में निष्कर्ष निश्चित नहीं होता। किन्तु अधिक-संख्यक-तार्किक लोगों का विचार यही है कि जेवन्स साहब का विचार हानिप्रद है। हमें यह जानना चाहिये कि वैज्ञानिक सामान्यानुमान आवश्यकता के सम्बन्ध पर निर्भर रहता है। आवश्यकता का सम्बन्ध ही उसकी सफलता का द्योतक है। इसके विपरीत केवल गणना के आधार पर निश्चित किया हुआ अनुमान केवल यही बतला सकता है कि वस्तुयें निष्कर्ष में इस प्रकार सिद्ध होती हैं। हम निश्चयपूर्वक यह कभी नहीं कह सकते कि निष्कर्ष में वस्तुओं को इस प्रकार होना चाहिये। यह आवश्यकता के सम्बन्ध को मानने पर ही हो सकता है। इसी तथ्य को और स्पष्ट भाषा में हम इस प्रकार लिख सकते हैं—गणना के आधार पर सामान्यानुमान में हम केवल प्रतिज्ञात (Assertory) वाक्यों का निर्णय कर सकते हैं किन्तु वैज्ञानिक सामान्यानुमान में हम आवश्यक (Necessary) वाक्यों का निर्णय कर सकते हैं।

(२०) उपमा अन्य-सामान्यानुमान

उपमा-अन्य-सामान्यानुमान वह प्रक्रिया है जिसमें हम दो वस्तुओं में कुछ समान धर्म देखकर एक के द्वारा दूसरी का अनुमान करते हैं।

इसमें न तो कारणता का सम्बन्ध होता है और न सम-सत्ता होती है। उपमा जन्य सामान्यानुमान (Analogy) एक प्रकार का अनुमान है जिसमें हम विशेष से विशेष का कुछ समान धर्मों के आधार पर अनुमान करते हैं। इसमें निष्कर्ष प्राय. सम्भाव्य होते हैं। जैसे मगल ग्रह पृथ्वी से कुछ बातों में समानता रखता है—अर्थात् दोनों ग्रह हैं, दोनों में आबोहवा, नदी, पहाड़, समुद्र वगैरह एक समान हैं। पृथ्वी पर मनुष्य रहते हैं, अतः मगल ग्रह में भी अवश्य मनुष्य रहते होंगे। यहाँ इसका सक्षेप में उल्लेख किया गया है। आगे चलकर इसके ऊपर एक स्वतत्र अध्याय लिखा जायगा।

(२१) सामान्यानुमान का उपयोग और आवश्यकता

सामान्यानुमान का महत्व प्रतिपादन करते हुए हम इसके निम्नलिखित उपयोग देखते हैं जिनका वर्णन करना भी आवश्यक है :—

(१) सामान्यानुमान विशेषानुमान के लिये सामान्य वाक्य प्रदान करता है। विशेषानुमान में सामान्य से विशेष की ओर तर्क करते हैं या अधिक सामान्य से कम सामान्य की ओर तर्क करते हैं। विशेषानुमान में इन सामान्य वाक्यों की सत्यता यथावत् स्वीकार कर ली जाती है किन्तु सामान्यानुमान मे हम इन सामान्य वाक्यों को ही सिद्ध करते हैं। यह पहले बतलाया जा चुका है कि स्वयसिद्धों के रूप में केवल सीमित सख्या में ही कुछ वाक्यों की सत्यता स्वीकार की जाती है और जिनको सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती किन्तु अधिक सख्यक सामान्य वाक्यों का निर्माण तो सामान्यानुमान द्वारा ही किया जाता है।

(२) तर्कशास्त्र का ध्येय सत्य प्राप्ति है। इसमें रूप विषयक और विषय विषयक दोनों ही प्रकार की सत्यता को प्रतिष्ठापन करने के लिये प्रयत्न किया जाता है। जहाँ तक विशेषानुमान का सम्बन्ध है वह केवल रूप विषयक सत्यता को ही सिद्ध कर सकता है। यदि तर्क का रूप ठीक है तो उससे निकला हुआ निष्कर्ष भी सत्य होगा। यदि हम

विषय सम्बन्धी सत्यता का निर्णय करना चाहते हैं तो हमें सामान्यानुमान का ही प्रयोग करना पड़ेगा।

(३) क्योंकि सामान्यानुमान, उदाहरणों के देखने पर, सामान्य नियमों की खोज कर उनको सिद्ध करता है अतः इससे हमें हमारी भविष्य की खोज में सहायता मिलती है। जब एक नियम स्थापित हो जाता है तब भविष्य में वह हमारे अनुसन्धानों का आरम्भ बिन्दु बन जाता है।

(४) यह सामान्यानुमान ही है जो विश्व की अन्तर्हित एकता या सामञ्जस्यता की ओर हमें प्रेरणा देता है। प्रथम देखने में तो हमें सारी प्रकृति विभक्त रूप प्रतीत होती है किन्तु सामान्यानुमान पदार्थों के अंदर सामान्य नियमों की खोज करके और सिद्ध करके यह बतलाता है कि विश्व में एकता और सामञ्जस्यता भी है। प्रकृति विघटन ही नहीं एक बड़ा संगठन भी है।

इस प्रकार सामान्यानुमान की महत्ता को देखकर कुछ तार्किक लोग यह विचार करते हैं कि सामान्यानुमान ही केवल उपयोगी प्रक्रिया है, विशेषानुमान निरर्थक है। यह उनकी भूल है। संसार में निरुपयोगी कोई वस्तु नहीं है। सबकी अलग अलग उपयोगिता है। तर्कशास्त्र में तो दोनों का ही उपयोग है। अपने अपने स्थान और क्षेत्र में दोनों ही प्रमुख हैं, हालाँकि दोनों में सम्बन्ध अवश्य है। इस विषय पर अगले अध्याय में विशेष विचार किया जायगा।

अभ्यास प्रश्न—

(१) तर्क का स्वरूप क्या है? सामान्यानुमानीय तर्क को उदाहरण देकर समझाओ।

(२) "विशेष उदाहरणों को देख कर हम सामान्य वाक्यों का निर्माण करते हैं"। इस पर विवेचनापूर्वक अपने विचार प्रकट करो।

(३) निर्दोष सामान्यानुमान का स्वरूप लिखकर उसके विशेष पदों की सार्थकता प्रकट करो।

(४) वैज्ञानिक सामान्यानुमान का स्वरूप लिखकर उसकी परिभि

या-क्षेत्र बतलाओ तथा इसका अयुक्त सामान्यानुमानों से अन्तर दिखलाओ। अपने उत्तर में उदाहरण भी दो।

(५) साधारण-गणनाजन्य सामान्यानुमान कहाँ तक ठीक होता है ? इसकी वैज्ञानिक उपयोगिता पर प्रकाश डालो।

(६) अयुक्त सामान्यानुमान किसे कहते हैं ? इसको अयुक्त क्यों कहा गया है ? इसमें सामान्यानुमान के कौन-कौन गुण पाये जाते हैं ?

(७) सामान्यानुमान के स्वरूप को लिखकर यह बतलाओ कि यह केवल घटना-सकलन नहीं है।

(८) निर्दोष और सदोष सामान्यानुमान में भेद बतला कर यह स्पष्ट करो कि निर्दोष सामान्यानुमान का कोई वैज्ञानिक मूल्य नहीं है।

(९) वैज्ञानिक सामान्यानुमान और अवैज्ञानिक सामान्यानुमान में क्या भेद है ? उदाहरण देकर स्पष्ट व्याख्या कीजिए।

(१०) पूर्ण सामान्यानुमान और अपूर्ण सामान्यानुमान में भेद दिखला कर यह बतलाइए कि इनमें से कौन-सा युक्त सामान्यानुमान कहलाने के योग्य है ?

(११) अयुक्त सामान्यानुमानों के प्रकार देकर सबके उदाहरण दीजिए। प्रत्येक अयुक्त सामान्यानुमान के विषय में यह साबित कीजिये कि ये सामान्यानुमान कहलाने के योग्य नहीं हैं।

(१२) क्या कभी हम एक उदाहरण के देखने के बल पर ही सामान्यानुमान का निर्माण कर सकते हैं ? यदि कर सकते हैं तो किस प्रकार ?

(१३) बेकन का 'गणना-जन्य-सामान्यानुमान' से क्या अभिप्राय है ? इसको निम्नकोटि का सामान्यानुमान क्यों माना गया है ? अपने विचार प्रकट कीजिए।

(१४) सामान्यानुमानीय कुदान से आप का क्या अभिप्राय है ? सामान्यानुमान में इसको क्यों आवश्यक बतलाया गया है ? स्पष्ट कीजिए।

(१५) साधारण-कल्पना-जन्य सामान्यानुमान का स्वरूप लिखकर उसके पदों की सार्थकता सिद्ध कीजिए।

(१६) सामान्यानुमान और विचार प्रक्रिया में क्या अन्तर है? उदाहरण देकर स्पष्ट विवेचन कीजिए।

(१७) एक-निष्ठ-समानता-जन्य सामान्यानुमान का लक्षण लिखकर इसकी निर्दोष सामान्यानुमान के साथ भेदकता प्रकट कीजिए।

(१८) उपमा-जन्य-सामान्यानुमान का स्वरूप उदाहरण सहित समझाइए।

(१९) "वे कौन सी प्रक्रियायें हैं जो सामान्यानुमान के समान प्रतीत होती हैं किन्तु वे यथार्थ में सामान्यानुमान नहीं हैं" उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

(२) सामान्यानुमान या आगमन की उपयोगिता और आवश्यकता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

अध्याय २

(१) सामान्यानुमान की विधि और इसके भिन्न-भिन्न क्रम

इस अध्याय में हमें यह विचार करना है कि सामान्यानुमान की क्या विधि[1] है और उसके क्या क्रम[2] हैं। यह बतलाया जा चुका है कि सामान्यानुमान में हम सामान्य सश्लेषणात्मक वाक्यों का निर्माण करते हैं। प्रश्न होता है कि उसका तरीका क्या है ? इसमें कितने क्रमों का सहयोग लेना पड़ेगा ? विशेष अनुभवों के आधार पर सामान्य वाक्य का निर्माण किस प्रकार किया जाता है ? ये सब गम्भीर प्रश्न हैं। विशेष अनुभवों के द्वारा सामान्य वाक्य के निर्माण करने में हमें कारणता के संबध की खोज और सिद्धि करनी होगी। हम देखते हैं प्रकृति में वस्तुओं का सगठन बड़ा विचित्र है। उसके समझने में बड़ी अड़चने हैं। सभव है उन्हें समझने में हमें बड़ा समय लग जाय और हमारी विधि और अधिक पेचीदी बन जाय। अब हमें किस प्रकार प्रकृति में स्थित पदार्थों के अदर कारणता के सम्बन्ध की खोज करनी चाहिये ? तार्किक लोगों ने इस सम्बन्ध की खोज के लिये कुछ निश्चित क्रमों का उल्लेख किया है जिनके द्वारा हम विशेष से सामान्य का ज्ञान कर सकते हैं और सामान्य नियमों का उनके आधार पर निर्माण कर सकते हैं। यद्यपि वे इन क्रमों को कोई विशेष महत्व देने के लिये तैय्यार नहीं हैं तथापि उन्होंने निम्नलिखित क्रमों का उल्लेख किया है जिन्हें हमें सामान्य वाक्यों के निर्माण में विशेष उदाहरणों के साथ प्रयोग में लाना चाहिये। वे हैं—(१) प्रत्यक्षीकरण (जिसमें विश्लेषण और पृथक्करण भी सम्मिलित हैं) (२) प्राक्कल्पना (३) सामान्यीकरण और (४) सत्यता का निर्णय।

---

(1) Procedure (2) Stages or steps

(१) प्रत्यक्षीकरण (Observation)

सामान्यानुमान के निर्माण-क्रम में सर्व प्रथम प्रत्यक्षीकरण (Observation) की आवश्यकता है। क्योंकि बिना प्रत्यक्षीकरण के हम कुछ नहीं कर सकते। अतः उदाहरणों का हमें प्रत्यक्षीकरण करना चाहिये। प्रत्यक्षीकरण में, हमें ध्यान रखना चाहिये कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। निरुद्देश्यक प्रत्यक्षीकरण से सामान्यानुमान में कोई लाभ नहीं। वस्तुएँ में अवस्थाओं के प्रत्यक्षीकरण के पहले हमें यह जानना चाहिये कि वस्तु क्या है जिसका हम व्याख्यान करना चाहते हैं। क्योंकि हमें पहले-पहल वस्तु का स्वरूप निर्धारित कर लेना चाहिये जिससे हमें यह निश्चय हो जाय कि अमुक वस्तु का यह लक्षण है। यही कारण है कि प्रत्यक्षीकरण में हमें प्रथम वस्तु का लक्षण करना पड़ता है। इसके पश्चात् प्रत्यक्षीकरण का आरम्भ होता है। यह हमें विदित है कि सामान्यानुमान की सामग्री हमें प्रत्यक्षीकरण द्वारा प्राप्त होती है। जो वस्तु या पदार्थ हमारे परीक्षण में हैं हमें उनकी उन अवस्थाओं को ध्यानपूर्वक देखकर लिख लेना चाहिये। जैसे, कौनसी अवस्थाएँ वस्तु के पहले होती हैं, कौनसी उसके साथ या पास पाई जाती हैं और कौनसी उसके बाद में उत्पन्न होंगी। इन सब अवस्थाओं को लिख लेना अत्यन्त आवश्यक है। यह सब कार्य जल्दी में, या अस्थिरता से नहीं करना चाहिये किन्तु शान्ति से परिश्रमपूर्वक एक निश्चित उद्देश्य के अनुसार करना चाहिये। तभी हम कुछ सब विषय में ध्यान सकते हैं क्योंकि प्रत्यक्षीकरण में कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है इसलिये उसमें विश्लेषण और पृथक्करण ये दोनों प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।

विश्लेषण (Analysis) वह प्रक्रिया है जिसमें एक मिश्र वस्तु अपने अंशों में विभक्त की जाती है। प्रकृति का जब हम निरीक्षण करते हैं तब हमें सब वस्तुएँ मिश्रित रूप[1] में प्रतीत होती हैं। इसलिये यदि हम किसी वस्तु या उदाहरण को अच्छी तरह जानना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि उस वस्तु को या उस उदाहरण को उसके अंशों में विभक्त

---

(1) Complex.

कर डालें, जिससे हम यह निश्चित कर सकें कि इनमें कौनसे अंश आवश्यक हैं, और कौनसे अनावश्यक या निरर्थक। विश्लेषण इस पर अच्छा प्रकाश डालता है और बतलाता है कि अमुक वस्तु में कितने अश केवल आकस्मिक हैं जिनका विषय से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं तथा कितने अश आवश्यक हैं जिनका विषय की परीक्षा के लिये होना अत्यन्त ज़रूरी है। विश्लेषण, इस तरह प्रत्यक्षीकरण में अत्यन्त सहायक होता है। वास्तव में वैज्ञानिक विधि भी यही है।

पृथक्करण (Elimination) **वह प्रक्रिया है जिसमें आकस्मिक या निरर्थक अवस्थाओं या अशों को अलग करके आवश्यक अशों को एक तरफ कर लिया जाता है और उनके द्वारा कारणता के सबध की खोज की जाती है।** मिल महोदय पृथक्करण का लक्षण यह करते हैं—"यह वह लगातार[1] पृथक् करने की प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनेक अवस्थाओं को जो वस्तुओं के साथ साथ पाई जाती हैं अलग कर दी जाती हैं और जिनको हम वस्तु के रहने पर भी अलग कर सकते हैं, केवल यह जानने के लिये कि अमुक अश आवश्यक है और अमुक, अनावश्यक। यह सर्वथा निश्चित है कि पृथक्करण के पहले विश्लेषण अवश्य होना चाहिये। जब विश्लेषण हमें यह बतला देता है कि अमुक अंश आवश्यक हैं और अमुक आकस्मिक, तो हम आवश्यक अशों के आधार पर कारणता के सबध की खोज करते हैं। ये दोनों प्रक्रियाएँ साथ साथ चलती हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं से यह लाभ होता है कि हम आवश्यक अशों के आधार पर कारणता को खोजने के लिये ध्यान दे सकते हैं।

विश्लेषण और पृथक्करण की प्रक्रियाओं के अनन्तर **अवस्थाओं को बदलने**[2] **की प्रक्रिया** की आवश्यकता होती है। **इससे मतलब यह है कि हम भिन्न भिन्न अवस्थाओं के समूहों का अध्ययन करते हैं जिनके अन्दर परीक्षणार्थ घटनाएँ घटती हैं।** प्रकृति बड़ी पेचीदी है और घटनाएँ हमारे सामने बड़ी असमञ्जस अवस्थाओं में उपस्थित

(1) Continuous (2) Varying the circumstances

होती हैं। जब हम किसी घटना की परीक्षा अच्छी तरह नहीं कर सकते तब हम अनेक प्रकार की अवस्थाओं के समूहों को प्रयत्न के द्वारा एकत्रित करते हैं जिनमें परीक्षा के लिये घटनाएँ उत्पन्न हों। अब यदि हम यह चाहते हैं कि विश्लेषण और पृथक्करण अच्छी तरह कार्य कर सकें तो हमें अवस्थाओं को बदलने की प्रक्रिया धारण करनी चाहिये जिससे कि भिन्न भिन्न समूह जिनमें परीक्षणार्थ घटना पैदा होती है हमारे सामने लगातार आती चली जायें। तत्पश्चात् हम यह तर्क करते हैं कि वे अवस्थाएँ जो एक समान रहती हैं वे आवश्यक हैं तथा वे जो कभी उपस्थित रहती हैं और कभी नहीं वे आकस्मिक हैं। बेकन के अनुसार सामान्यानुमानीय विधि में यह सबसे अधिक महत्त्वशाली प्रक्रिया है। इस प्रकार सर्व प्रथम हम परीक्षणार्थ घटना का समूह बनाते हैं घटनेवाली अवस्थाओं के अन्दर उसका निरीक्षण करते हैं, उन अवस्थाओं का विश्लेषण करते हैं और विश्लेषण कर अनावश्यक या आकस्मिक अवस्थाओं को पृथक् कर देते हैं जिससे कि जो आवश्यक अवस्थाएँ हैं उनको अलग रख सकें। अतः प्रत्यक्षीकरण में, तथा विश्लेषण और पृथक्करण (जिसमें अवस्थाओं को बदलने की प्रक्रिया भी सम्मिलित है) इतनी प्रक्रियाएँ काम में लाई जाती हैं।

(२) प्राक्कल्पनाओं[1] का निर्माण

दूसरा क्रम हमारा प्राक्कल्पना का निर्माण करने का है जिससे हम यह पता लगा सकें कि घटना का कारण क्या है। इस प्रकार की कल्पनाओं के लिये यह आवश्यक है कि हम समझ सोचकर प्राक्कल्पनाएँ बनावें। प्रत्येक व्यक्ति प्राक्कल्पनाओं को नहीं बना सकता। इसके लिए हमारी असाधारण अन्तर्दृष्टि और रचनात्मक प्रतिभा होनी चाहिये तभी हम योग्य प्राक्कल्पनाएँ बना सकते हैं। प्राक्कल्पना (Hypothesis) का अर्थ है किसी घटना का व्याख्यान करने के लिये कुछ पूर्व कल्पना करना। शुरू में यह प्रतीत होगा कि एक घटना को स्पष्ट करने के लिये कई प्रकार की प्राक्कल्पनाएँ सम्भावित हों

(1) Hypothesis.

सकती हैं। इन सम्भवित प्राक्कल्पनाओं में हमें सत्य और निश्चयात्मक कल्पना की तलाश करना है। यह निश्चय करने के लिये कि प्राक्-कल्पना सत्य है हम सब सम्भव प्राक्कल्पनाओं में से जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है, उसको 'आगे व्याख्या करने के लिये, निश्चित कर खोज करना प्रारम्भ करते हैं। इस प्रक्रिया को हम **प्राक्कल्पना का निर्माण** (Framing a Hypothesis) कहते हैं। जो अधिक सम्भाव्य कल्पना होती है उसीको हम उस समय पुनर्विचार के लिये निश्चित कर लेते हैं तथा अन्य को संग्रहालय में रख छोड़ते हैं। ह्वेवेल महोदय का कहना है कि प्राक्कल्पना का निर्माण सामान्यानुमान की विधि में सबसे उत्तम क्रम है। वास्तव में सच्ची खोज का आरम्भ ही यहाँ से होता है।

(३) सामान्यीकरण

प्राक्कल्पना के अनन्तर सामान्यीकरण की प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। **सामान्यीकरण (Generalisation) में हम उदाहरणों को देखकर सामान्य वाक्य का निर्माण करते हैं।** जब हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि परीक्षार्थ ली हुई घटना पर हमारी प्राक्कल्पना कुछ प्रकाश डालती है और वह कई उदाहरणों में सत्य ठहरती है तो हम अनुमान करते हैं कि उस प्रकार के अन्य उदाहरणों की व्याख्या करने में भी यह सर्वथा समर्थ होगी। इस प्रकार के सामान्यीकरण या सामान्य वाक्य का स्थापन करना अनुभव सम्बन्धी विधियों द्वारा सम्यक् रूप से हो सकता है। क्योंकि इन विधियों द्वारा पहले प्राक्कल्पना द्वारा प्रकाशित घटनाओं में हम कारणता का सम्बन्ध अच्छी तरह स्थापित कर सकते हैं। जब हमने प्राक्कल्पना द्वारा जान लिया कि अनेक उदाहरणों में यह व्याख्या ठीक उतरती है तो उसको सामान्य रूप देकर सामान्य वाक्य का निर्माण कर लिया जाता है और यह सामान्यीकरण ठीक होता है। मिल महोदय का कहना है कि सामान्यानुमान की क्रमिक प्रक्रियाएँ यहाँ समाप्त हो जाती हैं। किन्तु अन्य तार्किकों का मत है कि ये यहाँ समाप्त नहीं होती हैं। इनके अनन्तर हमें समर्थन की भी आवश्यकता होती है।

(४) समर्थन

समर्थन (Verification) का साधारण अर्थ यह है कि जो सामान्य निष्कर्ष, हमने उपर्युक्त विधि से प्राप्त किया है वह उदाहरणों के साथ मिलान करने पर, ठीक उतरता है या नहीं। सामान्य वाक्य, जिसका हम ने निर्माण किया है उसको हम पुनः परीक्षा का विषय बनाते हैं और उसका अन्य उदाहरणों में प्रयोग करते हैं। यदि यह उन उदाहरणों की ठीक तौर से व्याख्या करता है तो ठीक है अन्यथा वह गलत सिद्ध होता है। उसके गलत सिद्ध होने पर हम उसे छोड़ कर अन्य भावकल्पनाओं द्वारा उसकी परीक्षा करना आरम्भ करते हैं। इस प्रकार सब प्रक्रियाओं का पुनः प्रयोग करना शुरू हो जाता है। यदि वह परीक्षार्थ प्रदत्त की हुई घटनाओं के व्याख्यान करने में सक्षम होती है अर्थात् वह समर्थन करती है तो उसको 'नियम'[1] का पद मिल जाता है अर्थात् वह सिद्धताबाधित नियम बन जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि समर्थन एक सामान्य वाक्य को नियम के स्वरूप में परिवर्तित कर देने वाली प्रक्रिया है। यदि समर्थन न किया जाय तो सामान्य के नियम में संदेह ही बना रहता है।

समर्थन का वास्तविक अर्थ है यथार्थ उदाहरणों के प्रति अपने चित्त की प्रवृत्ति करना। यह दो प्रकार का होता है (१) साक्षात् और (२) असाक्षात्। जहाँ तक साक्षात् (Direct) समर्थन का सम्बन्ध है हम इसमें यथार्थ पदार्थों के प्रति साक्षात् अपने चित्त को लगा कर देखते हैं तथा असाक्षात् (Indirect) समर्थन में हमें दो अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। प्रथम, सामान्य वाक्य से हम विशेषानुमान निकालते हैं और द्वितीय, उस विशेषानुमान की हम परीक्षा करते हैं यह जानने के लिये कि हमारा सामान्य वाक्य, परीक्षार्थ लिए हुए पदार्थ या उदाहरण का सही विवेचन है या नहीं। इससे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं जिसको हम सामान्य वाक्य से निकाला हुआ निगमन या विशेषा

---

(1) Law

नुमान करते हैं। निष्कर्षों के निकाल लेने पर हम अपने निर्णयों की यथार्थ उदाहरण या घटनाओं से तुलना करते हैं। इस प्रक्रिया को हम विशेषानुमान का परीक्षण भी कहते हैं। यदि निकले हुए निष्कर्ष साधारण उदाहरणों से मेल खाते हैं तो हमारे निष्कर्षों का समर्थन हो जाता है और उनको वैज्ञानिक नियमों का पद प्राप्त हो जाता है। और यदि निष्कर्षों का यथार्थ उदाहरणों से मेल नहीं खाता है तो हमें उन नियमों को दूसरी उत्तम प्राक्-कल्पनाओं के लिए छोड़ देना चाहिये अर्थात् हमें नवीन प्राक्-कल्पनाएँ उत्पन्न कर उनका परीक्षण करना चाहिये। जेवन्स महोदय का कहना है कि सामान्यानुमान की प्रक्रिया में समर्थन का बहुत उत्तम स्थान है और किसी भी अवस्था में हम सामान्य वाक्य को अनुमान कहने के लिये तय्यार नहीं हैं यदि उसका उचित रीति से समर्थन नहीं हुआ है। समर्थन का होना सब अवस्थाओं में अत्यन्त आवश्यक है।

अब यहाँ हम सामान्यानुमान की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में से गुजर कर सामान्य वाक्यों के निर्माण तक की अवस्था का उदाहरण देते हैं। कल्पना कीजिये कि एक डाक्टर एक रोगविशेष—जूड़ी के बुखार (Malaria fever) के कारण का ज्ञान कर एक सामान्य नियम बनाना चाहता है तो उसे अमुक-अमुक प्रक्रियाओं का उपयोग करना पड़ेगा।

प्रथम, हम जूड़ी के बुखार का लक्षण करते हैं क्योंकि अलक्षित वस्तु का ज्ञान बगैर लक्षण के नहीं हो सकता। इसके पूर्व कि हम किसी परीक्षा-विधि को ग्रहण करें, यह आवश्यक है कि हमारा किसी वस्तु के विषय में एक निश्चित विचार होना चाहिये, जिसकी हम स्पष्ट व्याख्या करना चाहते हैं। सम्भव है भविष्य में हम अपने विचार बदल दें किन्तु इतना अवश्य है कि जिस किसी वस्तु की हम परीक्षा करना चाहते हैं उसमें हमें तनिक भी सदेह नहीं होना चाहिये। इस प्रकार जूड़ी के बुखार का विचार हृदय में रख कर हम उसके सब प्रकार के चिन्ह लिखना आरम्भ करते हैं। हम देखते हैं कि बुखार के साथ साथ शरीर में अधिक ताप होता है, कँपकँपी उठती है, प्यास लगती है, सिर में

पीड़ा होती है की मालूम होता है, तथा अन्य लक्षण दिखाई देते हैं। जब ये सब रूप दीखते हैं तब हम उसका लक्षण पता जानते हैं। इसके पश्चात् प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया शुरू होती है। देखा जाता है कि जो मनुष्य भिन्न-भिन्न उम्र वाले होते हैं जिनकी भिन्न भिन्न आदतें होती हैं जो भिन्न-भिन्न स्थानों में, भिन्न-भिन्न ऋतुओं में और भिन्न-भिन्न वातावरणों में रहते हैं, उन सब पर बड़ी के बुखार का आक्रमण होता है। हम उन सब अवस्थाओं और कारणों को अच्छी तरह देखते हैं जो रोग के पूर्व उत्पन्न होते हैं या उनके साथ पाए जाते हैं, या आक्रमण के बाद उत्पन्न होते हैं। हम देखते हैं कि लोग भिन्न-भिन्न प्रान्तों में गये थे जहाँ उनके ऊपर इस रोग ने आक्रमण किया। उनने किस प्रकार का खाना खाया, उनकी आदतें क्या थीं, वे किस प्रकार के कपड़े पहनते थे उनके शरीर की विशेषताएँ क्या थीं इत्यादि। हम इसका विशेष ध्यान रखते हैं कि हमारी परीक्षा-विधि का क्षेत्र अत्यधिक विशाल हो जिससे कि हम घटना का उन अवस्थाओं में अच्छी तरह अध्ययन कर सकें। कभी कभी हम अवस्थाओं को बदल देते हैं और भिन्न-भिन्न परिवर्तित अवस्थाओं में बड़ी के बुखार के व्यक्तियों पर परीक्षण करते हैं। अनन्तर उन अवस्थाओं का विश्लेषण करते हैं जिनको हमने देखा है जिससे यह निश्चित किया जा सके कि प्रासंगिक अवस्थाएँ क्या हैं और औपाधिक अवस्थाएँ क्या हैं? उदाहरणार्थ हम देखते हैं कि उम्र का प्रश्न कोई आवश्यक नहीं क्योंकि भिन्न-भिन्न उम्रवाले व्यक्तियों के ऊपर इस रोग का आक्रमण होता है। इसी प्रकार वस्त्र जो वे पहनते हैं कोई आवश्यक अवस्थाएँ नहीं हैं। इस प्रकार अनावश्यक कारणों को हम अलग कर देते हैं और उन्हीं को ध्यान में रखते हैं जिनका बड़ी के बुखार से कुछ सम्बन्ध होता है।

इसके पश्चात् हम मान्यकल्पना की सृष्टि करते हैं अर्थात् हम एक ऐसा विचार उपस्थित करते हैं जिससे हमें सम्भवनीय कारणों का पता लग सके। यह रोग किन्हीं कीटाणुओं के कारण उत्पन्न हो सकता है जिनका हमारे शरीर के अन्दर भोजन द्वारा प्रवेश हो गया हो या किसी

पेय वस्तु द्वारा उनका प्रवेश हो गया हो या नाक द्वारा कीटाणु प्रवेश कर गये हों। सम्भव है रोग का संक्रमण मक्खियों, मच्छरों या इसी प्रकार के अन्य जन्तुओं द्वारा हुआ हो, इत्यादि। इस रोग की इसी प्रकार की व्याख्याएँ हो सकती हैं। पुन: परीक्षा-विधि के लिये जो हमने भिन्न भिन्न प्रकार की प्राक्कल्पनाएँ की हैं उनमें से किसी एक को, जो अधिक सम्भव व्याख्या हो सके, हम ले सकते हैं और अपना कार्य आरम्भ कर सकते हैं। मान लिया कि हम इस प्राक्कल्पना को लेते हैं—'इस रोग का सक्रमण मच्छरों द्वारा होता है' तब हम इस प्रकार का सामान्यीकरण बनाते हैं अर्थात् हमारा सामान्य वाक्य यह होता है— "जूड़ी के बुखार के सब उदाहरण मच्छरों के निमित्त से होते हैं"। अब हम इस सामान्यीकरण का समर्थन करने का प्रयत्न करते हैं और यह तब हो सकता है जब हम इस विधि के द्वारा निष्कर्षण निकालें और उन निष्कर्षणों को उदाहरणों में घटावें। यदि इस रोग के माध्यम मच्छर ही हैं और वे ही इस रोग के कीटाणुओं को इधर-उधर ले जाते हैं तो इससे यह परिणाम निकलेगा कि जो व्यक्ति मच्छरदानी का प्रयोग करते हैं उनके ऊपर इस रोग का आक्रमण कम होता है अपेक्षाकृत उन लोगों के जो मच्छरदानी इस्तेमाल नहीं करते हैं। जब हमें यह प्रतीत होता है कि यह अनुसन्धान हमारा कई उदाहरणों में सत्य सिद्ध होता है तो हमारा सामान्यीकरण उस अवधि तक समर्थित गिना जाता है। इसका हम पुन समर्थन करते हैं कि जो व्यक्ति ऐसे स्थानों में रहते हैं जहाँ मच्छर अधिक पैदा होते हैं वे अधिक रूप से इस रोग के शिकार बनते हैं, अपेक्षाकृत उन मनुष्यों के जो मच्छररहित स्थानों में रहते हैं। पुनरनुसन्धान इस तथ्य का समर्थन करता है कि मच्छरों की कुछ जातियाँ हानिरहित हैं। यह तो एक विशेष प्रकार के मच्छर होते हैं जिन्हें जूड़ी के बुखार के मच्छर कहते हैं, और जो इस प्रकार के रोग को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। इसी आधार पर हम अपनी भौतिक प्राक्कल्पना में परिवर्तन कर डालते हैं। जब हमारे सामान्य वाक्य का इस प्रकार समर्थन हो जाता है तब हम अपने सामान्य वाक्य को सामान्या-

नुमान या उपपत्ति (Induction) के नियम का पद दे सकते हैं और हमारा साधारण नियम बन जाता है कि विशेष प्रकार के मच्छर जिन्हें अंगरेजी में एनोफीलिस (Anopheles) कहते हैं जूड़ी के बुखार (Malaria) के कारण हैं।

(२) सामान्यानुमान की विधि की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की आपेक्षिक प्रधानता

सामान्यानुमान की विधि की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की आपेक्षिक प्रधानता के विषय में तार्किकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। यद्यपि कुछ तार्किक लोग इस मत पर, कि कुछ क्रम ऐसे हैं जिन्हें वे विशेष उदाहरणों से लेकर सामान्य नियमों के निर्माण की अवस्था तक आवश्यक समझते हैं, सहमत हैं किन्तु उनकी प्रधानता और महत्ता के विषय में उन लोगों के मतभेद भी हैं। उदाहरणार्थ हम बेकन महोदय को ले सकते हैं। वे विश्लेषण तथा अवस्थाओं के परिवर्तन के साथ-साथ पृथक्करण को विशेष महत्व देते हैं और अनन्तर उत्पन्न होनेवाले प्राक्-कल्पना की शुद्धि वाले क्रम को अधिक महत्व नहीं देते। इसी प्रकार ह्वेवेल महाशय कल्पना की शुद्धि के क्रम पर सबसे अधिक जोर देते हैं किन्तु अन्य क्रमों की ओर सर्वथा लक्ष्य नहीं देना चाहते। वास्तव में ह्वेवेल महोदय के अनुसार सामान्यानुमान कल्पना-उत्थान के अतिरिक्त कुछ नहीं है अर्थात् सामान्यानुमान में हम एक उचित विचार-द्वारा सब घटनाओं को इकट्ठा करके बांध देते हैं। अतः ह्वेवेल के सिद्धान्तानुसार जब कल्पना की शुद्धि कर ली गई तभी मानो सामान्यानुमान का कार्य समाप्त हो गया। मिल महोदय के अनुसार प्राक्-कल्पना की शुद्धि का कोई विशेष महत्व नहीं है। उनके अनुसार तर्कशास्त्र का विशेष सम्बन्ध सबूत या प्रमाण से है; उनके खोज या अनुसन्धान से कोई प्रयोजन नहीं। उनका कहना है कि 'कल्पना करना विशेष रूप से अनुसंधान या खोज से सम्बन्ध रखता है। इसलिये सामान्यीकरण का क्रम ही सबसे उत्तम क्रम है और यथार्थ में सामान्यानुमान इसको कि

जो कुछ कुछ व्यक्तियों के बारे में सत्य है वह सब के बारे में सत्य होगा'—छोड़ कर कुछ है ही नहीं। अथवा जो कुछ, कुछ समयों में या क्षेत्रों में सत्य है वह सब समयों में या क्षेत्रों मे सत्य होगा। यह ठीक है कि प्राक्कल्पना का सृजन करना किसी क्रमबद्ध या विधिसम्पन्न सामान्यानुमान के निर्माण में अधिक सहायक नहीं होता तथापि यह मानना पड़ेगा कि प्राक्कल्पना का निर्माण करना केवल आविष्कारिणी प्रतिभा का विषय है जो न तो पढ़ाया जा सकता है और न जिसकी व्याख्या की जा सकती है। यह कहना—कि तर्कशास्त्र का खोज या आविष्कार से कोई सम्बन्ध नहीं है—अति साहस है और खोज शब्द के अर्थ को बिलकुल सीमित कर देना है, क्योंकि सत्य की पूर्ण खोज तब तक नहीं हो सकती जब तक कि उसका पूर्ण समर्थन न किया जाय। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि मिल स्वयं अपने विचारों में संगत नहीं हैं क्योंकि उन्होंने स्वयं सामान्यानुमान का लक्षण यह किया है—**'सामान्यानुमान वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम सामान्य वाक्यों को खोज करते है और उन्हें सिद्ध करते हैं'**। जेवन्स महोदय मानते हैं कि सामान्यानुमान में समर्थन बड़ा महत्वशाली क्रम है। वह सामान्यीकरण के समर्थन को अत्यन्त आवश्यक अङ्ग मानते हैं क्योंकि सामान्यीकरण द्वारा निकले हुए निष्कर्ष सत्य उदाहरणों में ठीक उतरते हैं। इस प्रकार जेवन्स महोदय सामान्यीकरण के महत्व को अलग कर के समर्थन के रूप में उसको उपस्थित करते है और उसी को मौलिक तर्क का प्रकार स्वीकार करते हैं।

तार्किकों ने शुद्ध सामान्यानुमान की विधि और पूर्णविधि में अन्तर बतलाया है। शुद्ध सामान्यानुमान की विधि सामान्यीकरण के क्रम पर समाप्त हो जाती है, किन्तु पूर्णविधि में समर्थन का भी समावेश किया जाता है। पूर्णवैज्ञानिकविधि को मिल महोदय ने विशेषानुमानीय विधि (Deductive Method) कहा है और जेवन्स महोदय इसको संयुक्त या पूर्ण विधि (Combined or Complete Method) कहते हैं और इसके अन्दर सामान्यानुमान और विशेषा-

नुमान दोनों को अन्तर्भूत कर लेते हैं। इसका विशेष विवेचन आगे किया जायगा।

(३) सामान्यानुमानीय तर्क की अवस्थायें

सामान्यानुमानीय तर्क की अवस्थायें दो प्रकार की हैं—(१) आत्म-सम्बन्धी (Subjective) और (२) विषय-सम्बन्धी (Objective)। आत्म-सम्बन्धी अवस्थाओं को मनोवैज्ञानिक या मानसिक अवस्थायें भी कहते हैं तथा विषय-सम्बन्धी अवस्थाओं को तार्किक अवस्थायें भी कहते हैं।

जहाँ तक विषय-सम्बन्धी अवस्थाओं का सम्बन्ध है उनका विशद विवेचन पहले किया जा चुका है। वे निम्नलिखित हैं ('१) प्रत्यक्षीकरण जिसमें विश्लेषण और अवस्थाओं के परिवर्तन के साथ-साथ पृथक्करण को भी सम्मिलित किया गया है (२) प्राक्कल्पना (३) सामान्यीकरण और (४) समर्थन।

किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ आत्म-सम्बन्धी या मानसिक अवस्थाएं हैं जो सामान्य वाक्यों के निर्माण में अत्यन्त आवश्यक हैं। इनके अभाव में विशेष उदाहरणों से हम सामान्य वाक्यों का निर्माण नहीं कर सकते। इनका संक्षिप्त कथन इस प्रकार है :—

(१) पक्षपात से निर्मुक्ति (Freedom from prejudice)—सामान्यानुमानीय खोज के लिए यह परमावश्यक है कि हमारा मस्तिष्क पक्षपात या दुराग्रह से रहित हो। दुराग्रही मनुष्य कभी भी सत्य के दर्शन नहीं कर सकता। सत्य चाहता है कि मनुष्य के विचार शुद्ध और मस्तिष्क अथवा पूर्वसंस्कारों से रहित हो। बेकन ने इस प्रकार के पूर्व-संस्कारों से जन्य मिथ्या धारणाओं को आइडोला (Idola) शब्द से पुकारा है। इन्हें हम मिथ्या धारणायें या हेत्वाभास या दोष भी कह सकते हैं। बेकन (Bacon) महोदय के शब्दों में ही हमें यह कहना चाहिये कि 'हम प्रकृति की व्याख्या कर सकते हैं किन्तु उसका पहले से ही ज्ञान नहीं कर सकते। प्रकृति के पूर्वज्ञान से हमारा अभिप्राय यह है कि हम प्रकृति के ऊपर पहले से ही अपने विचार

ादना चाहते हैं। हमें प्रकृति का अध्ययन खुले विचारों से करना ाहिये और पदार्थों का प्रत्यक्षीकरण उसी प्रकार करना चाहिये जिस ेकार वे अवस्थित हैं। हमें प्रकृति के अन्दर अपने निजी विचारों को ूदने का कोई अधिकार नहीं है। हमारा मस्तिष्क सर्वथा पूर्व-संस्कारों से ्ुद्ध होना चाहिये। अन्यथा हमारे विचार एक हिन्दू, मुसलमान और तेली के समान होंगे जिन्होंने एक पक्षी के शब्दों को सुनकर अपनी-अपनी धारणाओं के अनुसार उनका निम्न प्रकार से अनुवाद किया था। हिन्दू महोदय ने पक्षी के शब्दों में 'सीता राम दशरथ' खोज लिया था। मुसलमान महाशय ने 'सुमान तेरी कुदरत' को पा लिया था। तथा भद्र तेली ने उसके शब्दों में 'नून तेल अदरक' पाया था। इस प्रकार अपनी अपनी धारणाओं के अनुसार हमें प्रकृति के तत्वों का व्याख्यान करने का कोई अधिकार नहीं। वैज्ञानिक विधि इससे दूर है। यह निष्पक्ष होनी चाहिये।

(२) **धैर्य और कार्य-संलग्नता,** (Patience and perseverance) धैर्य और कार्य-सलग्नता ये दो अवस्थाएँ भी विशेष उदाहरणों को देखकर सामान्य वाक्यों के निर्माण में अत्यन्त आवश्यक हैं। जब तक हम धैर्य से कार्य न करेंगे हम कभी भी सत्य निर्णय पर नहीं पहुँच सकते, शीघ्रता में सर्वदा कार्य नष्ट होता है। अत: धैर्य अत्यन्त आवश्यक है। धैर्य के साथ-साथ यदि कार्य-संलग्नता न हो तब भी कार्य सम्पादन नहीं हो सकता। सामान्य वाक्य के निर्माण में हमें सावधानी से सलग्न रहना चाहिये। प्रकृति का स्वरूप बड़ा जटिल है और प्राकृतिक पदार्थ एक बड़ी गड़बड़ में रहते हैं। एक मनुष्य जो प्रकृति की जटिलता को देखकर भागता है वह प्रकृति के अन्तस्तल को प्राप्त नहीं कर सकता। प्रकृति के अन्तस्तल को टटोलने के लिये अत्यधिक धैर्य और कार्य-सलग्नता की आवश्यकता है। क्योंकि प्रकृति एकता और अनेकता का एक अद्भुत समिश्रण है। इसके अनुसधान के लिये और विशेष रूप से सामान्यीकरण के लिये हमें धैर्य धारण करना चाहिये।

(३) एकरूपता में विश्वास (Belief in Uniformity)—अन्त में यह भी आवश्यक है कि हमारा प्रकृति की एकरूपता में विश्वास हो। जब हम प्रकृति की एकरूपता में विश्वास करेंगे तो सार्वभौमिक कारणता के सिद्धान्त में भी विश्वास करना होगा। ये दोनों मौलिक सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर सारे सामान्यानुमानीय तर्क अवलम्बित हैं और जब तक हम इनकी सत्यता और उपयोगिता में विश्वास नहीं करते तब तक हम ज्ञात से अज्ञात की ओर निगमन कर सामान्य वाक्य का निर्माण नहीं कर सकते। अतः यह आवश्यक है कि प्रकृति की एकरूपता में विश्वास किया जाय।

(४) सामान्यानुमान का विशेषानुमान से सम्बन्ध

पहले यह बतलाया गया है कि तर्क या अनुमान के दो भेद हैं (१) विशेषानुमान और (२) सामान्यानुमान। विशेषानुमान में वाक्यों की सत्यता मानकर हम निष्कर्ष निकालते हैं—यह हमारा निष्कर्ष आवश्यक रूप से प्रतिज्ञा वाक्यों से निकलता है, और यह प्रतिज्ञा वाक्यों से अधिक सामान्य या व्यापक नहीं हो सकता। इसके विपरीत सामान्यानुमान में वाक्य या प्रस्थापनायें अनुभव के पदार्थ होते हैं और निष्कर्ष एक सामान्य वाक्य होता है। वह विषय और रूप दोनों की दृष्टि से परिपूर्ण होता है। सामान्यानुमान और विशेषानुमान में निम्नलिखित भेद-सूचक बातें ध्यान देने योग्य हैं—

(१) विशेषानुमान में वाक्य या प्रस्थापनायें[1] सत्य मान ली जाती हैं और उनसे निष्कर्ष निकाला जाता है। तथा सामान्यानुमान में प्रस्थापनायें अनुभव से प्राप्त की जाती हैं।

(२) विशेषानुमान केवल रूप-विषयक सत्यता को स्थापित करता है। यदि रूप सत्य है तो निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा। किन्तु सामान्यानुमान में रूप-विषयक और विषय-विषयक दोनों प्रकार की सत्यताओं पर ध्यान दिया जाता है। विशेषानुमान में तो केवल यही देखना है कि निष्कर्ष

---

(1) Propositions

वाक्यों से आवश्यक रूप से निकलता है या नहीं। यदि निकलता है तो ठीक है। किन्तु सामान्यानुमान में तो इसके आगे यह सोचना पड़ता है कि निष्कर्ष विषय की दृष्टि से भी ठीक है या नहीं।

(३) विशेषानुमान में निष्कर्ष प्रस्थापनाओं से अधिक व्यापक नहीं होना चाहिये। यह हो सकता है कि निष्कर्ष सामान्य हो या कम सामान्य हो किन्तु किसी भी अवस्थाओं में यह वाक्यों से अधिक सामान्य नहीं हो सकता। किन्तु इसके विपरीत सामान्यानुमान में निष्कर्ष प्रस्थापनाओं से सर्वदा अधिक सामान्य रूप होता है।

अब यहाँ दोनों के उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं —

विशेषानुमान—सब मनुष्य मरण-धर्मा हैं।
सब नेता मनुष्य हैं।
सब नेता मरण-धर्मा हैं।

इस उदाहरण में प्रतिज्ञा वाक्यों की सत्यता स्वीकार की गई है और उनकी सत्यता के आधार के ऊपर निष्कर्ष निकाला गया है। वह निष्कर्ष, देखने पर प्रतीत होगा, कि प्रस्थापनाओं से कम सामान्य रूप है। यहाँ केवल एक ही प्रश्न का हल करना होता है कि सिलाजिज्म के नियमों का पूर्ण रूप से पालन किया गया है या नहीं। यदि नियम-विषयक कोई दोष नहीं है तो निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा।

सामान्यानुमान—हरि मरणशील है।
शू फू मरणशील है।
जोन मरणशील है।
अब्दुल्ला मरणशील है।
जिनभद्र मरणशील है।
सब मनुष्य मरणशील हैं।

इस उदाहरण में प्रस्थापना वाक्य अनुभव से दिये हुए हैं और निष्कर्ष प्रतिज्ञा वाक्यों से अधिक व्यापक है। तथा यह विषय की दृष्टि से भी सत्य है। अत इसकी सत्यता में कोई संशय उत्पन्न नहीं होता।

विशेषानुमान और सामान्यानुमान के सम्बन्ध के विषय में तार्किक लोग प्राय: दो प्रश्न उठाया करते हैं :—

(१) क्या सामान्यानुमान विशेषानुमान से अधिक मौलिक है ?

(२) क्या सामान्यानुमान विशेषानुमान से पूर्ववर्ती है ?

प्रथम प्रश्न—क्या सामान्यानुमान विशेषानुमान से अधिक मौलिक है ?—के विषय में रूपपक्षीय[1] और विषयपक्षीय[2] तार्किकों के भिन्न भिन्न विचार हैं। रूपपक्षीय तार्किक जैसे हैमिल्टन, मेन्सेल, हॉटले आदि का मन्तव्य है कि विशेषानुमान मौलिक प्रक्रिया है और सामान्यानुमान कोई स्वतन्त्र तर्क करने की प्रक्रिया नहीं है। इस सिद्धान्त को मानने वालों के अनुसार सामान्यानुमान वास्तव में विशेषानुमान का ही रूप है और उसको सिलाजिज्म के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। इसको आगे के प्रकरण में बतलावेंगे। विषयपक्षीय तार्किक जैसे मिल, बेन आदि प्रथम पक्ष से सर्वथा भिन्न पक्ष धारण करते हैं और कहते हैं कि वस्तुतः में सारी तर्क की प्रक्रिया सामान्यानुमान रूप ही है और विशेषानुमान इसमें केवल एकदेशीय या आकस्मिक अवस्था-विशेष है क्योंकि विशेषानुमान में हम केवल सामान्यानुमान द्वारा स्थापित सामान्य वाक्यों का ही व्याख्यान करते हैं। यहाँ पर कहना अनुचित न होगा कि उभय पक्षीय विधान व्यर्थ ही एक पक्ष को गिराकर दूसरे पक्ष की महत्ता स्थापित करना चाहते हैं जिसके लिये इस विचार में कोई स्थान नहीं है। यथार्थ में सामान्यानुमान और विशेषानुमान दोनों ही तार्किक प्रक्रिया के भिन्न भिन्न दो रूप हैं जिनको एक दूसरे में सम्मिलित करना असम्भव है। दोनों विधियाँ स्वतंत्ररूप से उत्पन्न हुई हैं; उनको एक दूसरे में सम्मिलित कर किसी की महत्ता को घटाना या किसी की महत्ता को बढ़ाना दार्शनिक पद्धति के विरुद्ध है। निश्चय दार्शनिक पद्धति स्वतन्त्र रूप से गमन करती है और उसके दो रूप होते हैं—(१) सामान्यानुमान विधि[3] और (२) विशेषानुमान विधि[4]।

(1) Formal. (2) Material. (3) Inductive method. (4) Deductive method.

द्वितीय प्रश्न—क्या सामान्यानुमान विशेषानुमान से पूर्ववर्ती है?—के विषय में मिल और जेवन्स के, अन्य दार्शनिकों से भिन्न विचार हैं। मिल का विचार है कि विशेषानुमान सामान्यानुमान से उत्तरवर्ती है अर्थात् पहले सामान्यानुमान होता है और पश्चात् विशेषानुमान होता है। प्रथम सामान्यानुमान द्वारा हम सामान्य वाक्यों की प्रतिष्ठापना करते हैं और अनन्तर विशेषानुमान के द्वारा उनका नवीन उदाहरणों में प्रयोग करके निष्कर्ष निकालते ह। सिलाजिज्म जो विशेषानुमान का विशेष प्रकार है उसमें कम से कम एक सामान्य वाक्य अवश्य होता है। यह सामान्य वाक्य जिसका उपयोग विशेषानुमान में किया गया है वह सामान्यानुमान का ही परिणाम है। सामान्यानुमान, विशेषानुमान के लिये सामान्य वाक्य प्रदान करता है। इसलिये सामान्यानुमान पूर्ववर्ती होना चाहिये। जेवन्स महोदय के मन्तव्यानुसार विशेषानुमान सामान्यानुमान का पूर्ववर्ती है। उनका कहना है कि सामान्य वाक्य, प्राक्कल्पना के रूप में हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होता है और सामान्यानुमान की अवस्था तब उत्पन्न होती है जब वह प्राक्कल्पना समर्थित हो जाती है। एक प्राक्कल्पना का समर्थन उसी समय होता है जब हम उससे निष्कर्षण निकालते हैं और परीक्षा करके देखते हैं कि वे निष्कर्षण वास्तविक पदार्थों में ठीक उतरते हैं या नहीं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समर्थन में विशेषानुमान का अन्त प्रवेश हो जाता है। इस दृष्टिविन्दु से यह सिद्ध होता है कि विशेषानुमान जिसका समर्थन में अन्तर्भाव हो जाता है सामान्यानुमान के प्रथम आता है। इस विवाद का कारण यह है कि मिल महोदय सामान्यानुमान को सामान्यीकरण की अवस्था पर पूर्ण मान लेते हैं। जेवेन्स इसके विपरीत कहते हैं कि सामान्यीकरण का समर्थन अवश्य होना चाहिये इसके पहले कि हम सामान्यानुमान की पूर्णता पर पहुँच जायँ। सामान्यानुमान की प्रक्रिया में कई स्पष्ट क्रम हैं—जैसे, प्रत्यक्षीकरण, प्राक्कल्पना की सृष्टि, सामान्यीकरण और समर्थन। यदि सामान्यानुमान को सामान्यीकरण की अवस्था पर पूर्ण मान लिया जाय तो [illegible]

पड़ेगा कि मिल का मन्तव्य सही है। यदि यह माना जाय कि जब तक समर्थन नहीं हो जाता तब तक सामान्यीकरण सत्यता को प्राप्त नहीं होता तो स्वीकार करना पड़ेगा कि जैवेन्स का मत ठीक है। सामान्यानुमान और विशेषानुमान की आपेक्षिक पूर्वता और उत्तरता का प्रश्न वास्तव में देखा जाय एक प्रकार से निरर्थक है। जब हम जानते हैं कि दोनों विधियाँ तर्क प्रक्रिया के विशेष विशेष रूप हैं जिनमें से एक को प्रधान और अन्य को गौण मानकर तर्क कर सकते हैं, तब इस प्रकार का विवाद उठाना व्यर्थ है। यथार्थ में दोनों की ही आपेक्षिक महत्ता है। किसी एक प्रक्रिया को दूसरी के लिये मुख्य या गौण मानना तार्किक सिद्धान्त के विरुद्ध है; क्योंकि तार्किक प्रक्रिया का मूल ही अपेक्षावाद[1] में है।

कभी-कभी तार्किक लोग सामान्यानुमान और विशेषानुमान प्रक्रियाओं को विलोम प्रक्रियायें कहकर बखान करते हैं। इस दृष्टि के अनुसार सामान्यानुमान विशेष से सामान्य की ओर उद्गमन करता है और विशेषानुमान सामान्य से विशेष की ओर निगमन करता है। सामान्यानुमान में हम घटनाओं या उदाहरणों से नियम-निर्माण की ओर प्रस्थान करते हैं और विशेषानुमान में हम नियमों से घटनाओं या उदाहरणों की ओर जाते हैं। बेकन महोदय के शब्दों में सामान्यानुमान उद्गामिनी प्रक्रिया है और विशेषानुमान निर्गामिनी प्रक्रिया है। इस प्रकार की धारणाएं भ्रान्तिमूलक हैं क्योंकि इससे हमें यही ज्ञान होता है कि सामान्यानुमान और विशेषानुमान दोनों भिन्न-भिन्न प्रकार की तार्किक प्रक्रियायें हैं। यह विचार कि सामान्यानुमान या विशेषानुमान में आत्यन्तिक विरोध है अथवा गलत आधारों पर निर्भर है। सामान्यानुमान और विशेषानुमान के सम्बन्ध के विषय में निर्दोष मन्तव्य यह है :— सामान्यानुमान और विशेषानुमान दो भिन्न-भिन्न स्वतंत्र तर्क की प्रक्रियायें नहीं हैं किन्तु दोनों के प्रस्थान और गतिविधियों में ही केवल भेद है। संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि सामान्यानुमान और विशेषानुमान अपने प्रस्थान में भिन्नता रखते हैं न कि सिद्धान्तों में।

---

(1) Relativity

दोनों में प्रस्थान भेद अवश्य है। सामान्यानुमान में हम दृष्ट घटनाओं से आरम्भ करते हैं और नियमों का निर्माण करते हैं, किन्तु विशेषानुमान में नियमों को सत्य मानकर उनसे आरम्भ करते हैं और उप-नियम या विशेष निष्कर्षों की सत्यता स्थापित करते हैं। दोनों विधियाँ प्रतिगामिनी हैं। सामान्यानुमान में हम विशेष घटनाओं या उदाहरणों में सामान्य सिद्धान्त खोजते हैं और विशेषानुमान में सामान्य सिद्धान्तों से विशेष या उप-सामान्य रूप निष्कर्ष निकालते हैं। यदि मूल तर्क पद्धति के सिद्धान्त का आश्रय लिया जाय तो प्रतीत होगा कि दोनों एक हैं, क्योंकि दोनों विधियों का उद्देश्य है, सत्य की प्राप्ति, जो दोनों में एक समान है। तार्किक पद्धति का मूल विचार यह है कि विशेष सामान्य से अनुविद्ध रहते हैं। विशेष रहित सामान्य निरर्थक गिना जाता है और सामान्य-रहित विशेष भी कार्यकारी नहीं होता। वास्तव में दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। सत्य वस्तु के दोनों रूप होते हैं! और इसी प्रकार पूर्ण सत्य का ज्ञान होता है। अन्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि अनुमान करना मनुष्य का वह प्रयत्न है जिसमें समस्त,[1] व्यस्तों[2] से अनुविद्ध रहता है और व्यस्त, समस्त से अनुविद्ध रहते हैं। इस प्रकार के उद्देश्य की प्राप्ति सामान्यानुमान और विशेषानुमान दोनों से होती है। इस प्रकार के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मनुष्य का मस्तिष्क उसी ज्ञान के आधार पर चलता है जो उसके पास पहले से सग्रहीत है अर्थात् विशेषानुमान सामान्य नियमों के आधार पर निर्गमन करता है और सामान्यानुमान विशेष घटनाओं के आधार पर उद्गमन करता है। लेकिन हम किसी भी दृष्टि बिन्दु का सहारा लेकर चलें और हमारा कोई भी तत्कालीन उद्देश्य हो—दोनों अवस्थाओं में परिणाम वही होगा—अर्थात् सामान्य सिद्धान्तों के द्वारा विभिन्न घटनाओं के परस्पर सम्बन्ध की अन्तर्दृष्टि प्राप्त करना।

यह अनुभवसिद्ध वस्तु है कि तर्क विद्या के उद्देश्य की प्राप्ति के

(1) Whole (2) Parts

लिये सामान्यानुमान और विशेषानुमान एक दूसरे के पूरक हैं। वास्तविक तर्क प्रक्रिया जिसमें कुछ पेचीदगी नहीं होती है प्रायः हम दोनों प्रक्रियाओं का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ, एक डाक्टर यह देखता है कि कई बीमार, जो मलेरिया बुखार से पीड़ित थे, कुनैन के प्रयोग से अच्छे हो गये हैं और वह उसके आधार पर एक सामान्य नियम बनाता है—'सब हालतों में कुनैन मलेरिया को अच्छी करती है'—तब बाद में उसी के द्वारा एक नवीन बीमार को भी ठीक करता है। इस प्रकार इस उदाहरण से यह बिलकुल स्पष्ट है कि सामान्यानुमान और विशेषानुमान दोनों प्रक्रियायें एक दूसरे की पूरक हैं और दोनों में अन्योन्याश्रित होने का सम्बन्ध है।

यहाँ बैरन महोदय का अधोलिखित वक्तव्य स्थिति को स्पष्ट करने में अत्यन्त सहायक होगा। उनका कहना है कि सामान्यानुमान और विशेषानुमान में तर्क विषयक कोई विरोध नहीं है। दोनों प्रक्रियायें तर्क के भाग हैं। यदि भेद है तो केवल यही कि दोनों प्रक्रियायें भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं को लेकर चलती हैं। सामान्यानुमान में यथार्थता सामान्यरूप में प्रकट होती है और तर्क का उद्देश्य भी यही है कि वह विभिन्न व्यक्तियों में या अधिक उदाहरणों में सामान्यतत्त्व का आभास कराये जो उनमें पाया जाता है। विशेषानुमान में इसके विपरीत यथार्थता उन्हीं वस्तुओं के स्वरूप में प्रकट होती है और तर्क का उद्देश्य भी यही है कि वह विशेष तत्त्व को जो अधिक या कम परिमाण में व्यक्तिरूप वस्तुओं या उदाहरणों में निहित रहता है प्रकट करे। इसलिये भेद केवल क्रम का है जिसके द्वारा यथार्थता का हमें ज्ञान होता है। वास्तव में यथार्थता दोनों प्रकार से ही जानी जा सकती है। यह सामान्यानुमान और विशेषानुमान का भेद यथार्थता के पक्ष पर कोई प्रभाव नहीं डालता क्योंकि यह तार्किकों का निश्चित सिद्धान्त है कि यथार्थता (Reality) एक रूप होकर कभी प्रकट नहीं होती है। उसका ज्ञान तो दोनों प्रकार से हो सकता है। इसलिये सामान्यानुमान और विशेषानुमान में वास्तविक कोई भेद नहीं। भेद है तो केवल दृष्टि बिन्दुओं का। सामान्यानुमान और

विशेषानुमान के सम्बन्ध में वेकन, जेवन्स, फाउलर और वक्ल महोदयों ने अपने-अपने भिन्न मत प्रकार किये हैं। प्रकरण से उनका यहाँ पर्यालोचन करना उचित है।

वेकन महोदय का कहना है कि सामान्यानुमान की प्रक्रिया उत्कर्षण रूप है और विशेषानुमान की प्रक्रिया निष्कर्षण रूप है। इस वक्तव्य का अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य पहाड़ के शिखर पर चढ़ता है उसे कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं, और कितना परिश्रम करना पड़ता है, किन्तु जब वह शिखर पर पहुँच जाता है तब ऐसा प्रतीत होता है कि नीचे भाग में स्थित वस्तुएँ उसके पूर्ण आधिपत्य में हैं जिनका वह ऊपर से निरीक्षण कर रहा है। इसी प्रकार जब हम एक सामान्य नियम का निर्माण करते हैं तब हमें कुछ परिश्रम करना पड़ता है, किन्तु एक बार सामान्य वाक्य का निर्माण हो गया तो फिर तदन्तर्गत सब व्यक्तिरूप उदाहरणों पर एक दृष्टि से अधिकार-सा प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त जब हम पहाड़ के शिखर से नीचे उतरते हैं तो हमारा रुख एक प्रकार की तुलनात्मक दृष्टि का रहता है। अतः विशेषानुमान मे, सामान्य नियम का विशेष उदाहरणों में प्रयोग, एक प्रकार से तुलनात्मक दृष्टि स किया जाता है और उसमें सरलता प्रतीत होती है। यही कारण है कि सामान्यानुमान को उत्कर्षण या उद्गमन रूप कहा गया है और विशेषानुमान को निष्कर्षण या निर्गमन रूप बतलाया गया है।

जेवन्स महोदय कहते हैं कि सामान्यानुमान और विशेषानुमान विलोम प्रक्रियाएँ हैं। अर्थात् सामान्यानुमान विशेषानुमान की विलोम प्रक्रिया है और विशेषानुमान सामान्यानुमान की विलोम प्रक्रिया है। वे लिखते है कि 'सामान्यानुमान, वास्तव में, विशेषानुमान की सर्वथा विलोम प्रक्रिया है और हम इसका दूसरी प्रक्रिया अर्थात् विशेषानुमान के बिना चिन्तन नहीं कर सकते।' इस वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि उनके सिद्धान्त के अनुसार विशेषानुमान सामान्यानुमान से पूर्ववर्ती प्रक्रिया है और सामान्यानुमान इसी की केवल विलोम प्रक्रिया है। विलोम प्रक्रिया से

पूर्व हमें सीधी प्रक्रिया की कल्पना करनी पड़ती है। सीधी[1] प्रक्रिया और विलोम[1] प्रक्रिया—ये दोनों पद गणित शास्त्र से ग्रहण किये गये हैं। सीधी प्रक्रिया वह है जिसके द्वारा हम दिये हुए प्रदत्त और तर्क के नियमों के आधार पर निश्चित निष्कर्ष निकालते हैं। विलोम प्रक्रिया इसके विपरीत वह है जिसमें हमें अनिश्चित परिणाम प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ—सीधी प्रक्रिया द्वारा हम ४×४ से १६ परिणाम निकालते हैं। इसमें हमारा निष्कर्ष निश्चित है। किन्तु विलोम प्रक्रिया में यदि परिणाम १६ दिया हुआ है तो हम प्रश्न करते हैं कि १६ किसका परिणाम है। उत्तर अनिश्चित मिलता है। सम्भव है परिणाम ४×४ से प्राप्त हुआ हो। सम्भव है ८×२ से प्राप्त हुआ हो। सम्भव है २×२×२×२ से प्राप्त हुआ हो, इत्यादि।

यह पहले बतलाया गया है कि सामान्यानुमान में निष्कर्ष अनिश्चित होते हैं। तथा जब सामान्यानुमान को विलोम प्रक्रिया से समुदाय माना गया है तब हम उसका विशेषानुमान से विरोध बतलाते हैं और कहते हैं कि विशेषानुमान सीधी प्रक्रिया है जो सामान्यानुमान के विपरीत है। इसी के आधार पर हम यह भी कहते हैं कि विशेषानुमान के निष्कर्ष निश्चित होते हैं और सामान्यानुमान के निष्कर्ष अनिश्चित होते हैं। उदाहरणार्थ, 'सब मनुष्य मरणशील हैं; सब नेता मनुष्य हैं अतः सब नेता मरणशील हैं।' यहाँ सब नेता मरणशील हैं यह निष्कर्ष निश्चित है और आवश्यक रूप से प्रतिज्ञा वाक्यों से निकाला गया है। मान लो कि यह निष्कर्ष, 'सब नेता मरणशील हैं' यदि दिया हुआ है तो इससे हम यह कदापि नहीं जान सकते कि यह किन प्रतिज्ञा वाक्यों से निकाला गया है। यह निश्चित है कि विशेषानुमान में हम कारण से कार्य की ओर गमन करते हैं और सामान्यानुमान में हम कार्य से कारण की ओर जाते हैं। यदि विशेषानुमान में कारण मालूम हो तो कार्य निश्चितरूप से उत्पन्न होगा और सामान्यानुमान में यदि कार्य

1 Direct process. (2) Inverse process.

का ज्ञान है तो हम कारण के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते। इसके कारण अनेक हो सकते हैं। अतः सामान्यानुमान को विलोम प्रक्रिया कहना भ्रमपूर्ण है। यह केवल यही धारणा उत्पन्न करता है कि सामान्यानुमान मे हमें सर्वथा निश्चित निष्कर्षों की प्राप्ति होती है। लेकिन यह सर्वथा असत्य है। सामान्यानुमान का ध्येय यही है कि इसमें कार्य-कारण सम्बन्ध को खोज कर सिद्ध किया जाय और जब कार्य-कारण भाव की सिद्धि हो जाय तब इसके अन्दर प्राप्त निष्कर्ष भी अवश्य निश्चितता को प्राप्त हो जायगें। यथार्थ में जब सही कार्य-कारण भाव की खोज हो जाती है तब हम केवल कारण से कार्य का ही ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते हैं अपितु कार्य से कारण का भी निश्चित ज्ञान प्राप्त कर सकते है। अतः यह मानना पड़ेगा कि कार्य कारण-भाव का सामान्यानुमान में निश्चित होना अत्यन्त आवश्यक और प्रयोजन से भरा हुआ है।

फाउलर महोदय सामान्यानुमान को कार्य से कारण की ओर जाने वाली प्रक्रिया और विशेषानुमान को कारण से कार्य की ओर जानेवाली प्रक्रिया मानते हैं। इसका भाव यह है कि सामान्यानुमान मे कार्य दिया हुआ होता है और उसके कारण का पता लगाते हैं, किन्तु विशेषानुमान में कारण या कल्पित कारण दिया हुआ रहता है और इससे हम इसके कार्य को खोजते हैं। इस कथन के अनुसार सामान्यानुमान का बड़ा सकुचित रूप बनता है। सामान्यानुमान में हम केवल कार्य से कारण का ही अनुमान नहीं करते हैं अपितु कभी कारण से कार्य का भी अनुमान करते हैं। उदाहरण के लिये मान लो, एक वैज्ञानिक है और वह किसी जानवर के शरीर में किसी ज़हर का प्रभाव जानना चाहता है। वह विष का इन्जेक्शन देता है और परिणाम देखता है कि मृत्यु होती है। यह उदाहरण दिये हुए कारण के परिणाम का है जो सर्वथा उपयुक्त है। अतः स्पष्ट है कि फाउलर महोदय का मन्तव्य सर्वथा स्पष्ट नहीं है।

बकल (Buckle) महोदय का कहना है कि हम सामान्यानुमान में वस्तुओं से विचार का अनुमान करते हैं और विशेषानुमान में विचारों

से विचारों का या वस्तुओं का ज्ञान करते हैं। इस वक्तव्य का आशय यही है कि सामान्यानुमान में हम वस्तुओं या उदाहरणों से हम सामान्यीकरण करते हैं और विशेषानुमान में सामान्य नियमों का व्यक्तिरूप वस्तुओं में प्रयोग करके निष्कर्ष निकालते हैं। सामान्यीकरण की स्थापना में मानसिक व्यापार अधिक लगाया जाता है अपेक्षाकृत विशेषानुमान के जिसमें केवल विशेष के ज्ञान पर ही अधिक ज़ोर रहता है। इसी हेतु से सामान्यानुमान को विचार की स्थापना का हेतु बतलाया है और विशेषानुमान के विरोध में उपस्थित किया है क्योंकि उसमें केवल विशेष वस्तुओं का ही निदर्शन होता है। हालाँ कि यह वर्णन सर्वथा सत्य नहीं मानना चाहिये क्योंकि विशेष वस्तुओं के निदर्शन में भी मानसिक क्रिया का सर्वथा अभाव नहीं होता। कुछ न कुछ मानसिक प्रक्रिया उसमें रहती है।

(५) सामान्यानुमान की उपयोगिता—सामान्यानुमान की उपयोगिता अत्यन्त व्यापक है। विश्व में अब तक जितने आविष्कार और खोजें हुई हैं वे सब सामान्यानुमानमूलक हैं। विज्ञान के क्षेत्र में तो सामान्यानुमान की उपयोगिता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। कला क्षेत्र में भी सामान्यानुमान का अत्यन्त उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त सामान्यानुमान के निम्नलिखित उपयोग सर्वमान्य हैं—

(१) सामान्यानुमान विशेषानुमान के लिये सामान्य वाक्यों को प्रदान करता है। यह हम देख चुके हैं कि विशेषानुमान में हमारा तर्क सामान्य से विशेष की ओर निगमन करता है या सामान्य से उप सामान्य की ओर जाता है। विशेषानुमान में इन सामान्य वाक्यों की सत्यता को यथावत् स्वीकार कर लिया जाता है और यह सामान्यानुमान का विषय है कि वह उन सामान्य वाक्यों की सत्यता स्थापित करे। जहाँ तक स्वयंसिद्ध या स्वभावसिद्ध सिद्धान्तों का सम्बन्ध है वे स्वयम्प्रकाश हैं और उनकी सत्यता के लिये किसी प्रमाण या सिद्धि की आवश्यकता नहीं; किन्तु हम देखेंगे कि अधिक संख्या में सामान्य वाक्यों का निर्माण सामान्यानुमान द्वारा ही होता है। अतः विशेषानुमान को सामान्य वाक्यों के देने के कारण से सामान्यानुमान की अत्यन्त उपयोगिता है।

(२) सामान्यानुमान विषय-विषयक सत्यता की स्थापना करता है और विशेषानुमान रूप-विषयक। तर्क शास्त्र का उद्देश्य सत्यस्थापना है। सामान्यानुमान में विषय-विषयक और कुछ हद तक रूप-विषयक-सत्यता की स्थापना की जाती है। अत विषय-विषयक सत्यता की स्थापना के लिये सामान्यानुमान की अत्यन्त आवश्यकता है।

(३) सामान्यानुमान की सहायता से ही भविष्य में खोज हो सकती है। सामान्यानुमान द्वारा जब हम किसी नियम का निर्माण कर लेते हैं तब वह नियम हमारे भविष्य के आविष्कारों और खोजों के लिये आरम्भ बिन्दु बन जाता है। वैज्ञानिक अनुसन्धान का मुख्य आधार सामान्यानुमान है।

(४) सामान्यानुमान ही यह सिद्ध करता है कि विश्व में आन्तरिक एकता है। विश्व एक अखण्ड तत्व है। इसका प्रतिपादन सामान्यानुमान द्वारा ही हो सकता है। यद्यपि हमारी बाह्य दृष्टि में विश्व एक क्रम रहित[1] विप्लवा वस्था[2] में दृष्टिगोचर होता है किन्तु इस अस्तव्यस्ता-वस्था में क्रम-बद्धता और ऐक्यता के दर्शन कराना सामान्यानुमान का ही कार्य है। सामान्यानुमान बतलाता है कि इस नानारूप विश्व में एकता के स्थापक नियम हैं जो इस विश्व का स्वाभाविक रूप से नियन्त्रण करते रहते हैं। क्योंकि प्रकृति अनवस्थित नहीं है किन्तु व्यवस्थित[3] है। विश्व का व्यवस्थित रूप ही इस तथ्य का साक्षी है कि इसका नियन्त्रण सामान्य नियमों के द्वारा हो रहा है।

हमारे उपर्युक्त विचार से यह भ्रम हो सकता है कि विश्व की गुत्थी को खोलने के लिये केवल सामान्यानुमान ही है किन्तु वास्तविक रूप से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि विश्व तत्व को समझने के लिये विशेषा नुमान और सामान्यानुमान दोनों ही विधियाँ उपयुक्त हैं। एक के बिना दूसरी का उपयोग नहीं किया जा सकता।

---

(1) Orderless (2) In Chaotic condition (3) Orderly

(६) सामान्यानुमानीय सिलाजिज्म

सुदीर्घकाल से यह प्रश्न होता चला आ रहा है कि सामान्यानुमान को सिलाजिज्म के अन्तर्गत कर लिया जाय। सब से प्रथम हम इसकी चर्चा अरस्तू के सिद्धान्तों में देखते हैं। अरस्तू के सिद्धान्त के अनुसार सामान्य विशेषों में पाए जाते हैं किन्तु उनके विशेष एक प्रकार की उपजातियाँ हैं। उन्होंने सामान्यानुमानीय सिलाजिज्म के सिद्धान्त को अनुमत किया और उसका प्रतिपादन इस प्रकार किया है। वे लिखते हैं 'सामान्यानुमान एक प्रकार का सिलाजिज्म है जिसमें हम मुख्य पद को, मध्यम पद की व्याख्या की सहायता से, अमुख्य पद द्वारा सिद्ध करते हैं।' दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सामान्यानुमान वह प्रक्रिया है जिसमें मध्यम पद की व्याख्या से मुख्य पद को अमुख्य पद के द्वारा सिद्ध करते हैं। अरस्तू का इस प्रकार का बयान विशेष अर्थ को लिये हुए है। उपर्युक्त सामान्यानुमान के सम्बन्ध में जो मुख्य पद मध्यम पद और अमुख्य पद का उल्लेख आया है वह विशेष अर्थ को द्योतित करता है। यहाँ तीनों पदों का प्रयोग भिन्न-भिन्न वस्त्वार्थ का विस्तार लिए हुए हैं—अर्थात् मुख्य पद वह है जिसका सब से अधिक वस्त्वार्थ है अमुख्य पद वह है जिसका सब से कम वस्त्वार्थ है और मध्यम पद वह है जिसका वस्त्वार्थ अमुख्य पद से अधिक है किन्तु मुख्य पद से कम। अरस्तू का निम्नलिखित उदाहरण दर्शनीय है :—

'$स_1$ स $स_3$' 'वि' हैं।
'$स_1$ $स_2$ $स_3$' ही केवल 'म' हैं।
इसलिये सब 'म' वि हैं।

मनुष्य घोड़ा गधा इत्यादि दीर्घजीवी होते हैं।
मनुष्य, घोड़ा गधा इत्यादि पित्तरहित जीव हैं।
अतः पित्तरहित जीव दीर्घजीवी होते हैं।

इस उदाहरण में 'वि' अथवा 'दीर्घजीवी' यह मुख्यपद है क्योंकि इसका वस्त्वार्थ सबसे अधिक है। 'म' या 'पित्तरहित जीव' मध्यम

पद है क्योंकि इसका द्रव्यार्थ मुख्यपद से कम है किन्तु अमुख्य पद से अधिक है। 'उ, उ, उ' यह अमुख्यपद है क्योंकि इसका द्रव्यार्थ मुख्य पद से कम है। इतना ही नहीं इसका द्रव्यार्थ मध्यम पद से भी कम है। अभी हम देखेंगे कि मध्यम पद का भावार्थ उतना ही है जितना कि अमुख्यपद का। इस उदाहरण से इतना तो स्पष्ट है कि अरस्तू का सामान्यानुमान के बारे में क्या मत था। साङ्केतिक उदाहरण में 'वि' जो कि मुख्यपद है उसको मध्यम के सम्बन्ध में अर्थात् 'म' के सम्बन्ध में 'उ' अमुख्य द्वारा सिद्ध किया गया है। वास्तविक उदाहरण में 'दीर्घजीवी' मुख्य पद की 'पित्तरहित जीव' मध्यम पद के साथ 'उ, उ, उ, इत्यादि अमुख्य पद के द्वारा सिद्धि की गई है। यहाँ यह कहना अयुक्त न होगा कि अरस्तू ने जिस सिद्धान्त के आधार पर सामान्यानुमानीय सिलाजिज्म का निर्माण किया है वह 'सबके लिये है और किसी के लिये नहीं' सिद्धान्त के विरुद्ध है। 'सबके लिये और किसी के लिये नहीं' सिद्धान्त यही बतलाता है कि जो कुछ समस्त[1] के लिये विधि या निषेध किया जा सकता है वह तदन्तर्गत[2] व्यक्ति के लिये भी किया जा सकता है। किन्तु अरस्तू का सामान्यानुमानीय सिलाजिज्म केवल यही प्रकट करता है कि जो कुछ सब व्यक्तियों के लिये विधि या निषेध रूप से कहा जासकता है वह समस्त के लिये भी विधि या निषेध रूप से कहा जा सकता है। वास्तविक उदाहरण में मुख्य वाक्य यह प्रकट करता है कि 'दीर्घजीवी' गुण की मनुष्य, घोड़ा, गधा, आदि के विषय मे विधि हो सकती है और अमुख्य वाक्य यह प्रकट करता है कि, मनुष्य, घोड़ा, गधा इत्यादि जीव पित्तरहित है। इसलिये निष्कर्ष में हम अनुमान करते है कि जो कुछ अलग २ पित्तरहित जीवों के विषय में विधिरूप से कहा जा सकता है वही विधिरूप से पित्तरहित जीवों की जाति के बारे में भी कहा जा सकता है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि इस सामान्यानुमानीय सिलाजिज्म की सत्यता इस प्रश्न पर निर्भर है कि हमने प्रतिज्ञा वाक्यों में सामान्यगत सब अङ्गों की

---

(1) All (2) Some

परीक्षा की है या नहीं और एक भी अङ्ग की उपेक्षा नहीं की है। 'जितने पित्तरहित जीव हैं वे सब दीर्घजीवी होते हैं' इस निष्कर्ष की सत्यता इस प्रश्न पर निर्भर है कि, मनुष्य घोड़ा, गधा इत्यादि, पित्तरहित जीवों की जाति या सामान्य के अंग हैं और उन सब में दीर्घजीवीपने का गुण है या नहीं। अतः अरस्तू का सामान्यानुमानीय सिलाजिम निर्दोष सामान्यानुमान का विशिष्ट रूप है। निर्दोष सामान्यानुमान में समस्त उदाहरणों की परीक्षा करने के बाद सामान्य वाक्य का निर्माण किया जाता है इसलिये पूरा सामान्यानुमानीय सिलाजिज्म का वैज्ञानिक सामान्यानुमान के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। इसी विचार से तार्किकों में यह मतभेद उपस्थित हो गया है कि निर्दोष सामान्यानुमान सिलाजिज्म के सदृश है किन्तु वैज्ञानिक सामान्यानुमान वैसा नहीं है।

समालोचनात्मक दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होगा कि अरस्तू द्वारा स्थापित सामान्यानुमानीय सिलाजिज्म ठीक नहीं है। वह साधारण सिलाजिज्म का रूप ही नहीं है। वह सिलाजिज्म की भाँति प्रतीत अवश्य होता है और वह तीसरी आकृति का रूप है क्योंकि दोनों प्रतिज्ञा वाक्यों में मध्यम पद उद्देश्य है। तीसरी आकृति के नियमों के अनुसार निष्कर्ष विशेष होना चाहिये हम उनमें किसी प्रकार भी निष्कर्ष नहीं निकाल सकते चाहे मुख्य वाक्य और अमुख्य वाक्य दोनों भाव ही क्यों न हों। वास्तविक अवस्था में केवल 'I' निष्कर्ष निकल सकता है। किन्तु अरस्तू की सिलाजिज्म में निष्कर्ष A है। इसलिये यदि सिलाजिज्म के नियमों पर ध्यान दिया जाय और उनके अनुसार निष्कर्ष निकालें तो इस सिलाजिज्म में प्रत्यक्ष रूप से अमुख्य-अमुख्य पद का दोष प्रतीत होगा।

हैमिल्टन के अनुसार निष्कर्ष सही प्रतीत होता है क्योंकि अमुख्य वाक्य में विधेय (जिसे हम साधारण अर्थ में अमुख्य पद कहते हैं) सब पित्तरहित जीव—सम्पूर्ण में ग्रहण किया गया है इसलिये निष्कर्ष में इसको सम्पूर्ण में ग्रहण करने पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। वास्तव में अरस्तू के सिलाजिज्म में अमुख्य वाक्य साधारण भाव वाक्य नहीं है क्योंकि साधारण भाव वाक्य केवल उद्देश्य को सम्पूर्ण में ग्रहण

करता है, विधेय को नहीं। यहाँ पर 'आ' रूप अमुख्य वाक्य हेमिल्टन के विधेय-परिमाण के सिद्धान्त[1] के अनुसार 'यू' वाक्य है जिसके अन्दर उद्देश्य और विधेय दोनों द्रव्यार्थ में ग्रहण किये गये हैं। इस पर स्टॉक (Stock) महोदय ने भी यही मन्तव्य प्रकट किया है—यद्यपि अरस्तू के इस तर्क मे सिलाजिज्म के नियमों का भग होता है तथापि यह पूर्णरूप से निर्दोष है। इसका कारण यह है कि सिलाजिज्म के नियम विधेय-परिमाण सिद्धान्त के साथ मेल नहीं रखते हैं जैसा कि दूसरे वाक्य से प्रतीत होता है। अमुख्य वाक्य में उद्देश्य और विधेय दोनों द्रव्यार्थ में ग्रहण किये गये हैं—उनका द्रव्यार्थ समान है। इसलिये अरस्तू के सिलाजिज्म में अमुख्य पद, 'मनुष्य, घोड़ा, गधा इत्यादि' का वही द्रव्यार्थ है जैसा कि मध्यमपद 'पित्तरहित जीवों' का है। उपर्युक्त अरस्तू का विचार सर्वथा मिथ्या प्रतीत नहीं होता।

तथापि हमें यह नहीं समझना चाहिये कि अरस्तू, सामान्यानुमानीय सिलाजिज्म को एक प्रकार की ऐसी सिद्धि या सबूत समझता था जो विशेषानुमान से सर्वथा भिन्न है। अरस्तू का विचार यह था कि सारी जटिल सिद्धि[2] विशेषानुमान रूप होती है और सामान्यानुमानीय सिलाजिज्म एक विशेषानुमान के तर्क का बिठाने का प्रकार है जिससे कि हम मनोवैज्ञानिक विधि द्वारा सामान्य नियमों की सत्यता का ज्ञान कर सकें जो कि विशेषानुमान में वास्तविक मुख्य वाक्य होते हैं। यह, उदाहरण को सामने लाकर, सामान्य नियमों के प्रतिपादन करने का अच्छा तरीका है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अरस्तू का सामान्यानुमानीय सिलाजिज्म, निर्दोष समान्यानुमान या पूर्ण-गणना-जन्य सामान्यानुमान का ही रूप है किन्तु जो सामान्यानुमानीय सिलाजिज्म ऑलड्रिच और ह्वॉटले ने दी है वह अधिक महत्वशाली प्रतीत होती है और उनका उद्देश्य युक्तसामान्यानुमान को अन्तर्भूत करने का मालूम होता है। जैसे कि-

---

(1) The doctrine of the quantification of the predicate
(2) Complex proof

चुम्बक जिनको मैंने देखा है और चुम्बक जिनको मैंने नहीं देखा है लोहे को खींच लेते हैं।

ये चुम्बक सब चुम्बक हैं।

सब चुम्बक लोहे को खींच लेते हैं।

यहाँ यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि उपर्युक्त सामान्यानुमानीय सिलाजिस्म पूर्ण सामान्यानुमान की प्रकट करता है क्योंकि इसके अन्दर हम कुछ चुम्बकों को देखकर ही सामान्य वाक्य की स्थापना करते हैं। इसमें निष्कर्ष केवल इन उदाहरणों का सारांश (Summary) मात्र नहीं है किन्तु सत्य साधारण वाक्य है। यदि हम मुख्य वाक्य की परीक्षा करें तो हमें प्रतीत होगा कि हमने उसको पहले ही अवधारण कर लिया है जिसको हम सिद्ध करना चाहते हैं। हम इस बात को मान लेते हैं कि केवल यही दुई चुम्बकें नहीं जिनको हमने देखा है अपितु अन्य चुम्बकें भी जिनको हमने नहीं देखा है लोहे को खींच लेते हैं। हमें इस प्रकार की धारणा करने का क्या अधिकार है? हम कैसे जान सकते हैं कि अन्य चुम्बक भी इसी प्रकार व्यवहार करेंगे जैसे कि यह चुम्बक कर रहे हैं। वास्तव में सामान्यानुमान का सबसे बड़ा प्रश्न यही है और विशेषानुमान इसका कोई उत्तर नहीं दे सकता। जैन महोदय का भी यही विचार है कि यहाँ हम जिस बात को सिद्ध करना चाहते हैं उसको पहले से ही सत्य मान लेते हैं और सामान्यानुमानीय कुदान मारने लगते हैं। कोई रूपवादी तार्किक इस प्रकार के वाक्यों का निर्माण नहीं कर सकता। यथार्थ में यह प्रक्रिया सिलाजिस्म या रूपविषयक तर्क के परे जाकर सत्य के रूप को स्थापित करती है। इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सामान्यानुमान को कदापि विशेषानुमान के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

(७) मिल का सामान्यानुमानीय सिलाजिस्म

मिल महोदय के सिद्धान्त के अनुसार सामान्यानुमान वह प्रक्रिया है जिसमें हम ज्ञात से अज्ञात की ओर अग्रगमन करते हैं और इसका मुख्य अंग है सामान्यानुमानीय कुदान। यह सामान्यानुमानीय कुदान

ही है जिसके आधार पर हम नवीन सग्रहात्मक तत्वों की स्थापना करने में सफल होते हैं। इस कुदान की सिद्धि प्रकृति की एकरूपता में निहित है। कार्यकारणभाव भी इसमें बड़ा कार्य करता है। इस तथ्य में हमारा पूर्ण विश्वास होता है कि "समान अवस्थाओं में प्रकृति का व्यवहार एक रूप ही होता है"। इस तथ्यका स्वय मिल ने समर्थन किया है कि **प्रत्येक सामान्यानुमान के रूप को एक मुख्य वाक्य देकर सिलाजिज्म के रूप में प्रकट किया जा सकता है और** यथार्थ मे ऐसा करने पर हम देखेंगे कि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त सब सामान्यानुमानों के अन्तिम मुख्य वाक्य के रूप में कार्य करेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि मिल महोदय के मतानुसार हम प्रत्येक सामान्यानुमान को मुख्य वाक्य देकर सिलाजिज़्म के रूप में परिवर्तित कर सकते है जो प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल बैठता है। यदि हम सामान्यानुमान को सिलाजिज़्म की तर्कमाला में डाल दें तो अन्त में देखेंगे कि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त आखिरी सिलाजिज्म का मुख्य वाक्य बन जायगा। जैसे,

जो कुछ गाधी, तिलक, जिन्ना आदि के बारे में सत्य है वह सब मनुष्यों के बारे में सत्य है।

गाधी, तिलक, जिन्ना आदि मरणशील हैं।

सब मनुष्य मरण शील हैं।

यहाँ विचारपूर्वक देखने से प्रतीत होगा कि मुख्य वाक्य इसमें प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त का एक विशेष प्रयोग है—अर्थात् जो कुछ गाधी, तिलक जिन्ना आदि के बारे में सत्य है वह सब मनुष्यों के बारे में सत्य है क्योंकि प्रकृति सर्वत्र एक रूप होती है। इस प्रकार हम सारे सामान्यानुमानीय तर्क के क्रम को सिलाजिज़्म की तर्कमाला में डाल दें तो अन्त में हमें एक सिलाजिज़्म मिलेगा, जिसका मुख्य वाक्य प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त होगा और हमारे तर्क का रूप निम्नलिखित होगा —

"उसी प्रकार की अवस्थाओं के अन्दर उसी प्रकार की घटनाएं सर्वदा

पैदा होगी। कुछ अवस्थाओं के अन्दर क, ख, ग, घ उत्पन्न होते हैं कुछ अवस्थाओं के अन्दर क, ख, ग, ङ उत्पन्न होंगे। इस आधार पर मिल महोदय ने अपना सिद्धान्त निश्चित किया कि सब सामान्यानुमानीय सामान्यीकरणों का अन्तिम मुख्य वाक्य प्रकृति की एकरूपता[1] का सिद्धान्त होता है। यहाँ यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि मिल महोदय का यह विचार दूसरे तार्किकों से मेल नहीं खाता है जिनका विचार यह है कि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त स्वयं अनुभवजन्य सामान्यीकरण है।

(८) सामान्यानुमान का संक्षिप्त इतिहास

सामान्यानुमान का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है। यह हम देख चुके हैं कि सामान्यानुमान विचार प्रक्रिया का एक प्रकार का विश्लेषण है जिसके द्वारा हम निश्चय पूर्वक ज्ञान प्राप्त करते हैं। अर्थात् सामान्यानुमान में विशेष उदाहरणों को देख कर प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त तथा कारणता के सिद्धान्त के आधार पर सामान्य वाक्यों का निर्माण करते हैं। अरस्तू की सामान्यानुमानीय क्रियाविधि के विवेचन में हम यह देख चुके हैं कि विशेषानुमान में कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जो अरस्तू के समय से ही व्यक्त या अव्यक्त रूप में स्वीकार किये गये हैं। जहाँ तक सामान्यानुमान का सम्बन्ध है हम देखते हैं कि इसके पदार्पण अरस्तू के समय में ही विद्यमान थे और इसके स्वरूप से मध्ययुग के स्कोलैस्टिक दार्शनिक भी अपरिचित नहीं थे। किन्तु इसका विवेचन अरस्तू के समय में स्पष्ट नहीं था। अरस्तू ने इसको विशेषानुमान में ही अन्तर्गत कर लिया था। स्कूलमैनों ने भी इसका निश्चित रूप स्थापित नहीं किया था। उनका ज्ञान सामान्यानुमान के विषय में अस्पष्ट प्रारम्भिक था। जो आज कल सामान्यानुमान का वैज्ञानिक रूप है यह बिलकुल आधुनिक है। इसकी किस प्रकार उत्पत्ति हुई इसका भी हम यहाँ विवेचन करेंगे।

---

(1) The Principle of Uniformity o Natura.

अरस्तू—(३८४-३२२ ई० पू०)

इसका ज्ञान हमें पहले मिल चुका है कि अरस्तू (Aristotle) ने सामान्यानुमान को विशेषानुमानीय सिलाजिज्म में परिवर्तित कर दिया था और वह इस को कोई स्वतंत्र विधि नहीं मानता था। जो आजकल निर्दोष सामान्यानुमान का स्वरूप है उसके समय में भी करीब-करीब यही सामान्यानुमान का रूप था जिसको वह सिलाजिज्म की तीसरी आकृति में प्रकट किया करता था। लेकिन भाषा में एक शब्द है, ईपेगोग (Epagoge) जो अरस्तू के समय से चला आ रहा है। यह वह प्रक्रिया है जिसमें हम सब विशेष उदाहरणों की परीक्षा करके उनसे सामान्य वाक्यों के निर्माण रूपमें उद्‌गमन करते हैं। उदाहरणार्थ हम देखते हैं कि उष्ण जल, जीवों का घात करता है और जब बहुत से उदाहरणों में यही देखने में आता है कि उष्ण जल जीवों का घात करता है तब हम अनुभव के आधार पर सामान्य वाक्य बना देते हैं कि 'उष्ण जल जीवों का घात करता है'। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि कुछ उदाहरणों को देख कर जो सत्यता हमारे द्वारा कुछ में पाई जाती है वही सत्यता उसकी पूर्ण जाति में भी पाई जायगी। इस प्रक्रिया को अरस्तू ने सिलाजिज़्म के द्वारा प्रकट करना चाहा था जिसमें हम मुख्य पद को मध्यम पद के साथ अमुख्य पद द्वारा सिद्ध करते हैं। हम इसकी चर्चा पहले कर चुके हैं कि अरस्तू ने जिस सामान्यानुमानीय सिलाजिज़्म की स्थापना की है वह निर्दोष सामान्यानुमान का रूप है और वह वास्तव में सामान्यानुमान ही है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि अरस्तू को सामान्यानुमान का, जैसा कि उसका अर्थ आजकल समझा जाता है, ज्ञान नहीं था। लेकिन यह धारणा भ्रमपूर्ण है। हाँ, यह अवश्य निश्चित है कि अरस्तू ने सामान्यानुमान को सब उदाहरणों की परीक्षा कर लेने पर एक सामान्य वाक्य के बनाने की विधि बतलाया था और उसने यह नाम किसी अन्य प्रकार के सामान्य वाक्य के निर्माण करने के लिये प्रयोग नहीं किया था। इसी हेतु से आधुनिक तार्किकों ने उसकी यह समालोचना की है कि वह

केवल निर्दोष सामान्यानुमान को ही मानता था ।—उसके सिद्धान्त में वैज्ञानिक सामान्यानुमान की चर्चा मात्र तक नहीं है । आजकल वैज्ञानिक अनुमान का स्वरूप यह माना जाता है कि यह, 'वह प्रक्रिया है जिसमें हम प्रकृति की एकरूपता और कारणता के आधार पर कुछ उदाहरणों को देख कर सामान्य वाक्य बनाते हैं' । इसमें कोई सन्देह नहीं कि उक्त प्रकार के सामान्यानुमान का यह अनुभवरूप आधार की खोज हो सकता है किन्तु इसके साथ साथ यह भी सत्य है कि जहाँ तक सामान्यवाक्य के निर्माण का सम्बन्ध है अरस्तू उससे अछूता नहीं था । कुछ उदाहरणों की परीक्षा के आधार पर सामान्य वाक्यों को निर्माण करने की विधि से वह अच्छी तरह परिचित था । इस सूत्र का लक्ष मुझे यह प्रतीत होता है कि अरस्तू ने इस प्रकार की प्रक्रिया को सामान्यानुमान न कहकर उसको सामान्यानुमानीय सिफारिशन के नाम से पुकारा था और जो यथार्थ नाम उसने इसके लिये प्रयोग किया था वह था 'प्रयोग' (Experimentum) अथवा 'अनुभव से सिद्धि' (Proof from Experience) । इसके अतिरिक्त अरस्तू ने सादृश्य-अनुमान अर्थात् उपमाजन्य सामान्यानुमान को भी प्रमाण माना था । उदाहरणार्थ, उसका कहना था कि राजनीतिज्ञों का चुनाव साधारण रीति से नहीं होना चाहिये क्योंकि पहलवानों का चुनाव इस प्रकार नहीं हुआ करता । अरस्तू के सिद्धान्त के अनुसार उपमाजन्य-सामान्यानुमान और सामान्यानुमान दोनों का अर्थ विचारों के विवेकपूर्ण सम्बन्ध पर आश्रित है ।

स्कूलमेन—

मध्ययुग के स्कूलमेनों (Schoolmen) ने सामान्यानुमान का असली रूप गणना के ऊपर निर्भर बनाया और इसी ढंग से निर्दोष और सदोष सामान्यानुमान में भेद किया गया । जिसमें सब उदाहरण गिन लिये जाते हैं वह निर्दोष सामान्यानुमान कहलाता है और जिसमें कुछ उदाहरणों की परीक्षा करके सामान्यीकरण किया जाता है वह सदोष सामान्यानुमान गिना जाता है । इस प्रकार का भेद अब भी स्वीकार किया जाता है ।

हेमिल्टन महोदय के अनुसार, जो उनका यह रूप विषयक नियम है कि **जो किसी वस्तु के या विचार के प्रत्येक भाग से सम्बन्ध रखता है या नहीं रखता है, वह समग्र वस्तु या विचार से सम्बन्ध रखता है या नहीं रखता है,'** समस्त सामान्यानुमान की प्रक्रिया का मूलाधार है। यह नियम या सिद्धान्त **'सब के लिये या किसी के लिये नहीं'** सिद्धान्त के प्रतिकूल है। अत. अरस्तू का कहना ठीक प्रतीत होता है कि यदि निर्दोष सामान्यानुमान सत्य है तो उसके अमुख्य वाक्य का सामान्य परिवर्तन हो जाना चाहिये। यथार्थ में प्रतीत यह होता है कि स्कूलमेन यह नहीं जान सके थे कि तर्कशास्त्र विचार की प्रक्रिया का विश्लेषण है जिसके द्वारा सत्य ज्ञान का सगठन किया जाता है। फिर भी यदि उनके लेखों का अध्ययन किया जाय तो प्रतीत होगा कि वे सामान्यानुमान के स्वरूप से सर्वथा अनभिज्ञ नहीं थे। अरस्तू के ही विचारो को लेकर वे सामान्यानुमान को 'अनुभवजन्य सिद्धि'[1] मानते थे।

वेकन—(१५६१-१६६२)

आधुनिक समय के तार्किकों का यह निश्चित मत है कि वेकन (Bacon) सामान्यानुमानीय तर्क का पिता या जन्मदाता है। वह स्कूलमेनों की तर्क विधि को बड़ी कड़ी समालोचना से देखता है और कहीं कहीं बहुत बड़े शब्दों में उनके विचारों की असामञ्जस्यता दिखलाता है। उसका कहना है कि स्कूलमेनों ने सामान्यानुमान को गणनाजन्य-सामान्यानुमान के अतिरिक्त कुछ नहीं माना। वेकन ने उनके इस दोष को दूर करने के लिये एक नवीन सामान्यानुमानीय विधि की योजना की और इसका प्रतिपादन उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक नोवम ऑरगेनम (Novum Organum) अर्थात् 'नवीन सिद्धान्त' में प्रतिपादन किया है और यह अरस्तू के सिद्धान्त से अत्यन्त विपरीत है। वेकन के अनुसार समग्र ज्ञान-प्राप्ति का उद्देश्य प्रकृति का विश्लेषण करना है। वेकन कहता है 'कि व्यक्ति रूप उदाहरणों की सत्ता से हमें

(1) Proof from Experience.

सर्वोच्च और अन्तिम सामान्य वाक्यों का निर्माण करना चाहिये अर्थात् हमें व्यक्तिरूप उदाहरणों से मध्यम स्वयंसिद्धों तक और फिर उनसे भी अन्तिम स्वयंसिद्धों की ओर उद्गमन करना चाहिये। उनका यह भी कहना है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने पुरावहों (*Idols*) से निर्मुक्त रहना चाहिये यदि वास्तव में वह वैज्ञानिक विधि से खोज करना चाहता है। बेकन की मौलिक विधियाँ दो हैं—(१) विश्लेषण और (२) पृथक् करण। उसके अनुसार वस्तुओं के मौलिक रूपों को देश-सम्बन्ध[1] या काल-सम्बन्ध[2] में खोजना चाहिये। सामान्यानुमान का उद्देश्य कारण सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करना है अर्थात् उनके रूपों का ज्ञान प्राप्त करना है। इसलिये बेकन ने साधारण गणना के आधार पर सामान्यानुमान के निर्माण करने की सविस्तृत तर्क-प्रक्रिया या रूपों का कार्य बतलाया है क्योंकि इसका खंडन किसी भी आत्यन्तिक विरोधी अनुभव को लेकर किया जा सकता है। बेकन ने वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये १ आवश्य बतलाए हैं और वे निम्नलिखित हैं —

(१) उदाहरणों का एकत्रीकरण (Collection of instances) —स्वाभाविक पदार्थों का परीक्षण कर अनुभव करना चाहिये और उनका परिणाम लिखकर रखना चाहिये।

(२) तीन तालिकाओं द्वारा चुनाव (Sorting according to three tables) — ये निम्न लिखित हैं :—

(क) विध्यात्मक तालिका-यह है जिसमें उन उदाहरणों का संकलन किया जाता है जिनमें घटनायें उत्पन्न होती हैं।

(ख) निषेधात्मक तालिका-यह है जिसमें ऐसे उदाहरणों का एकत्रीकरण किया जाता है जिनमें घटनाएँ नहीं उत्पन्न होती हैं।

(ग) मात्रा तालिका-यह है जिसमें उन उदाहरणों का समूह रहता है जिनमें घटनायें भिन्न भिन्न मात्राओं में पाई जाती हैं।

इन तीन तालिकाओं का हमने यहाँ इसलिये उल्लेख किया है क्योंकि

---

(1) Space Relation. (2) Time Relation.

भविष्य में यही तीन तालिकाएँ मिल की तीन विधियों की (१) अन्वय विधि (२) व्यतिरेक विधि और (३) सहगामि-परिवर्तन-विधि की जन्म दात्री सिद्ध हुई हैं; यद्यपि यहा हमें यह विचार रखने का अधिकार नहीं है कि बेकन ने इस प्रकार की विधियों की सत्यता की पहले कल्पना की हो।

(३) प्रथक्करण—(Rejection or exclusion) सब उदाहरणों के इकट्ठे करने के पश्चात् और तीनों तालिकाओं के अन्दर उदाहरणों को चुनने के बाद सामान्यानुमान में प्रथक्करण की प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। यह बेकन महोदय की उदाहरणों को परिवर्तितकर प्रथक्करण की प्रक्रिया है।

इनके अतिरिक्त उसने इस बात पर भी जोर दिया कि जो उदाहरण अत्यधिक उपयोगी है (जिनको वह अधिकारी उदाहरण –Prerogative instance– कहते थे) उनका विशेषरूप से अ ययन करना चाहिये। वे मानते थे कि सावधानी पूर्वक प्रत्यक्षीकरण से और अवस्थाओं के परिवर्तन से नियम और रूपों का निर्माण हो सकता है।

इससे स्पष्ट है कि बेकन महोदय के अनुसार विश्लेषण और अवस्थाओ के परिवर्तन के साथ-साथ पृथक्करण, ये दो ही सामान्यानुमान के उत्तम साधन हैं। साधारणतया ये साधन ठीक हैं किन्तु जहाँ प्रकृति के जटिल नियमों का निर्धारण किया जाता है, वहा ये साधन कार्य नहीं कर सकते। बेकन ने सर्वदा यही सलाह दी कि हमें उदाहरणों का सकलन करना चाहिये और फिर अन्वय[1] और व्यतिरेक[2] की विधि के अनुसार उन्हें ठीक करके अधिक से अधिक सामान्य वाक्यों का निर्माण करना चाहिये। प्रकृति की पूर्व-प्रतीक्षा[3] के प्रकार को उसने सर्वथा निंद्य बतलाया जिसमें कल्पनाओं की सृष्टि के आधार पर यह सोचा जाता है कि प्रकृति के नियम किस प्रकार से सम्भवनीय हैं और उदाहरणों की क्रमबद्धयोजना

---

(1) Agreement (2) Difference (3) Anticipation

से ही सब प्रकार की विधियों का कार्य सम्पन्न हो जायगा। इस विचार के आधार पर ही उसने अपनी विधि की सर्वोत्तम प्रशंसा की और कहा—कि यह विज्ञान के क्षेत्र में वही काम करेगी जो मानिक के कम्पास (Compass) ने नौ-विज्ञान[1] के क्षेत्र में किया है। इससे मनुष्य की बुद्धि का स्तर ऊँचा उठेगा और ज्ञान की प्राप्ति केवल यांत्रिक प्रक्रिया रह जायगी। बेकन ने एक स्थान पर स्वयं कहा है कि हमारी विधि ऐसी है कि जिसमें होशियारी या चालाकी की शक्ति के लिए विशेष स्थान नहीं है अपितु यह विधि सब प्रकार की होशियारियों को और बुद्धियों को एक ही स्तर पर लानेवाली है। बेकन कहता है कि ज्ञान के विकास में मस्तिष्क का कोई कार्य नहीं है। किन्तु विचारने से प्रतीत होगा कि बेकन का यह कथन निस्सार था क्योंकि हम देखते हैं कि सामान्यानुमान के प्रत्येक क्रम में मस्तिष्क कार्य करता है। उदाहरणों का एकत्रीकरण और उनका निरीक्षण केवल आकस्मिक रूप से या अटकल-पच्चू से नहीं किया जाता किन्तु इसमें बुद्धि पूर्वक चुनाव होता है। मस्तिष्क चुनाव करता है कि कौन से उदाहरणों का पर्यवेक्षण करना है और किनकी इच्छा करना है जिससे हमारा कार्य सिद्ध हो जाय। इसके अतिरिक्त बेकन को यह पता नहीं था कि कल्पना की शक्ति करना एक बहुत उत्तम काम है और यह कोर कल्पना करने की शक्ति के ही नहीं सकता। अतः मानना पड़ेगा कि बेकन की विधि सामान्यानुमान के लिये अनुपयुक्त है यद्यपि बेकन के सिद्धान्त के अनुसार वैज्ञानिक सिद्धान्तों की चर्चा में सिलाजिज्म का प्रयोग निषिद्ध है तथापि बेकन का पृथक् करण का सिद्धान्त पूर्णरूप से सिलाजिज्म से युक्त है। बेकन की सामान्यानुमानीय विधि को हम सरलता पूर्वक वैकल्पिक-निरपेक्ष सिलाजिज्म के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं।

अथवा या तो क, या ख या ग, या घ है।

यह न तो क है न ख है और न ग है।

यह घ है।

---

(1) Navigation.

यहाँ यह माना गया है कि क, ख, ग, घ के विकल्प पूर्णरूप से निभ्रान्त[1] हैं और पूर्ण हैं किन्तु विचार करने पर प्रतीत होगा कि उपर्युक्त मानी हुई बात जिसे हमें सिद्ध करना है उसकी सिद्धि अत्यन्त कठिन है। वास्तव में जब तक हम इसको सिद्ध नहीं कर लेते तब तक हमारा अनुमान सदोष ही रहेगा।

न्यूटन और हरशेल—

वैज्ञानिकों ने बेकन के सिद्धान्तों को वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये अधिक उपयोगी न पाकर नवीन विधियों की खोज की। इस अनुसधान की प्रगति में न्यूटन और हरशेल महोदयों के नाम उल्लेखनीय हैं—

न्यूटन (Newton)—(१६४२–१७२७) वैज्ञानिक क्षेत्र का चमकता हुआ सूर्य है। वह गणितज्ञ और भौतिक-विज्ञान वेत्ता था। उसने तर्कशास्त्र पर कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। उसके ग्रन्थों में हमें वैज्ञानिक-विधि की चर्चा मिल जायगी। यह वैज्ञानिक-विधि तर्कशास्त्र में भी अत्यन्त उपयोगी है। उसके अनुसार वैज्ञानिक विधि के ३ क्रम हैं (१) विश्लेषण, (२) नियमनिर्माण और (३) सश्लेषण। कल्पना की सृष्टि से न्यूटन का अभिप्राय यही था कि यह एक प्रकार की धारणा है जो अपर्याप्त साधनों पर आधारित है। वह इस प्रकार की कल्पनाओं की सृष्टि करने के विरुद्ध था। इसके लिये वह कहा करता था कि मैं कल्पनाओं की सृष्टि नहीं किया करता (Hypothesis non fingo)

हरशेल (Herschel)—(१७६४–१८६२) महोदय ने न्यूटन के बाद दार्शनिक विधि के विषय में अधिक अनुसधान किया और उसने इसके लिये तीन के स्थान पर नौ क्रम बतलाए हैं। मिल महोदय ने इन्हीं को लेकर कई प्रायोगिक विधियों का निर्माण किया है जिनकी चर्चा आगे की जायगी।

मिल (Mill)—(१८०६–१८७३) अनुभववादी (Empiricist) था। अत उसने इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष और[2] सवेदन को ही समग्र ज्ञान का आधार माना। अनुभववादी यह बतला ही नहीं सकते कि ज्ञान किस

(1) Exhaustive. (2) Feeling

प्रभाव और क्यों विषय[1]-ग्राही होता है। मिल सामान्यानुमान का लक्षण करता है कि 'यह वह प्रक्रिया है जिसमें हम ज्ञात से अज्ञात की ओर जाते हैं या सद से असद की ओर जाते हैं'। स्पष्ट भाषा में उसका लक्षण यह है कि 'सामान्यानुमान मस्तिष्क की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम यह अनुमान करते हैं कि जो कुछ एक उदाहरण के विषय में सत्य है वह अन्य उदाहरणों के विषय में भी सत्य होगा जिनकी आपस में समानता है। मिल का सामान्यानुमान स्कूलमेनों के निर्दोष सामान्यानुमान की भाँति नहीं है। यह मिल का ही लक्षण है जिससे हम अनुभव से ऊपर उठकर किसी वस्तु के विषय में चिन्तन कर सकते हैं। यह हम पहले जान चुके हैं कि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त, मिल के अनुसार समग्र सामान्यानुमान का अन्तिम प्रतिज्ञा-वाक्य है। उनके अनुसार एक वस्तु का भी निरीक्षण कर हम सामान्यानुमान की स्थापना कर सकते हैं। मिल प्रकृति की एकरूपता को ही सामान्यानुमान का उदाहरण मानता है जो कुछ विरोधी सा मत प्रतीत होता है। यदि कारणता का सिद्धान्त सत्यापन है तो सामान्यानुमान सर्वव्यापक और आवश्यक वाक्यों की प्रस्थापना नहीं कर सकता। इसीलिये ही सिगवार्ट (Sigwart) ने यह निरूपण किया है कि 'मिल जो कुछ एक हाथ से प्रदान करता है वह दूसरे हाथ से वापस ले लेता है'। इससे उसके अनुभववाद की निरर्थकता प्रतीत होती है। मिल ने इस निर्बलता को अनुभव करते हुए प्रायोगिक विधियों का आविष्कार किया है जिनकी यथा स्थान चर्चा की जायगी।

ह्वेवेल (Whewell)—(१७९४–१८६६) का मत मिल के मत से भिन्न है। उसका कारण यह है कि ह्वेवेल सामान्यानुमान को अनुसंधान का विज्ञान मानता था और मिल महोदय का कहना था कि यह प्रमाण विज्ञान या सिद्धि-विज्ञान है। इसलिये ही ह्वेवेल ने सामान्यानुमान को अन्वेषण कहा और मिलने इसका प्रमाण लक्षण किया। ह्वेवेल रचनात्मक

(1) Object.

विचार पर अधिक जोर देता है। योग्य विचार द्वारा ही हम घटनाओं का सकलन कर सकते हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक सामान्यानुमान के उदाहरण में विचार, उदाहरणों के ऊपर अपनी टाग रखता है। इसी कारण से सामान्यानुमान का रूप घटना-सकलन के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता। ग्रीन महोदय भी इसी मत से सहमत हैं। इस कथन से यह स्पष्ट है कि ह्वेवेल और न्यूटन के विचारों में बहुत कम अन्तर है।

जेवन्स—

जेवन्स (Jevons) भी अनुभववादी हैं। उनके अनुभव के अनुसार सामान्यानुमान, गणना पर निर्भर रहता है। उनके सब सिद्धान्त, गणना के सिद्धान्त पर अवलम्बित हैं। उन्होंने ही सम्भावना का सिद्धान्त गणित-के सिद्धान्तों से निकाला और इस हेतु से ही उन्होंने प्रकृति की एक-रूपता के आधार पर निश्चित सामान्यानुमान को अयुक्त ठहराया। उनके सिद्धान्त में सामान्यानुमान की पूर्ण प्रक्रिया विशेषानुमान की प्रतिगामी प्रक्रिया है। उनका विचार है कि प्राक्कल्पना का विशेषा-नुमानीय समर्थन सामान्यानुमान का आवश्यक प्रश्न है। इस अर्थ में जेवन्स और ह्वेवेल का एकमत है। जेवन्स के अनुसार सामान्यानुमान के निम्नलिखित क्रम है —

(१) कल्पना की दृष्टि।
(२) कल्पना से निष्कर्षण निकालना।
(३) समर्थन।

इन तीनों के धारण करने से ही सामान्यानुमान का रूप बन सकता है। अत गणना के आधार पर निश्चित सामान्यानुमान का रूप ही सत्य रूप है। विशेष के लिये वेल्टन के विचार पढने चाहिये।

अभ्यास प्रश्न

(१) सामान्यानुमानीय विधि के क्रमों का उदाहरण पूर्वक विवेचन करो।

(२) 'प्रथक् करण' से आपका क्या अभिप्राय है? यह प्रक्रिया प्रत्यक्षी करण में क्यों आवश्यक मानी गई है? उपपत्ति सहित इस विषय पर प्रकाश डालो।

(३) 'प्रकल्पनाओं के परिवर्तन' से आपका क्या मतलब है ? सामान्यानुमान में इसकी उपयोगिता दिखलाइये।

(४) सामान्यानुमानीय विधि में 'प्राक्कल्पना' का क्या स्थान है ? इस पर पूरा विवेचन करो।

(५) समर्थन का लक्षण लिखकर उसके भेद बतलाओ। इसको सबसे उत्तम क्रम क्यों माना गया है ?

(६) भिन्न भिन्न कर्मों की आपेक्षिक महत्ता पर प्रकाश डालो तथा मिल और जेवेन्स महोदयों के अभिप्राय प्रकट करो।

(७) प्रत्यक्षीकरण का लक्षण लिखकर सामान्यानुमान में उसकी उपयोगिता सिद्ध करो।

(८) सामान्यानुमान और विशेषानुमान में परस्पर क्या सम्बन्ध है ? इनमें से कौन पूर्ववर्ती और कौन उत्तरवर्ती है ?

(९) अरस्तू विशेषानुमान को क्यों मौलिक समझता है ? आप उसके इस मन्तव्य पर समालोचनात्मक विचार प्रकट करें।

(१०) बेकन महोदय के सामान्यानुमान को ऊर्ध्वगामी और विशेषानुमान को निम्नगामी वर्णन करने से आपका क्या अभिप्राय है ? स्पष्ट उत्तर दो।

(११) 'सामान्यानुमान और विशेषानुमान विलोम प्रक्रियायें हैं' इससे जेवेन्स महोदय का क्या अभिप्राय है ? स्पष्ट विवेचन करो।

(१२) सामान्यानुमान की आकार-सम्बन्धी और विषय-सम्बन्धी अवस्थाओं का विशद वर्णन करो।

(१३) अरस्तू के सामान्यानुमानीय सिद्धान्त से आपका क्या अभिप्राय है ? आप इस विषय पर अपने समालोचनात्मक विचार प्रकट कीजिये।

(१४) सामान्यानुमान का संक्षिप्त इतिहास बतलाकर यह सिद्ध करो कि इसका पुष्कल रूप आधुनिक है।

(१५) 'अरस्तू का सामान्यानुमानीय सिद्धान्त विशेषानुमान रूप ही है' इस वाक्य की व्याख्या करो।

अध्याय ३

सामान्यानुमान के मूल हेतु (१)

विशेषानुमान और सामान्यानुमान का भेद बतलाते हुए हमने यह बतलाया था कि विशेषानुमान में केवल रूप विषयक तथ्य की प्रतिष्ठापना की जाती है। यदि हमारा तर्क सिलाजिज्म के नियमों के अनुसार है तो वह ठीक है। विशेषानुमान में विषय-विषयक तथ्य पर हम ध्यान नहीं देते। किन्तु इसके विपरीत सामान्यानुमान में हम केवल रूप-विषयक तथ्य पर ही विचार नहीं करते अपितु विषय-विषयक तथ्य का भी पूर्ण विवेचन करते है। सर्व प्रथम हमारा तर्क कुछ नियमों के अनुसार होना चाहिये पश्चात् हम यह भी देखते है कि हमारा तर्क वस्तु की यथार्थ स्थिति से सामञ्जस्य[1] रखता है या नहीं। यदि रखता है तो वह सत्य है और यदि नहीं रखता है तो मिथ्या है। अतः सामान्यानुमान मे हमें दोनों प्रकार के सत्यों की पर्यालोचना और स्थापना करनी पड़ती है।

इस विवेचना से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सामान्यानुमान के मूल हेतु या आधार (Grounds) दो प्रकार के होते हैं। (१) रूप-विषयक और (२) विषय-विषयक। उसमें रूप विषयक मूल हेतु दो प्रकार के होते हैं (१) प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त और (२) कारणता का सिद्धान्त। इसी प्रकार विषय विषयक मूल हेतु भी दो प्रकार के होते हैं। (१) प्रत्यक्षीकरण और (२) प्रयोग। यहाँ हम पहले रूप-विषयक मूल हेतुओं का विचार करेंगे। विषयक विषयक मूल हेतुओं का विचार बाद में किया जायगा।

सामान्यानुमान में हम उदाहरणों को देखते है और उनको देखकर सामान्य वाक्य की स्थापना करते है। इस सामान्यीकरण का आधार क्या है? हम देखते हैं—रसोईघर में आग जलती है, होटल में आग जलती

---

[1] Harmony

है, जिस में आग जलती है, इत्यादि। इन उदाहरणों को देखकर हम अनुमान करते हैं कि—आग का स्वभाव जलने का है। इस प्रकार का अनुमान देने का हमें क्या अधिकार है? तार्किक लोगों ने इस प्रक्रिया पर विचार किया और बतलाया है कि हमारे इस प्रकार के चिन्तन के दो आधार हैं:—(१) प्रकृति एक रूप है तथा (२) प्रत्येक कार्य का कारण अवश्य होता है। इन कल्पनाओं को हम दो सिद्धान्तों का रूप देते हैं और उनके नाम ये हैं—(१) प्रकृति की एक रूपता का सिद्धान्त और (२) कारणता का सिद्धान्त।

(२) प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त

जहाँ तक प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त का सम्बन्ध है इसका वर्णन तार्किकों ने अनेक प्रकार से किया है जैसे, (१) प्रकृति एकरूप है (२) प्रकृति में समान उदाहरण होते हैं (३) भविष्य भूत के समान होता है (४) प्रकृति अपने को दुहराती रहती है (५) भूत वर्तमान के सदृश होता है (६) प्रकृति के नियम अटल हैं (७) प्रकृति नियमित कार्य करती है (८) वही कारण उसी कार्य को उत्पन्न करेगा, इत्यादि। इसका तात्पर्य यही है कि जो कुछ कुछ अवस्थाओं के अन्दर उत्पन्न होता है उन्हीं अवस्थाओं के मिलने पर वह कार्य पुनः उत्पन्न हो सकता है अर्थात् जिन अवस्थाओं के अन्दर कार्य उत्पन्न हुआ है यदि वैसी ही अवस्थायें पुनः प्राप्त हो जाँय तो उसी प्रकार का कार्य अवश्य उत्पन्न होगा। जैसे अभी कुछ अवस्थाओं के अन्दर आग जल रही है यदि उसी प्रकार की अवस्थायें पुनः हो जाय तो पुनः अग्नि उसी प्रकार जलने लगेगी। यदि पानी ने भूत काल में प्यास बुझाई है तो भविष्य में भी पानी अवश्य प्यास बुझायगा। इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति में स्वेच्छाचारिता नहीं है। प्रकृति के अमित कार्य अनियन्त्रित रूप से कभी नहीं होते। प्रकृति में नियम-बद्धता होती है। यह एकरूपता का सिद्धान्त अनेक प्रकार की घटनाओं में प्रकट होता है। इससे हम

ानते हैं कि प्रकृति में एकरूपता ही नहीं है किन्तु अनेकरूपता
। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित नियमों को हम भिन्न-भिन्न प्रकार
न सकते हैं :— अग्नि जलती है, पानी प्यास बुझाता है,
भौतिक पदार्थ एक दूसरे को आकर्षित करते हैं, मनुष्य
ाक्षी होते हैं, इत्यादि। ये सब उदाहरण इस तथ्य के साक्षी हैं
कृति एक रूप नहीं है किन्तु भिन्न रूप भी है। यदि प्रकृति
रूप ही होती तो प्रकृति के अन्दर स्वेच्छाचारिता और आकस्मिकता
ाचर नहीं होती। इससे स्पष्ट है कि प्रकृति में नियमितता और
यमितता दोनों हैं। मिल और कारवेथ रीड का कहना सर्वथा सत्य
। प्रकृति एक रूप ही नहीं है किन्तु उसके अनेक रूप भी हैं।
न की विभिन्नता के विषय में अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा
। हैं। हम अनेक आकृतियों, रूपों, नामों और रंगों को देखते हैं—
और हवाओं के परिवर्तन को कौन नहीं जानता-व्यापारिक और
नैतिक परिवर्तन तो मनुष्य को सर्वदा आश्चर्य में डालते रहते हैं—
ाल, आँधी, ग्रहण आदि घटनाएँ भी परिवर्तन की सूचक हैं—इन सब
नन्नताओं को देखकर यह अवश्य कहना होगा कि प्रकृति के अनेक
हैं।

इस आशंका का उत्तर यह है कि जो कुछ हमें बहुरूप दीखता है,
सब को हम किसी न किसी प्रकार एकरूपता के सिद्धान्त में भी अनुबद्ध
सकते हैं। क्योंकि जितनी विभिन्नता हमें प्रकृति में दृष्टिगोचर होती
वह सब किसी न किसी नियम के अनुसार कार्य कर रही है और
येक रूप अपने २ स्थान में किन्हीं न किन्हीं कारणों पर अवलम्बित
और जब वे कारण दुहराए जाते हैं तो उसी प्रकार के कार्य उत्पन्न
ते रहते हैं। इसलिये यदि जिन अवस्थाओं ने अतीतकाल में
चाल, ग्रहण आदि को पैदा किया है यदि वे ही अवस्थाएँ इस समय
कत्रित की जाय तो अब भी वैसा ही भूचाल और ग्रहण हो सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि विश्व में एक
नयम, या एक एकरूपता ही नहीं है जो इस विश्व को नियन्त्रित कर

रही है किन्तु उसके फलस्वरूप अनेक नियम और अनेक एकरूपतायें हैं- जिनके द्वारा विश्व का कार्य सम्पादन हो रहा है। जैसा कि मेल ने कहा है कि 'विश्व की गति एक रूप नहीं है किन्तु वह अनेक एक रूपताओं से अनुसिद्ध है"। इसी प्रकार भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में—आकर्षण-शक्ति की एकरूपता है। रासायनिक विज्ञान के विभाग में भी विविध गुणों की एकरूपता है जिनके अनुसार भिन्न २ अनुपातों के अन्दर हम भिन्न २ प्रकार के तत्वों को तय्यार कर लेते हैं। प्रकृति के अनेक विभाग हैं और उन्हीं के अनुरूप अलग अलग एकरूपतायें भी हैं।

यह सब होते हुए यह अवश्य मानना पड़ेगा कि प्रकृति के विभिन्न विभागों को नियमित करनेवाले अलग अलग नियम हैं किन्तु उन नियमों को एकसूत्र में बांधनेवाला भी एक नियम है। जब हम इस सर्वव्यापी नियम की दृष्टि से विचार करेंगे तो यह प्रतीत होगा कि विश्व एकानेक रूप है या एकता के अन्दर अनेकरूपता भी है। क्योंकि प्रकृति के अन्दर ऐसा नहीं है कि वहाँ सब पदार्थ विच्छिन्न ही हों। इस विभिन्नता में क्रम भी है। विश्व एक भी है और अनेक भी है। यही उस का रूप है। अतः हम केवल एकरूपताओं के विषय में ही विचार नहीं करते किन्तु अनेकरूपताओं के विषयों में भी विचार करते हैं। प्रकृति की एकरूपता के लिये हम प्रकृति की एकता के तात्पर्य का प्रयोग कर सकते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये जैसा कि बेकन महोदय ने समझा है—कि 'विश्व एक अपरिवर्तनशील साम्यता रूप है किन्तु यह कि विश्व एक व्यवस्था है जिसमें साम्यता के साथ साथ परिवर्तनशीलता भी पायी जाती है। अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रकृति का स्वरूप एकता में अनेकता है। अखिल विश्व एक व्यवस्था का नाम है इसको हम साम्यता नहीं कह सकते। मिल महोदय का यह कहना बिलकुल सच है कि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त प्रत्येक सामान्यानुमानीय प्रक्रिया का रूप-विषयक आधार है। सामान्यीकरण में इसकी प्राप्

कल्पना माने बिना हम किसी सामान्य वाक्य का निर्माण कर ही नहीं सकते। हम ज्ञात से अज्ञात की ओर कदापि उद्गमन नहीं कर सकते या दृष्ट से अदृष्ट की ओर हमारा प्रस्थान हो ही नही सकता या विशेषों से सामान्य का निर्माण कर ही नहीं सकते, जब तक कि हमें यह विश्वास न हो जाय कि प्रकृति समान अवस्थाओं में उसी प्रकार ही वर्ताव करेगी। मिल के इस प्रकार के कथन का कि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त समग्र सामान्यानुमानीय प्रक्रिया का मूल प्रतिज्ञावाक्य या प्रतिभू है, यही अभिप्राय है कि बिना इसके सामान्यानुमान बन ही नहीं सकता। प्रत्येक सामान्यानुमान को सिलाजिज्म के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है जो एक विशेष प्रकार की एकरूपता ही होती है। यदि इसी प्रकार करते चले जाँय तो अन्ततोगत्वा हम एक ऐसे बिन्दु पर आ पहुँचेंगे कि जहाँ प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त स्वय हमारी अन्तिम सिलाजिज्म का मुख्य आधार वाक्य होगा।

(३) एकरूपता के दो अर्थ

मेलन दार्शनिक ने एकरूपता के सिद्धान्त के दो अर्थ किये हैं और वह दोनों में अर्थ-भेद बतलाता है। वे ये हैं—(१) कारणता की एकरूपता और (२) प्रकृति में वर्तमान क्रम की स्थिरता। कॉफी (Coffey) महोदय का कहना है कि प्रथम अर्थ तो हेतुहेतुमद् वाक्य के रूप में उपस्थित किया जा सकता है तथा दूसरा निरपेक्ष वाक्य के रूप में रक्खा जा सकता है। पहला रूप यह है:—'यदि वही कारण है तो उसका वैसा ही कार्य होगा। यहाँ यह नहीं कहा गया है कि यथार्थ में सर्वत्र वही कार्य उत्पन्न होगा। जो कुछ कहा गया है इसका अर्थ केवल यह है कि यदि कारण होगा तो उसके अनुरूप कार्य अवश्य होगा। द्वितीय रूप यह है—'प्रकृति की गति भविष्य में वैसी ही होगी जैसी अतीत में हो चुकी है'। यह वर्णन दोषपूर्ण है क्योंकि वर्तमान के क्रम में हमारा विश्वास हमारे अनुभव के आधार पर निर्भर है जो हमें कभी भी निश्चित स्वरूप को प्रदान नहीं कर सकता इस लिये इसमें छूट[1] और व्यतिक्रम पाए जा सकते हैं। हम यह जानते

(1) Exceptions

है कि कल सूर्य का उदय होगा किन्तु हम यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि ऐसा होगा ही। किन्तु हेतुहेतुमद् कार्य में इस प्रकार की कोई भूल या व्यतिक्रम देखने में नहीं आता। जब मिल महोदय यह कहते हैं कि प्रभाव सर्वथा सत्य के सदृश होगा—तब वे कोई वैज्ञानिक एकरूपता के सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर रहे हैं जैसा कि प्रथम अर्थ में प्रतिपादन किया गया है, किन्तु द्वितीय अर्थ में कर रहे हैं।

(४) मिल का प्रश्न

मिल महोदय एकरूपता के सिद्धान्त को समग्र सामान्यानुमानीय प्रक्रिया का मूलहेतु भी मानते हैं तथा इसे उसका उदाहरण भी मानते हैं। इस कथन का अभिप्राय यह है कि एकरूपता के सिद्धान्त की सिद्धि नहीं की जा सकती किन्तु इसकी समग्र सामान्यानुमानीय प्रक्रिया के पहले प्राक्कल्पना करनी पड़ती है या इसको मूल रूप में स्वीकार करना पड़ता है, अन्यथा सामान्यानुमान का निर्वाह हो ही नहीं सकता। तथा प्रकारान्तर से मिल यह भी मानता है कि एकरूपता का सिद्धान्त सामान्यानुमान का उदाहरण भी है अर्थात् यह पहले सामान्य वाक्यों का परिणाम है और यह परिणाम साधारण गणना से उपलब्ध होता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि यह आत्यन्तिक विरोधरहित अनुभव पर आश्रित है। अनुभव के द्वारा हमें व्यक्ति रूप उदाहरण प्राप्त होते हैं और इनके आधार पर हम सामान्य एकरूपता के सिद्धान्त का निर्माण करते हैं। इसमें हम किसी अपवाद को नहीं पाते। यदि कोई अपवाद होता तो हमारी दृष्टि में आ जाता। इस प्रकार हम सामान्य एकरूपता के सिद्धान्त को उपस्थित करते हैं और जब यह स्थापित हो जाता है तब यह समस्त सामान्यानुमान का आधार बन जाता है। इससे हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जो सामान्यानुमान का मूलहेतु है वही उसका उदाहरण है। इसी को मिल महोदय ने 'सामान्यानुमान का विरोध'[2] बतलाया है। अब हम यहाँ मिल महोदय के इस विचार की समालोचना करते हैं।—

(2) Paradox of Induction.

इस प्रश्न पर मिल महोदय का तर्क स्वाश्रय-दोष से युक्त प्रतीत होता है। वह केवल प्रश्न की भिक्षा[1] माँगता है। वह जिस वस्तु को सिद्ध करना चाहता है उसी की कल्पना करता है। उसका कहना है कि सामान्यानुमान के प्रत्येक उदाहरण में प्रकृति की एक रूपता की प्राक्कल्पना की जाती है — अर्थात् यह समग्र सामान्यानुमान का अन्तिम मुख्यवाक्य है और यही सामान्यानुमान का उदाहरण है। यह कैसे हो सकता है कि जो प्राक्कल्पना है वही निष्कर्ष भी बन जाय। साधारण गणनाजन्य-सामान्यानुमान भी प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त पर अवलम्बित है। जबतक एकरूपता को आवश्यक आधार न समझा जाय तब तक हम किसी प्रकार विशेष से सामान्य की ओर उद्गमन नहीं कर सकते।

मिल के सिद्धान्त के अनुसार एक और आपत्ति यह है कि साधारण गणना-जन्य सामान्यानुमान का निष्कर्ष सम्भाव्य होता है तथा वैज्ञानिक सामान्यानुमान का निष्कर्ष निश्चित होता है। यदि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त, साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान का परिणाम हो तो यह केवल सम्भाव्य निष्कर्ष हो सकता है, किन्तु हम जानते हैं कि यह समग्र सामान्यानुमान का मूलाधार है और उसमें वैज्ञानिक सामान्यानुमान को भी सम्मिलित किया गया है। मिल वैज्ञानिक सामान्यानुमान के परिणामों को निश्चित करता है। अब आप स्वय विचार करें कि सम्भवनीयता निश्चितता का आधार कैसे हो सकती है।

वास्तव में विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि इस प्रकार के आत्यन्तिक विरोध मिल के सिद्धान्त में उसके अनुभाववादी दर्शन के कारण हैं। अनुभववाद[2] के अनुसार समग्र ज्ञान का आधार अनुभव है और इसलिये प्रकृति की एकरूपता का ज्ञान कोई अपवाद नहीं हो सकता—यह भी अनुभवजन्य होना चाहिये। किन्तु अनुभव के आधार पर मौलिक सिद्धान्तों की स्थापना नहीं कर सकते। जैसे प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त है वह अनुभव से सिद्ध नहीं किया जा सकता। ये सिद्धान्त, जिनको हम सत्य मान कर चलते हैं, स्वयं अनेक प्रकार की सिद्धियों के आधार होते हैं। इसी हेतु

---

(1) Begging of the question (2) Empiricism

से हम उनको चिन्तन के मूलाधार कहते हैं। प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त इसी प्रकार के सामान्यानुमान का मूल हेतु है। इसकी स्वीकृति के अभाव में सामान्यानुमान नहीं बन सकता। यह यथार्थ में सामान्यानुमान का मूलाधार है, उसका परिणाम नहीं। इसी कारण से मिल का सिद्धान्त सुचारु प्रतीत नहीं होता।

(५) मौलिक एकरूपताओं के प्रकार

यह हम पहले बतला चुके हैं कि प्रकृति में एकरूपता नहीं किन्तु एकरूपताएँ हैं। कारवेथ रीड ने इस पर अनुसन्धान कर निम्नलिखित एकरूपताओं का बयान किया है :—

(१) व्याघातिक विरोध और मध्यम-बीज-परिहार के सिद्धान्त।

(२) साम्यपगुमान के कुछ मौलिक सिद्धान्त। जैसे—'सबके लिये और किसीके लिये नहीं' का सिद्धान्त।

(३) काल और आकाश सब एकरूपताएँ—अर्थात् सब समयों और देशों का माप किया जा सकता है।

(४) द्रव्य यथार्थ और शक्ति की स्थिरता—अर्थात् सब प्रकार के परिवर्तनों के होते हुए भी इन दोनों की स्थिरता बराबर रहती है। द्रव्य पदार्थ और शक्ति हमेशा परिमाण की अपेक्षा एक-से रहते हैं।

(५) कारणता का सिद्धान्त।

(६) समन्वय की सहवर्ती एकरूपताएँ।

मिल महोदय की परिकल्पना के अनुसार प्रकृति की एकरूपताएँ दो मुख्य भागों में परिवर्तित की जाती हैं: (१) समन्वयक एकरूपताएँ और (२) आनुक्रमिक एकरूपताएँ—जिनको हम कारणता के नाम से भी पुकारते हैं। सामान्यानुमान में समन्वयक एकरूपताओं की अपेक्षा आनुक्रमिक एकरूपताओं का अधिक उपयोग होता है। बेन महोदय ने भी इन एकरूपताओं का वर्गीकरण किया है और उसमें इनके तीन विभाग किये हैं (१) समन्वयक (२) आनुक्रमिक (३) समानता और असमानता सम्बन्ध (ऐक्य और परिमाण)। समन्वयक एकरूपताओं में स्थानात्मक

और समवर्ती गुण ग्रहण किये गये हैं। आनुक्रमिक या क्रम[1] के अन्दर समय क्रम[2] और कारणता[3] को सम्मिलित किया गया है। समानता और असमानता के ऊपर गणितशास्त्र, जो कि सख्या और परिमाण का विज्ञान है, अवलम्बित है। सामान्यानुमान में इन तीनों प्रकार की एकरूपताओं का उपयोग किया जाता है, किन्तु प्रयोगिक जीवन में हम देखते हैं कि सामान्यानुमान का सबसे अधिक सम्बन्ध कारणता से है जो कि तीनों में से दूसरी के अन्दर पूर्णतया अन्तर्भूत है।

(६) कारणता का सिद्धान्त

रूपविषयक दूसरा मूल हेतु कारणता का सिद्धान्त है। इसका सामान्य रूप यह है—'**विश्व में कोई कार्य विना कारण के नहीं होता**। मिल महोदय का भी यह कहना है कि **जितने दृश्य पदार्थ हैं जिनको आदि है, वे सब सकारण हैं**।' वेन महोदय का भी इसी प्रकार का कथन है, 'प्रत्येक घटना जो घटती है वह अवश्य ही अपने से पहली घटना से सबन्धित होती है—जिसके होने पर यह होती है और जिसके न होने पर यह नहीं होती'। जैसे अग्निरूपकार्य तभी उत्पन्न हो सकता है जब उसके पूर्व शुष्क ईन्धन हो और उसमें दियासलाई जलाकर लगाई जाय। अतः हम जानते हैं कि विश्व में प्रत्येक कार्य के लिये किसी न किसी कारण की आवश्यकता होती है।

इसके अतिरिक्त यह भी एक निश्चित सिद्धान्त है कि असत् से कुछ उत्पन्न नहीं होता। निषेधरीति से हम कह सकते हैं कि कारणता का सिद्धान्त यह बतलाता है कि विश्व में असत् या अभाव से किसी वस्तु का आरम्भ नहीं होता। नियम के अनुसार आकस्मिक या अचानक घटना कोई नहीं घटती। कहा भी है '**अभाव से कुछ नहीं उत्पन्न होता**' (Ex nihilo nihil fit) शून्य या नेस्ति से कोई परिवर्तन देखने में नहीं आता। यदि कोई परिवर्तन, क्रिया, कार्य या घटना देखने में आती है तो उसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है। अग्नि विना

(1) Succession (2) Order in time (3) Causality

किसी प्रारम्भिक वाक्यों के रूपमें नहीं दी जाती। कारणता विश्व में सर्वव्यापी है।

कारणता का नियम सामान्यानुमान का दूसरा मूल देता है। इसके अभाव में सामान्यानुमान में रूपविषयक सत्यता नहीं आ सकती। कुछ पृथक्करण (Elimination) के सिद्धान्त ऐसे हैं जो कारणता के सिद्धान्त से निष्पन्न होते हैं और इन्हीं सिद्धान्तों या नियमों के आधार पर हम किसी कार्य की कारणता का ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह निश्चित करने के लिये कि अमुक घटना अमुक घटना का कार्य है हमें पृथक्करण के नियमों का प्रयोग करके देखना पड़ता है और जानना पड़ता है कि ये दोनों घटनाएँ कार्यकारण के सम्बन्ध में बँधी हुई हैं या नहीं। अतः यह प्रतीत होता है कि रूपविषयक सामान्यानुमान की सत्यता उक्त पृथक्करण के नियमों पर निर्भर है। क्योंकि ये नियम कारणता के सिद्धान्त से निष्पन्न हैं। इसलिये हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि कारणता का सिद्धान्त सामान्यानुमान का रूप विषयक मूलाधार है।

(७) कारणता और प्रकृति की एकरूपता

कुछ तार्किकों के अनुसार जिनमें मिल बेन आदि मुख्य हैं कारणता का सिद्धान्त प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त का ही एक विशेष रूप है। यह हम पहले देख चुके हैं कि बेन तीन प्रकार की एकरूपताओं को स्पष्ट मानता है (१) सह-स्थान-एकरूपताएँ (२) क्रमवर्ती एकरूपताएँ और (३) समानता-जन्य या असमानता-जन्य-एकरूपताएँ। उनके विचार के अनुसार कारणता का सिद्धान्त क्रमवर्ती एकरूपताओं में से एक है। अतः इस दृष्टि से कारणता का सिद्धान्त का केवल यही अर्थ नहीं है कि प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है; किन्तु इसका यह भी अर्थ है कि वही कारण उसी कार्य को उत्पन्न करता है।

अन्य लेखक जैसे सिगवर्ट, बोसान्केट, वेल्टन आदि का मत उपर्युक्त मत से प्रतिकूल है। उनके कथनानुसार कारणता का सिद्धान्त केवल यह बतलाता है कि प्रत्येक कार्य का कारण होता है। किन्तु यदि हम इसके आगे जाना चाहते हैं और यह कहते हैं कि वही कारण उसी कार्य को

उत्पन्न करता है तो हमें प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त का अवलम्बन करना पड़ेगा। कारणता के सिद्धान्त के आधार पर हम केवल यही सिद्ध कर सकते हैं कि दो घटनाओं में परस्पर कार्यकारण भाव है जिनमें पूर्ववर्ती घटना कारण है और उत्तरवर्ती घटना कार्य है। यदि हम व्यक्तिरूप उदाहरणों को देख कर सामान्य वाक्य का निर्माण करना चाहते हैं तो हमें प्रकृति की एकरूपता में अवश्य विश्वास करना पड़ेगा।

यहाँ हमें यह ध्यानपूर्वक जानना चाहिए कि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त समग्र सामान्यानुमान का रूपविषयक मौलिक आधार है चाहे वह वैज्ञानिक सामान्यानुमान हो या अवैज्ञानिक सामान्यानुमान, क्योंकि दोनों में हमें सामान्यीकरण की प्रक्रिया करनी पड़ती है और सामान्यीकरण तब तक नहीं किया जा सकता जब तक हम यह विश्वास न करें कि प्रकृति एकरूप है। इसके अतिरिक्त कारणता का सिद्धान्त वैज्ञानिक सामान्यानुमान का आधार है क्योंकि सामान्यीकरण, कार्यकारण सम्बन्ध की खोज और सिद्धि पर अवलम्बित है। अत हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त और कारणता का सिद्धान्त ये दोनों मिलकर वैज्ञानिक सामान्यानुमान के मूल हेतु हैं।

(८) प्रकृति की एकरूपता के विश्वास के कारण

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रकृति एकरूप है—हमारे इस विश्वास का मूल क्या है? हमारे पास कौन-सा प्रमाण है जिसके आधार पर हम यह कहने को प्रस्तुत हो जाते हैं कि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त सत्य है? हम कैसे ज्ञान कर सकते हैं कि प्रकृति अपने व्यवहार में सर्वदा एकरूप ही रहेगी? इसके विषय में अब तक तीन सिद्धान्त उपस्थित किये गये हैं (१) अन्तर्ज्ञान सम्बन्धी (२) बहिर्ज्ञान सम्बन्धी (३) विकासवाद सम्बन्धी। अब हम तीनों का पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

(१) अन्तर्ज्ञान सम्बन्धी

अन्तर्ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त[1] एकरूपता के विषय में यह है कि प्रकृति की एकरूपता का विचार हमारे अन्दर स्वाभाविक है। इसके समर्थन रीड हैमिल्टन आदि हैं। इसको अन्तर्ज्ञान सम्बन्धी इसलिये कहते हैं क्योंकि इसे बहिरनुभव का कोई प्रयोजन नहीं—यह अन्तर्ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। हमारे अन्दर यह स्वभावजन्य शक्ति है जिसे हम अन्तर्ज्ञान (Intuition) कहते हैं जिसके द्वारा हम एकदम प्रकृति की एकरूपता का मान कर लेते हैं जैसे हम अन्य स्वयं-सिद्ध सिद्धान्तों का चिन्तन कर लेते हैं। क्योंकि यह अन्तर्ज्ञान सम्बन्धी है इसलिये हम इसकी सत्यता में बिना विश्वास किये नहीं रह सकते।

यह सिद्धान्त सर्वथा दुराग्रह पूर्ण है क्योंकि यह इस कल्पना को कोई बल नहीं देता कि यह अन्तर्ज्ञानजन्य है। यदि यह अन्तर्ज्ञानजन्य हो भी तो भी हमें यह आशा करनी चाहिये कि इस प्रकार का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिये। किन्तु मिल के अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं—कि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त—दार्शनिकों को छोड़कर और किसी के मस्तिष्क में आवश्यक प्रवेश ही नहीं कर सका। वास्तव में यह कहना ठीक नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह बालक हो या वृद्ध, ही, प्रकृति की एकरूपता का ज्ञान रखता है। इस प्रकार के सामान्य सिद्धान्त के ज्ञान के लिये अद्भुत प्रतिभावाले व्यक्ति ही सामर्थ्य रख सकते हैं।

(२) परिज्ञान सम्बन्धी

इसके अतिरिक्त दूसरा सिद्धान्त परिज्ञान सम्बन्धी[2] है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त हमारे अनुभव पर अवलम्बित है। इसको परिणाम सम्बन्धी इसलिये कहते हैं क्योंकि यह अन्तर्ज्ञान से सम्बन्ध नहीं रखता और इसकी उत्पत्ति अनुभव के पश्चात् होती है, पहले नहीं। इस सिद्धान्त के पोषक ह्यूम, मिल आदि हैं। मिल महोदय के अनुसार तो प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त पूर्वगामी सामान्यीकरणों पर आधारित

(1) A priori theory (2) A posteriori theory

है। प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त साधारण गणना-जन्य-सामान्यानुमान से निकाला हुआ निष्कर्ष है जिसमें बहुत से सामान्यानुमानों को आधार बनाया गया है। इसी को सामान्यानुमानीय[1] विरोध कहते हैं। इस पर हम पहले विचार कर चुके हैं।

यदि मिल के शब्दों में कहा जाय तो प्रतीत होगा कि प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त पूर्वगामी सामान्य वाक्यों के निर्माण पर अवलम्बित है। प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त साधारण गणना-जन्य-सामान्यानुमान का निष्कर्ष है और सर्वप्रथम निर्माण किया हुआ सामान्य वाक्य है जिसको मनुष्यजाति स्थापित कर सकती है। हम इस प्रकार के सामान्य वाक्य को अन्य उपसामान्य वाक्यों के आधार पर बनाते हैं क्योंकि सामान्यानुमान की जितनी जटिल प्रक्रियाएँ थीं जिनसे इसका प्रथम अनुमान किया गया था उसको सामान्यानुमान द्वारा नहीं निकाला गया था, किन्तु ढीलेढाले, अनिश्चित साधारण गणनाजन्य सामान्यानुमान के आधार पर ही निकाला गया था, उदाहरणार्थ जैसे, हम यह देख कर कि 'मनुष्य मरणशील है' हम निष्कर्ष निकालते हैं—सब मनुष्य मरणशील हैं। इससे यह पता लगता है कि प्रकृति एकरूप है। पुनः दूसरा सामान्यानुमान साधारण गणना द्वारा किसी दूसरे रूप में सिद्ध करेगा कि प्रकृति एकरूप है, इत्यादि। जैसे जैसे साधारण गणना के आधार पर नवीन नवीन सामान्यानुमानों के उदाहरण हमारे सामने एकत्रित होते चले जाते हैं, वैसे वैसे हमें शका होती जाती है कि प्रकृति एकरूप है या नहीं। किन्तु इसी प्रकार जब बार बार अनुसधान करने पर हमारे अनुभव में यही आता है कि समय समय पर जितने सामान्यानुमान बनाए गये हैं उन सब में एकरूपताएँ सम्मिलित हैं और ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है जिसमें प्रकृति स्वच्छन्दता से कार्य करती हो या जिसमें एकरूपता का भान न होता हो— तो हमारा यह अनुमान कि प्रकृति एकरूप है अत्यन्त दृढ हो जाता है। इस प्रकार मिल महोदय के अनुसार एकरूपता

---

(1) Paradox of Induction

के सिद्धान्त की प्रतिस्थापना होती है और जब यह स्थापित हो जाता है तो समस्त सामान्यानुमान का यह आधार बन जाता है ।

(३) विकासवाद सम्बन्धी[1]

डारविन, स्पेन्सर आदि विकासवादियों के अनुसार प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त, हमारी मूल प्रवृत्तियों (Instincts) से सम्बन्ध रखता है । इसलिये हम इसे मूल रूप से स्वाभाविक तथा अनुभवजन्य कह सकते हैं । वास्तव में विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि यह स्पेन्सर आदि महानुभावों का सिद्धान्त अनुभववाद[2] का ही एक परिणाम है । अनुभववाद के आधार पर यही कहा जा सकता है कि जितना ज्ञान है वह सब प्रकृति की एकरूपता को साथ लेते हुए—अनुभवजन्य है । विकासवाद का यह मन्तव्य बहुत हद तक ठीक है कि सारा ज्ञान मूलतः अनुभव से उत्पन्न होता है । ये सब अनुभव एकत्रित हो जाते हैं और अनुभव है जिनको हम पिता की आदत कहते हैं वह पुत्र का स्वभाव बन जाता है । अतः यह सम्भव है कि प्रकृति की एकरूपता का विश्वास पूर्वगामी पुरुषों में अनुभवजन्य रहा हो किन्तु आधुनिक मनुष्यों में यह मूल प्रवृत्तिजन्य या स्वाभाविक गिना जाता है और इसको सिद्ध करने के लिये किसी अनुभव प्रमाण की आवश्यकता नहीं । इससे इतना तो स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त हमारी कठिनाई को एक कदम आगे रखता है और जहाँ तक इसकी उपयोगिता का सम्बन्ध है यह केवल अनुभववाद का एक विशेष रूप प्रतीत होता है ।

यथार्थ में देखा जाय तो यही कहना होगा कि प्रकृति की एकरूपता के विश्वास का सिद्धान्त तर्कशास्त्र का विषय ही नहीं है । यह विषय है मनोविज्ञान[3] का या अतिभौतिक शास्त्र[4] का । तर्क शास्त्र की दृष्टि से तो हम केवल इतना कह सकते हैं कि तर्कशास्त्र के लिये यह एक मौलिक सिद्धान्त है जिसको हमें बिना तर्क के और स्वीकार कर लेना चाहिये क्योंकि

(1) Evolutional.

(2) Empiricism. (3) Psychology (4) Metaphysics.

इसके बिना सामान्यानुमान की प्रक्रिया सम्भव नहीं है। यथार्थ में यद्यपि एकरूपता का सिद्धान्त सिद्ध नहीं किया जा सकता, तथापि यह मानना पड़ेगा कि यह समग्र सामान्यानुमानीय प्रक्रिया का मूल है। इसी हेतु से प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त को समग्र सामान्यानुमानीय प्रक्रिया का मूलाधार बतलाया गया है

(६) कारणता का लक्षण

संसार में कोई भी कार्य बिना कारण के नहीं होता। कारणता का सिद्धान्त विश्वव्यापी है। मिल महोदय ने इसका व्याख्यान इस प्रकार किया है—"**कारणता एक पूर्ववर्ती कार्य की अवस्था है जिसके होने पर नियत रूप से, और निरूपाधि रूप से कार्य उत्पन्न होता है। अथवा कारण उन सब अवस्थाओं का समूह है जिसमें विधिरूप और निषेध रूप दोनों प्रकार की अवस्थाओं को समाविष्ट किया जाता है।** वेन (Venn) के अनुसार कारण वह है जिनमें उन सब अवस्थाओं को ग्रहण किया जाता है जो कार्योत्पत्ति में आवश्यक होती हैं। कार्वेथ रीड (Cerveth Reed) का कारण लक्षण सर्वोत्तम है। वे कहते हैं—'**किसी कार्य का कारण वह है जो गुण की दृष्टि से नियत, अपरिवर्तनीय और उपाधिरहित पूर्ववर्ती अवस्था है तथा परिमाण की दृष्टि से कार्य के समान है।**" यह लक्षण कई दृष्टियों से परिपूर्ण है। अब हम इस लक्षण का विश्लेषण करके इसके प्रत्येक पद की सार्थकता पर विचार करेंगे। सर्वप्रथम हम इसके गुण की दृष्टि से दिये हुए पदों की सार्थकता पर विचार करते हैं —

(१) **प्रत्येक कार्य, कारण सापेक्ष होता है।** एक दृष्टि से दोनों ही पद सापेक्ष है। एक के बिना दूसरे की अवस्थिति नहीं। यह विचार हमें कभी नहीं करना चाहिये कि प्रकृति में कुछ अवस्थाएँ या घटनाएँ ऐसी हैं जो कारण कही जाती हैं और दूसरी अवस्थाओं को कार्य कहा जाता हैं, किन्तु इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि वही अवस्था या घटना एक दृष्टि से कारण कही जा सकती है और दूसरी दृष्टि से उसी को कार्य

कह सकते हैं। दोनों की सापेक्षता इसी तथ्य को प्रकट करती है कि एक के बिना दूसरे का विचार हो ही नहीं सकता।

(२) प्रत्येक अवस्था या घटना किसी विशेष समय में उत्पन्न होती है। इसका अभिप्राय यह है कि जो घटना किसी समय-विशेष में उत्पन्न होती है वह विश्व की स्थिति में एक विशेष परिवर्तन होता है। यदि विश्व परिवर्तनशील न होता तो कारणता का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। कारणता का सिद्धान्त इसीलिये ही माना जाता है क्योंकि विश्व परिवर्तनशील है। लेकिन हम देखते हैं कि परिवर्तन सदा होते रहते हैं। तब प्रश्न उपस्थित होता है कि इन सब परिवर्तनों का कारण क्या है? जब कभी प्रलय होता है या आँधी आती है या भूचाल आता है, या अकाल पड़ता है या राज्यक्रान्ति होती है या महायुद्ध होता है—तब हम उसके कारण को जानना चाहते हैं। इन सब का अर्थ यह है कि जब कभी इस प्रकार के विशेष परिवर्तन दृष्टि-गोचर होते हैं तब हम यह देखते हैं कि विश्व की पहले कोई अवस्था थी और अब वह बदल गई है। तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम यह जान लें कि ऐसा क्यों हुआ। प्रतीत होता है कि सामयिक परिवर्तन कारणता के प्रश्न में मुख्य है।

(३) कारण सर्वदा कार्य के पूर्ववर्ती होता है।

कारणता का अर्थ है समय या काल में क्रम—अर्थात् एक अवस्था पूर्ववर्ती होती है और दूसरी उत्तरवर्ती। समय या काल की अपेक्षा से कारण पूर्ववर्ती होता है और कार्य उत्तरवर्ती। कारण के होने पर ही कार्य होता है। इसलिये जो अवस्था पहले आयगी वह कारण कहलायगी और जो बाद में आयगी वह कार्य कहलायगी।

कुछ विचारकों का इस विषय में विवाद है कि कार्य और कारण का सम्बन्ध में उत्तरवर्तित्व और पूर्ववर्तित्व का सम्बन्ध है। यह कहा जाता है कि कारण पद का अर्थ है कार्य का होना और जब तक कार्य उत्पन्न न हो जाय तब तक हम उसके कारण होने की कल्पना ही नहीं कर सकते। अतः यह मानना पड़ेगा कि कार्य और कारण दोनों समकालवर्ती हैं। इस आपत्ति पर कारवेथ रीड का बहुत सुन्दर उत्तर है—यह

हमारी भूल है कि कारण का अर्थ कार्य का होता है। यह, यह भी द्योतित करता है कि कार्य उत्तर कालवर्ती है अर्थात् भविष्य में होनेवाला है और कार्य का होना यह भी बतलाता है कि कारण पूर्ववर्ती होता है। तथा यह भी हो सकता है कि किसी कार्य के उत्पन्न होने मे बहुत समय लग जाय और हम यह समझलें कि अभी तक कारण समाप्त ही नहीं हुआ है और कार्य इकट्ठा होता चला जाय, जैसे युद्ध, भूचाल, आँधी। इस प्रकार के उदाहरणों में यह होता है कि कारण कई अवस्थाओं से उत्पन्न होता है और उसके कई भाग होते हैं और उन्हीं के अनुसार कार्य का भी विभाग किया जाता है। यद्यपि यह सम्भव नहीं है कि सम्पूर्ण कारण सम्पूर्ण कार्य के पूर्ववर्ती हों। मेलन महोदय का इस विषय में यह कहना है कि कारण के पूर्ववर्तित्व से हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि कारण और कार्य भिन्न घटनाएँ हैं। सचाई यह है कि सृष्टि का क्रम एक निरन्तर होनेवाली प्रक्रिया है और इसलिये इसमें न तो खण्डन है और न अवरोध है। प्रकृति के क्षेत्र में यद्यपि यह प्रतीत होता है कि कारण अलग है और कार्य अलग है, किन्तु यह कहना अत्यन्त कठिन है कि कारण कार्य से सर्वथा भिन्न है और कार्य, कारण से सर्वथा भिन्न है। कार्य कारण का भेद केवल गणित की रेखा[1] है जिसमें न तो चौड़ाई है और न मोटाई। उसे हम केवल अपने विचार से जान सकते हैं—अर्थात् विश्व के प्रवाह में हमने अपने विचार की एक रेखा खींची है जिसके इस पार कारण है और उस पार कार्य है।

(४) कारण कार्य की एक अपरिवर्तनीय पूर्ववर्ती अवस्था है। यह पहले बतला आए हैं कि कारण, कार्य की पूर्ववर्ती अवस्था है, किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि प्रत्येक पूर्ववर्ती अवस्था को हम कारण कह सकते हैं। पूर्ववर्ती अवस्था दो प्रकार की होती हैं (१) परिवर्तनीय[2] और अपरिवर्तनीय[3]। परिवर्तनीय अवस्था उसे कहते हैं जिसके होने पर कभी कार्य होता है और कभी कार्य नहीं होता है तथा अपरिवर्तनीय

---

(1) Mathematical line (2) Variable (3) Invariable

अवस्था उसे कहते हैं जिसके होने पर कार्य अवश्य होता है। प्रत्येक घटना के पहिले अनेक अवस्थाएँ होती हैं जिनका कार्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता। उन अवस्थाओं में कारण रूप अवस्थाएँ वही होती हैं जिनके होने पर कार्य उत्पादित होता है। कार्य की एक रूपता का यही अभिप्राय है कि उसी कारण से वही कार्य उत्पन्न होता है, भिन्न नहीं। यदि हम किसी भी अवस्था को कारण मान बैठेंगे तो दोष हो जायगा जिसका वर्णन आगे करेंगे।

(५) कारण सर्वदा निरुपाधि होता है। कारण के लिये यह आवश्यक है कि वह उपाधि रहित हो। उपाधि उसे कहते हैं जो कार्य की उत्पत्ति में बाधा डालती है। ह्यूम के अनुसार कारण अपरिवर्तनीय पूर्ववर्ती अवस्था के अतिरिक्त कुछ नहीं है और कार्य अपरिवर्तनीय उत्तरवर्ती अवस्था के कुछ नहीं है। यदि ऐसा ही मान लिया जाय तो रीड महोदय के शब्दों में दिन रात का कारण हो जायगा और रात, दिन का कारण हो जायगा। अतः मिल महोदय ने ह्यूम के विचार को ठीक किया और यह बतलाया कि कारण न केवल अपरिवर्तनीय पूर्ववर्ती अवस्था होना चाहिये अपितु यह निरुपाधि भी होना चाहिये। कारण पूर्ववर्ती अपरिवर्तनीय अवस्था है किन्तु प्रत्येक पूर्ववर्ती अपरिवर्तनीय अवस्था कारण नहीं होती। वास्तव में कारण पूर्ववर्ती अपरिवर्तनीय अवस्था से कुछ अधिक होता है अर्थात् वह निरुपाधि होता है। इतना कहना ही पर्याप्त नहीं है कि कारण एक पूर्ववर्ती अपरिवर्तनीय, अवस्था है किन्तु वह अवस्था उपाधि रहित भी होनी चाहिए, तभी कारणता को प्राप्त कर सकती है। मिल महोदय निरुपाधिता का स्वरूप इस प्रकार कहते हैं कि यह वह अवस्थाओं का समूह है जो बिना किसी अन्य उपाधि-रूप अवस्था के कार्य के उत्पन्न होने में सहायक होता है। उपाधि कारण की अवस्थाओं की अपेक्षा है जो कारण के कार्यकारी होने में बाधा उपस्थित करती है। अतः यह आवश्यक है कि कारण को निरुपाधि होना चाहिये। अवस्था का अर्थ है कारण का आवश्यक भाग। अतः जो कोई वस्तु कार्य के होने में या उसके ऊपर प्रभाव डालती है उसे अवस्था कहते हैं। कारण, इस प्रकार की उन अवस्थाओं के समूह को

कहते हैं जो कार्य पर अपना प्रभाव डालती है। ऐसा कहने से यह मतलब निकलता है कि कारण को निरुपाधि होना चाहिये—अर्थात् यह वह पूर्ववर्ती अवस्था है या अवस्थाओं का समूह है जिनके अन्दर सब आवश्यक अवस्थाएँ सम्मिलित होती हैं और ये अवस्थाएँ किसी अन्य अवस्था पर निर्भर नहीं रहतीं जिसके होने पर कार्य उत्पन्न हो। बेन के शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह वह अकेली पूर्ण अवस्था है जिसके होने पर कार्य अवश्य उत्पन्न होता है और जिसके अभाव में कार्य नहीं उत्पन्न होता है। अतः जो अवस्था कार्य की उत्पत्ति को रोकती है या उसके होने से बाधा उपस्थित करती है उसे उपाधि कहते हैं। कारण को निरुपाधि होना चाहिये।

(६) कारण पूर्ववर्ती अति सन्निहित अवस्था को कहते हैं। कारण अति सन्निहित पूर्ववर्ती अवस्था है। अतः दूरवर्ती पूर्व अवस्थाओं से इसको भिन्न माना गया है। यह इतने से ही स्पष्ट हो जाता है कि कारण निरुपाधि होता है। यदि कारण को किसी अन्य पूर्ववर्ती अवस्था के लिये प्रतीक्षा करनी पड़ती है जिसके होने पर कार्य उत्पन्न होता है, तो यह उस अवस्था पर निर्भर रहेगा और इसे हम निरुपाधि नहीं कह सकते। इस लिये कारण सर्वदा कार्य की अति सन्निहित पूर्वावस्था है। अति सन्निहितता निरुपाधिता से ही सम्पन्न हो जाती है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि कारण की अतिसन्निहितता पर अधिक जोर देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विज्ञान के क्षेत्र में घटनाओं का विवरण विस्तृत रूप से किया जाता है। कभी कभी यह देखने में आता है कि कार्य और कारण के मध्य अत्याधिक व्यवधान होता है और उस व्यवधान के होने से उनकी कार्य कारणता में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

कुछ दार्शनिक इस तथ्य को समझने के लिये अति सन्निहित कारण और दूरवर्ती कारण में भेद बतलाते हैं। 'अति सन्निहित कारण वह है जिसके होने पर अनन्तर ही, बिना किसी अन्य अवस्था के व्यवधान के कार्य की उत्पत्ति होती है'। उदाहरणार्थ, मान लीजिये हमने एक तोप चलाई। गोला दीवाल में जाता है और उसको गिरा देता है। उसके गिरने से एक मनुष्य

दब कर मर जाता है। इस घटना में दीवाल का गिरना, मनुष्य की मृत्यु का अति सन्निहित कारण है। इसके विपरीत दूरवर्ती कारण वह है जो पहले आता है और अति सन्निहित कारण को जन्म देता है। अतः अति सन्निहित कारण के पहले होने वाली अवस्था को जो उसकी उत्पत्ति में कारण होती है उसे दूरवर्ती कारण कहते हैं। उपयुक्त उदाहरण में ही तोप का चलाना दूरवर्ती कारण है क्योंकि वह दीवाल के गिरने का कारण है। तोप के चलाने के बिना दीवाल का गिरना नहीं हो सकता और दीवाल के गिरने के अभाव में मनुष्य की मृत्यु नहीं हो सकती। अतः एक को अति सन्निहित कारण और दूसरे को व्यवहित कारण कहते हैं। किन्तु यह विचार ठीक नहीं क्योंकि यह कारण माला है और इस प्रकार से हमें एक बहुत लम्बी अनवस्थागमन की माला प्रतीत होगी। कारणता के सिद्धान्त में जो अतिसन्निहित अवस्था है उसी को कारण कहना उपयुक्त है। दूरवर्ती अवस्था तो कारण की कारण कही जा सकती है जिसकी उत्तरवर्ती अवस्था को हम कार्य कह सकते हैं। तोप का चलाना कारण है दीवाल का गिरना उसका कार्य है। दीवाल का गिरना कारण है और मनुष्य का मरना उसका कार्य है इस प्रकार कार्य कारण का सिलसिला इस घटना चक्र में चला आ रहा है।

गुण की दृष्टि से कारण का विचार करने के बाद अब हम परिमाण की दृष्टि से कारण का विचार करते हैं। परिमाण की दृष्टि से कारण, कार्य के समान होता है। इसका अभिप्राय यह है कि जहाँ तक परिमाण का विचार है कारण के विश्व (पदार्थ) और शक्ति, कार्य के विश्व और शक्ति के तुल्य होते हैं। यह कारण की विशेषता आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों पर अवलम्बित है। विज्ञान मानता है कि विश्व[1] (जड़ पदार्थ) और शक्ति[2] सर्वदा यथावस्थित रहते हैं। इसमें न वृद्धि होती है और न हानि। विश्वतत्त्व यथावस्थित रहा है। इसी में ही विश्व की विशदता है।

विश्व की यथावस्थितता के सिद्धान्त के अनुसार विश्व (जड़-पदार्थ) का कुल परिमाण सर्वदा अपरिवर्तित रहता है। वह न घटता है और न बढ़ता है यद्यपि इसके रूप बदलते रहते हैं। जैसे हमने कुछ परिमाण की

(1) Matter (2) Energy

मात्रा में ऑक्सिजन लिया और कुछ मात्रा में हाइड्रोजन लिया और प्रयोग-शाला के अन्दर परखनली में रखकर पानी बनाया। इस प्रक्रिया में पानी का परिमाण और दोनों गैसों का परिमाण सर्वदा बराबर रहेगा। इसलिये जहाँ तक विषय का सम्बन्ध है विषय की दृष्टि से कार्य, कारण के अनुरूप रहता है। यद्यपि विषय के रूपो में परिवर्तन हुआ करता है किन्तु रूपों के परिवर्तन पदार्थों की यथास्थिति में कोई अन्तर नहीं डाल सकते।

शक्ति की यथावस्थितता के सिद्धान्त के अनुसार शक्ति का समग्र परिमाण सर्वदा यथावस्थित रहता है। यह न तो बढ़ सकता है और न घट सकता है। यह हो सकता है कि शक्ति का एकरूप दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाय, किन्तु शक्ति का अखण्ड रूप यथावस्थित रहता है। उदाहरणार्थ, जब एक गतिमान पदार्थ गति को बन्द कर देता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि शक्ति नष्ट हो चुकी है, किन्तु वास्तव में देखा जाय तो प्रतीत होगा कि यह किसी अन्य-रूप मे परिवर्तित हो चुकी है। इसलिये जहाँ तक शक्ति का सबंध है कार्य में शक्ति का परिमाण कारण के परिमाण के बराबर रहता है। इससे यह फलित होता है कि कारण का परिमाण कार्य के परिमाण के अनुरूप होता है।

(१०) शक्ति की यथावस्थितता और कारणता का संबंध

आधुनिक विज्ञान के शक्ति की यथावस्थितता के सिद्धान्त ने कारणता के विचार में भी परिवर्तन पैदा कर दिया है और जहाँ तक इस सिद्धान्त की उपयोगिता का सम्बन्ध है तर्कशास्त्र मे इसका पूर्ण उपयोग किया गया है। वेन इसका लक्षण इस प्रकार करता है—शक्ति की यथावस्थितता का सिद्धान्त (The law of conservation of energy) का अर्थ है शक्ति, ताक़त, गतिदायकशक्ति, कार्यकारिणीशक्ति, यह अनेक रूपों में दिखलाई देती है जिनको हम आपस में निश्चित मात्रा के अनुसार परिवर्तित कर सकते हैं। शक्ति का एक रूप में नष्ट होने का अर्थ यह है कि उसका दूसरे रूप में आविर्भाव हुआ है। शक्ति के विनिमय में ही हम कार्योत्पत्ति का अनुभव करते हैं और हम देखते हैं कि शक्ति का कभी भी अत्यन्ताभाव नहीं होता।

शक्ति का अर्थ है कार्य करने की क्षमता। इसका आविर्भाव भिन्न-भिन्न रूपों में होता है। जैसे, यान्त्रिक शक्ति में, (जैसे एक पदार्थ गर्म किया है तो उसमें गति उत्पन्न होती है) गर्मी (ताप), प्रकाश, शब्द, विद्युत्, चुम्बकशक्ति, रासायनिक शक्ति इत्यादि में।

अतः शक्ति की यथावस्थितता का नियम यह प्रकट करता है—

(१) समग्र शक्ति का परिमाण विश्व में यथावस्थित है जिसको हम न तो बढ़ा सकते हैं और न घटा सकते हैं।

(२) यद्यपि समग्र शक्ति का परिमाण यथावस्थित रहता है तथापि शक्ति का एक रूप दूसरे रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, एक पदार्थ कुछ ऊँचाई से गिरता है और मैदान पर चोट मारता है और पश्चात् स्थिर हो जाता है। गति में परिणत पदार्थ की शक्ति नष्ट सी प्रतीत होती है किन्तु हम देखते हैं वह नष्ट नहीं होती, उसका परिवर्तन दूसरे रूप में हो जाता है अर्थात् वहाँ ताप उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार देखने से प्रतीत होगा कि शक्ति नष्ट नहीं हुई है। हुआ यह है कि शक्ति का एक रूप दूसरे रूप में परिवर्तित हो गया है।

(३) शक्तियों के विनिमय में ही कार्य-सम्पन्न होता है। शक्ति के दो भेद हैं (१) गति सम्बन्धी (Kinetic) (२) अगति सम्बन्धी (Potential) (सम्भाव्य शक्ति)।

गति सम्बन्धी शक्ति वह है जिसको विषय या पदार्थ गत्यावस्था में प्रकट करता है। जब कभी हम किसी पदार्थ को गति करते हुए देखें तो समझ लेना चाहिये कि यह गतिमयी शक्ति है। जैसे, हवाई की गति, रेल के इञ्जन की गति, सर्व प्रदेश से गिरे हुए पदार्थ की गति शक्ति के उदाहरण हैं। अगति संबंधी या सम्भाव्य शक्ति इसके विपरीत वह है जो पदार्थों में या विषयों में पाई जाती है जब वे स्थिर अवस्था में रहते हैं। वह उन पदार्थों में पाई जाती है जब वे गतिहीन होते हैं। जब विषय या पदार्थ गतिरहित होते हैं तब उसकी शक्ति का ग्रोप करते हैं। वही शक्ति जो स्थिर अवस्था में अप्रकट रहती है गति अवस्था में प्रकट हो जाती है। पहली अवस्थागत शक्ति को अगति

सम्बन्धी या सम्भाव्य शक्ति और दूसरी अवस्थागतशक्ति को गतिमती शक्ति कहते हैं। यदि कोई पदार्थ गतिमान न भी हो तथापि उसमें शक्ति विद्यमान रहती है। वह शक्ति का केन्द्र कहलाता है। जिस पदार्थ में सम्भाव्य शक्ति रहती है वह कालान्तर में गतिमती शक्ति वाला बन सकता है। यदि गति नहीं भी हो तब भी पदार्थ शक्ति का कोष कहलाता है। पदार्थ की स्थिति ही केवल इस बात की द्योतक है कि वह शक्तिमान है। निश्शक्तिक पदार्थ त्रिकाल में भी नहीं होता। अतः हम कह सकते हैं कि गतिमती शक्ति और सम्भाव्य शक्ति दोनों आपस में परिवर्तित हो सकती हैं। अर्थात् गतिमती शक्ति सम्भाव्य शक्ति में परिवर्तित हो सकती है और सम्भाव्य शक्ति गतिमती शक्ति में परिवर्तित हो सकती है। मान लीजिये एक लोहे का टुकड़ा जमीन पर पड़ा हुआ है। यहाँ केवल उस टुकड़े की स्थिति के कारण ही इसमें अगति सम्बन्धी या सम्भाव्य शक्ति विद्यमान हैं, किन्तु जब हम इसको उठाकर फेंकते है तो इसमें गतिमती शक्ति पैदा हो जाती है। यदि फेंकने के बाद फिर यह कहीं गिरकर स्थिर हो जाता है तो पुन इसमें सम्भाव्य शक्ति हो जाती और गतिमती शक्ति नहीं रहती। इस प्रकार से यह एक से दूसरी अवस्था में परिवर्तन होती रहती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शक्ति के रूपों के परस्पर परिवर्तन में शक्ति सर्वथा नष्ट नहीं होती, किन्तु केवल रूप बदल जाता है। इस अदल बदल को ही शक्ति का रूप परिवर्तन कहते हैं। कार्योत्पत्ति इस शक्ति के रूप परिवर्तन का ही नाम है। वास्तव में शक्ति का अत्यन्ताभाव कभी नहीं होता। केवल यही होता रहता है कि गतिमती शक्ति सम्भाव्य शक्ति बन जाती है और सम्भाव्य शक्ति गतिमती बन जाती है।

(११) यथावस्थितता के नियम का कारणता से सम्बन्ध

अब हम यह विचार करते हैं कि इस शक्ति की यथावस्थितता के नियम का कारणता से क्या सम्बन्ध है? शक्ति की यथावस्थितता का नियम इस बात को सिद्ध करता है कि परिमाण की दृष्टि से कारण कार्य के सम-तुल्य है। उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार यही परिमाण निकलता है कि कारणता का यही अर्थ है कि शक्ति का एक नियमित परिमाण कारण से

कार्य के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। यथार्थ में कार्य केवल परिवर्तित कारण रूप शक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

पदार्थ और शक्ति जो कारण के रूप से अन्तर्धान हो गये हैं, वे कार्य रूप में परिवर्तित होकर हमारे सामने आ गये हैं। इस शक्ति के रूपान्तर में न कोई वृद्धि है और न हानि। शक्ति का निजरूप सर्वदा स्थिर है। अतः यह मानना पड़ेगा कि कारण और कार्य दोनों एक दृष्टि से समान होते हैं। यदि हम यह सोच लें कि दोनों बराबर नहीं होते हैं तो हमारे सामने तीन विकल्प उपस्थित होते हैं (१) कारण कार्य से सदा अधिक होता है, (२) कारण कार्य से सर्वदा अल्प होता है और (३) कारण, कार्य से कभी अधिक और कभी अल्प होता है।

अन्तिम विकल्प ठीक नहीं है क्योंकि प्रकृति एकरूपता के नियम से सम्बद्ध है अतः कारण कभी अधिक और कभी कम नहीं हो सकता। प्रथम विकल्प के अनुसार यदि विचार करें तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि समस्त शक्ति और पदार्थ का परिमाण घटता जाता जायगा और एक दिन ऐसा आयगा कि घटते घटते कुछ अवशेष नहीं रहेगा। द्वितीय विकल्प के अनुसार यदि सोचा जाय तो मालूम होगा कि विश्व में समस्त शक्ति और पदार्थ का परिमाण बढ़ता ही चला जायगा और एक दिन ऐसा आयगा कि उसके अवकाश के लिये विश्व में स्थान ही नहीं मिलेगा, किन्तु यथार्थस्थिरता के सिद्धान्त के अनुसार तो शक्ति और पदार्थ का परिमाण निश्चित है, उसमें न तो वृद्धि हो सकती है और न हानि। अतः विचार करने पर यही अनुभव में आता है कि उपर्युक्त तीनों विकल्प ठीक नहीं हैं। इससे केवल यही सिद्ध होता है कि कार्य और कारण दोनों परिमाण की दृष्टि से सदा बराबर होते हैं।

(१८) अरस्तू का कारणता का सिद्धान्त

यहाँ पर अनुचित न होगा यदि हम अरस्तू के कारण के सिद्धान्त पर विचार करें। उनका इस विषय में क्या सिद्धान्त है। अरस्तू का कहना है कि कारण कोई एक वस्तु नहीं है; किन्तु यह एक मिश्र विचार है जिसमें चार अंश विद्यमान रहते हैं और इन चारों अंशों को हम पृथक् पृथक् कारण कह सकते हैं। वे चार कारण निम्नलिखित हैं।—

(१) द्रव्य कारण ।
(२) रूप कारण ।
(३) योग्य कारण ।
(४) अन्तिम कारण ।

(१) **द्रव्यकारण** (Material Cause) किसी कार्य का वह है जिस पदार्थ का वह बना हुआ होता है। जो कुछ परिवर्तन हम किसी में पैदा करते हैं वह वस्तु में ही किया जाता है। कार्य इसी द्रव्य या पदार्थ पर निर्भर रहता है, क्योंकि कार्य की उत्पत्ति किसी द्रव्य से ही होती है। इसलिये इसे उस कार्य का द्रव्य कारण कहते हैं। उदाहरणार्थ हम घड़े को ले सकते हैं। घड़ा मिट्टी का बनाया जाता है इसलिये मिट्टी उसका द्रव्य कारण है। इसको **उपादान कारण** भी कहते हैं।

(२) **रूपकारण** (Formal Cause) किसी कार्य का वह रूप या शकल है जो किसी कार्य में रोपी जाती है। क्योंकि हमको यह विदित है कि प्रत्येक कार्य का कोई न कोई रूप अवश्य होता है और यह किसी न किसी द्रव्य का बनाया जाता है जब हम किसी कार्य को पैदा करते हैं तब उसमें केवल द्रव्य के होने मात्र से कार्य नहीं बनता किन्तु उस द्रव्य के रूप में भी कुछ परिवर्तन किया जाता है, जैसे एक कुम्हार एक मट्टी के लोंदे को लेता है, केवल लोंदे से ही कुछ नहीं बन जाता किन्तु उस लोंदे को रूप दिया जाता है और जिस रूप का हम घड़ा चाहते हैं वह उससे बना दिया जाता है। यह रूप का, मिट्टी को प्रदान करना उसका रूप-कारण कहलाता है।

(३) **योग्यकारण** (Efficient Cause) किसी कार्य का वह है जिसे हम परिश्रम, चतुरता योग्यता कहते हैं। यदि कुम्हार में घड़ा बनाने की योग्यता, चतुरता वगैरह न हो और न वह परिश्रम करे तो घड़ा नहीं बन सकता। यह एक प्रकार की शक्ति है जो एक से दूसरे में प्रवेश करती हुई प्रकट होती है। यह पहले उसमें नहीं थी किन्तु अब इसका उसमें प्रवेश प्रतीत होता है। इस प्रकार घड़े के निर्माण में कुम्हार ने जो अपनी योग्यता, चतुरता और परिश्रम लगाया है वह उसका

गौण कारण है। कभी कभी इस प्रकार की गौणता विशिष्ट व्यक्ति को ही गौण कारण कहते हैं। इसको निमित्त कारण भी कहा जाता है।

(४) अन्तिम कारण (Final Cause) किसी कार्य का वह है जिससे कार्योत्पत्ति का उद्देश्य या ध्येय प्रकट होता है। संसार में प्रसिद्ध है कि प्रयोजन के बिना मन्द पुरुष की भी किसी कार्य में प्रवृत्ति नहीं होती। जब कोई भी कार्य बनाया गया है तो उसका उद्देश्य या ध्येय या प्रयोजन कुछ न कुछ अवश्य होता है। यह कोई प्रयोजन या ध्येय होता है जिसके निमित्त किसी वस्तु की स्थिति में परिवर्तन किया जाता है। यह प्रयोजन पहिले विचार रूप में उपस्थित रहता है। जैसे जब घड़ा बन जाता है तब हम उसको पानी या घी भरने के काम में लेते हैं। यह पानी भरने का उद्देश्य पहले से ही मस्तिष्क में विद्यमान था। कार्य सम्पादन होने पर उसको काम में लाया गया है।

कुछ दार्शनिक इन कारणों को दो भागों में विभक्त करते हैं (१) आन्तरिक कारण[1] (२) बाह्य कारण[2]। द्रव्यकारण और आकारकारण तो आन्तरिक कारण हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध वस्तु के निर्माण से या संगठन से है। गौण और अन्तिम कारण बाह्य कारण कहलाते हैं क्योंकि वे वस्तु से बाहर रहते हैं। उनका बाहर से वस्तु में आरोप किया जाता है। यह कारणता का सिद्धान्त अरस्तू के द्वारा अभिमत है। इसका वैज्ञानिक कारणता से विशेष सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। यह कारणता के सिद्धान्त के अतिरिक्त कारण का विश्लेषण प्रतीत होता है।

(१२) कारण और अवस्था

कारण किसी कार्य का अपरिवर्तनीय, निरुपाधि पूर्ववर्ती रूप होता है। इसका अभिप्राय यह है कि कारण उन सब अवस्थाओं का समूह है जो किसी कार्य की उत्पत्ति के लिये परमावश्यक है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि कारण उन सब पूर्ववर्ती अवस्थाओं का संग्रह है जिनके होने पर कार्य उत्पन्न होता है और जिनके अभाव में कार्य उत्पन्न नहीं होता।

---

(1) Internal cause (2) External cause.

इस समूह में जितनी पूर्व दशाएँ सम्मिलित है उनमें से प्रत्येक, जो कार्य के ऊपर अपना प्रभाव डालती है, अवस्था (Conditon) कहलाती है। अतः अवस्था कारण का एक आवश्यक अग है और इन अवस्थाओं का समूह कारण कहलाता है। अवस्था और कारण में अश और अशी का भेद है। अवस्था अश है और कारण अशी है। कारवेथ रीड ने अवस्था का लक्षण इस प्रकार किया है:—कारण का कोई आवश्यक अग अवस्था कहलाता है—कोई पदार्थ या कर्त्ता जो शक्ति का प्रयोग करता है या जो शक्ति का उपयोग करता है या जो शक्ति को परिवर्तन में लाता है, या जो शक्ति को प्रकाश में लाता है वह अवस्था शब्द से व्यवहार करने योग्य हो जाता है। साधारण रूप से हम यही कह सकते हैं कि **अवस्था वह दशा है जो कार्य के ऊपर कुछ प्रभाव डालती है।** कारण अंशी है और उसके अश अवस्थाएँ हैं। कारण का प्रत्येक अंश अवस्था कहलाने का पात्र है और वे सब अवस्थाएँ जो कार्योत्पत्ति में सहायक होती हैं कारण के नाम से कही जा सकती है।

अवस्थाएँ दो प्रकार की होती हैं (१) विध्यात्मक[1] और (२) निषेधात्मक[2]। **विध्यात्मक अवस्था वह है जिसके होने पर कार्य आवश्यक रूप से उत्पन्न होता है और निषेधात्मक अवस्था वह है जिसके अभाव होने पर या नहीं रहने पर कार्य की उत्पत्ति होती है।** कार्वेथ रीड के अनुसार विध्यात्मक अवस्था वह है जिसको हम, बिना कार्य के बिगाड़े, हटा नहीं सकते और निषेधात्मक अवस्था वह है जिसको हम, बिना कार्य के बिगाड़े या खराब किये हुए, शामिल नहीं कर सकते। इसका अर्थ यही है कि यदि कार्योत्पत्ति अपेक्षित है तो विध्यात्मक अवस्थाओं का विद्यमान रहना अत्यन्त आवश्यक है और निषेधात्मक अवस्थाओं का अभाव आवश्यक है। यदि इसके विपरीत विध्यात्मक अवस्थाएँ अविद्यमान हैं और निषेधात्मक अवस्थाएँ विद्यमान हैं तो कार्योत्पत्ति में अवश्य बाधा उपस्थित होगी। उदाहरणार्थ, मान लीजिये कि एक चित्र दीवाल से गिर जाता है। चित्र का दीवाल से गिरना एक घटना है। इस कार्य की उत्पत्ति

---

(1) Positive (2) Negative

के लिये निम्नलिखित विध्यात्मक अवस्थाओं का रहना आवश्यक है जैसे, दरवाजे को जोर से मारना, रस्सी की कमजोरी, जिससे चित्र लटक रहा है, चित्र का भारी होना हवा का वेग इत्यादि । यदि ये अवस्थाएँ वहाँ विद्यमान नहीं हों तो चित्र कभी नहीं गिर सकता । इसलिए इनको विध्यात्मक अवस्थाएँ कहा गया है । निषेधात्मक अवस्थाएँ इनके विपरीत ये हैं— चित्र का आधार कमजोर रस्सी के सिवाय और किसी का न होना किसी मनुष्य का वहाँ नहीं रहना जब कि चित्र गिरा हो जिससे कि वह उसको गिरने से बचा लेता ; हवा का मन्द वेग होना इत्यादि । यदि ये निषेधात्मक अवस्थाएँ वहाँ विद्यमान होतीं तो कार्य उत्पन्न नहीं होता । यदि वहाँ चित्र को पकड़ने के लिये कोई मनुष्य उपस्थित होता तो चित्र गिरने से बचा लिया जाता । इसी प्रकार कोई जहाज में बैठ कर इंगलैण्ड जा रहा है और रास्ते में जहाज डूब जाता है। उस समय तूफान का आना जहाज की मशिनरी का कमजोर होना कप्तान की असावधानी आदि विध्यात्मक अवस्थाएँ हैं और शान्त समुद्र, मशिनरी का ठीक होना कप्तान की सावधानी आदि निषेधात्मक अवस्थाएँ हैं । इस प्रकार किसी कार्य की उत्पत्ति में विध्यात्मक और निषेधात्मक दोनों प्रकार की अवस्थाओं का होना अत्यन्त आवश्यक है । दोनों के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

मिल महोदय के अनुसार कारण विध्यात्मक और निषेधात्मक अवस्थाओं के समूह को कहते हैं जो कार्य की उत्पत्ति के लिये परमावश्यक हैं । इस प्रकार यदि हमें उन अवस्थाओं का सम्यक् ज्ञान हो जाय तो हम कार्य और कारण का सम्बन्ध सरलता पूर्वक स्थापित कर सकते हैं । साधारण भाषा में कभी कभी हम किसी एक अवस्था को कारण कह कर पुकारते हैं और दूसरी दशाओं को अवस्था कहते हैं । इस प्रकार हम बहुत सी अवस्थाओं में से एक को चुन लेते हैं और उसको कारण का पद प्रदान कर देते हैं । तथा कभी कभी यह भी होता है कि हम उस अवस्था को, जो कार्य की उत्पत्ति के अव्यवहित सन्निहित रहती है कारण कह डालते हैं । इसके अतिरिक्त यह भी देखा जाता है कि हम कभी कभी

एक निषेधात्मक अवस्था को ही कारण मान बैठते हैं। जैसे, हम कहते हैं कि पहरेदार के चले जाने से चोरी हो गई। यदि पहरेदार होता तो चोरी न होती।

वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि यह कारण और अवस्थागत भेद सर्वथा निरर्थक है। क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टि से अवस्था और कारण में अंश और अशी का सम्बन्ध है। अवस्था कारण का अंश है और सब अवस्थाएँ चाहे वे विध्यात्मक हों या निषेधात्मक सब मिलकर कारण बनाती हैं। इसके अलावा हम यह भी अनुभव करते हैं कि वैज्ञानिक दृष्टिबिन्दु से यह सम्भव नहीं है कि हम सब निषेधात्मक अवस्थाओं का उल्लेख कर सकें। निषेधात्मक अवस्थाएँ वे हैं जिनका कार्य की उत्पत्ति के लिये अभाव आवश्यक है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की अवस्थाओं की सख्या सर्वथा अनिश्चित है। उन सब का निर्देश करना हमारे लिये अशक्य है। इसलिये ही मिल ने कहा है कि हम सब निषेधात्मक अवस्थाओं की गणना एक शीर्षक के अन्दर कर सकते हैं। अर्थात् उस अवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है जिसके अन्दर जितनी अवरोधक परिस्थितियाँ हैं उन सबका अभाव हो। यहाँ यह कहना भी अयुक्त न होगा कि जब हम विध्यात्मक अवस्थाओं का उल्लेख करते हैं तब क्या यह सम्भव है कि हम उन सब अवस्थाओं का वर्णन कर सकते हैं जिनका रहना अत्यन्त आवश्यक है। कभी कभी हम उन सब का उल्लेख भी नहीं करते जिनका उल्लेख करना आवश्यक है, और कभी कभी ऐसी अवस्थाओं का उल्लेख कर बैठते हैं जिनके उल्लेख करने से केवल हमारी विद्वत्ता की छटा अधिक दीखती है इसकी अपेक्षा कि हम उसकी आवश्यकता का अनुभव करें। उदाहरणार्थ, जब हम कहते हैं कि चित्र के दीवाल से गिरने में एक अवस्था यह थी कि उस समय पृथ्वी की आकर्षण शक्ति कार्य कर रही थी। इस प्रकार की अवस्था का उल्लेख करना केवल व्यक्ति की विद्वत्ता का सूचक है न कि आवश्यकता का। वास्तव में आवश्यक तो यह है कि हम केवल अत्यधिक सन्निकट अवस्थाओं का ही वर्णन करें और दूरवर्ती अवस्थाओं का वर्णन न करें। यह हम जानते हैं कि विश्व में जितने

पदार्थ हैं वे सब एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। अतः एक छोटी सी घटना का सम्बन्ध विश्व के सब पदार्थों से ही रहता है और वह विश्व के सब पदार्थों से सम्बन्धित होने के कारण विश्व का परिणाम कहा जा सकता है। अतः जब हम निषेधात्मक अवस्थाओं का वर्णन या उल्लेख करते हैं जो कारण की जाती हैं तब हम उन्हीं का निर्देश करते हैं जो अविहित पूर्ववर्ती अवस्थाएं हैं, क्योंकि कारण अविहित पूर्ववर्ती अवस्थाओं के समूह को कहते हैं। इस विचार से यह स्पष्ट हो जाता है कि कारण और अवस्थाओं का भेद कोई विशेष वैज्ञानिक महत्व नहीं रखता है। हमें केवल उन्हीं अवस्थाओं का उल्लेख करना चाहिए जो कार्य के अविहित पूर्ववर्ती हों।

(१४) गतिमती शक्ति और सामग्री

शक्ति की यथार्थस्थिता के सिद्धान्त के अनुसार किसी कार्य के कारण के विश्लेषण करने पर दो भाग स्पष्ट प्रतीत होते हैं:—(१) गतिमती शक्ति और (२) सामग्री। गतिमती (Moving power) वह शक्ति है जो कार्य में गति पैदा करती है या उसमें उत्तेजना पैदा करती है। सामग्री उसे कहते हैं जिसमें अवस्थाओं का प्रबन्ध किया जाता है जिससे कि गतिमती शक्ति उसमें कार्य कर सके। और उसमें परिवर्तन पैदा कर सके। हम पहले बतलाया जा चुका है कि कारण शक्ति की यथार्थस्थिता के सिद्धान्त के अनुसार सिवाय इसके कुछ नहीं है कि एक शक्ति के रूप को दूसरे रूप में परिवर्तित कर देना। इससे यह स्वयं स्पष्ट है कि गतिमती शक्ति वह है जो कारण का एक आवश्यक भेद है किन्तु इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि अवस्थाओं का उचित प्रबन्ध हो जिसमें कि गतिमती शक्ति अपना कार्य कर सके। उदाहरणार्थ, यदि एक दियासलाई कुछ स्फोटक द्रव्यों में जला कर रख दी जायगी तो तुरन्त वहाँ धड़ाका होगा। इसमें जलती हुई दियासलाई तो गतिमती शक्ति है और स्फोटक द्रव्य सामग्री है। इसमें धड़ाका रूप कार्य पैदा किया गया है जो जलती हुई दियासलाई के लगाने से स्फोटक द्रव्यों में पैदा हुआ है। यदि दियासलाई जला कर न लगाई जाती तो धड़ाका पैदा नहीं होता। इसी प्रकार यदि

स्फोटक द्रव्यों का समूह न होता तो भी धड़ाका पैदा न होता। यदि एक जलती हुई दियासलाई जल में फेंक दी जाय तो कुछ असर नहीं होगा। वह केवल बुझ जायगी। उसी प्रकार यदि स्फोटक द्रव्यों पर पानी फेंक दिया जाय तब भी धड़ाका पैदा नहीं हो सकता। अतः शक्ति की यथावस्थितता के दृष्टिबिन्दु से गतिमती शक्ति और सामग्री दोनों की अत्यन्त आवश्यकता है। किसी एक के अभाव में कार्योत्पत्ति नहीं हो सकती। अत. यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कारण में गतिमती शक्ति और सामग्री दोनों का आवश्यकता है। क्योंकि दोनों के होने पर ही कार्य की उत्पत्ति हो सकती है।

यद्यपि कभी कभी जन साधारण की भाषा में हम केवल गतिमती शक्ति को कारण कह बैठते हैं या सामग्री को कारण कह बैठते हैं, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिबिन्दु से ये दोनों विचार असतोष-जनक और अपरिपूर्ण हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से कारण गतिमती शक्ति और सामग्री का समूहात्मक रूप है। दोनों के सम्मिलित होने पर ही कार्योत्पत्ति हो सकती है।

(१५) कर्ता और करणीय

तर्क शास्त्र में कारण के विचार के समय यह भी देखने मे आता है कि एक कर्ता[1] होता है और दूसरा करणीय[2]। **जो वस्तु कार्य कारिणी होती है उसे कर्ता कहते हैं और जिसपर कार्य किया जाता है उसे करणीय कहते हैं।** उदाहरणार्थ जैसे किसी मनुष्य ने संखिया खा लिया है। यहाँ संखिया कर्ता कहलाता है और नाड़ी-तन्त्र करणीय कहलाता है क्योंकि संखिया नाडी तन्त्र पर प्रभाव डालता है। उसी प्रकार जलती हुई दियासलाई को हम कर्ता कह सकते है और स्फोटक सामग्री को करणीय कहा जा सकता है।

मिल महोदय के अनुसार यह कर्ता और करणीय का भेद सर्वथा निरर्थक है। जिस प्रकार गतिमती शक्ति और सामग्री का भेद कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। यह भी करीब करीब उसी प्रकार का भेद है। क्योंकि वैज्ञानिक

(1) Agent (2) Patient

शक्ति से पृथक् कोई अर्थ नहीं है। प्रतीत होता है कि इस कर्ता और करणीय का आधार यह है कि कर्ता तो शक्ति का वास्तविक स्रोत है और करणीय केवल निष्क्रिय अवस्था है और उसमें कोई शक्ति नहीं है। किन्तु यह विचार सर्वथा ग़लत है। क्योंकि शक्ति की यथापरिस्थता के सिद्धान्त के आधार पर विचार करने से प्रतीत होगा कि जिसको हम करणीय और निष्क्रिय कहते हैं वह यथार्थ में अव्यक्त शक्ति या निष्क्रिय शक्ति का क्षेत्र है और निष्क्रिय शक्ति कार्योत्पत्ति में उसी प्रकार सहायक होती है जैसे कि कर्ता या व्ययकारिणी शक्ति। यद्यपि जनसाधारण की भाषा में हम कीटाणु को मृत्यु का कारण कहते हैं और उसी को मृत्यु करनेवाले के नाम से निर्देश करते हैं किन्तु हम यह नहीं जानते कि हमारा नाड़ी-तन्त्र भी मृत्यु में उतना ही सहायक है जितना कि कीटाणु। इसलिये करणीय को हम निष्क्रिय कदापि नहीं कह सकते। अतः यह मिल की उपपत्ति सर्वथा युक्ति-युक्त है कि कर्ता और करणीय का भेद केवल शाब्दिक है। कभी कभी तो यहाँ तक देखा जाता है कि जो कर्ता है वही करणीय भी कहा जा सकता है और जो करणीय है वह कर्ता भी कहा जा सकता है।

(१६) कारणता के सिद्धान्त

जहाँ तक कारणता का सम्बन्ध है हम कारणता का तीन रूप से विचार कर सकते हैं (१) जनसाधारण कारणता का स्वरूप (२) वैज्ञानिक कारणता का स्वरूप और (३) शक्ति की यथापरिस्थता स्वरूप कारणता। अब हम इनका पृथक् पृथक् विवेचन करते हैं:—

(१) जनसाधारण कारणता का स्वरूप—जनसाधारण की दृष्टि इतनी सूक्ष्म नहीं होती जितनी कि वैज्ञानिक की। हम लोग कारण का बहुत स्थूल रूप समझते हैं। यथा जनसाधारण की दृष्टि में किसी कार्य का कारण कोई एक अवस्था होती है जिसको अन्य अवस्थाओं में से चुन लिया जाता है और वो वास्तव में तत्क्षण ऐसी प्रतीत होती है कि मानों इसी के निमित्त से कार्य उत्पन्न हुआ हो। यह उदाहरण मिल महोदय ने दिया है। उदाहरणार्थ एक मनुष्य मकान की छत से गिर गया। यह कहा जाता है कि मैं

पैर के फिसलने के कारण मैं गिरा और यही मेरी मौत का कारण हुआ है। यह जनसाधारण भाषा में कारण समझा जाता है क्योंकि वे कहते हैं कि यदि उसका पैर न फिसलता तो उसकी मौत न होती। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि वहाँ कई अवस्थाएँ थीं जिन्होंने मिलकर उसकी मृत्यु पैदा की और उनमें से एक पैर का फिसलना भी था। यदि सारी हालतों पर विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि वह मनुष्य कमज़ोर होगा, वह अपने शरीर के संतुलन को ठीक न कर सका होगा, उसका वज़न अधिक होगा, मकान की ऊँचाई अधिक होगी, इत्यादि। उनमें से एक अवस्था पैर का फिसलना भी होगी। किन्तु सामान्य व्यवहार के लिये हम इतना ही कह कर छोड़ देते हैं कि उसकी मृत्यु तो पैर के फिसलने से ही हुई है। अवशिष्ट तमाम अवस्थाओं का हम बिलकुल विचार नहीं करते। उसी प्रकार मान लीजिये कि युद्ध में हार गये जैसा कि जर्मनी में हुआ। वहाँ हम यही कह कर छोड़ देते हैं कि यदि हिटलर रूस पर आक्रमण न करता तो उसकी हार न होती। सम्भव है,—सम्भव क्या, ठीक है। वहाँ अन्य भी कारण हो सकते हैं जिनके कारण जर्मनी की हार हुई हो। कमांडरों ने धोखा दिया हो, जर्मनी की आर्थिक परिस्थिति बिगड़ गई हो, सर्दी के काल में जर्मन सिपाही न लड़ सके हों, रूस की सेना अधिक बलवती हो, इत्यादि। किन्तु हम सबको छोड़कर केवल यही कह कर चुप हो जाते हैं कि यदि हिटलर रूस पर आक्रमण न करता तो जर्मनी की हार न होती।

वैज्ञानिक दृष्टि से यह कारणता का विचार अत्यन्त ढीलाढाला है। यह बतला आये हैं कि कारण वैज्ञानिक ढंग से सब अवस्थाओं का, चाहे वे विध्यात्मक हों या निषेधात्मक, समूह होता है। इसको छोड़कर चाहे अन्य अवस्था कितनी ही बलवती क्यों न हो हम उसे कारण मानने के लिये तैयार नहीं हैं।

(२) कारणता का वैज्ञानिक स्वरूप—कारणता का वैज्ञानिक रूप पहले विशद रूप से प्रतिपादित किया जा चुका है। फिर भी उसका लक्षण कारवेथ रीड ने इस प्रकार किया है। "वैज्ञानिक दृष्टि से कारण, अपरिवर्तनीय निरुपाधि सन्निहित पूर्वगामी कार्य की अवस्था कहलाती है" मिल

की भाषा में हम उसे कह सकते हैं कि कारण विध्यात्मक और निषेधात्मक सब अवस्थाओं का समूह है जिसके होने पर कार्य होता है और जिसके न होने पर कार्य नहीं होता। यह उन अवस्थाओं का समूह है जो कार्य के उत्पादन में सर्वथा समर्थ होता है और जिसमें अन्य अवस्थाओं की कोई आवश्यकता नहीं होती जैसा कि मिल ने प्रतिपादन किया है कि कारण, वैज्ञानिक अनुसंधान क्षेत्र में, उन अवस्थाओं का पूर्ण समूह है जो कार्योत्पत्ति के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। जिनके विद्यमान होने पर कार्य उत्पन्न होता है और जिनके अभाव में कार्योत्पत्ति का भी अभाव हो जाता है।

साधारण पुरुष जिन अवस्थाओं को छिपा देता है वैज्ञानिक उन सबको खोल कर स्पष्ट विवेचन करता है तथा कारण के रूप में उन सबको सम्मिलित कर लेता है। यदि कोई अवस्थाएँ रह भी जाती हैं तो उसका कारण यह है कि या तो वे इतनी प्रसिद्ध अवस्थाएँ हैं जिनको प्रत्येकव्यक्ति जानता है और उनकी कोई भी अवहेलना नहीं कर सकता या वे इतनी दूर हैं कि उनका विवेचन करने की आवश्यकता ही नहीं है। अतः यह निश्चय करने के लिये कि जो मनुष्य छत से गिर गया था और मर गया था उसके विषय में वैज्ञानिक इतना ही पर्याप्त समझता है कि विध्यात्मक अवस्थायें और निषेधात्मक भी उनका पूर्ण उल्लेख कर दे। जैसे, मनुष्य के शरीर का भारी होना मकान की ऊँचाई शरीर की दुर्बलता इत्यादि ये विध्यात्मक अवस्थाएँ हैं। तथा आधार का अभाव चतुरता का अभाव इत्यादि ये निषेधात्मक अवस्थाएँ हैं।

(५) शक्ति की यथावस्थितास्वरूप कारणता—शक्ति की यथावस्थितता की दृष्टि से कारणता का अर्थ है एक निश्चित परिमाण में कारण के रूप में शक्ति का परिवर्तन करना। यह पहले बतलाया जा चुका है कि शक्ति का सम्पूर्ण परिमाण स्थिर और अचल है। यह न तो बढ़ाया जा सकता है और न घटाया जा सकता है। तथापि इसके रूपों में परिवर्तन हो सकता है। यथार्थ में देखा जाय तो इसी परिवर्तन की प्रक्रिया में कार्य समारम्भ होता है। अतः यह मानना पड़ेगा कि कार्य वही है जो कि कारण है; केवल रूप भिन्न होता है। परिमाण

के दृष्टिविन्दु से कारण और कार्य समान होते हैं इसलिये कार्य, कारण के भिन्नरूप के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

(१७) वहुकारणवाद

क्या वहुकारणवाद सम्भव है? क्या वही कार्य अनेक कारणों से उत्पन्न हो सकता है? व्यावहारिक मनुष्य विचार करता है कि यह सम्भव है। उसके अनुसार वहुकारणवाद का अर्थ है **कि वही कार्य अनेक कारणों से भिन्न भिन्न अवस्थाओं में उत्पन्न हो सकता है।** कारवेथ रीड इसका लक्षण और व्याख्या इस प्रकार करते हैं:—'**वही कार्य अनेक भिन्न समयवर्ती कारणों से उत्पन्न हो सकता है**' अर्थात् अनेक निर्धारित कारण उसकी उत्पत्ति में सहायक होकर वही कार्य पैदा कर सकते हैं। उदाहरणार्थ—मृत्यु अनेक कारणों से उत्पन्न हो सकती है। किसी व्यक्ति की मृत्यु तपेदिक से हो सकती है, किसी की मृत्यु महामारी से हो सकती है, किसी की विष से भी मृत्यु हो सकती है। मृत्यु चोट से भी हो सकती है। उसी प्रकार प्रकाश विद्युत से भी हो सकता है, सूर्य से भी हो सकता है, चन्द्र से भी हो सकता है, मणि से भी हो सकता है। वेहोशी रक्तशोष से हो सकती है, शोक से हो सकती है, हिस्टीरिया से हो सकती है, अत्यन्त तीव्र वेदना से भी वेहोशी हो सकती है। इन सब उदाहरणों में वही कार्य भिन्न भिन्न कारणों से उत्पन्न हुआ है। वास्तव में वहु-कारणवाद का सिद्धान्त मिल ने प्रतिपादित किया था। वह इस सिद्धान्त का इस प्रकार वर्णन करता है—"यह कहना सत्य नहीं है कि एक कार्य एक ही कारण से सम्बद्ध होता है या प्रत्येक कार्य एक ही प्रकार से पैदा किया जा सकता है। इस प्रकार के अनेक तरीके हैं जिनमें कार्य पैदा किया जा सकता है।" कई कारण यान्त्रिक गति पैदा करने में समर्थ हो सकते हैं। अनेक कारण उसी प्रकार का इन्द्रिय सवेदन पैदा कर सकते हैं। इसी प्रकार मृत्युरूप कार्य के अनेक कारण हो सकते हैं।

यहाँ इतना भेद समझना आवश्यक है कि वहुकारणवाद का यह अर्थ नहीं है कि कई कारण मिलकर एक कार्य को पैदा करते हैं या वहुत सी अवस्थाएँ सम्मिलित होकर कार्य को उत्पन्न करती हैं। इसका तो केवल

इतना ही अर्थ है कि एक कार्य अनेक भिन्न-भिन्न कारणों से अभी का में पैदा किया जा सकता है।

क्या कारण है कि सामान्य मनुष्य यह सोचता है कि भिन्न-भिन्न कारण उसी कार्य को पैदा करते हैं और बहुकारणवाद एक सत्य सिद्धान्त है? इस प्रश्न पर वैज्ञानिक विधि से यदि विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि यह सिद्धान्त ठीक नहीं है; क्योंकि इसका आधार कार्य के सच्चे स्वरूप को न समझने के कारण से है। यह कहा जाता है कि वही कार्य भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न भिन्न कारणों से पैदा किया जा सकता है। यदि सम्यक् रूप से विचार किया जाय तो मालूम होगा कि कार्य एक अवस्था नहीं है। जिस प्रकार कारण कई अवस्थाओं का समूह है उसी प्रकार कार्य भी भिन्न-भिन्न परिणामों का समूह है। अतः यह जानना चाहिये कि मृत्यु जो तपेदिक के कारणों से उत्पन्न हुई है वह भिन्न प्रकार की मृत्यु है और जो प्लेग से मृत्यु हुई है उसका स्वरूप सर्वथा भिन्न है। मृत्यु तो सब अवस्थाओं में होती है किन्तु मृत्यु के अनन्तर जो डाक्टरी की परीक्षा होती है उससे यही निश्चित किया जाता है कि यह किस प्रकार की मृत्यु है। अतः हम मृत्यु के स्वभाव पर सम्यक् विचार करें तो प्रतीत होगा कि मृत्यु भिन्न-भिन्न कारणों से भिन्न-भिन्न प्रकार की पैदा होती है। प्रत्येक अवस्था में उसी प्रकार की मृत्यु होना असम्भव है। इसलिये यदि हम कारण का पूर्ण विचार करते हैं तो हमें कार्य का भी पूर्ण विचार करना चाहिये। इस प्रकार करने पर हमें भिन्न भिन्न कारणों से उत्पन्न भिन्न-भिन्न प्रकार की ही मृत्यु मालूम होगी; एक प्रकार की नहीं। अतः इस सिद्धान्त की निरर्थकता सिद्ध करने के लिये यह आवश्यक है कि हम कार्य का पूर्ण रूप से विचार करें। कार्य के समग्र रूप पर विचार करने से, कारण एक ही प्रतीत होगा अनेक नहीं। एक ही कार्य के लिये अनेक कारणों की कल्पना सर्वथा निस्सार सिद्ध हो जायगी।

दूसरा तरीका इस सिद्धान्त की निरर्थक सिद्ध करने का यह है कि हम कारण का सामान्यीकरण करें। अब हम देख चुके हैं कि बहुकारणवाद के समर्थक तार्किक कार्य के केवल एक भाग पर ही दृष्टि डालते हैं और

वे इसकी सहचारी अन्य अवस्थाओं पर ध्यान नहीं देते जो इसके अंश हैं।' यदि हम कार्य का आंशिक विचार करते हैं तो हमें कारण का भी आंशिक विचार करना चाहिये। कारण के सामान्यीकरण का यही अर्थ है। कारण के सामान्यीकरण का यह भी अर्थ है कि हम कारण की समग्र अवस्थाओं को विचार में नहीं लेते हैं जिनसे कि कारण बनता है किन्तु हम केवल एक ही अवस्था को ग्रहण कर लेते हैं जो सब कारणों में समान होती है। इस प्रकार अनेक भिन्न-भिन्न मृत्यु के कारण, केवल एक ही समान अवस्था रखते हैं और सब मृत्यु की घटनाओं में एक ही नाड़ी-तन्त्र विघटित हो जाता है। यह नाड़ीतन्त्र का विघटन, कारण के समूह में इस प्रकार बतलाया जा सकता है कि यह कारण में विद्यमान होता हुआ कार्य में भी विद्यमान रहता है। इस प्रकार हम स्पष्ट कह सकते हैं कि किसी कार्य का एक ही कारण हो सकता है, और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बहुकारणवाद का सिद्धान्त, केवल कार्य और कारण के सम्यक् स्वरूप को न समझने के कारण पैदा होता है। हमारी गलती यह होती है कि हम कार्य का तो पूर्ण विचार नहीं करते और कारण का पूर्ण विचार कर बैठते हैं। होना यह चाहिये कि जब हम कारण का पूर्ण विचार करते हैं तो कार्य का भी पूर्ण विचार करना चाहिये। जब हम कार्य के सम्पूर्ण अंशों पर विचार करेंगे तब हमें मालूम होगा कि समग्र कार्य का एक ही कारण है, अनेक नहीं। यदि हम कारण का आंशिक विचार कर लेते हैं और कार्य का भी आंशिक विचार कर लेते हैं तब भी यही प्रतीत होगा कि प्रत्येक कार्य का एक ही कारण होता है।

इसके अतिरिक्त बहुकारणवाद का सिद्धान्त इसलिये भी सदोष है कि इसकी कारणता के लक्षण से संगति नहीं बैठती। क्योंकि कारण अपरिवर्तनीय, निरुपाधि-सन्निहित-पूर्ववर्ती कार्य की अवस्था को कहते हैं। यदि उसी प्रकार की मृत्यु भिन्न भिन्न अवस्थाओं में पैदा की जा सकती है तो कारण को अपरिवर्तनीय नहीं कहा जा सकता किन्तु यह समय-समय पर परिवर्तनीय हो जायगा और यह सर्वथा असम्भव है। अतः यह सिद्ध

है कि ऐसा मानने पर कारणता का सिद्धान्त अपरिवर्तनीयता के साथ सामञ्जस्य नहीं रखता।

उपर्युक्त विवेचन से यह सर्वथा स्पष्ट है कि कारणता का सिद्धान्त बहुकारणवाद से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। कारवेथ रीड ने ठीक कहा है कि कारणता का सिद्धान्त वैज्ञानिक आधार पर अवलम्बित है और बहुकारणवाद का वैज्ञानिक आधार कोई नहीं है। यदि हम घटनाओं को अच्छी तरह जान लें तो हमें मालूम होगा कि प्रत्येक कार्य का एक ही कारण हो सकता है और कार्य का क्रम और कारण का क्रम सर्वथा एक रूप है, चाहे हम आगे विचार करें या पीछे विचार करें। बेन महोदय का इस विषय में बिलकुल स्पष्ट मत है कि बहुकारणवाद का सिद्धान्त केवल हमारे अधूरे ज्ञान का नमूना है। इसमें वैज्ञानिक सत्यता का सर्वथा अभाव है। हाँ, इतना अवश्य है कि व्यवहार जगत् में बहुकारणवाद का सिद्धान्त अवश्य ही कुछ अड़चनें पैदा करता है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से इससे हमें सदा सावधान रहना चाहिये। मिलन महोदय भी यही मानते हैं कि व्यवहार में हमें इससे सावधान रहना चाहिये।

(१६) कारण समुच्चय और कार्यसंमिश्रण

साधारण रीति से जब कई कारण होते हैं तो उनके अनुसार कई अलग कार्य भी होते हैं। जैसे हमने किसी मनुष्य को ४ गोली मार दी तो उसके भिन्न भिन्न स्थानों पर ४ अलग अलग निशान भी होंगे, क्योंकि प्रत्येक निशान के लिये अलग अलग चोट की आवश्यकता है। इस उदाहरण में प्रत्येक कारण अलग अलग काम कर रहा है और उसके अनुसार उसके कार्य भी अलग अलग प्रतीत हो रहे हैं। किन्तु प्रकृति के अन्दर कार्य इतने सरल नहीं हैं जितने कि हमें प्रतीत होते हैं। अतः यह प्रायः देखा जाता है कि कई कारण इकट्ठे मिलकर एक मिश्रित कार्य को भी उत्पन्न करते हैं। इन्हीं हम कारण समुच्चय (Conjunction of causes) कहते हैं और इनके अलग कार्यों को हम कार्य संमिश्रण (Inter mixture of effects) कहते हैं। इस विचार से यह मालूम पड़ता है कि कारण समुच्चय के सिद्धान्त से कार्य संमिश्रण का सिद्धान्त अपने आप पैदा होता है।

कारण समुच्चय का सिद्धान्त और बहुकारणवाद में आपस में बहुत अन्तर है। इनके समझने में गड़बड़ नहीं करना चाहिये। बहुकारणवाद के सिद्धान्त के अनुसार भिन्न-भिन्न कारण स्वतन्त्र रीति से अलग अलग कार्य करते हुए भिन्न-भिन्न समय पर वही कार्य पैदा करते हैं। जैसे मृत्यु रूप वही कार्य, प्लेग, तपेदिक, हैज़ा, विष आदि से पैदा हो सकता है। इसके विपरीत, कारण समुच्चय के सिद्धान्त के अनुसार भिन्न भिन्न कारण एक साथ कार्य करते हुए एक मिश्रित कार्य उत्पन्न करते हैं जिसको उन्हीं में से कोई एक कारण उत्पन्न नहीं कर सकता। जैसे, शराबरूप कार्य महुआ, जौ, गुड़ आदि के मिश्रण से पैदा किया जाता है। यह कारण समुच्चय का सिद्धान्त है।

कारण समुच्चय का सिद्धान्त दो रूपों में प्रकट होता है और उसी के अनुरूप दो प्रकार का कार्य मिश्रण होता है:—(१) समान-जातीय और (२) भिन्न-जातीय।

(१) **समानजातीय कार्य-समिश्रण**। विश्व बड़ा पेचीदा है, इसमें कार्य कभी सरल नहीं होते। कारणसमुच्चय के कारण कार्यसमिश्रण होता है। समानजातीयकार्य-समिश्रण निम्नलिखित प्रक्रिया से उत्पन्न होता है। **जब दो या दो से अधिक कारण एक साथ कार्य करते है जिससे कि मिश्रित कार्य उसी प्रकार का होता है और उसके परिणाम अलग अलग होते हैं। तब यह कार्य का समिश्रण समानजातीय-कार्य समिश्रण (Homogenous Intermixture of Effects) कहलाता है।** इस उदाहरण में प्रत्येक मिश्रित कारण अपने अपने नियम के अनुसार कार्य करता हुआ मिश्रित कार्य मे परिणत हुआ है और उन सब ने मिलकर मिश्रित कार्य उत्पन्न किया है जो भिन्न-भिन्न कार्यों के जोड़ के बराबर है। इसमें प्रत्येक कार्य के कारण का पता लगाया जा सकता है। इस प्रकार का मिश्रित कार्य समानजातीय कार्य कहलाता है क्योंकि इसमे कारण और कार्य एक ही प्रकार के है। ऐसे कार्यों के उदाहरण आपको यान्त्रिक-शास्त्र और भौतिक-शास्त्र की पुस्तकों में मिल जायँगे। जैसे, एक कमरे

में हमने २५ वाट की बिजली की बत्ती जलाई और उसी में एक ७५ वाट की बिजली की बत्ती और जलाई हम देखेंगे कि दोनों की मिश्रित रोशनी १   वाट की हुई। एक मनुष्य २५ सेर भार ले जा रहा है; उसके ऊपर १५ सेर और लाद दिया गया। दोनों का मिलकर ५ सेर का भार बन गया। दो रेलवे के इंजन, जिनकी प्रत्येक की शक्ति २५ अश्वों के बराबर है एक रेलगाड़ी को खींच रहे हैं। दोनों की मिलकर चाल, एक से खींचनेवाली की अपेक्षा दूनी होगी। यदि ५ सेर पानी २ सेर बालू में डाल दिया जाय तो दोनों का वज़न मिलकर सात सेर का जायगा। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भिन्न भिन्न कारण मिलकर सर्वथा मिश्रित कार्य उत्पन्न करते हैं और उपरोक्त उदाहरणों में उसी प्रकार के कारणों से उसी प्रकार का कार्य पैदा किया गया है किन्तु कार्य और कारण बराबर हैं अतः इन कार्यों को हम समानजातीयकार्यसंमिश्रण कहते हैं।

(२) भिन्न जातीय कार्य-संमिश्रण—विश्व की जटिलता के कारण हमें कार्य भी जटिल दृष्टिगोचर होते हैं। जब दो या दो से अधिक कारण मिलकर किसी कार्य को पैदा करते हैं जिससे कि उनका मिश्रित कार्य उनसे भिन्न होता है तब इस प्रकार का कार्यमिश्रण भिन्नजातीयकार्यसंमिश्रण कहा जाता है। इस प्रक्रिया में यह होता है कि भिन्न भिन्न कारणों के भिन्न भिन्न कार्य अन्तर्धान हो जाते हैं और उनका मिलकर एक नया कार्य दृष्टि में आता है। इस प्रकार का संमिश्रण भिन्नजातीयसंमिश्रण कहलाता है और इसके उदाहरण हमें रासायनिक शास्त्र तथा जीवितपदार्थसम्बन्धीशास्त्र की पुस्तकों में मिल जायँगे। जैसे हमने दो गैसों को लिया—कुछ भाग आक्सीजन का और कुछ भाग हाइड्रोजन का और दोनों के मिलाने से पानी बना लिया। जब इस विधि से पानी बनाया जाता है तब पानी बनने पर दोनों गैसों का और निशान अवशिष्ट नहीं रहता उनके स्थान पर एक सर्वथा नवीन पदार्थ दृष्टिगोचर होता है जो रूप और स्वभाव में दोनों गैसों से सर्वथा भिन्न होता है। यहां नहीं पानी के गुण गैसों के गुणों से सर्वथा भिन्न होते हैं। उसी प्रकार जब मनुष्य किसी प्रकार का भोजन करता है और उसे

पचाकर अपने रूप परिणत कर लेता है। तब हम देखते हैं कि इस प्रक्रिया में लाया हुआ पदार्थ सर्वथा अपने से भिन्न रूपों में परिवर्तित हो जाता है जिससे परिवर्तित पदार्थों के साथ कोई समानता नहीं होती, अर्थात् भोजन से ही रक्त, मज्जा, हड्डी आदि बन जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि यहाँ भिन्न कारणों के सम्मिलित होने पर जो कार्य उत्पन्न हुआ है वह सर्वथा भिन्न है। अतः इसको विजातीय या भिन्नजातीय कार्यसम्मिश्रण कहते है।

कार्यसम्मिश्रण के नाम के बारे में तार्किकों का आपस में मतभेद है हमने इसका नाम कार्य-सम्मिश्रण रखा है क्योंकि इसमें अनेक कारण मिलकर मिश्रित कार्य उत्पन्न करते हैं, चाहे यह मिश्रित कार्य समान जातीय हो या भिन्न जातीय। मिल महोदय ने इसका नाम 'कारण रचना' (Composition of causes) रक्खा है। नाम कोई रक्खा जाय, प्रक्रिया एक ही है। यहाँ मिल का अभिप्राय यह है कि वह केवल समान-जातीय कार्यों के लिये ही कारण-रचना का नाम उपयुक्त समझता है। भिन्न-जातीय कार्यों को वह कारण-रचना से बाहर समझता है।

(१७) कारण और कार्य का पारस्परिक सम्बन्ध

व्यवहार में हम देखते हैं कि जिन घटनाओं में परस्पर कार्य कारण-भाव का सम्बन्ध होता है उनके समझने में कभी कभी बड़ी कठिनाई होती है। हम नहीं समझ पाते कि कारण कौन है और कार्य कौन। क्योंकि कार्य को भी हम किसी दृष्टि से कारण समझ सकते हैं और किसी दृष्टि से कार्य, उसी प्रकार कारण को भी किसी दृष्टि से कार्य समझ सकते हैं और किसी दृष्टि से कारण। दोनों घटनाएँ परस्पर कार्य और कारण कही जा सकती हैं। इस प्रकार क, ख का कारण हो सकता है और ख, क का कारण हो सकता है। एक यथार्थ उदाहरण लीजिये, जैसे, आक्सीजन और हाइड्रोजन दोनों मिलकर पानी बनाते हैं और पानी आक्सिजन और हाइड्रोजन को बनाता है। दूसरा उदाहरण यह है कि चरित्र हीनता दरिद्रता की कारण हो सकती है और दरिद्रता चरित्र हीनता का कारण हो सकती है। इसको हम कारण कार्य का पारस्परिक सम्बन्ध कहते हैं। इसके उदाहरण हमें और भी मानसिक, राजनैतिक, और आर्थिक क्षेत्र में

मिल सकते हैं। जैसे, मितव्ययिता से व्यापार बढ़ता है और व्यापार मितव्ययिता बढ़ती है। सांस्कृतिक विकास शिक्षा का कारण हो सकता और शिक्षा सांस्कृतिक विकास का कारण हो सकती है। इनसे हमें का और कारण का आपस में सम्बन्ध प्रतीत होता है।

इस सम्बन्ध में मिस्टर लूई (Lewis) का मत उल्लेखनीय है वे लिखते हैं व्यापार का सम्पादन धन पैदा कर सकता है तथा धन उपार्जन व्यापार में सहायक हो सकता है। अध्ययन करने की प्रवृ बुद्धि को प्रखर बनाती है और बुद्धि की प्रखरता पुनः अध्यय के लिये रुचि पैदा कर सकती है। प्रजा की अधिकता से अधि वृद्धि, श्रमिकों को निर्धन बनाती हुई उनके रहन सहन का कारण सकती है और पुनः उनका अधःस्तर, निर्धनों के आचरण को ही बनाता हुआ प्रजावृद्धि में सहायक हो सकता है। साधारण बुद्धि मताधिकारियों या मनुष्यों में होना अच्छी सरकार कायम करने में सहा हो सकता है और अच्छी सरकार इसके बदले में प्रजा की बुद्धि वृद्धि सहायक हो सकती है और उसके द्वारा जनता में सद्विचार उत्पन्न हो स हैं। शराबखोरी प्रायः अल्पबुद्धि के कारण देखती है और अल्पबुद्धि इस बदले में शराबखोरी में सहायक होती है और इसकी आदत को दृढ़ बना है, इत्यादि। प्लेटो ने भी इस प्रकार के उदाहरण दिये हैं। वह लिखता "शिक्षा मनुष्य स्वभाव को उन्नत करती है और उन्नत मनुष्य स्वभा शिक्षा ग्रहण करता है। राष्ट्रीय चरित्र कार्य भी है और कारण भी है। उन अवस्थाओं पर असर डालता है जिनसे यह पैदा होता है। किसी रा की दैहिक विशेषताएँ, उसकी जाति, शारीरिक बनावट, जलवायु आदि इत्यादि मिलकर उस राष्ट्र के चालचलन को बनाते हैं जिसके आधार कुछ संस्थाओं का निर्माण होता है। ऐसी संस्थाएँ घरेलू हों चाहे राजनैति हों, उन सबका आधार यह चरित्र ही होता है। ये संस्थाएँ उस आचरण बना देती हैं उसको स्थिर रखने में सहायता करती हैं और उसको पुनः पै

(1) Low standard.

करती हैं जिनसे ये उत्पन्न हुई थीं। इस प्रकार हम देखेंगे कि कार्य और कारण परस्पर सम्बन्धित रहते हैं। इसी प्रकार एक बहादुर, उत्साही, अशान्त राष्ट्र, जब बाहर के आक्रमण से आच्छादित रहता है तब अपनी सेना को सगठित करता है। यह सगठित सेना पुनः युद्धभावना को जाग्रत करती है। यह युद्धभावना पुनः सैनिक सगठन की सहायता करती है और उसके द्वारा अन्य प्रदेशों पर विजय प्राप्त की जाती है जो उसका परिणाम कहा जा सकता है। यह प्रत्येक क्रमानुसार होनेवाला परिणाम, पूर्व कारण को पैदा करता जाता है और आगे के कार्य का कारण बनता जाता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण इस बात के निदर्शक हैं कि कार्य और कारण आपस में सम्बन्धित हैं। इसको ही कार्य कारण का पारस्परिक सम्बन्ध कहते हैं।

(१८) प्रवृत्ति (Tendency)

यह हम देख चुके है कि समानजातीय कार्यों का समिश्रण, जो दो या अधिक शक्तियों से मिलकर पैदा हुआ है, वह उनके भिन्न कार्यों का योग है। यह स्पष्ट मालूम होता है जब कि दो शक्तियाँ उसी दिशा में कार्य कर रही हैं, किन्तु कल्पना कीजिये यदि दो बराबर की शक्तियाँ भिन्न-भिन्न दिशाओं में कार्य कर रही हैं तब जिस वस्तु पर ये दोनों शक्तियाँ कार्य कर रही हैं उसकी गति रुक जायगी अर्थात् दोनों में एक इसको एक तरफ खींचेंगी और दूसरी, दूसरी ओर। इस प्रकार हमें प्रत्यक्ष रूप से यह मालूम होगा कि वस्तु की गति रुकी हुई है और स्थिति उसी प्रकार की है जैसे पहले थी, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हो रहा है—वास्तव में दोनों शक्तियाँ अपने-अपने कार्य पैदा कर रही है जोकि दोनों एक दूसरे के प्रभाव को रोक रही हैं। अब यहाँ एक प्रतिरोधिनी शक्ति, प्रवृत्ति में दृष्टि गोचर होती है।

प्रवृत्ति एक कारण है जो किसी कार्य को उत्पन्न करती है जब तक कि विरोधी कारण उसकी गति में रुकावट न डालें। वेन प्रवृत्ति (Tendency) का लक्षण इस प्रकार करते हैं :—सब भौतिक पदार्थ में यह प्रवृत्ति होती है कि सब पृथ्वी पर गिरना चाहते

हैं। सब कार्यों में यह प्रवृत्ति होती है कि वे अपना समतल रखना चाहते हैं। जलप्रपात पृथ्वी की ओर झुकना चाहता है। मनुष्यों में अपने स्वार्थ की सिद्धि करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। स्वेच्छाचारी शासकों में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। ये प्रवृत्तियाँ, जब तक इनके परिणामों का फल नहीं मिलता है तब तक नष्ट नहीं होतीं। होता यह है कि उनकी प्रतिरोधिनी शक्तियाँ उनके कार्यों को रोक देती हैं इसलिये कार्य नहीं होते।

(१६) प्रगतिशील-कार्य (Progressive Effects)

समानकालीन कार्य-संमिश्रण में भिन्न महोदय प्रगतिशील कार्यों को भी अन्तर्भूत करते हैं। प्रगतिशील कार्य एक भिन्न कार्य है जो नित्य कारण के संचित प्रभाव से उत्पन्न होता है। कारण क्षणिक[1] भी हो सकता है और नित्य[2] भी। क्षणिक कारण वह कहलाता है जब वह कार्य को उत्पन्न कर नष्ट हो जाता है। नित्य कारण वह कहलाता है जब वह प्रत्येक समय कार्य को पैदा करता रहता है। इस प्रकार जब हम नित्य कारण का उल्लेख करते हैं तब इसका वास्तविक अर्थ यह है कि ऐसे बहुत से कारण हैं जो लगातार कार्य करते रहते हैं। जैसे, पृथ्वी की आकर्षण शक्ति, सूर्य का प्रकाश इत्यादि। किसी नित्य कारण का संचित प्रभाव प्रगतिशील कार्य कहलाता है।

नित्य कारण प्रगतिशील कार्य को पैदा करने के लिये दो प्रकार से कार्य करता है। प्रथम जब नित्य कारण अपरिवर्तनीय होता है। तब यह अधिक कार्य पैदा करता चला जाता है और प्रगति-शील कार्य-परंपरा उत्पन्न होती चली जाती है। जैसे पृथ्वी की आकर्षण शक्ति, जिसके द्वारा असमाधारित वस्तुएँ द्रुतगति से इसकी ओर गिरती हैं पहले सेकिण्ड में १६ फुट, दूसरे में ४८ फुट। द्वितीय, नित्य कारण परिवर्तनीय भी होता है और उसमें प्रगतिशील परिवर्तन भी दिखलाई दे सकता है और इस प्रकार वह कार्य की द्विगुणित प्रगतिशील बनाता

(1) Temporary (2) Permane t.

है। जैसे सूर्य, जब ऊर्ध्व अवस्था में होता है और अधिक समीप इसकी किरणें पड़ती हैं तब इसकी गरमी बढ़ती जाती है और क्षितिज के ऊपर देर तक दिखाई देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कार्य प्रगतिशील बनता चला जाता है।

अभ्यास प्रश्न—

(१) रूप विषयक और विषय विषयक हेतुओं में क्या अन्तर है? स्पष्ट विवेचन करो।

(२) प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त से आपका क्या अभिप्राय है? इसको रूप-विषयक हेतु क्यों कहा गया है?

(३) प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त का लक्षण लिखकर उदाहरण द्वारा व्याख्या करो। प्रकृति में कौन कौन प्रकार की एकरूपताएँ पाई जाती हैं? स्पष्ट वर्णन करो।

(४) प्रकृति की एकता और एकरूपता में क्या अन्तर समझते हो? इसके साथ विवेचन करो कि प्रकृति में एकरूपता नहीं किन्तु एकरूपताएँ हैं।

(५) कारण बहुत्व के सिद्धान्त से आपका क्या अभिप्राय है? इसमें क्या दोष है? स्पष्ट विवेचन करो।

(६) कार्य कारण के पारस्परिक संबंध की स्थापना करके यह बतलाओ कि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व असम्भव है।

(७) कुछ ऐसे उदाहरण दो जिनमें दो या दो से अधिक कारण मिलकर सम्मिलित होकर कार्य उत्पन्न करते हों।

(८) कारण का वैज्ञानिक स्वरूप लिखकर उसके प्रत्येक पद की सार्थकता पर प्रकाश डालो।

(९) सामान्यानुमानीय विरोध से आपका क्या आशय है? इसका हल आपकी दृष्टि में किस प्रकार हो सकता है?

(१) सामान्यानुमान की पूर्व कल्पना से आपका क्या मतलब है? सामान्यानुमान का अन्तिम सिद्धान्त क्या है जिस पर यह अवलम्बित है?

(११) "एकरूपता के सिद्धान्त का न तो लक्षण बनाया जा सकता है और न इसकी सिद्धि की जा सकती है" तुम इस पर अपने विवेचनात्मक विचार प्रकट करो।

(१२) कारण और अवस्था में क्या अन्तर है? अपने उत्तर को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करो।

(१३) प्रकृति की एकरूपता के विश्वास के कौन से कारण हैं? उन का अलग-अलग विवेचन करो।

(१४) गुण की दृष्टि से कारण का क्या लक्षण है और परिमाण की दृष्टि से क्या लक्षण है? दोनों विचारों की सामञ्जस्यता स्थापित करो।

(१५) शक्ति की यथावस्थितता के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? इसका कारणता के सिद्धान्त में क्या उपयोग है? स्पष्ट बतलाओ।

(१६) "कारणता का सिद्धान्त सामान्यानुमान का रूपविषयक हेतु है" इस पर अपने विचार प्रकट करो।

(१७) एकरूपता के सिद्धान्त और कारणता के सिद्धान्त में क्या सम्बन्ध है? इस पर अपने विचार प्रकट करो।

(१८) क्या यह ठीक है कि वही कारण वही कार्य उत्पन्न करता है?" क्या हम इससे यह परिणाम भी निकाल सकते हैं कि वही कार्य उसी कारण से उत्पन्न होता है? स्पष्ट करो।

(१९) अरस्तू का कारणता का सिद्धान्त क्या है? उसका विस्तार व्याख्यान करो।

(२) गतिमती शक्ति और सामग्री का पृथक् पृथक् लक्षण लिखकर यह सिद्ध करो कि कार्य उत्पत्ति में दोनों का योग है।

(२१) कर्त्ता और कारणीय के पृथक् २ लक्षण लिखो। तथा इस पर अपने समालोचनात्मक विचार प्रकट करो।

(२२) जन-साधारण कारणता का लक्षण लिखकर उसके दोष बतलाओ।

(२३) कारण-समुच्चय और कार्य-सम्मिश्रण के सिद्धान्त कहाँ तक सत्य हैं? इस पर अपनी समालोचनात्मक सम्मति दो।

(२४) समान-जातीय और भिन्न-जातीय कार्य सम्मिश्रण के लक्षण लिखकर प्रत्येक के उदाहरण दो।

(२५) प्रवृत्ति से आप क्या समझते हैं? अपने विचार प्रकट करो।

(२६) प्रगतिशील कार्य किसे कहते हैं? उदाहरण देकर स्पष्ट करो।

अध्याय ४

(१) विषय-विषयक सामान्यानुमान के आधार हेतु

यह बतलाया जा चुका है कि विशेषानुमान में हम केवल रूप-विषयक सत्य पर ही विचार करते हैं और विषय-विषयक सत्य का विचार नहीं करते। विशेषानुमान में प्रतिज्ञा वाक्यों को सत्य मान कर तर्क किया जाता है और बिना किसी प्रश्न या खोज के उनको हम सत्य मान लेते हैं। इसके विपरीत सामान्यानुमान में हम केवल रूप विषयक सत्य से ही प्रयोजन नहीं रखते वरन् विषय-विषयक सत्य का भी विचार करते हैं। जहाँ तक सामान्यानुमान के रूप-विषयक सत्य का सम्बन्ध है उसके आधार तो प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त और कारणता का सिद्धान्त है जिनका हम गत अध्याय में विशद विवेचन कर चुके हैं। विषय-विषयक सत्यता के हेतु (१) प्रत्यक्षीकरण और (२) प्रयोग हैं। अब हम इनका पृथक् पृथक् विवेचन करेंगे।

सामान्यानुमान में घटनाओं का प्रत्यक्षीकरण होता है। सामान्यानुमानीय विधि में हमने सब प्रथम प्रत्यक्षीकरण को स्थान दिया है। इस प्रक्रिया का यह मूल कारण है। कारवेथ रीड ने प्रत्यक्षीकरण (Observation) का लक्षण यह किया है कि "यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम किसी विशेष उद्देश्य के लिये पदार्थों का अवलोकन करते हैं।" सामान्यानुमान सामान्य वाक्यों का निर्माण करता है और सामान्य वाक्य का निर्माण पदार्थों के अवलोकन के आधार पर किया जाता है। अतः यह कहना होगा कि सामान्यानुमान के लिए प्रत्यक्षीकरण विषय देता है। जैसे सामान्यानुमान में जब हम यह सिद्ध करते हैं कि 'सब मनुष्य मरणशील हैं' यह सामान्य वाक्य हमारे अनेक व्यक्तियों की मृत्यु की घटनाओं के

प्रत्यक्षीकरण के आधार पर बना हुआ है। दूसरा स्थान प्रयोग का है। कितने ही विषयों में हमें प्रयोग से पदार्थ प्राप्त होते हैं। **प्रयोग भी एक प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया है। यह प्रयोगशाला में अपने हाथ से इकट्ठी की हुई सामग्री के आधार पर किसी पदार्थ का निरीक्षण करने रूप होता है।** जैसे एक रसायनशास्त्र का पंडित दो गैसों को कुछ परिमाण में लेता है और वह एक भाग आक्सिजन और दो भाग हाइड्रोजन लेकर इनमें विद्युत् किरण का संयोग करा कर जल तय्यार करता है। यह प्रयोगसाध्य होता है। यहाँ, सब अवस्थाओं में हाइड्रोजन और आक्सिजन दोनों नियत परिमाण में जल बनाते हैं। यह सामान्यानुमान है। इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग दोनों ही सामान्यानुमान के लिये विषय-विषयक आधार बनते हैं। अब हम प्रत्यक्षीकरण का विशद वर्णन करना आरम्भ करते हैं।

(२) प्रत्यक्षीकरण

प्रत्यक्षीकरण (Observation) 'प्रति' उपसर्ग पूर्वक 'अक्ष्' धातु से करण जोड़कर बनाया गया है। इसका अर्थ होता है **पदार्थों का सम्यक् रीति से अवलोकन करना**। सामान्य अवलोकन में और प्रत्यक्षीकरण में अन्तर होता है। प्रत्यक्षीकरण अवलोकन से अधिक है। अवलोकन का केवल इतना ही अर्थ है कि पदार्थों को इन्द्रियों की सहायता से देखना या संवेदन करना। जैसे, जब हम सूर्य को देखते हैं तब हम इसका अवलोकन करते हैं। इसी प्रकार जब हम किसी शब्द को सुनते हैं तो उसका श्रवण करते हैं। अन्य इन्द्रियों से इसी प्रकार का ज्ञान किया जाता है। ऐसे तो हम दिन के समय अनेक पदार्थों का अवलोकन करते हैं। इनके देखने में हमारा कोई विशेष लक्ष्य नहीं होता। प्रत्यक्षीकरण में अवलोकन भी सम्मिलित है, अत प्रत्यक्षीकरण का अवलोकन से भेद दिखलाना आवश्यक है। अवलोकन में कोई उद्देश्य नहीं होता किन्तु प्रत्यक्षीकरण में कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। वास्तव में देखा जाय तो **'व्यवस्थित अवलोकन का नाम प्रत्यक्षीकरण है'**। जब हम

प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया को आरम्भ करते हैं तब हमारे सामने ए सुव्यवस्थित उद्देश्य होता है जिसके लिये हमारा अवलोकन होता है। ए प्रकार प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में हम अपने दृष्ट विषयों में से निरर्थ वस्तुओं को सर्वथा निकाल देते हैं और उन्हीं विषयों पर अपनी दृष्टि स्थिर करते हैं जिनसे हमें कुछ प्रयोजन होता है। उदाहरणार्थ, जब ए नाड़ी के बुखार के कारण देखना चाहते हैं तब हम उन अवस्थाओं प विशेष ध्यान देते हैं जो इस बीमारी या रोग के साथ संबन्धित रहती है और अन्य अवस्थाओं को तनिक भी विचार में नहीं लेते। इसी कारण यह कहा गया है कि प्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें हम चुनाव[1] करते हैं। हम उन अवस्थाओं को चुन लेते हैं जो हमारे लिये उपयोगी होती हैं और उनको छोड़ देते हैं जो अनुपयोगी होती हैं। अतः प्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें हम किसी उद्देश्य को लेकर पदार्थों और उनकी अवस्थाओं का अवलोकन करते हैं। यहाँ यह भी बतलाना आवश्यक है कि हम केवल बाह्य जगत् के पदार्थों का ही अवलोकन नहीं करते अपितु अन्तर्जगत् का भी अवलोकन करते हैं। अन्तर्जगत की अवलोकन करने की प्रक्रिया को अन्तर्दर्शन या मानस-प्रत्यक्ष भी कहते हैं। इस प्रकार हम क्रोध मान माया लोभ प्रेम आदि भावों का भी अन्तर्दर्शन कर सकते हैं। मनोविज्ञान इस अन्तर्दर्शन अन्तर्निरीक्षण या मानस प्रत्यक्ष का विशेष विवेचन करता है। अन्तर्निरीक्षण सम्बन्धी सामान्यानुमान इसी पर अवलम्बित रहते हैं।

यहाँ हमें इतना ध्यान रखना चाहिये कि हम प्रत्यक्षीकरण को अनामुत[2] अनुमान के साथ गड़बड़ में न डाल दें। हमें सर्वदा विशद रूप से उन पदार्थों के अवलोकन की क्रिया जिसे हम प्रत्यक्षीकरण करते हैं उससे भिन्न समझना चाहिये जिन पदार्थों को हम केवल देखकर अन्दाजा लगा लेते हैं। बेकन का कहना है कि जब तक हम पदार्थों की केवल झलक रखते हैं और मनन करते हैं जिनको हमने देखा है, हम गलती

---

(1) Selection (2) Unconscious.

नहीं करते, किन्तु जभी हम किसी वस्तु के बारे में अन्दाज़ा लगाते हैं या कल्पना करते हैं हम गलती कर बैठते हैं। बहुत से पदार्थों के बारे में जब हम कहते हैं कि ये हमारे प्रत्यक्ष के विषय हैं, परीक्षा करने पर प्रतीत होता है कि उसमें बहुत सा अंश हमारे अन्दाज़ों[1] का भी सम्मिलित रहता है। हम सोचते हैं कि हमारी इन्द्रियाँ हमें धोका दे रही हैं। वास्तव में देखा जाय तो प्रतीत होगा कि इन्द्रियाँ कभी धोका नहीं देतीं, जब कभी गलती होती है तब जल्द और अनवबुद्ध अनुमान से ही होती है। उदाहरणार्थ, धुँधले प्रकाश में कभी-कभी हम एक रस्सी के टुकड़े को सर्प मान कर कहते हैं कि हमने सर्प देखा है। सत्य यह है कि हमने सर्प नहीं देखा है किन्तु सर्प सदृश कुछ वस्तु देखी है अर्थात् एक वस्तु जो सर्प से कुछ समानता रखती है। ऐसी हालत में जो वस्तु हमने देखी है उस समय अपनी क्षणिक कल्पना के आधार पर एक दम अन्दाज़ा लगाने लग जाते है कि जो वस्तु सर्प के समान धुँधले प्रकाश में दृष्टिगोचर होती है वह सर्प होना चाहिये, क्योंकि इसमें वही लक्षण विद्यमान हैं जो कि सर्प में पाये जाते हैं। हमारी कल्पना उस अंश की पूर्ति करती है जो अंश हमारे प्रत्यक्ष के क्षेत्र में नहीं आता है और हम शीघ्र ही अनुमान करने लगते हैं कि वहाँ अवश्य ही सर्प है। यहाँ हमारा ख़याल इस प्रकार का होता है कि वास्तव में हम कल्पना कर रहे है और सोचते हैं कि हम प्रत्यक्षीकरण कर रहे हैं। इसी प्रकार एक मनुष्य कह सकता है कि मैंने दूर से अपने भाई को आते देखा है, किन्तु यथार्थ में उसने किसी अन्य मनुष्य को देखा हो जो कुछ अंशों में उसके भाई के समान हो। इस आंशिक प्रत्यक्षीकरण के द्वारा उसने जान लिया कि उसने अपने भाई को देखा है। अत इस प्रकार की कल्पना के आधार पर जो प्रत्यक्षीकरण भी किया जाता है वह निर्दोष नहीं होता। यह एक प्रकार का शीघ्रतायुक्त अनुमान है जिसमें प्रत्यक्षीकरण भी सम्मिलित है। इस प्रकार कभी कभी प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया अनुमान के साथ गड़बड़ मे पड़ जाती है। दुष्ट प्रत्यक्षीकरण के दोषों को इसी गड़बड़ से जन्म मिलता है। अत. प्रत्यक्षीकरण में हमें बड़ी सावधानी से कार्य करना चाहिये।

(1) Guess

(३) प्रत्यक्षीकरण और वैज्ञानिक यंत्र

प्रत्यक्षीकरण के साधन की दृष्टि से, आँख, कान, नाक, जिह्वा और स्पर्श इन्द्रियाँ अत्यन्त दोषपूर्ण प्रतीत होती हैं। उनकी शक्ति सीमित है और वे उस सीमा को पार नहीं कर सकतीं। उदाहरणार्थ, उनके लिये यह असम्भव है कि वे किसी वस्तु की शक्ल, ताप और दबाव के सूक्ष्मतम परिवर्तन को देख सकें। असहाय आँख से कोई वस्तु बहुत छोटी दीखती है और कोई वस्तु बहुत बड़ी दीखती है। उसी प्रकार बिना यंत्र की सहायता के और कोई शब्द बहुत धीमा सुनाई देता है और कोई ज़ोर से। अतः यदि हम केवल अपनी असहाय इन्द्रियों पर ही प्रत्यक्षीकरण के लिये अवलम्बित रहें तो बहुत से पदार्थों के सूक्ष्म ज्ञान से या विशेष ज्ञान से वंचित रह जायेंगे। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे स्वाभाविक प्राकृतिक पदार्थ हैं जिनका हमारी इन्द्रियों द्वारा साक्षात् ज्ञान हो ही नहीं सकता; जैसे विद्युत्। यदि हम इसका साक्षात् प्रत्यक्ष ज्ञान करना चाहें तो अच्छी तरह नहीं कर सकते। इसी कारण वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे यंत्रों का आविष्कार किया है जिनकी सहायता से हम सूक्ष्मतर और दीर्घतर पदार्थों का भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उनकी सहायता से हमारी इन्द्रियों की शक्ति बढ़ सकती है और वे अपनी नियत सीमा के बाहर के पदार्थों का भी ज्ञान ले सकती हैं। अणु-वीक्षण यंत्र (Microscope) अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थों के देखने में सहायता करता है जिनको हम अपनी खुली आँखों से नहीं देख सकते। दूरवीक्षण यंत्र (Telescope) दूरस्थ पदार्थों को देखने में सहायता करता है। जिन्हें हम खुली आँखों नहीं देख सकते। किन्तु इसकी सहायता से हम ग्रहों की चाल, इत्यादि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। सूक्ष्म-शब्द-यंत्र (Microphone) के द्वारा हम धीमे स्वरों का भी ज्ञान कर सकते हैं। इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रकार के यन्त्र वैज्ञानिकों ने आविष्कृत किये हैं जिनका उपयोग हम प्रति-दिन करते हैं। वे सब हमारे इन्द्रियज्ञान को विस्तृत बनाते हैं।

हमारे ऐन्द्रिय ज्ञान को विस्तृत बनाने के अतिरिक्त वैज्ञानिक यन्त्र हमारे प्रत्यक्ष को ठीक करते हैं। यह सही है कि हम अपने हाथ से किसी भार को तोल सकते हैं, किन्तु तराजू से जितना सही भार का ज्ञान हो सकता है उतना हाथ से नहीं। हम ताप का अनुमान अपने हाथ से कर सकते हैं कि यह कम है या ज्यादा है, किन्तु उष्णतामापक यन्त्र (Thermometer) जितना हमें ताप का शुद्ध ज्ञान दे सकता है उतना हाथ नहीं दे सकते। उसी प्रकार वातावरणमापक यन्त्र (Barometer) वातावरण के विषय में जितना सही ज्ञान दे सकता है उतना हमारा शरीर नहीं दे सकता। हृदयगति दर्शक यन्त्र (Stethoscope) से डाक्टर जितना अच्छा फुफ्फुस, हृदयगति आदि का ज्ञान कर सकता है उतना हमारे खुले कान नहीं कर सकते। इसी प्रकार अनेक प्रकार के यन्त्र हैं जो हमारे ऐन्द्रिय ज्ञान को बढ़ाते रहते हैं।

हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि केवल वैज्ञानिक यन्त्रों का उपयोग ही हमारे प्रत्यक्षीकरण को प्रयोग में नहीं बदल देता है। हम दूरवीक्षण यन्त्र की सहायता से प्रत्यक्षीकरण करते हैं, इसमें कोई प्रयोगात्मक कार्य नहीं होता है। प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग मे अन्तर यह है कि प्रत्यक्षीकरण विषय में कोई परिवर्तन नहीं करता, किन्तु प्रयोग में विषय-परिवर्तन हो जाता है। जब हम दूरवीक्षण यंत्र से एक ग्रह यानी नेप्च्यून की गति का अध्ययन करते हैं तब उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, किन्तु जब हम किसी खरगोश को विष खिलाते हैं और वह तुरन्त मर जाता है तब यह हमारा प्रयोग कहलाता है।

(४) प्रत्यक्षीकरण की साधारण अवस्थाएँ

प्रत्यक्षीकरण के कोई विशेष नियम बतलाना मुश्किल है जिनको हम सर्वदा प्रयोग में ला सकें। अच्छी तरह से प्रत्यक्षीकरण करना एक कला है जिसको हम अभ्यास से ही प्राप्त कर सकते हैं किन्तु तथापि हम कुछ ऐसी अवस्थाओं का उल्लेख कर सकते हैं जिनको प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया करने वाला व्यक्ति धारण कर सकता है। ये अवस्थाएँ तीन प्रकार की होती हैं :—(१) बौद्धिक (२) शारीरिक और (३) नैतिक।

बौद्धिक (Intellectual):—प्रत्यक्षीकरण यह चाहता है कि हम पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करें। अर्थात् जो पदार्थ हमारे अनुभव के विषय बन चुके हैं उनकी व्याख्या की जाय। जिस प्रकार आहार, निद्रा, भय और मैथुन मनुष्य में स्वाभाविक हैं उसी प्रकार पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करना यह भी बौद्धिक स्वाभाविक माँग है जिसकी हम रक्षा नहीं सकते। यह हम जानते हैं कि प्रत्यक्षीकरण सामान्य अवलोकन से अधिक है। अतः ज्ञान की पिपासा या ज्ञान उपार्जन करना यह प्रत्यक्षीकरण की विशेष अवस्था है।

(२) शारीरिक (Physical):—यह परमावश्यक है कि प्रत्यक्षीकरण के लिये हमारी इन्द्रियाँ स्वस्थ हों। अस्वस्थ इन्द्रियों से हम कभी निर्मल ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। एक मनुष्य को कामला रोग से पीड़ित है, वह सब वस्तुओं को पीला पीला ही देखता है। इसी प्रकार जो मनुष्य बधिर है वह हारमोनियम की आवाज के स्वरों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। इससे स्पष्ट है कि हमारी इन्द्रियों की स्वाभाविक शक्ति परिमित है। इसी कारण हम अपनी इन्द्रियों की सहायता के लिये दूरवीक्षणयंत्र, अणुवीक्षण यन्त्र आदि की सहायता लेते रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति अल्प दृष्टि[1] से पीड़ित हो तो चश्मे अथवा ऐनक की सहायता से उसकी इन्द्रियों की कमी पूरी हो जाती है और वह अच्छी तरह देख सकता है।

(३) नैतिक (Ethical or moral)—मुख्य अवस्था जो वैज्ञानिक प्रत्यक्षीकरण के लिये आवश्यक है वह निष्पक्षपात है। निष्पक्षपात होना बड़ा कठिन है। जैसा बेकन महोदय ने कहा है "ऐसे मनुष्यों का मिलना अत्यन्त कठिन है जो पक्षपात रहित होकर पदार्थों का निरीक्षण अपने पक्ष में या अपने विरोध में करते हैं। हम जानते हैं कि हम पदार्थों का प्रत्यक्षीकरण इसलिये करते हैं कि हमारा उससे कुछ उद्देश्य होता है। यह सम्भव है कि हमारा कोई प्रिय सिद्धान्त हो और हम उन्हीं पदार्थों या घटनाओं का निरीक्षण करें जो हमारे उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हों। हमारे मस्तिष्क में ऐसी पूर्व धारणा बनी रह सकती है कि जो घटनाएँ

(1) Myopia.

या पदार्थ हमारे सिद्धान्त की सिद्धि में साधक नहीं होते प्राय: हम उनकी उपेक्षा कर बैठते हैं और वे हमारे प्रत्यक्षीकरण से बाहर रह जाते हैं। इस प्रकार की प्रवृत्ति से अप्रत्यक्षीकरण का दोष उत्पन्न होता है। यदि हम यह चाहते हैं कि हमारा प्रत्यक्षीकरण हमें निर्दोष फल दे तो हमें निष्पक्ष होकर सब घटनाओं को लिखकर रखना चाहिये जो हमारी दृष्टि में आ-जाँय। उनके अन्दर हमें अपनी धारणाओं का अवलोकन नहीं करना चाहिये। अन्यथा हमारा प्रत्यक्षीकरण सर्वथा निरर्थक सिद्ध होगा।

(५) प्रत्यक्षीकरण के दोष

यह हम पहले बतला आए हैं कि प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया कुछ कठिन सी है इसलिये इसमें दोष होना स्वाभाविक है। मिल महोदय ने प्रत्यक्षीकरण के दो दोष बतलाए हैं, (१) अप्रत्यक्षीकरण और (२) दुष्ट-प्रत्यक्षीकरण। मिल का कहना है "अपर्याप्त प्रत्यक्षीकरण या तो निषेधात्मक हो सकता है या विध्यात्मक अर्थात् या तो **अप्रत्यक्षीकरण या दुष्ट प्रत्यक्षीकरण। यह अप्रत्यक्षीकरण कहलाता है जब हम पदार्थों या घटनाओं को अच्छी तरह अवलोकन करने की उपेक्षा करते हैं जिन्हें वास्तव मे हमें अवलोकन करना चाहिये।** किन्तु इसके विरुद्ध **दुष्ट अप्रत्यक्षीकरण वह कहलाता है जब हम देखने की उपेक्षा ही नहीं करते हैं बल्कि गलत देखते हैं।** ऐसी अवस्थाओं में जिन पदार्थों का हमें अवलोकन करना है उनको देखने के लिये हम लापरवाही ही नहीं करते हैं किन्तु गलत रीति से देखते भी हैं। अब हम यहाँ इन दो दोषों के ऊपर विशेष विचार करना आरम्भ करते हैं।

(१) अप्रत्यक्षीकरण (Non-observation)

इस प्रक्रिया मे हमें जो कुछ देखना चाहिए वह हम देखते ही नहीं, इसलिये ही इसका नाम अप्रत्यक्षीकरण रक्खा गया है। अप्रत्यक्षीकरण की परिभाषा तार्किकों ने इस प्रकार की है 'अप्रत्यक्षीकरण **वह दोष है जिसमें हम, जिसे हमें देखना चाहिये, उसकी उपेक्षा करते हैं।** इस प्रक्रिया मे जिसे हमें देखना चाहिये था उसको देखने की हम परवा भी

नहीं करते। यदि वास्तव में हम उनको अच्छी तरह देख लेते तो हमारे फलों में सर्वथा परिवर्तन हो जाता। सब प्रत्यक्षीकरण चुनाववाला[1] होता है और जब हम चुनाव करते हैं तब या तो उदाहरणों का अवलोकन करना भूल जाते हैं या आवश्यक अवस्थाओं का सर्वथा अवलोकन नहीं करते। अतः इसके दो रूप बन जाते हैं जिनमें अप्रत्यक्षीकरण का दोष प्रगट होता है—(१) उदाहरणों का अप्रत्यक्षीकरण और (२) अवस्थाओं का अप्रत्यक्षीकरण।

(१) उदाहरणों का अप्रत्यक्षीकरण (Non-observation of instances) यह दोष है जिसमें हम उदाहरणों को देखने की उपेक्षा करते हैं जो हमारे कार्य के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। यह या तो हमारे पूर्वाग्रहों के कारण होता है या पहली धारणाओं के कारण होता है। प्रायः यह होता है—जिन उदाहरणों के द्वारा हमारे सिद्धान्तों की पुष्टि नहीं होती उनको हम देखने की कभी परवाह ही नहीं करते और हम उन्हीं उदाहरणों को देखने के लिये उपयोग में लाते हैं जो हमारे लिये लाभकारी होते हैं। कभी-कभी अप्रत्यक्षीकरण का यह भी कारण हो सकता है कि कुछ उदाहरण दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते हैं और उन्हीं को देखकर हम सन्तोष कर बैठते हैं और सोचते हैं कि हमारा काम सफल बन गया। जैसे यह देखा जाता है कि हम विध्यात्मक उदाहरणों पर अधिक ध्यान देते हैं और निषेधात्मक पर बिलकुल नहीं। यथार्थ में देखा जाय तो बहुत से सच विचारों की कमी नहीं है। हम कुछ उदाहरणों को ले लेते हैं जिनमें एक स्वप्न घटनाओं की घटनाओं से समानता रखता है और उन घटनाओं की परवाह भी नहीं करते जिनमें समानता नहीं मिलती और हम शीघ्र यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि हमारे स्वप्न भविष्य की घटनाओं के द्योतक होते हैं। एक महन्त कुछ यात्रियों से कहा करता था कि यदि वे उसके द्वारा निर्दिष्ट देवी पर चढ़ावा चढ़ावेंगे तो उनकी यात्रा में कोई विघ्न या बाधा नहीं होगी और उसने उन सफल यात्रियों की चढ़ावा चढ़ाते हुए तस्वीरें दिखलाईं और

(1) Selective

बतलाया कि उक्त यात्रियों की यात्राएँ सफल हुई थीं। एक चतुर यात्री ने पूछा कि उन यात्रियों की तस्वीरें कहाँ है जिन्होंने चढ़ावा भी चढ़ाया और फिर भी उनको विघ्न उपस्थित हुए। इसी प्रकार हम भी निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि जो सुबह के समय स्वप्न देखे जाते है वे अवश्य सत्य होते है बिना इस बात के निर्णय किये हुए कि कितने ही सुबह के देखे हुए स्वप्न असत्य भी होते हैं। प्राय: करके हमारे अन्ध-विश्वास इसी प्रकार की लापरवाई से उत्पन्न होते हैं क्योंकि हम विध्यात्मक अवस्थाओं पर अधिक ध्यान देते हैं और निषेधात्मक अवस्थाओं की सर्वथा परवा नहीं करते। इस प्रकार एक आकस्मिक घटना को हम कार्य-कारण-भाव से सम्बन्धित बतला कर सत्य मान लेते हैं।

(२) आवश्यक अवस्थाओं के अप्रत्यक्षीकरण के कारण भी बहुत से दोष उत्पन्न होते हैं। प्राय यह देखा जाता है कि हम अपनी सामान्यानुमानीय प्रक्रियाओं में जो आवश्यक अवस्थाए हैं उनको देखने की परवाह ही नहीं करते। प्रत्यक्षीकरण में हम आवश्यक अवस्थाओं को निकाल देते है और केवल अनावश्यक अवस्थाओं पर ध्यान देते हैं जो खोज के लिये प्रस्तुत वस्तु पर प्रभाव डालती हैं। यह दोष, अधिकतर जटिल राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक या धार्मिक मामलों में देखा जाता है। जैसे, यदि किसी अपराध के विषय में अधिक लोग पकड़े गये तो हम समझ लेते हैं कि उस अपराध की वृद्धि हो रही है। सम्भव है यह वृद्धि अधिक सख्या में धड़-पकड़, पुलिस की अत्यन्त सावधानी या कर्तव्य-परायणता के कारण हुई हो। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अप्रत्यक्षीकरण निषेधात्मक दोष है क्योंकि इसमें हम कुछ नहीं देखते हैं तथा दुष्ट प्रत्यक्षीकरण विध्यात्मक दोष है क्योंकि इसमें हम एक वस्तु को गलत रूप से देखते हैं।

(२) दुष्ट प्रत्यक्षीकरण

दुष्ट प्रत्यक्षीकरण वह दोष है जो इन्द्रियसंवेदन की गलत व्याख्या करने से उत्पन्न होता है। यह किसी वस्तु के गलत प्रत्यक्षी-

करण से उत्पन्न होता है। कभी कभी यह होता है कि हमारा इन्द्रिय प्रत्यक्ष अचेतन[1] के अनुमान से प्रभावित रहता है। जबतक हम अपने इन्द्रिय संवेदन पर निर्भर रहते हैं हमसे कोई गलती नहीं होती; किन्तु होता यह है कि हम कभी कभी अपने इन्द्रिय संवेदनों की विपरीत व्याख्या करने लग जाते हैं और उसका परिणाम यह होता है कि हम कुप्रत्यक्षीकरण (Mal-observation) का दोष पैदा कर देते हैं। इस प्रकार हम अंधेरे के समय, रज्जु में सर्प का ज्ञान कर बैठते हैं। बहुत से लोग यह कहते हुए पाए जाते हैं कि उन्होंने भूत देखे हैं किन्तु वास्तव में, उनके द्वारा कोई और ही पदार्थ देखे गये होते हैं जैसे चाँद की धुंधली रोशनी में किसी व्यक्ति को भूत समझ कर देख लिया हो। जब हम रेलयात्रा करते हुए खिड़की से बाहर देखते हैं तब यह विचार करते हैं कि रेल खड़ी हुई है और वृक्ष, और पहाड़ विपरीत दिशा में दौड़े हुए चले जा रहे हैं। ऐसे ही मनुष्य, प्रतिदिन देखते हैं कि सूर्य उग रहा है सूर्य छिप रहा है और यथार्थ में वे केवल कुछ दृश्य देखते हैं जिनकी व्याख्या उनके विचारों के विरुद्ध सिद्धान्तों पर भी की जा सकती है। आकाश-चक्र में हमें प्रकाश का एक वृत्त मालूम होता है इत्यादि। इन सब उदाहरणों में पदार्थ दीखते हैं किन्तु हम उनको गलत देखते हैं और उनका व्याख्यान गलत करते हैं। इसके विपरीत अप्रत्यक्षीकरण में हम पदार्थों और घटनाओं को देखने की अपेक्षा या लापरवाही करते हैं।

(६) प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग

सामान्यानुमान में, जैसा हम देख चुके हैं, सामान्य-वाक्य का निर्माण किया जाता है। यह सामान्य वाक्य कार्यकारण और सहभावात्मक वाक्य होता है। इस प्रकार के सामान्य वाक्यों के निर्माण में हमें घटनाओं या पदार्थों के प्रत्यक्षीकरण की आवश्यकता पड़ती है। पदार्थ या घटनाएं एक दूसरे से कार्यकारण-सम्बन्ध के द्वारा सम्बन्धित रहती हैं। हमें इनमें से घटनाओं और पदार्थों के उनके कारणों की खोज करनी पड़ती है। यद्यपि ये पदार्थ और घटनायें पेचीदी और एक दूसरे से इस प्रकार सम्मिलित

(1) Unconscious.

रहती हैं कि उनको अलग अलग अध्ययन करना अत्यन्त दुर्लभ होता है। प्रकृति अपने रहस्यों को सरलता से खोल कर नहीं रख देती। प्रकृति का कार्यक्रम बड़े रहस्य से भरा पड़ा है और इसका आसानी से ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। हाँ, इन रहस्यों का पता बड़े परिश्रम और शान्ति से लगाया जा सकता है। हमारे अनुभव में आता है कि प्रकृति में कुछ अवस्थाएँ पूर्ववर्ती होती हैं और कुछ उत्तरवर्ती। केवल पूर्ववर्तित्व कारणता के सिद्धान्त का मापक नहीं होता। हमें यह सिद्ध करना चाहिये कि कौनसी पूर्ववर्ती अवस्था, सत्य कारण हो सकती है। इसके लिये पूर्ववर्ती अवस्थाओं का ध्यानपूर्वक परीक्षण होना अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग का है। हम प्रकृति के रहस्यों को केवल प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग द्वारा ही जान सकते हैं। इसी हेतु से प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग को सामान्यानुमान का विषय-विषयक आधार बतलाता जाता है।

प्रत्यक्षीकरण एक प्रत्यक्ष करने की प्रक्रिया है जिसमें प्रकृति के द्वारा प्रदर्शित अवस्थाओं के अन्दर पदार्थों या घटनाओं का विधि-पूर्वक अवलोकन किया जाता है। (१) प्रथम, प्रत्यक्षीकरण विधिपूर्वक पदार्थों या घटनाओं का अवलोकन करता है। अत इस प्रक्रिया का साधारण मनुष्य के द्वारा किये हुए अवलोकन से भेद करना चाहिये। हम अपने दैनिक जीवन में बहुत सी वस्तुएँ बिना किसी उद्देश्य के लापरवाही से देखते हैं। यह हमारा प्रत्यक्षीकरण नहीं कहलाता। हमारा अवलोकन प्रत्यक्षीकरण तब कहलायगा जब हम किसी उद्देश्य को लिये हुए अवलोकन करेंगे। हम प्रत्यक्षीकरण कुछ वस्तुओं या घटनाओं को स्पष्ट करने के लिये और उनके कारण खोजने के लिये करते हैं (२) द्वितीय, प्रत्यक्षीकरण में हम पदार्थों और घटनाओं का उसी प्रकार अवलोकन करते हैं जैसे वे प्रकृति में उत्पन्न होते हैं हम अपने आप पदार्थों और घटनाओं को उत्पन्न नहीं करते। कभी कभी हमें प्रकृति के अन्दर होनेवाली घटनाओं का अवलोकन करने के लिये बहुत काल तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है और जब वे घटती हैं हम उन्हें तभी देख सकते हैं (३)

तृतीय प्रत्यक्षीकरण में, अवस्थाएं जिनके अन्दर पदार्थ या घटनायें उत्पन्न होती हैं प्रकृति के द्वारा ही दी हुई होती हैं। अवस्थाएँ जो पहले आती हैं साथ रहती हैं या अनन्तर घटनाओं या पदार्थों के अनन्तर आती हैं, ये सब प्रकृति के ऊपर निर्भर रहती हैं, उनको न तो हम अपने नियंत्रण में ला सकते हैं और न उनको बदल सकते हैं।

उदाहरणार्थ एक ज्योतिषी किसी समय सूर्य या चांद ग्रहण का अवलोकन करता है और उनके कारण को जानना चाहता है। वह ग्रहण जिस प्रकार होता है उसको उसी प्रकार देखता है; किन्तु वह इसकी अवस्थाओं के ऊपर अपना नियंत्रण कायम नहीं कर सकता। इसी प्रकार एक अन्तरिक्ष विद्याविशारद[1] वायु के परिवर्तनों का अवलोकन करता है, वायुदाबमापक[2] यंत्र द्वारा ऊँचाई मापता है वायु का ताप लेता है और हवा का रुख भी लिखता है इत्यादि। न तो ज्योतिषी और न अन्तरिक्ष-विद्याविशारद प्रकृति में होनेवाली घटनाओं को अपने नियंत्रण में ला सकता है। वे केवल उनका अवलोकन कर सकते हैं जिससे कि वे उनके स्वभाव और अवस्थाओं को निश्चित रूप से व्यक्त कर सकें। यहाँ यह बतलाना आवश्यक होगा कि इस प्रकार का अवलोकन वैज्ञानिक यंत्रों के साथ या बिना उनके भी हो सकता है। एक ज्योतिषी ग्रहण को केवल अपनी आँखों से देख सकता है और यदि चाहे तो दूरवीक्षण यंत्र की भी सहायता ले सकता है। दूरवीक्षण यंत्र की सहायता के साथ आँखों से ग्रहण को देखना भी प्रत्यक्षीकरण ही है; क्योंकि ग्रहण प्रकृति के अन्दर होता है और उसके लिये हमें प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है। प्राकृतिक घटनाओं पर हमारा कोई अधिकार नहीं। यन्त्र तो केवल इतना कार्य करते हैं कि वे हमारी इन्द्रियों की सीमित शक्ति को कुछ आगे बढ़ा देते हैं जिससे हमारे परिणाम अधिक सही हो जावें।

प्रयोग आजकल विशेष महत्व की प्रक्रिया मानी जाती है। सामान्य प्रत्यक्ष को तो हम तटस्थ की दृष्टि से भी देख सकते हैं किन्तु प्रयोगात्मक कार्य में तटस्थ के लिये कोई स्थान नहीं। प्रयोग में हम कृत्रिम घटनाओं

---

(1) Meteorologist (2) Barometer

से कार्य कराते हैं। इसमें हमे सब प्रकार की अवस्थाओं का पहले से ही निर्वाचन और इन्तजाम करना पड़ता है और जब उनका अच्छी तरह निर्वाचन और इन्तज़ाम हो जाता है तब हम उनका प्रत्यक्षीकरण कर सकते हैं। प्रयोग मे हमें इन्तजार पर प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं। बेकन के शब्दों में हम यह कह सकते है कि 'प्रयोग मे हम प्रकृति के बारे में प्रश्न करते है'। हम प्रकृति के तत्वों के ऊपर प्रश्न और जिरह इसलिए करते हैं कि हमें, हमारे उद्देश्य के अनुसार उनके उत्तर मिल सकें। प्रकृति से जो हमें उत्तर मिलते हैं उनके द्वारा हमे ठीक ठीक घटनाओं का, जो हमारे लिये कार्यकारी है, क्रम मिलता है। इस प्रकार के क्रम से हम अपनी उद्दिष्ट घटनाओं का सकलन अच्छी तरह कर लेते हैं और हमें प्रकृति की दया के ऊपर निर्भर नहीं रहना पड़ता। क्योंकि प्रयोग में हम घटनाओं को स्वय पैदा करते है। अत हम उनके ऊपर नियत्रण भी रख सकते हैं। उदाहरणार्थ, एक रसायन शास्त्री[1] अपनी प्रयोगशाला में पानी बनाता है और उसके लिये हाइड्रोजन और आक्सिजन को एक खास परिमाण में मिलाता है और विद्युत् धारा को उसमें प्रवाहित कर एक दम जल बना लेता है। यहाँ रसायन शास्त्री जल बनाने के लिये प्रकृति की इन्तजार नहीं करता किन्तु सब अवस्थाओं को अपने हाथ से जुटाकर जो वस्तु तैयार करनी हो, कर लेता है। इसी प्रकार भौतिक विज्ञानवेत्ता[2] अपनी प्रयोगशाला में विद्युत् पैदा कर लेता है। और वह विद्युत् के सब गुणों का भी निरीक्षण कर लेता है, यदि इसके विपरीत उसे प्रकृति के ऊपर निर्भर रहना पड़े तो उसे केवल ऐसी ही घटनाओं पर निर्भर रहना होगा जैसे, बिजली का बादलों में चमकना या बिजली की कड़क या और उसी प्रकार की घटनाएँ जो प्रकृति में घटती रहती हैं।

इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग में हम देखेंगे कि इन दोनों में दो प्रकार का अन्तर है। प्रथम, प्रयोग में घटनाएँ कृत्रिम होती है और प्रत्यक्षीकरण में घटनाएँ प्रकृति के द्वारा दी हुई होती हैं। बेन ने ठीक

---

(1) Chemist (2) Physicist

कहा है "प्रत्यक्षीकरण में घटनाओं को खोजा जाता है तथा प्रयोग में घटनाओं को बनाया जाता है"। यदि हम बिजली को विद्युत् के रूप में देखते हैं तो यह प्रत्यक्षीकरण है और यदि हम बिजली को प्रयोगशाला में बनाते हैं तो यह प्रयोग है। द्वितीय, इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि जब हम अपने आप घटनाओं को पैदा करते हैं तो घटनाओं के ऊपर हमारा नियन्त्रण रहता है और जब वे प्रकृति के अन्दर पैदा होती हैं तब सब घटनाएँ हमारे नियन्त्रण के बाहर होती हैं।

यहाँ यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि जब हम इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग के मध्य भेद दिखलाते हैं तब कुछ गलत विचार उत्पन्न होने की सम्भावना हो सकती है अतः हमें उनसे बचना चाहिये। कुछ लेखक दोनों के मध्य इस प्रकार भेद दिखलाते हैं :—प्रत्यक्षीकरण स्वाभाविक है और प्रयोग बनावटी या कृत्रिम है। यह भेद दिखलाना भ्रमोत्पादक है। यद्यपि प्रत्यक्षीकरण में हम प्रकृति पर निर्भर रहते हैं और इन्तजार करते रहते हैं जब तक घटनायें न घट जाँय। हम केवल अपनी प्राकृतिक शक्तियों पर ही निर्भर नहीं रहते हैं किन्तु वैज्ञानिक वर्ग भी कभी कभी प्रयोग कर लेते हैं जिससे हमारी इन्द्रियों का क्षेत्र बढ़ जाय। अतः यह कहना कि प्रत्यक्ष मात्र स्वाभाविक ही होता है गलत है। न प्रयोग ही सर्वथा कृत्रिम है क्योंकि इसमें भी जो घटना हम उत्पन्न करते हैं उसको देखने के लिये हम अपनी स्वाभाविक शक्तियों का प्रयोग करते हैं। कुछ तार्किक ऐसे भी हैं, जिनमें स्टॉक (Stock) का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है जो प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग में विशेष भेद बतलाते हैं और कहते हैं कि प्रत्यक्षीकरण अक्रियात्मक अनुभव है और प्रयोग क्रियात्मक अनुभव है। इस भिन्नता का आधार यह प्रतीत होता है कि प्रत्यक्षीकरण में हम घटनाओं को देखते हैं और उनके परिवर्तनों का अवलोकन करते हैं जैसे जैसे वे प्रकृति के रूप में उत्पन्न होते रहते हैं। उन पर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं रहता। प्रयोग में हमें विशेष रूप से अवस्थाओं को तय्यार करना पड़ता है जिनमें घटनायें उत्पन्न होती हैं। यह ठीक है कि प्रयोग में हम अधिक क्रियाशील होते हैं उतने हम

प्रत्यक्षीकरण मे नहीं होते। विशेष अवस्थाओं के आयोजन में विशेष क्रिया की आवश्यकता होती है। किन्तु यह विचार सर्वथा निरर्थक है कि प्रत्यक्षीकरण में हम बिलकुल निष्क्रिय रहते हैं। इसमें कोई सशय नहीं कि प्रत्यक्षीकरण में हम प्रायः निष्क्रिय से रहते हैं और जो कुछ प्रकृति से मिल जाता है उसी का अवलोकन कर सतोष कर लेते हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें क्रिया का सर्वथा अभाव रहता है। प्रत्यक्षीकरण में हमारा कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य होता है जिसके लिये हमें सक्रिय रहना पड़ता है। इसी कारण हम केवल उन्हीं घटनाओं का अवलोकन करते हैं जिनसे हमें कुछ प्रयोजन होता है प्रत्यक्षीकरण हमेशा चुनावात्मक होता है। हम उन्हीं अवस्थाओं का अवलोकन करते हैं जो परीक्षान्तर्गत घटनाओं से सम्बन्धित रहती हैं और जिनका सम्बन्ध नहीं है उनको हम छोड़ देते हैं। क्या चुनाव और त्याग में मानसिक प्रक्रियाएँ नहीं होती? अत. स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रत्यक्षीकरण में अवश्य कुछ न कुछ प्रक्रिया रहती हैं। हा, प्रयोग में उसकी मात्रा अधिक रहती है। किन्तु इस आधार पर एक सक्रिय और दूसरे को निष्क्रिय कह डालना युक्त नहीं।

इससे स्पष्ट यह है कि प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग इन दोनों में वास्तविक कोई भेद नहीं है और न दोनों प्रक्रियाओं में प्रकार-कृत भेद ही है। दोनों प्रक्रियाओं में हम प्राकृतिक घटनाओं का अवलोकन करते हैं, उनके कारणों को निश्चित करते हैं और उनकी अवस्थाओं का व्याख्यान भी करते हैं। यथार्थ में प्रत्यक्षीकरण को जाति कहना चाहिये और उसकी दो उपजातियाँ, सामान्य प्रत्यक्ष[1] और प्रायोगिक प्रत्यक्ष[2] माननी चाहिये। दोनों प्रक्रियाओं में हम अपनी स्वाभाविक शक्तियों पर निर्भर रहते हैं और स्वाभाविक घटनाओं का अध्ययन करते हैं। दोनों में हम कृत्रिम अवस्थाओं का सहारा लेते है। दोनों में शारीरिक और मानसिक क्रियाओं की आवश्यकता होती है। भेद केवल इतना ही है कि सामान्य प्रत्यक्ष में प्रकृति के ऊपर अधिक निर्भर रहना पड़ता है और प्रायोगिक प्रत्यक्ष में

---

1 Simple observation 2 Experimental observation

प्रकृति के ऊपर अधिक निर्भर न रहकर स्वावलम्बन का सहारा लेना पड़ता है। इसी हेतु से अस्पष्टीकरण में प्रयोग की अपेक्षा कम परिश्रम करना पड़ता है। अतः अस्पष्टीकरण और प्रयोग में प्रकार का भेद नहीं है। यदि भेद है तो केवल मात्रा का। प्रयोग में नियम की अधिकता की अधिक मात्रा होती है।

(७) स्वाभाविक प्रयोग
(Natural Experiments)

स्वाभाविक प्रयोग से हमारा अभिप्राय उन प्रयोगों से है जिनमें प्रकृति की प्रक्रियायें स्वयं विशेष अवस्थाओं को पैदा करती हैं और जिनके अन्दर प्रकृतिगत घटनाओं को हम देख सकते हैं। इनके उदाहरणों में हमें जिन पदार्थों का अवलोकन करना है वे अथवा हमारे नियंत्रण के बाहर होती हैं और इसलिये ही यहाँ पर के साधारण अर्थ में प्रयोग का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं होता। किन्तु हम अपने अस्पष्टीकरण के लिये खास अनुकूल अवस्थाओं का लाभ उठाते हैं। जैसे, ज्योतिषि लोग अपने पर्यवेक्षण के लिये विशेष समय और स्थानों को चुन लेते हैं। चन्द्रग्रहण को ही ले लीजिये। जब यह होता है तब तब ज्योतिषी अपनी अपनी वेधशाला में जाकर इसके भिन्न भिन्न रूपों का अवलोकन करते हैं जिससे हम अन्दाजा लगाते हैं कि पृथ्वी का आकार कैसा होता है और उसकी छाया इस पर किस प्रकार पड़ती है। इस प्रकार के प्रयोगों को स्वाभाविक या प्राकृतिक प्रयोग कहा जाता है।

(८) अस्पष्टीकरण और प्रयोग के आपेक्षिक लाभ
(१) प्रयोग के लाभ

वैज्ञानिकों ने अपने चमत्कारक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि जहाँ जहाँ प्रयोग सम्भव है वहाँ प्रत्यक्ष की अपेक्षा प्रयोग पर ही विशेष लक्ष देना चाहिये, क्योंकि प्रयोग में हमारा अवस्थाओं पर पूर्ण नियंत्रण होता है। प्रयोग के, प्रत्यक्ष की अपेक्षा निम्नलिखित लाभ विशेष हैं :—

(१) प्रयोग में हम अनेक उदाहरणों की अपनी इच्छानुसार परीक्षा कर सकते हैं।

यदि एक प्रयोग हमें अच्छी तरह किसी घटना या पदार्थ का ज्ञान नहीं देता तो हम बार बार उसी प्रयोग को करके अपने ज्ञान को परिपुष्ट कर सकते हैं, किन्तु सामान्य प्रत्यक्षीकरण में यह बिलकुल सम्भव नहीं है। प्रत्यक्षीकरण में हम प्रकृति पर निर्भर रहते हैं और अपने अनुकूल अवस्था के दिग्दर्शन के लिये हमें इन्तजार करना पड़ता है। प्रयोग में हम अवसरों को बनाते हैं किन्तु प्रत्यक्षीकरण में हमे अवसरों के लिये प्रतीक्षा करनी पड़ती है। मान लीजिये हमे भूकम्प देखना है। इस विषय में प्रयोग असभव है। इसमें केवल प्रत्यक्ष पर अवलम्बित रहना पड़ता है। भूकम्प को अवलोकन करने के लिये दो चार साल में केवल एकबार ही अवसर मिल सकता है, किन्तु एक रशायनशास्त्री जो पानी के अवयव तत्वों की परीक्षा करना चाहता है वह प्रयोगशाला में जाकर पानी को लेकर जितने प्रयोग करना चाहे कर सकता है। वह अपने आपको सतुष्ट कर सकता है और भलीभाँति जान सकता है कि जल, आक्सीजन और हाइड्रोजन का बना हुआ है।

(२) प्रयोग के द्वारा हम वस्तुओं को अलग करके देख सकते हैं।

किसी वस्तु का अध्ययन करने के लिये हम उस वस्तु को अलग करके देख सकते हैं। किसी पदार्थ को अलग करने से हमारा मतलब यह है कि परीक्षा करते समय हम उस पदार्थ को उन सब अन्य वस्तुओं के प्रभाव से अलग कर दें, केवल उस पर पदार्थ को छोड़ कर जिसके प्रभाव को हम अध्ययन करना चाहते हैं। प्रयोग में हम पदार्थों को अलग अलग कर अध्ययन कर सकते हैं किन्तु प्रकृति मिश्रवातावरणों में पदार्थों को हमारे सामने उपस्थित करती है और हम इस बात का पता ही नहीं लगा सकते कि किन-किन कारणों से अमुक पदार्थ या घटना की उत्पत्ति हुई है। हमे उनके कारणों का पता ही नहीं लग सकता। मान लीजिये हम यह जानना चाहते हैं कि एक मोमबत्ती खुली हवा में क्यों जलती है और यदि उसी को एक बन्द घड़े में रख दिया जाय तो क्यों बुझ जाती है। परीक्षा और बिश्लेषण करने पर हमें प्रतीत होगा कि हवा में कई गेस

होते हैं। उनमें मुख्य-मुख्य ये हैं जैसे ऑक्सीजन, नाइट्रोजन। सामान्य प्रत्यक्षीकरण द्वारा हम नहीं जान सकते कि यह ऑक्सीजन है या नाइट्रोजन जिससे मोमबत्ती जलती है। प्रयोग द्वारा हम एक जलती हुई मोमबत्ती को एक नाइट्रोजन से भरे हुए घड़े के अन्दर रखते हैं और देखते हैं कि बत्ती एक दम बुझ जाती है। पश्चात् हम उसीको जलाकर ऑक्सिजन से भरे हुए घड़े में रखते हैं और देखते हैं कि यह अच्छी तरह जल रही है। इस प्रकार जिन पदार्थों का हम अध्ययन कर रहे हैं उनको हमने अलग-अलग करके अध्ययन किया है और इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि मोमबत्ती के जलने में किस गैस का असर है और किसका नहीं। यह प्रयोग द्वारा ही हो सकता है, प्रत्यक्ष से नहीं।

(३) प्रयोग में हम अवस्थाओं को कई बार बदल सकते हैं और उनका अध्ययन कर सकते हैं।

प्रयोग में हम अवस्थाओं को कई बार बदल सकते हैं और भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के समूहों को लेकर पदार्थों के स्वरूप की परीक्षा कर सकते हैं। सामान्य प्रत्यक्षीकरण में हमें प्रकृति देवी की दया पर निर्भर रहना पड़ता है जिससे कि वह हमें पदार्थों या घटनाओं को दे सके; किन्तु प्रयोग में जैसा कहा गया है हम अवस्थाओं को अनेक बार बदल सकते हैं और उन अवस्थाओं के अन्दर होने वाले पदार्थों का अनेक प्रकार से अध्ययन कर सकते हैं। इस प्रकार प्रयोग से हम निश्चित करते हैं कि नाइट्रिक एसिड (अम्ल) अनेक प्रकार की धातुओं को पिघला देता है जैसे, लोहा, तांबा, चाँदी इत्यादि; किन्तु वह सुवर्ण को नहीं पिघला सकता। इस प्रकार अवस्थाओं को बदल कर पदार्थों का अध्ययन प्रयोग में सम्भव है प्रत्यक्षीकरण में नहीं।

(४) प्रयोग में हम शान्ति और सावधानता से पदार्थों की परीक्षा कर सकते हैं।

सामान्य प्रत्यक्षीकरण में तो हमें आश्चर्यान्वित होकर चुप खड़ा रहना पड़ता है। यदि कभी हम पुच्छलतारा को देखना चाहते हैं तो जब वह निकलता है तब हमें आश्चर्य में डाल देता है। किन्तु प्रयोग में हमें आश्चर्यान्वित होने की

आवश्यकता नहीं और प्रयोग में न जल्दी की ही आवश्यकता है। कहीं भूकम्प हुआ। हम उसको अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें तुरन्त उसका अध्ययन करना पड़ेगा। हम चाहे तो अधिक काल तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते। अन्यथा प्रतीक्षा के समय तक तो वह नष्ट हो जायगा। इसलिये कारवेथ रीड ने जो कुछ कहा है वह ठीक कहा है—प्रयोग में हम शान्ति और सावधानता से काम लेते हैं और ठीक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इतना ही नहीं, प्रयोग में हम पदार्थ के होने का समय, अवस्था, क्रम, तीव्रता, विस्तार आदि सबका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्यक्षीकरण में यह सब सम्भव नहीं।

इत्यादि कारणों से ही जिन-जिन विज्ञानों में प्रयोग के लिये अधिक क्षेत्र है वे अधिक उन्नति कर गये हैं, अपेक्षाकृत उन विज्ञानों के जिनमें प्रयोगों के लिये अधिक क्षेत्र नहीं हैं। यान्त्रिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रासायनिक विज्ञान में प्रयोग अधिक होते हैं, इसी कारण इन विज्ञानों ने अधिक उन्नति की है और ये संसार में सबसे समुन्नत विज्ञान गिने जाते हैं। शरीर-विज्ञान, शल्य-विज्ञान में प्रयोग कम परिमाण में हो सके हैं अतः इन विज्ञानों में अधिक उन्नति नहीं हुई है। ज्योतिर्विज्ञान और अन्तरीक्ष विज्ञान में प्रयोग नहीं हो सकते, इसलिये इनकी उन्नति बहुत कम हुई है। प्रायोगिक विज्ञान ही वास्तव में विज्ञान कहलाने के योग्य हैं।

(२) प्रत्यक्षीकरण के लाभ

जिस प्रकार हमने प्रयोग के प्रत्यक्षीकरण की अपेक्षा अधिक लाभ बतलाये हैं उसी प्रकार प्रत्यक्षीकरण के भी प्रयोग की अपेक्षा अधिक लाभ हैं। प्रत्यक्षीकरण के विशेष लाभ का कारण यह है कि प्रत्येक उदाहरण में प्रयोग सम्भव नहीं है। अत: प्रत्यक्षीकरण भी किसी अपेक्षा से विशेषता रखता है। प्रत्यक्षीकरण के लाभ निम्नलिखित हैं —

(१) प्रत्यक्षीकरण को प्रत्येक व्यक्ति सरलता पूर्वक कर सकता है। अतः प्रत्यक्षीकरण का प्रयोग की अपेक्षा अधिक क्षेत्र है।

विश्व में अनेक प्रकार के ऐसे पदार्थ हैं जिनको हम कृत्रिम रीति से पैदा नहीं कर सकते क्योंकि वे हमारे नियंत्रण के बाहर होते हैं। जैसे,

हमारे लिये यह सम्भव नहीं है कि हम कृत्रिम रूप से मनुष्य, या भूचाल या आँधी को पैदा कर सकें। आकाश के ग्रह, हवाएँ, ज्वार-भाटा, पृथ्वी के स्तर इत्यादि विषय प्रयोग करने के लिये हमारी शक्ति के बाहर हैं। यह हो सकता है कि एक शक्तिशाली राजनीतिज्ञ भ्रमण करे जो, वहाँ की सामाजिक व्यवस्थाओं को अध्ययन करने के लिये युद्ध में डाल सकता है किन्तु इस प्रकार का कोई व्यक्ति, अपनी इच्छानुसार, प्रयोग सदा नहीं कर सकता। एक डाक्टर किसी विष का, मनुष्य के शरीर पर, प्रयोग करके यह नहीं देख सकता कि वह मनुष्य जीवित रहता है या नहीं। इस प्रकार के मामलों में हमें साधारण प्रत्यक्षीकरण की क्रिया पर अवलम्बित रहना पड़ता है और प्रतीक्षा करनी पड़ती है कि इस प्रकार की घटनायें कब होती हैं जिनका हम अध्ययन करना चाहते हैं। उदाहरण के लिये जैसे, एक मनुष्य आत्मघात करना चाहता है और उसके लिये विष खाता है। हम इस प्रकार के मामलों को देख सकते हैं। जब कोई युद्ध हो तब युद्ध को भी देख सकते हैं। अतः यह मानना पड़ेगा कि प्रत्यक्षीकरण का क्षेत्र प्रयोग की अपेक्षा अधिक है।

(२) प्रत्यक्षीकरण में हम कार्य से कारण का अनुमान कर सकते हैं और उसी प्रकार कारण से कार्य का भी अनुमान कर सकते हैं। प्रयोग में हम केवल कारण से कार्य का अनुमान कर सकते हैं किन्तु कार्य से कारण का अनुमान नहीं कर सकते।

सामान्यानुमान में कभी कभी कारण दिया हुआ होता है और हम उसका कार्य जानना चाहते हैं। उसी प्रकार कार्य दिया हुआ होता है और हम उसका कारण जानना चाहते हैं। प्रयोग में हम कारण को ले सकते हैं और उसके द्वारा हम पता लगा सकते हैं कि इसका कार्य क्या होगा किन्तु प्रयोग में यह सम्भव नहीं है कि हम एक कार्य को ले लें और उससे यह पता लगा लेवें कि इसका कारण क्या है? मान लीजिये हम किसी विष का परिणाम जानना चाहते हैं। हमने एक मनुष्य को विष खिला दिया वह मर गया; किन्तु यदि हम इससे यह जानना चाहें कि मनुष्य मर गया है और मरे हुए व्यक्ति के शव से यह पता लगाना चाहें कि वह क्यों मरा और किस विष से मरा तो बड़ी कठिनाई उपस्थित हो जाती है। प्रयोग में कार्य से

कारण का अनुमान नहीं हो सकता। इस प्रकार की घटनाओं में प्रथम हमें कारण का अन्दाजा लगाना चाहिये और पश्चात् प्रयोग करना चाहिये जिससे हम उस कारण के कार्य का पता लगा सकें। अत प्रयोग में सर्वदा हम कारण से कार्य को ओर जाते हैं। प्रत्यक्षीकरण में हम दोनों तरफ अनुमान लगा सकते हैं, अर्थात् कारण से कार्य का ज्ञान कर सकते हैं और कार्य से कारण का ज्ञान कर सकते हैं। प्रत्यक्षीकरण के द्वारा हम न केवल मलेरिया के कार्य का ही अन्दाज़ा लगा सकते हैं, अपितु उसके कारण का भी पता लगा सकते हैं। हम देख सकते हैं कि मनुष्य के शरीर पर मलेरिया के कीड़ों का क्या असर होता है और उसके पूर्वगामी अवस्थाओं की परीक्षा कर यह भी पता लगाया जा सकता है कि उसका कारण क्या होगा।

(३) प्रत्यक्षीकरण प्रयोग से पहले आता है

प्रयोग को हम तभी कर सकते हैं जब हम कुछ प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया को कर लें। प्रत्यक्षीकरण के अभाव में प्रयोग कदापि सम्भव नहीं होता है। प्रयोग को सफल बनाने के लिये सामग्री को इकट्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु जब तक प्रथम अच्छी तरह प्रत्यक्षीकरण न कर लिया जाय कि हमें क्या जानना है, तब तक हम समुचित सामग्री इकट्ठा नहीं कर सकते। अतः यह निश्चित है कि प्रयोग के पहले प्रत्यक्षीकरण करना अत्यन्त आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न

(१) पृथक्करण से आप क्या समझते हैं? "प्रत्यक्षीकरण और अनुभव पृथक्करण की सहायक प्रक्रियाएँ है।"—इसकी व्याख्या करो।

(२) प्रत्यक्षीकरण का लक्षण लिखकर यह सिद्ध करो कि सामान्यानुमान का यह आवश्यक अग है।

(३) प्रत्यक्षीकरण और दुष्ट-प्रत्यक्षीकरण में क्या अन्तर है? उदाहरण पूर्वक स्पष्ट करो।

(४) प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग में क्या सम्बन्ध है? दोनों की आपेक्षिक महत्ता सिद्ध करो।

(५) प्रत्यक्षीकरण में यंत्रों की कहाँ तक उपयोगिता है ? उदाहरण देकर भाव को स्पष्ट करो।

(६) वैज्ञानिक प्रत्यक्षीकरण से आपका क्या अभिप्राय है ? किसी बीमारी या विष के प्रयोगों में प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग की सार्थकता दिखलाओ।

(७) वैज्ञानिक प्रत्यक्षीकरण हमेशा चुनावात्मक होता है तथा किसी उद्देश्य को लेकर किया जाता है। इस पर अपने विचार प्रकट करो।

(८) प्रत्यक्षीकरण में किन-किन दोषों की सम्भावना है। उनके उपाय लिखकर और उदाहरण देकर स्पष्ट करो।

(९) 'प्रत्यक्षीकरण में हम पदार्थों को खोजते हैं किन्तु प्रयोग में हम पदार्थों को बनाते हैं' इस वक्तव्य का क्या भाव है ? स्पष्ट करो।

(१) प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग का सामान्यानुमान में क्या स्थान है ? स्पष्टरूप से प्रकाश डालो।

(११) किन-किन बातों में प्रयोग प्रत्यक्षीकरण से अधिक उपयोगी है ? सिद्ध करो।

(१२) प्रत्यक्षीकरण की साधारण अवस्थाएँ कौन सी हैं ? उनका पृथक् वर्णन करो।

(१३) स्वाभाविक प्रयोग से आपका क्या अभिप्राय है ? इस पर अपने समालोचनात्मक विचार प्रकट करो।

(१४) प्रत्यक्षीकरण की मुख्य क्या विशेषताएँ हैं ? उनपर प्रकाश डालो।

(१५) 'प्रत्यक्षीकरण असाधारण है' इसका क्या अर्थ है ? इसको सबसे सरल प्रक्रिया क्यों कहा गया है ?

अध्याय ५

(१) प्राक्-कल्पना की सृष्टि

स्टेबिंग (Stebbing) महोदया का कहना है कि वैज्ञानिक विधि एक साधन है जिसके द्वारा हम प्रकृति के तत्त्वों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यह हम पहले पढ़ आए हैं कि वैज्ञानिक सामान्यानुमान में हम सर्वदा प्रकृति में होनेवाली घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्ध को समझना चाहते हैं। इसके लिये प्रत्यक्षीकरण, प्रयोग और आप्तवचन आदि को साधनरूप में बतलाया गया है। विज्ञानवेत्ता प्रकृति की एकरूपता और कारणता की प्राक्-कल्पना करके पदार्थों की व्याख्या करना शुरू करता है। वैज्ञानिक सामान्यानुमान में विषय-विषयक और रूप-विषयक दोनों प्रकार की सत्यता स्थापित की जाती है पहले अध्यायों में विषयविषयक और रूपविषयक आधारों का सम्यक् विवेचन किया जा चुका है। प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग सामान्यानुमान के वाक्यों को देते हैं और ये वाक्य अनुभव में आए हुए पदार्थों के आधार पर बनाए जाते हैं। इन अनुभव में आए हुए पदार्थों से हम सामान्य वाक्य तय्यार करते हैं और उनमे कारणता का सम्बन्ध स्थापित करते हैं, लेकिन कारणता के सम्बन्ध के खोजने और स्थापित करने के पहले किसी प्रकार हमारे हृदय में सशय होना चाहिये या हमे कल्पना करना चाहिये कि इनमें कारणता का सम्बन्ध अवश्य होगा। इस प्रकार का सशय या कल्पना जो सामान्यानुमान में आरम्भ विन्दु मानी जाती है, यथार्थ मे कल्पना की सृष्टि में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अनुसधान-कर्ता अपने-अपने स्वतंत्र विचार रखता है। वातावरण का भी असर होता है। इसी कारण से भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार की प्राक्-कल्पनाओं की सृष्टियाँ करते रहते हैं।

तर्कशास्त्री, सामान्यानुमान की प्रक्रिया में प्राक्-कल्पना की सृष्टि के

स्थान के विषय में स्पष्ट विचार भेद रखते हैं। बेकन महोदय जिनको सामान्यानुमान की स्थापना का पिता कहा जाता है वे प्रकृति के विषय में पूर्व कल्पना करने की प्रवृत्ति को बुरा बतलाते हैं। अर्थात् हमें प्रकृति के नियमों के विषय में प्राक्-कल्पना नहीं करनी चाहिये। बेकन का विचार है कि प्रत्यक्षीकरण(1) और प्रथक्करण(2) ये दो प्रक्रियाएँ प्रकृति के नियमों का पता लगाने के लिये पर्याप्त हैं। किन्तु यह विचार ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि यदि प्रत्यक्षीकरण और प्रथक्करण ये दोनों ठीक भी कार्य करें तथापि इनमें प्राक्कल्पना की सृष्टि करना अत्यन्त आवश्यक है। यह ठीक है कि प्रत्यक्षीकरण केवल इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु इसमें कुछ उद्देश्य सदा दृष्ट रहता है। इस उद्देश्य का मतलब पदार्थों की व्याख्या करना होता है और जब उनकी व्याख्या मालूम नहीं रहती तब इनकी क्या और कैसी व्याख्या होनी चाहिये, इसके लिये प्राक्-कल्पना की सृष्टि करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार प्रथक्करण यह चाहता है कि आकस्मिक बातों को निकाल कर हमें वस्तुओं की आवश्यक बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये। लेकिन इस प्रकार प्रथक्करण कैसे सम्भव है जब तक कि प्राक्-कल्पना के रूप में हमारे समक्ष कोई मार्ग सूचक सिद्धान्त न हो। अतः जबतक हमें सत्य कारण का पता नहीं है तबतक हम प्राक्-कल्पना की सृष्टि करके ही पदार्थों के स्वभावों का अध्ययन करते हैं। बेकन का प्राक्कल्पना की सृष्टि को निरर्थक बनाना इसी हेतु से उचित नहीं। न्यूटन महोदय भी प्रायः बेकन के सिद्धान्त के समर्थक प्रतीत होते हैं जब वे कहते हैं कि 'मैं प्राक्-कल्पना की सृष्टि की कल्पना नहीं करता'। यद्यपि न्यूटन महोदय वर्तमान कालीन प्राक्कल्पना-सृष्टि के अर्थ में इसको निरर्थक नहीं समझते। न्यूटन प्राक्-कल्पना की सृष्टि का यही अर्थ करते हैं कि प्राक्-कल्पना की सृष्टि करना मानो अप्रत्यक्षी, अस्वाभाविक अटकलपच्चू लगाना है जिसका कोई मुख्य आधार नहीं होता और इस प्रकार की अटकलपच्चू को वह निरर्थक समझता है। मिल महोदय के अनुसार सामान्यानुमान की प्रक्रिया में प्राक्-कल्पना की सृष्टि का बहुत गौण स्थान है क्योंकि उनके अनुसार सामान्य

(1) Observation. (2) Elimination.

नुमान खोज की अपेक्षा सिद्धि से अधिक सम्बन्ध रखता है। ह्वेवेल जो इनसे विरुद्ध विचार रखता है, का मन्तव्य यह है कि सामान्यानुमान सिद्धि की अपेक्षा खोज से अधिक सम्बन्ध रखता है, इसलिये वे प्राक्-कल्पना की सृष्टि पर अधिक जोर देते हैं। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि सामान्यानुमान चाहे खोज से सम्बन्ध रखे या सिद्धि से सम्बन्ध रखे, किन्तु प्राक्-कल्पना सृष्टि की आवश्यकता को घटाया नहीं जा सकता। यह ठीक है कि उचित और योग्य प्राक्-कल्पना की सृष्टि को प्रतिभाशील व्यक्ति को छोड़कर दूसरा नहीं कर सकता और तर्कशास्त्र की शक्ति के यह सर्वथा बाहर है कि वह स्वय ऐसे नियम बनावे जिसके द्वारा प्राक् कल्पना की सृष्टि की-जा सके। किन्तु यह आवश्यक है कि तर्कशास्त्र ऐसे प्रश्नों के अन्तस्तत्व में पहुँचने की कोशिश करता है जिनके द्वारा प्राक्कल्पना की सृष्टि बनाई जा सके। तथा इसके पहले कि प्राक् कल्पना की सृष्टि की जाय हमें किन अवस्थाओं की आवश्यकता है और उन आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर हमारी प्राक्-कल्पना सृष्टि किस प्रकार की होनी चाहिये जिसके आधार पर हम वैज्ञानिक अनुसधान कर सकें। तथा जब प्राक् कल्पना की सृष्टि भली भाँति हो जाय तब हम यह सोच सकते हैं कि उसको सिद्ध किया जाय या असिद्ध किया जाय।

नियमों की स्थापना के प्रथम यह आवश्यक है कि पदार्थों और घटनाओं की व्याख्या करने के लिये प्राक् कल्पना की सृष्टि की जाय जिससे हम पदार्थों या घटनाओं के विषय में कुछ अन्दाज़ा लगा सकें। इसीलिये यह कहा गया है कि पदार्थों की व्याख्या का प्रथम रूप प्राक्कल्पना की सृष्टि है। सामान्यानुमान में हम सामान्य वाक्यों की खोज करते हैं और उनको सिद्ध करते हैं। इसके पहले कि एक सामान्य वाक्य की स्थापना की जाय हम पदार्थों के विषय में कोई प्राक् कल्पना करते है कि अमुक पदार्थों का क्या रूप हो सकता है ? यह हमारी तात्कालिक कल्पना प्राक्-कल्पना की सृष्टि कहलाती है। प्रत्यक्षीकरण के क्रम का भी ध्यान देने से प्रतीत होगा कि हमारे प्रत्यक्षों को मार्ग दिखलाने और उन पर नियन्त्रण रखने के लिये प्राक्-कल्पना की सृष्टि की अत्यन्त आवश्यकता है।

यदि सामान्यानुमान से हमारा अभिप्राय यह है कि इसके द्वारा हम सामान्य वाक्यों का निर्माण करते हैं तो हमें यह कहना पड़ेगा कि प्राक्-कल्पना की सृष्टि सामान्यानुमान का पहला क्रम है। पहलेपहल हम सामयिक प्राक्-कल्पना करते हैं पश्चात् पदार्थों और घटनाओं की व्याख्या करना शुरू करते हैं। जब यह प्राक्-कल्पना समर्थित हो जाती है तब हम इसे सामान्यानुमान के पद पर पहुंचा देते हैं।

(२) प्राक्-कल्पना का विशद अर्थ

प्राक्-कल्पना के कई तार्किकों ने अच्छे-अच्छे लक्षण बनाये हैं। मिल का प्राक्-कल्पना का लक्षण निम्नलिखित है—'प्राक्-कल्पना कोई एक कल्पना है जिसको हम बिना किसी यथार्थ साक्षी को या साक्षी को जो निश्चित रूप से अपूर्ण हो सहायता से वस्तुओं के स्वभाव के अनुसार जिन्हें हम यथार्थ समझते हैं, निष्कर्ष निकालने के लिये स्थापित करते हैं।' इस विचार के अन्दर जो निष्कर्ष हम प्राक्-कल्पना के आधार पर निकालते हैं यदि वे परिज्ञात सत्य हैं तो प्राक्-कल्पना या तो अवश्य सत्य होगी या उसके सत्य होने की सम्भावना होगी। मिल के इस लक्षण को विश्लेषित करने पर हमें निम्नलिखित क्रम प्राप्त होते हैं (१) प्रत्यक्षीकरण (२) प्राक्-कल्पना और (३) समर्थन।

(१) प्रत्यक्षीकरण से हमें व्याख्या करने के लिये पदार्थ मिल जाते हैं। मान लीजिये सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण होता है। इसकी व्याख्या हम किस प्रकार करते हैं! वृक्ष से भूमि पर सेब क्यों गिरता है! भूकम्प क्यों होता है! तूफान या बवंडर क्यों आते हैं! इन सबकी व्याख्या होनी चाहिये।

(२) जिन पदार्थों या घटनाओं की व्याख्या करनी है उनके विषय में प्राक्-कल्पना की जाती है। इस पद पर प्रत्यक्षीकरण द्वारा परिपूरित पदार्थ इतने अपर्याप्त होते हैं कि हम उन्हीं पर निर्भर रह कर चलें नहीं कर सकते। अतः प्राक्-कल्पना की सृष्टि की आवश्यकता होती है।

(३) पदार्थों या घटनाओं की सामयिक कल्पनाओं द्वारा व्याख्या हम इसलिये करते हैं कि यदि हम उससे निष्कर्ष निकालें और यह पता लगा लें

कि निष्कर्ष पदार्थों के साथ सामञ्जस्य रखते हैं तो हमारी प्राक्-कल्पना सत्य होगी और यदि सामञ्जस्य नहीं रखते हैं तो हमारी प्राक्-कल्पना बेकार होगी। ऐसी प्राक्-कल्पना को दूसरी उपयुक्त प्राक्-कल्पना के समक्ष फेंक देना चाहिये। अतः प्राक्-कल्पना की सृष्टि के अन्दर विशेषानुमान और **समर्थन** दोनों अन्तर्भूत हो जाते हैं।

हम अपने व्यावहारिक जीवन में प्राय पदार्थों या घटनाओं की व्याख्या करने के लिये इस प्रकार की प्राक्-कल्पनाएँ किया करते हैं जो हमारे अनुभव में आ जाती है। यदि शाम को घर लौटने पर यह देखते हैं कि हमारे कमरे की खिड़की का काच टूटा पड़ा है तो अन्दाजा लगाते हैं कि किसी ने अवश्य पत्थर मार कर इसे तोड़ दिया होगा। इस कल्पना को चित्त में रख कर पत्थर के टुकड़ों को इधर उधर तलाश करते हैं। यदि पत्थर का टुकड़ा मिल जाता है तो निश्चय कर लेते हैं कि यह लड़कों की शरारत है। यदि पत्थर का टुकड़ा नहीं मिलता है तो हम अपनी प्राक्-कल्पना को छोड़ देते हैं और दूसरी प्राक्-कल्पना करना आरम्भ करते हैं और सोचते हैं कि हवा के ज़ोर से चलने से खिड़की टूट गई होगी, इत्यादि। यदि किसी मनुष्य पर, इसी प्रकार, प्लेग का हमला हुआ है तो हम कल्पना करते हैं कि वह अवश्य उस क्षेत्र में गया होगा जहाँ प्लेग फैल रहा है। इसी प्रकार जब कभी हम इस प्रकार की घटनाओं को देखते हैं तो अपने अन्दाज़े लगाना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार हम पदार्थों और घटनाओं की व्याख्या करने के लिये प्राक्-कल्पनाओं की सृष्टि किया करते हैं।

उपर्युक्त सर्वसाधारण उदाहरणों को छोड़ कर जिनके अर्थ में हमने प्राक्-कल्पनाओं की सृष्टि की है वैज्ञानिक क्षेत्र में इस प्रकार की उन अटकलों से काम नहीं निकाला जा सकता। वैज्ञानिक दृष्टि से किसी पदार्थ या घटना के विषय में प्रत्येक अन्दाजे या प्राक्-कल्पना को महत्व नहीं दिया जाता। कोई कल्पना जब वह प्राक्-कल्पना के पद पर पहुँच जाती है तब उसमें कुछ बातों का ध्यान रखना पड़ता है। किन्तु चाहे लौकिक कल्पना हो या वैज्ञानिक इतना तो अवश्य है कि प्राक्-कल्पना किसी पदार्थ की व्याख्या करने के लिये केवल सामयिक कल्पना होती है। वैज्ञानिक प्राक्-

कल्पना का प्रसिद्ध उदाहरण न्यूटन महोदय के गुरुत्वाकर्षण[1] का सिद्धान्त है। न्यूटन महोदय ने एक सेब सिर पर गिरते हुए देखा और विचार करने लगे कि यह मेरे सिर पर ही क्यों गिरा ऊपर को क्यों नहीं गया। उन्होंने कल्पना लगाया कि यह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का परिणाम है। यह प्राक्-कल्पना पीछे से सत्य सिद्ध हुई और उसके परिणाम स्वरूप गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त स्थापित किया गया जो आज तक प्रचलित है और जिसके आधार पर भौतिक विज्ञान के अनेक नियम और उपनियम बनाये गये हैं। इसलिये यह कहना ठीक है कि प्राक्-कल्पना केवल व्याख्या करने का प्रयत्न है—अर्थात् यह सामयिक कल्पना है जिसके द्वारा हम वैज्ञानिक दृष्टि से पदार्थों की व्याख्या करते हैं।

प्राक्-कल्पना सिद्धान्त नियम, वस्तु या पदार्थ या घटना आदि उपर्युल्लिखित शब्द अत्यन्त भ्रमोत्पादक हैं और प्रत्येक शब्द को तार्किकों ने अनेक अर्थों में प्रयोग किया है। इस हेतु से उनका वैज्ञानिक अर्थ बिलकुल छिप गया है। साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या वैज्ञानिक भी इन शब्दों के अर्थों में एक मत नहीं हैं। प्राक्-कल्पना सिद्धांत और नियम इन तीनों का ठीक प्रयोग इस तरह हो सकता है यदि हम तीनों को अप्रमाणित सामयिक कल्पना के क्रम से लेकर प्रकृति के नियम की स्थापना तक तीन क्रम मानें। प्रथम अवस्था में हम एक तात्कालिक कल्पना करते हैं जिसे हम प्राक्-कल्पना कहते हैं। ज्यों ज्यों इसका समर्थन होता जाता है त्यों त्यों यह प्राक्-कल्पना उच्चावस्था को प्राप्त होती जाती है और तब हम उसे सिद्धान्त के नाम से पुकारते हैं। सिद्धान्त इतना सुन्दर अर्थ रखता है और इसकी इतनी सुन्दरता से सिद्धि की जाती है कि इसकी प्रामाणिकता को हम स्वीकार कर लेते हैं। पश्चात् इससे हम अन्य पदार्थों को सिद्ध करते हैं और उनकी सत्यता को स्थापित करते हैं। इस स्थिति में सिद्धान्त नियम बन जाता है। यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि ये क्रम एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न नहीं हैं। एक खास निश्चित स्थिति का परिचय देना हमारे लिये असम्भव है जब हम प्राक्

(1) The Law of Gravitation.

कल्पना को एक सिद्धान्त के पद पर पहुँचा देते मैं। यही कारण है भिन्न भिन्न लेखकों ने एक ही सिद्धान्त के विषय में भिन्न-भिन्न व्यञ्जक शब्दों का प्रयोग किया है। इसी कारण से कुछ लोग विकासवाद का उल्लेख विकास सिद्धान्त के अर्थ में करते हैं। इसी प्रकार कुछ गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का उल्लेख करते हैं और दूसरे गुरुत्वाकर्षण के नियम का वर्णन करते हैं।

घटना या पदार्थ, शब्द का प्रयोग हम अपने जीवन के अनुभव में आए हुए पदार्थ या घटनाओं के अर्थ में करते हैं चाहे वे बाह्य जगत् से सम्बन्ध रखते हों या अन्तर्गत से सम्बन्ध रखते हों। बाह्य जगत् से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं का ज्ञान हम अपनी बाह्य इन्द्रियों से प्राप्त करते हैं, जैसे दृश्य, जिनको हम देखते है, शब्द जिनको हम सुनते हैं, इत्यादि। मानसिक घटनाओं या वृत्तियों को हम सीधे तौर से जान लेते हैं, जैसे हमारे सुख और दुःख। कभी घटना शब्द का व्यवहार, नियम के अर्थ में भी किया जाता है, क्योंकि वह भलीभाँति स्थापित होता है और साधारण जगत् तथा वैज्ञानिक जगत् में उसको मान लिया जाता है। यदि घटना का यही अर्थ स्वीकार किया जाय तो हमें मानना पड़ेगा कि वैज्ञानिक विचार धारा इस प्रकार की घटनाओं के आधार पर चलती है। इस प्रकार घटनाओं को यदि वास्तविक अनुभवों का प्रकार माना जाय तो वे तात्कालिक कल्पनाओं के प्रकार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। प्राक्-कल्पना का जब समर्थन हो जाता है तब यह सिद्धान्त का रूप धारण कर लेती है। सिद्धान्त के द्वारा हम अनेक पदार्थों या घटनाओं की व्याख्या करते हैं। जब सिद्धान्त इस प्रकार घटनाओं या व्याख्या करने में सफल होता है तब वह नियम बन जाता है और अन्त में जब नियम सुपरिचित हो जाता है तब उसे घटना के नाम से पुकारते हैं।

(३) प्राक्-कल्पना का उद्गमन

तर्कशास्त्र ने प्राक्-कल्पनाओं के निर्माण के लिये कोई वैज्ञानिक नियम नहीं बनाए हैं। प्राक्-कल्पनाओं को तार्किक नियमों के अन्दर नहीं लाया जा सकता। यह सत्य है कि प्राक्-कल्पनाएँ इसलिये ही की जाती

कल्पना का प्रसिद्ध उदाहरण न्यूटन महोदय के गुरुत्वाकर्षण[1] का सिद्धान्त है। न्यूटन महोदय ने एक सेब सिर पर गिरते हुए देखा और विचार करने लगे कि यह मेरे सिर पर ही क्यों गिरा ऊपर को क्यों नहीं गया। उन्होंने अन्दाज़ा लगाया कि यह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का परिणाम है। यह प्राक्-कल्पना पीछे से सत्य सिद्ध हुई और उसके परिणाम स्वरूप गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त स्थापित किया गया जो अब तक प्रचलित है और जिसके आधार पर भौतिक विज्ञान के अनेक नियम और उपनियम बनाये गये हैं। इसलिये यह कहना ठीक है कि प्राक्-कल्पना केवल व्याख्या करने का प्रयत्न है—अर्थात् वह सामयिक कल्पना है जिसके द्वारा हम वैज्ञानिक दृष्टि से पदार्थों की व्याख्या करते हैं।

प्राक्-कल्पना, सिद्धान्त नियम, वस्तु वा पदार्थ या घटना आदि उप र्युल्लिखित शब्द अत्यन्त भ्रमोत्पादक हैं और प्रत्येक शब्द को तार्किकों ने अनेक अर्थों में प्रयोग किया है। इस हेतु से उनका वैज्ञानिक अर्थ बिलकुल छिप गया है। साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या, वैज्ञानिक भी इन शब्दों के अर्थों में एक मत नहीं हैं। प्राक्-कल्पना सिद्धांत और नियम इन तीनों का ठीक प्रयोग इस तरह हो सकता है यदि हम तीनों को असमर्थित सामयिक कल्पना के क्रम से लेकर प्रकृति के नियम की स्थापना तक तीन क्रम मानें। प्रथम अवस्था में हम एक तात्कालिक कल्पना करते हैं जिसे हम प्राक्-कल्पना कहते हैं। ज्यों ज्यों इसका समर्थन होता जाता है त्यों त्यों त्यों प्राक्-कल्पना उच्चावस्था को प्राप्त होती जाती है और तब हम उसे सिद्धान्त के नाम से पुकारते हैं। सिद्धान्त इतना सुन्दर कार्य करता है और इसकी इतनी सुन्दरता से सिद्धि की जाती है कि इसकी प्रामाणिकता को हम स्वीकार कर लेते हैं। पश्चात् इससे हम अन्य पदार्थों को सिद्ध करते हैं और उनकी सत्यता को स्थापित करते हैं। इस स्थिति में सिद्धान्त नियम बन जाता है। यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि ये क्रम एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न नहीं हैं। एक खास निश्चित स्थिति का परिचय देना हमारे लिये असम्भव है जब हम प्राक्

(1) The Law of Gravitation.

कल्पना को एक सिद्धान्त के पद पर पहुँचा देते हैं। यही कारण है भिन्न भिन्न लेखकों ने एक ही सिद्धान्त के विषय में भिन्न-भिन्न व्यञ्जक शब्दों का प्रयोग किया है। इसी कारण से कुछ लोग विकासवाद का उल्लेख विकास सिद्धान्त के अर्थ में करते हैं। इसी प्रकार कुछ गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का उल्लेख करते हैं और दूसरे गुरुत्वाकर्षण के नियम का वर्णन करते हैं।

घटना या पदार्थ, शब्द का प्रयोग हम अपने जीवन के अनुभव में आए हुए पदार्थ या घटनाओं के अर्थ में करते हैं चाहे वे वाह्य जगत् से सम्बन्ध रखते हों या अन्तर्गत से सम्बन्ध रखते हों। वाह्य जगत् से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं का ज्ञान हम अपनी बाह्य इन्द्रियों से प्राप्त करते हैं, जैसे दृश्य, जिनको हम देखते हैं, शब्द जिनको हम सुनते हैं, इत्यादि। मानसिक घटनाओं या वृत्तियों को हम सीधे तौर से जान लेते हैं, जैसे हमारे सुख और दुःख। कभी घटना शब्द का व्यवहार, नियम के अर्थ में भी किया जाता है, क्योंकि वह भलीभाँति स्थापित होता है और साधारण जगत् तथा वैज्ञानिक जगत् में उसको मान लिया जाता है। यदि घटना का यही अर्थ स्वीकार किया जाय तो हमें मानना पड़ेगा कि वैज्ञानिक विचार धारा इस प्रकार की घटनाओं के आधार पर चलती है। इस प्रकार घटनाओं को यदि वास्तविक अनुभवों का प्रकार माना जाय तो वे तात्कालिक कल्पनाओं के प्रकार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। प्राक्-कल्पना का जब समर्थन हो जाता है तब यह सिद्धान्त का रूप धारण कर लेती है। सिद्धान्त के द्वारा हम अनेक पदार्थों या घटनाओं की व्याख्या करते हैं। जब सिद्धान्त इस प्रकार घटनाओं या व्याख्या करने में सफल होता है तब वह नियम बन जाता है और अन्त में जब नियम सुपरिचित हो जाता है तब उसे घटना के नाम से पुकारते हैं।

(३) प्राक्-कल्पना का उद्गमन

तर्कशास्त्र ने प्राक्-कल्पनाओं के निर्माण के लिये कोई वैज्ञानिक नियम नहीं बनाए हैं। प्राक्-कल्पनाओं को तार्किक नियमों के अन्दर नहीं लाया जा सकता। यह सत्य है कि प्राक्-कल्पनाएँ इसलिये ही की जाती

है कि उनके द्वारा हम अपने अनुभव-गत पदार्थों और घटनाओं की व्याख्या कर सकते हैं किन्तु वास्तविक प्राक्-कल्पना की सृष्टि करना एक प्रतिभाशील व्यक्ति का कार्य है। यहीं पर वैज्ञानिक की प्रतिभा, चतुरता और मौलिकता की परीक्षा की जाती है। यह केवल प्रतिभा, का ही फल है कि हमें बड़े बड़े विज्ञानसम्बन्धी आविष्कारों के दर्शन प्राप्त हुए हैं। लाखों मनुष्यों ने सेबों को वृक्षों से ज़मीन पर गिरते हुए देखा होगा, हजारों मनुष्यों ने अग्नि पर रक्खी हुई देगची के ढक्कने को हिलते हुए देखा होगा किन्तु इनका रहस्य न्यूटन और जम्स वाट के लिये ही निहित था कि वे विश्व के समक्ष यह बतलावें कि इन सामान्य घटनाओं के गर्भ में क्या क्या छिपा हुआ है। इन दोनों व्यक्तियों ने ही गुरुत्वाकर्षण और वाष्पबल के नियमों को स्थापित किया था। यद्यपि प्राक्-कल्पना की सृष्टि किसी वैज्ञानिक नियमों के आधार पर नहीं हो सकती तथापि यहाँ हम उन मुख्य मुख्य तरीकों का वर्णन करेंगे जिनमें हमें प्राक्-कल्पना करने की सूचना मिलती है वे तीन हैं (१) गणनाजन्य-सामान्यानुमान (२) सामान्य वाक्य का परिवर्तन और (३) उपमाजन्य-सामान्यानुमान।

(१) गणना-जन्य-सामान्यानुमान

गणना-जन्य-सामान्यानुमान दो प्रकार का होता है (१) निर्दोष और (२) सदोष। निर्दोष गणना-जन्य-सामान्यानुमान में हम सम्पूर्ण उदाहरण व्यक्तियों की परीक्षा करते हैं और सामान्यानुमान निकालते हैं। सदोष गणना-जन्य-सामान्यानुमान में जहाँ तक हमारे अनुभव की पहुँच है हम देखते हैं कि दो वस्तुयें सर्वदा एक साथ पाई जाती हैं। इस प्रकार दोनों प्रकारों में हम देखते हैं कि दो गुण एक साथ रहते हैं और हम नहीं जानते इन दोनों में कोई कार्यकारणभाव सम्बन्ध है या नहीं। अन्वयविधि (Method of Agreement) में भी हम कुछ उदाहरणों को लेते हैं जो किसी अवस्था की उपस्थिति में एकता रखते हैं। यह अन्वयविधि भी कारणता सम्बन्ध को सिद्ध नहीं कर सकती किन्तु यह कार्य कारण सम्बन्ध के विषय में सूचना अवश्य देती है। इस प्रकार जब हम देखते हैं कि दो घटनायें आपस में एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तब हम प्राक्-कल्पना

करते हैं कि उन दोनों के बीच कारणता का सम्बन्ध अवश्य होना चाहिये और एक दम प्राक् कल्पना की सृष्टि कर डालते हैं।

(२) सामान्य-वाक्य का परिवर्तन

वृद्धिगत अनुभव के परिणाम स्वरूप हमे कुछ सामान्य वाक्य मिलते हैं जैसे "सब कव्वे काले होते हैं" "सब मनुष्य मरण शील है।" हम सोचने लगते हैं क्या ये वाक्य सामान्य रूप से परिवर्तित हो सकने है या नहीं ? इसी को दूसरे शब्दों में प्रकट करना चाहें तो क्या सामान्य सम्बन्ध परस्पर सम्बन्ध सूचक हैं या नहीं ? सब कव्वे काले हैं तो क्या सब काली वस्तुएँ कव्वे हैं ? सब मनुष्य मरण शील हैं तो क्या सब मरण शील प्राणी मनुष्य हैं ? इस प्रकार हम देखते हैं कि इन उदाहरणों में परस्पर सम्बन्ध ठीक नहीं हैं। इससे हमारे हृदय में यह प्रश्न उपस्थित होता है—आखिरकार यह मनुष्य में क्या है जिससे यह मरणशील गिना जाता है। इसकी व्याख्या के लिये हम प्राक्-कल्पना की सृष्टि करते हैं और देखते हैं कि मनुष्य मरते हैं क्योंकि उनमें जीवन है। और जब यह मालूम हो जाता है तब हम देखते हैं कि पारस्परिक सम्बन्ध उनमें विद्यमान है और हम सामान्य वाक्य का निर्माण कर डालते हैं—"सब जीवित प्राणी मरणशील हैं" और इसका हम सामान्य (साधारण परिवर्तन) भी कर सकते हैं और कहते है "सब सत्तात्मक प्राणी जो मरण शील हैं, जीवित प्राणी हैं।"

(३) उपमाजन्य-सामान्यानुमान

उपमाजन्य-सामान्यानुमान एक अनुमान का प्रकार है जिसमें दो वस्तुओं के अन्दर अपूर्ण सादृश्य के आधार पर एक के द्वारा किसी दूसरी वस्तु का अनुमान करते हैं। उपमाजन्य सामान्यानुमान के द्वारा यद्यपि कारणता का सम्बन्ध स्थापित नहीं होता किन्तु प्राक्-कल्पना की सृष्टि का यह बहुत बड़ा स्रोत है। वस्तुएँ जो एक समान होती हैं, वे उसी प्रकार की वस्तुओं के विषय में सूचना देती हैं और उसी प्रकार के गुणों का उद्बोध कराती हैं। जब हम देखते हैं दो वस्तुयें कुछ गुणों में आपस में

मिलती जुलती हैं तब हम प्राक्-कल्पना करते हैं कि सम्भवतया वे अन्य गुणों में भी एक दूसरे के समान होंगी। इस प्रकार जब हम देखते हैं कि पृथ्वी और मंगल एक दूसरे के समान हैं और दोनों में एक-सा वातावरण है, दोनों में पहाड़ और नदियाँ हैं, इत्यादि। हम कल्पना करते हैं कि मंगल ग्रह पृथ्वी से इस बात में भी समानता रखता है कि पृथ्वी पर मनुष्य रहते हैं अतः मंगल ग्रह पर भी मनुष्य वास करते होंगे। इस प्रकार उपमान या सामान्यानुमान प्राक्-कल्पना की सृष्टि में सहायता करता है।

(४) प्राक्-कल्पनाओं के रूप

प्राक्-कल्पनाओं के तीन रूप होते हैं। ये विविध रूप विषय की दृष्टि से हैं। विषय की भिन्नता से प्राक्-कल्पनाएँ विविध रूप धारण करती हैं जैसे (१) कर्ता के ज्ञान होने पर तत्संबन्धी नियम के लिये प्राक्-कल्पना करना (२) नियम के ज्ञान होने पर तत्संबन्धी कर्ता के लिये प्राक्-कल्पना करना और (३) सामग्री के विषय में प्राक्-कल्पना करना।

(१) नियम के विषय में प्राक्-कल्पना—मान लो कर्ता का तो हमें ज्ञान है किन्तु नियम जिसके अनुसार वह कार्य करता है हमें मालूम नहीं है। इसके लिये हम प्राक्-कल्पना की सृष्टि करते हैं कि किस विधि से उदाहरण में कर्ता कार्य करता है। हम अपने दैनिक जीवन से उदाहरण ले सकते हैं—मान लीजिये हमारे घर में चोरी हुई, किन्तु हम यह नहीं जान सके कि चोर किस प्रकार घर में घुस आया। वैज्ञानिक क्षेत्र में गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त इसी प्रकार स्थापित हुआ था। कर्तागण जैसे पृथ्वी, पृथ्वी पर गिरनेवाली वस्तुएँ, सूर्य चन्द्र तथा अन्य ग्रह इन सबके विषय में मनुष्यों को ज्ञान था किन्तु तरीका जिनमें वे सब कर्तागण काम कर रहे थे नहीं मालूम था अतः यह कल्पना की गई कि इनकी गतियाँ एक खास तरीके में एक दूसरे के आकर्षण के कारण उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार से आकर्षण शक्ति का नियम बनाया गया।

(२) कर्ता के विषय में प्राक्-कल्पना—यह हो सकता है कि नियम का तो ज्ञान हो अर्थात् दूसरे पदार्थों का एक खास तरीके में

कार्य करने का ज्ञान हो, किन्तु एक विशेष कर्ता, जिसको इस ज्ञात नियम के अनुसार कार्य करना है, न मालूम हो। इस प्रकार की अवस्था में हम प्राक्-कल्पना की सृष्टि करते हैं जो कर्ता के विषय में होती है। उदाहरणार्थ, हम जूड़ी के बुखार के कारण के विषय मे प्राक्-कल्पना की सृष्टि कर सकते हैं। नेपच्यून ग्रह की खोज भी इसी प्रकार हुई थी। आकर्षण शक्ति का नियम लोगों को पता था और इस बात का ठीक हिसाब लगा लिया था कि यूरेनस ग्रह को इस प्रकार अपनी कक्षा में भ्रमण करना चाहिये क्योंकि उस समय तक ज्ञात ग्रहों का उसकी गति पर प्रभाव पड़ रहा था। किन्तु यह देखा गया कि वास्तव में यूरेनस ग्रह अपनी कक्षा, जो कि परिगणित है, से अलग होकर भ्रमण कर रहा है। पश्चात् इसकी अद्भुत गति का कारण खोजने के लिये प्राक्-कल्पना की सृष्टि की गई कि इसमें अवश्य ही किसी अज्ञात कर्ता का हाथ है जिसका प्रभाव इसकी गति मे गड़बड़ पैदा कर रहा है। यह अज्ञात कर्ता, पीछे से पता लगा, कि नेपच्यून ग्रह है। इसी प्रकार प्रकाश की, ईथर के द्वारा व्याख्या, या वस्तुओं के गिरने की पृथ्वी के द्वारा व्याख्या, कर्ता के विषय में प्राक्कल्पना के उदाहरण हैं।

(२) सामग्री के विषय में प्राक्कल्पना—सामग्री का अर्थ है अवस्थाओं का सम्यक् रूप में आयोजन करना जिससे कार्य सुगमता से हो सके। जैसे, एक ईंधन के ढेर मे हमने जलती हुई दियासलाई लगाई और उसमें आग लग गई। यहाँ ईंधन का ढेर सामग्री है। इस कार्य में, केवल कर्ता ही नहीं, दियासलाई ही नहीं, अपितु सामग्री भी जिम्मेदार है। उपर्युक्त उदाहरण में यदि हमें कर्ताओं का ज्ञान हो किन्तु सामग्री का ज्ञान न हो तब यह आवश्यक हो जाता है कि सामग्री के विषय में प्राक्-कल्पना की सृष्टि की जाय। प्राचीन काल में प्लेटो के सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी विश्व का केन्द्र मानी जाती थी और यह माना जाता था कि सूर्य, चन्द्र तथा अन्य ग्रह पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। किन्तु कोपर्निकस, जो कि एक पोलिश ज्योतिषी था, उसने आकाशीय ग्रहों की सामग्री के विषय में भिन्न प्रकार की प्राक्-कल्पना की सृष्टि की और यह खोज की कि इनमें सूर्य तो केन्द्र है और

सब ग्रह जिनमें पृथ्वी भी सम्मिलित है, इसी के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। अतः उसने सूर्य-मण्डल या सौर-जगत् की कल्पना की और वह सत्य निकली। आज ज्योतिष सम्बन्धी हमारे सारे भाग इसी सिद्धान्त के ऊपर चल रहे हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का यह विचार है कि कार्य में कर्त्ता और सामग्री दो ही वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है अतः प्राक्-कल्पना के केवल दो ही रूप होने चाहियें (१) नियम के विषय में प्राक्कल्पना (२) और कारण के विषय में प्राक्-कल्पना।

यहाँ यह विशेष ध्यान देने की बात है कि हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि प्रत्येक उदाहरण में ये प्राक्-कल्पनाओं के रूप अलग अलग स्पष्ट रहते हैं किन्तु इसके विपरीत यह भी देखा जाता है कि किसी किसी उदाहरण में दोनों रूप एकत्रित कर दिये जाते हैं। जैसे यदि हमें प्रकाश के भेजने के कार्य की व्याख्या करनी है तो हमें कर्त्ता के विषय में भी प्राक्-कल्पना करनी पड़ती है; जैसे ईथर और इसको नियन्त्रित करने वाले नियम की भी प्राक्-कल्पना करनी पड़ती है जैसे, एक खास प्रकार की लहरों को भेजना।

(५) प्राक्-कल्पनाओं के अन्य भेद—

कुछ तार्किकों ने प्राक्-कल्पनाओं के निम्नलिखित दो और भी भेद बतलाए हैं;—(१) काम चलाऊ प्राक् कल्पना।
(२) सादृश्य मूलक प्राक्-कल्पना।

(१) काम चलाऊ प्राक्-कल्पना[1] वह है जो सिद्धि के पहले की जाती है। इसको वर्णनमूलक या तात्कालिक कल्पना भी कहते हैं। अनुसंधान कर्त्ता प्रायः इस प्रकार की प्राक्-कल्पनायें किया करते हैं। इस प्रकार की तात्कालिक प्राक्-कल्पनायें प्रायः सत्य कल्पनाओं की मुख्य कारण बनती हैं। टोलेमी की ग्रहों के विषय में प्राक्-कल्पना वर्णनमूलक थी। उसने ग्रहों की गति की रेखा-गणित के सिद्धान्तों के आधार पर व्याख्या की। ईथर के विषय में यह कल्पना कि यह गतिहीन लचकदार पदार्थ है वर्णनात्मक प्राक्-कल्पना कहलाती है। जड़ पदार्थ को विद्युत कणों में वर्णन करना भी इसी प्रकार की प्राक्-कल्पना है।

---

(1) Working hypothesis

इस प्रकार की प्राक्-कल्पनाएँ सामयिक कल्पनाएँ कहलाती हैं। काम चलाऊ प्राक्-कल्पनाएँ इसलिये बनाई जाती हैं कि हम पदार्थों की तात्कालिक व्याख्या कर सकें और जब तक कि हमारा ज्ञान सत्य व्याख्या करने वाली प्राक्-कल्पना को बनाने में असमर्थ हैं हमारा काम चल सके। हक्सले महोदय का कहना है कि पदार्थों की व्याख्या करने के लिये हमें कामचलाऊ, वर्णनमूलक और तात्कालिक कल्पनाओं की सृष्टि करना चाहिये। क्योंकि किसी प्राक् कल्पना के न होने की अपेक्षा कोई कल्पना अवश्य होनी चाहिये। सम्भव है इसके द्वारा किसी महान नियम की उपस्थापना हो जाय। यह हो सकता है कि कई वर्णन मूलक प्राक् कल्पनाएँ एक साथ काय करें और पश्चात् उनमें से कुछ कार्यकारी सिद्ध हों।

(२) सादृश्य मूलक प्राक्कल्पना[1] वह है जहाँ हम किसी पदार्थ की कुछ बातें देखकर किसी अन्य पदार्थ की व्याख्या करने के लिये उसकी सदृशता के बल पर कोई नवीन प्राक्-कल्पना करते हैं। मिस स्टेबिंग महोदया का कहना है कि वर्णनमूलक प्राक् कल्पना सादृश्य मूलक प्राक्-कल्पना को जन्म दे सकती है। इस प्रकार की प्राक् कल्पना के अन्दर हम सोचते हैं कि जो कुछ एक प्रकार के पदार्थों के बारे में सत्य है वह अन्य प्रकार के पदार्थों के बारे में भी सत्य हो सकता है क्योंकि दोनों प्रकार के पदार्थों में कुछ सादृश्य है। यह उपमान या सादृश्य द्वारा ही सम्भव है कि व्यत्यय वर्ग[2] का नियम जो आकर्षण शक्ति के बारे में लगाया जाता है वह विद्युत सम्बन्धी आकर्षण में भी लगाया जा सकता है। इन दोनों प्रकार के पदार्थों में अर्थात् आकर्षण और विद्युत सम्बन्धी आकर्षण में रचनात्मक समानता है। इस प्रकार की प्राक् कल्पनाएँ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनुसधान की प्रक्रिया में अत्यन्त उपयोगी हैं। प्रायोगिक अनुसधान कल्पनाओं के द्वारा साध्य होते हैं। अन्त में इन्हीं के द्वारा उचित सामान्यानुमानों का निर्माण किया जाता है।

(६) उपयुक्त प्राक्कल्पना की अवस्थाएं

यह पहले बतलाया जा चुका है कि प्राक्कल्पना सामयिक या प्रयोग

---

(1) Analogical hypothesis (2) Inverse square

सब ग्रह जिनमें पृथ्वी भी सम्मिलित है, इसी के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। अतः उसने भू-मध्यस्थ या भौम-जगत् की कल्पना की और यह चल निकली। आज ज्योतिष सम्बन्धी हमारे सारे ज्ञान इसी सिद्धान्त के ऊपर चल रहे हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का यह विचार है कि कार्य में कर्ता और सामग्री दो ही वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है अतः प्राक्-कल्पना के केवल दो ही रूप होने चाहियें (१) नियम के विषय में प्राक्कल्पना (२) और कारण के विषय में प्राक्-कल्पना।

यहाँ यह विशेष ध्यान देने की बात है कि हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि प्रत्येक उदाहरण में य प्राक्-कल्पनाओं के रूप अलग अलग बनाए जाते हैं किन्तु इसके विपरीत यह भी देखा जाता है कि किसी किसी उदाहरण में दोनों रूप सम्मिलित कर लिये जाते हैं। जैसे यदि हमें प्रकाश के भेजने के कार्य की व्याख्या करनी है तो हमें कर्ता के विषय में भी प्राक् कल्पना करनी पड़ती है, जैसे, ईथर और उसको नियमित करने वाले नियम की भी प्राक्-कल्पना करनी पड़ती है जैसे एक खास प्रकार की लहरों की भेजना।

(५) प्राक्-कल्पनाओं के अन्य भेद—

कुछ तार्किकों ने प्राक्-कल्पनाओं के निम्नलिखित दो और भी भेद बतलाए हैं,—(१) काम चलाऊ प्राक्-कल्पना।
(२) सादृश्य मूलक प्राक्-कल्पना।

(१) काम चलाऊ प्राक्-कल्पना[1] वह है जो सिद्धि के पहले की जाती है। इसको प्रयासमूलक या तात्कालिक कल्पना भी कहते हैं। अनुसंधान कर्ता प्रायः इस प्रकार की प्राक्-कल्पनायें किया करते हैं। इस प्रकार की तात्कालिक प्राक्-कल्पनायें प्रायः अन्य कल्पनाओं की मुख्य कारण बनती हैं। टॉलेमी की ग्रहों के विषय में प्राक्-कल्पना भ्रमनमूलक थी। उसने ग्रहों की गति को रेखा-गणित के सिद्धान्तों के आधार पर व्याख्या की। ईथर के विषय में यह कल्पना कि यह भारहीन लचकदार पदार्थ है कल्पनात्मक प्राक्-कल्पना कहलाती है। इस पदार्थ को विद्युत कणों में वर्णन करना भी इसी प्रकार की प्राक्-कल्पना है।

(1) Working hypothesis.

इस प्रकार की प्राक्-कल्पनाएँ सामयिक कल्पनाएँ कहलाती हैं। काम चलाऊ प्राक्-कल्पनाएँ इसलिये बनाई जाती हैं कि हम पदार्थों की तात्कालिक व्याख्या कर सकें और जब तक कि हमारा ज्ञान सत्य व्याख्या करने वाली प्राक्-कल्पना को बनाने में असमर्थ हैं हमारा काम चल सके। हक्सले महोदय का कहना है कि पदार्थों की व्याख्या करने के लिये हमें कामचलाऊ, वर्णनमूलक और तात्कालिक कल्पनाओं की सृष्टि करना चाहिये। क्योंकि किसी प्राक् कल्पना के न होने की अपेक्षा कोई कल्पना अवश्य होनी चाहिये। सम्भव है इसके द्वारा किसी महान नियम की उपस्थापना हो जाय। यह हो सकता है कि कई वर्णन मूलक प्राक् कल्पनाएँ एक साथ काय करें और पश्चात् उनमें से कुछ कार्यकारी सिद्ध हों।

(२) सादृश्य मूलक प्राक्कल्पना[1] वह है जहाँ हम किसी पदार्थ की कुछ बातें देखकर किसी अन्य पदार्थ की व्याख्या करने के लिये उसकी सदृशता के बल पर कोई नवीन प्राक्-कल्पना करते हैं। मिस स्टेबिंग महोदया का कहना है कि वर्णनमूलक प्राक् कल्पना सादृश्य मूलक प्राक्-कल्पना को जन्म दे सकती है। इस प्रकार की प्राक् कल्पना के अन्दर हम सोचते हैं कि जो कुछ एक प्रकार के पदार्थों के बारे में सत्य है वह अन्य प्रकार के पदार्थों के बारे में भी सत्य हो सकता है क्योंकि दोनों प्रकार के पदार्थों में कुछ सादृश्य है। यह उपमान या सादृश्य द्वारा ही सम्भव है कि व्यत्यय वर्ग[2] का नियम जो आकर्षण शक्ति के बारे में लगाया जाता है वह विद्युत सम्बन्धी आकर्षण में भी लगाया जा सकता है। इन दोनों प्रकार के पदार्थों में अर्थात् आकर्षण और विद्युत सम्बन्धी आकर्षण में रचनात्मक समानता है। इस प्रकार की प्राक्-कल्पनाएँ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनुसधान की प्रक्रिया में अत्यन्त उपयोगी है। प्रायोगिक अनुसधान कल्पनाओं के द्वारा साध्य होते हैं। अन्त में इन्हीं के द्वारा उचित सामान्यानुमानों का निर्माण किया जाता है।

(६) उपयुक्त प्राक्कल्पना की अवस्थाएं

यह पहले बतलाया जा चुका है कि प्राक्कल्पना सामयिक या प्रयोग

---

(1) Analogical hypothesis (2) Inverse square

सम्बन्धी कल्पना है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक कल्पना वैज्ञानिक प्राक्कल्पना कहलाने के योग्य है। किसी भी प्राक्-कल्पना के लिये यह आवश्यक है कि वह कुछ अवस्थाओं के अनुसार हो जिससे वैज्ञानिक क्षेत्र में उस प्राक्-कल्पना के रूप में स्वीकार कर लिया जाय। जब कोई प्राक्कल्पना निम्नलिखित अवस्थाओं के अनुसार की जाती है तब हम उसे उचित उपर्युक्त या योग्य प्राक्-कल्पना[1] कहते हैं। एक उपयुक्त प्राक्कल्पना के लिये अधोलिखित अवस्थाओं का परिपालन करना आवश्यक है :—

(१) प्राक्-कल्पना स्वात्मस्तिक-विरोध[2] से रहित होनी चाहिये। वह मूर्खतापूर्ण न हो किन्तु विचारणीय और निश्चित होनी चाहिये।

प्राक्कल्पना स्वात्मभित्तिक-विरोध से शून्य होनी चाहिये और विचारणीय होनी चाहिये अर्थात् इसको कम से कम अपने आप तर्कित होनी चाहिये। उदाहरणार्थ हमें यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि अमुक कारण भिन्न अवस्थाओं में भिन्न रूप से प्रवृत्ति करेगा। प्राक्-कल्पना निश्चित होनी चाहिये यह संदिग्ध या अस्थिर न हो। हम किसी पदार्थ या घटना की व्याख्या करने के लिए प्राक्कल्पना करते हैं। यदि यह अनिश्चित है तो पदार्थ या घटना का व्याख्यान हो ही नहीं सकता। उदाहरणार्थ, इसका कोई अर्थ नहीं है यदि हम इस प्रकार की कल्पना करें कि भूकम्प इसलिये हुआ है क्योंकि पृथ्वी के अन्दर कुछ गड़बड़ होती रहती है। एक उपयुक्त प्राक्-कल्पना को निश्चित रूप से कहना चाहिये कि गड़बड़ का कारण यह है।

हमारी प्राक्-कल्पना मूर्खतापूर्ण या बेहूदी नहीं होनी चाहिये। यदि कोई मनुष्य अपने घर से चला गया है तो उसके विषय में यह नहीं सोचना चाहिये कि उसे भूत भगा ले गये हैं। न हमें यह सोचना चाहिये कि पृथ्वी माता गाय के सींग या सर्प के फन पर अवलम्बित है। उसी प्रकार यह

(1) Legitimet Hypothesis.

(2) Free from self-contradiction.

कल्पना भी सत्य नहीं है कि आकाश में दो राक्षस, राहू और केतू घूमते रहते हैं जो चन्द्र और सूर्य को ग्रस लेते हैं। यहा यह ध्यान देने योग्य बात है कि अवस्था पर अधिक जोर नहीं देना चाहिये। क्योंकि कोई कल्पना जो एक को मूर्खतापूर्ण प्रतीत होती है वह अन्य को बुद्धिमत्ता पूर्ण प्रतीत हो सकती है। यह सत्य है कि बहुत सी प्राक्कल्पनायें जो किसी समय मूर्खतापूर्ण समझी गई थीं वे ही पश्चात् सत्य सिद्ध हुई। जब कोलम्बस ने लोगों से यह कहा कि दृष्ट महाद्वीपों को छोड़कर अन्य और भी महाद्वीप हैं तो बुद्धिमान् लोगों ने उस समय अपने सिर हिला दिये और कहने लगे कि यह कल्पना मिथ्या है, किन्तु उसकी अध्यवसायिता के कारण नई दुनिया अर्थात् अमेरिका महाद्वीप की खोज हुई और उसकी कल्पना यथार्थ में सत्य निकली। उसी प्रकार एक समय यह बात मूर्खता पूर्ण समझी जाती थी कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है किन्तु अब कोई बुद्धिमान मनुष्य इस विषय में सशयापन्न नहीं है।

(२) प्राक्-कल्पना 'प्रतिष्ठित सत्यों के विरोध से रहित होनी चाहिये। हमारी बनाई हुई प्राक्-कल्पना प्रतिष्ठित सत्य या नियमों के विरुद्ध नहीं होनी चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि हमें भूतकाल में आविष्कृत सत्यों का ध्यान रखना चाहिये। कितने ही सत्य निश्चित रूप से स्थापित किये जा चुके हैं और कोई नयी सूचना जो पूर्व प्रतिष्ठित सत्यों के विरुद्ध दी जाती है, उसे सशय के साथ देखना चाहिये। ज्ञान सुसम्बन्ध प्रक्रिया है और इसके भिन्न-भिन्न भाग एक दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं। अत यदि हम कोई कल्पना करते हैं जो पूर्व प्रतिष्ठित सत्यों के विरुद्ध हो जाती है तो हमें समझना चाहिये कि इस प्रकार की कल्पनाएँ प्रायः असत्य ही होती हैं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि जिस कारण का हम पता लगा रहे हैं उसको हमेशा हमारे परिचित नियमों के अनुसार वर्तना चाहिये। जो कुछ आवश्यक है वह यह है कि हमारी कल्पना को उस नियम का

(1) Established

उलझन नहीं करना चाहिये जिसके विषय में हमारे पास निश्चित सबूत है। कभी कभी हम यह सोचने के लिये बाध्य हो जाते हैं कि एक कारण नियमित रूप में कार्य कर रहा है और उसके लिये हमारे पास अन्य कोई समानता रखने वाला नियम नहीं है। अन्य प्रकार से सोचने का तो यह अभिप्राय है कि ज्ञान अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है। किन्तु विज्ञान हमें यह सिखाता है कि ज्ञान का समुद्र-क्षेत्र अनन्त है इसमें जितने गोते लगाये जाय उतने ही नये-नये रत्न निकलते हुए दिखाई देंगे। यह देखा भी जाता है कि एक युग के आविष्कृत अनेक सिद्धान्त या नियम दूसरे युग में अथवा उलट दिये जाते हैं। अतः यह नियम अक्षरशः सत्य नहीं मानना चाहिये किन्तु इसके विषय में सावधान रहना चाहिये (३) प्रत्येक प्राक्-कल्पना को उदाहरणों पर आधारित रहना चाहिये और इसके उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक सत्य कारण (Vera causa) होने की अत्यन्त आवश्यकता है। सबसे प्रथम हम पदार्थों या घटनाओं का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। हमें बिना किसी पूर्व आग्रह के पदार्थों या घटनाओं का अवलोकन करना चाहिये तत्पश्चात उनकी व्याख्या करने के लिये प्राक्कल्पनाओं की सृष्टि करनी चाहिये। जब हम अपनी प्राक्कल्पना की परीक्षा करें तब भी हमें पदार्थों या घटनाओं को बगैर पक्षपात के देखना चाहिये। अतः प्राक्कल्पना मूल में पदार्थों या घटनाओं पर निर्भर रहती है और समर्थन पर भी अवलम्बित रहती है। यदि प्राक्-कल्पना किसी कार्य या कारण के लिये की गई है तब तो यह सत्य कारण रूप होनी चाहिये। न्यूटन ने ऐसा कहा है 'केवल सत्य कारण ही पदार्थों की व्याख्या करने के लिये प्रयुक्त करना चाहिये'। यहाँ 'सत्य कारण' का अर्थ है निश्चयात्मक कारण। इस वाक्यांश का ऐसे कारण के अर्थ में प्रयोग नहीं करना चाहिये जिसके अस्तित्व को हम वास्तविक रूप से जानते हों या जिसको साक्षात् हम अपनी इन्द्रियों से देखते हों। यदि उक्त कथन को हम इस संकुचित अर्थ में प्रयोग करेंगे तो हम परमाणु या ईथर को प्राक्-कल्पना के रूप में उपस्थित न कर सकेंगे क्योंकि दोनों ही वस्तुएँ ऐसी हैं जो हमारी दृष्टि में नहीं आ सकतीं। अतः इस कथन से यह अर्थ समझना

चाहिये कि कारण वह है जिसकी सत्ता में विश्वास किया जा सके और जिसकी सत्ता में स्वात्यन्तिकविरोध न हो। इसके अतिरिक्त ऐसे कारण जैसे एक परमाणु या ईथर साक्षात् रूप से नहीं दीखते, उन्हें हम असाक्षात् रूप से देख सकते हैं क्योंकि उनके परिणाम तो इन्द्रियों से प्रत्यक्ष हो जाते हैं। बेन महोदय इनको प्रतिनिध्यात्मक कल्पना (Representative Fiction) के नाम से पुकारते हैं। इस अवस्था का सच्चा अर्थ यह है कि कारण के विषय में यह, केवल अन्दाज़ा लगाने से हमें अलग कर देती है। अन्ध-विश्वासी, या मिथ्या-विश्वासी मनुष्य जादू, टोने या मन्त्र वगैरह से पदार्थों की व्याख्या करने की कोशिशों के द्वारा इस नियम का उल्लघन करते हैं हैं क्योंकि जादू, टोना वगैरह मनुष्य के अनुभव के बाहर हैं।

(४) प्रत्येक प्राक्कल्पना समर्थन करने के योग्य होनी चाहिये—प्रत्येक प्राक्कल्पना का समर्थन होना चाहिये—का अर्थ यह है कि या तो इसकी सिद्धि करनी चाहिये या असिद्धि। यह ऐसी होनी चाहिये कि इससे हम निष्कर्ष निकाल सकें और इसकी वास्तविक उदाहरण के साथ तुलना भी कर सकें। जिस प्राक्कल्पना से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता उसका कोई मूल्य नहीं है, वह केवल अन्दाजा होता है। इसका कोई मतलब नहीं क्योंकि इसकी सिद्धि के लिए कोई सबूत या प्रमाण नहीं दिया जा सकता। अत सबसे ज्यादा आवश्यक अवस्था प्राक्कल्पना की यह है कि इससे कोई न कोई निष्कर्ष अवश्य निकलना चाहिये जिससे हमारे लिये भविष्य में अनुसधान करने के लिये कुछ न कुछ कार्य-क्रम तैयार हो जावे।

इस प्रकार यदि हम एक कल्पना करते हैं कि कुछ घटनाओं के होने के लिये विशेष कारण हैं जो हमारे अनुभव से सर्वथा विपरीत हैं, जैसे भूत, राक्षस। इस प्रकार के पदार्थों को सिद्ध करना या असिद्ध करना अत्यन्त कठिन है। यदि मान लो हम ऐसे कारण की कल्पना करें, जैसे, ईथर। हालाँकि ईथर का साक्षात् इन्द्रिय-प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु इसके विषय में यह सोचा जा सकता है कि यह, जड़ पदार्थ सदृश कोई पदार्थ है क्योंकि वह लचकदार होता है, इसके द्वारा तरङ्गों को ग्रहण किया जा

उल्लंघन नहीं करना चाहिये जिसके विषय में हमारे पास निश्चित सबूत है। कभी कभी हम यह सोचने के लिये बाध्य हो जाते हैं कि एक कार्य नियमित रूप में कार्य कर रहा है और उसके लिये हमारे पास अन्य कोई समानता रखने वाला नियम नहीं है। अन्य प्रकार से सोचने का तो यह अभिप्राय है कि ज्ञान अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका है। किन्तु विज्ञान हमें यह सिखाता है कि ज्ञान का समुद्र-क्षेत्र अनन्त है इसमें जितने गोते लगाये जायं उतने ही नये-नये रत्न निकलते हुए दिखाई देंगे। यह देखा भी जाता है कि एक युग के प्रतिष्ठित अनेक सिद्धान्त या नियम दूसरे युग में उलटा सिद्ध किये जाते हैं। अतः यह नियम अक्षरशः सत्य नहीं मानना चाहिये किन्तु इसके विषय में सावधान रहना चाहिये (२) प्रत्येक प्राक्कल्पना को उदाहरणों पर आधारित रहना चाहिये और इसके उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक सत्य कारण (Vera causa) होने की अत्यन्त आवश्यकता है। सबसे प्रथम हम पदार्थों या घटनाओं का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। हमें बिना किसी पूर्व आग्रह के पदार्थों या घटनाओं का अवलोकन करना चाहिये उपरान्त उनकी व्याख्या करने के लिये प्राक्कल्पनाओं की सृष्टि करनी चाहिये। जब हम अपनी प्राक्कल्पना की परीक्षा करें तब भी हमें पदार्थों या घटनाओं को बगैर पक्षपात के देखना चाहिये। अतः प्राक्कल्पना मूल में पदार्थों या घटनाओं पर निर्भर रहती है और समर्थन पर भी अवलम्बित रहती है। यदि प्राक्-कल्पना किसी कार्य या कारण के लिये की गई है तब तो वह सत्य कारण रूप होनी चाहिये। न्यूटन ने जब कहा है 'केवल सत्य कारण ही पदार्थों की व्याख्या करने के लिये प्रयुक्त करना चाहिये'। यहाँ 'सत्य कारण' का अर्थ है निश्चयात्मक कारण। इस वाक्यांश का ऐसे कारण के अर्थ में प्रयोग नहीं करना चाहिये जिसके अस्तित्व को हम वास्तविक रूप से जानते हों या जिसको साक्षात् हम अपनी इन्द्रियों से देखते हों। यदि उक्त कथन को हम इस संकुचित अर्थ में प्रयोग करेंगे तो हम परमाणु या ईथर को प्राक्-कल्पना के रूप में उपस्थित न कर सकेंगे क्योंकि दोनों ही वस्तुएँ ऐसी हैं जो हमारी दृष्टि में नहीं आ सकतीं। अतः इस कथन से यह अर्थ समझना

चाहिये कि कारण वह है जिसकी सत्ता में विश्वास किया जा सके और जिसकी सत्ता में स्वात्यन्तिकविरोध न हो। इसके अतिरिक्त ऐसे कारण जैसे एक परमाणु या ईथर साक्षात् रूप से नहीं दीखते, उन्हें हम अप्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं क्योंकि उनके परिणाम तो इन्द्रियो से प्रत्यक्ष हो जाते हैं। बेन महोदय इनको प्रतिनिध्यात्मक कल्पना (Representative Fiction) के नाम से पुकारते हैं। इस अवस्था का सच्चा अर्थ यह है कि कारण के विषय में यह, केवल अन्दाजा लगाने से हमें अलग कर देती है। अन्ध-विश्वासी, या मिथ्या-विश्वासी मनुष्य जादू, टोने या मन्त्र वगैरह से पदार्थों की व्याख्या करने की कोशिशों के द्वारा इस नियम का उल्लघन करते हैं हैं क्योंकि जादू, टोना वगैरह मनुष्य के अनुभव के बाहर हैं।

(४) प्रत्येक प्राक्कल्पना समर्थन करने के योग्य होनी चाहिये—प्रत्येक प्राक्कल्पना का समर्थन होना चाहिये—का अर्थ यह है कि या तो इसकी सिद्धि करनी चाहिये या असिद्धि। यह ऐसी होनी चाहिये कि इससे हम निष्कर्ष निकाल सके और इसकी वास्तविक उदाहरण के साथ तुलना भी कर सकें। जिस प्राक्कल्पना से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता उसका कोई मूल्य नहीं है, वह केवल अन्दाज़ा होता है। इसका कोई मतलब नहीं क्योंकि इसकी सिद्धि के लिए कोई सबूत या प्रमाण नहीं दिया जा सकता। अत सबसे ज्यादा आवश्यक अवस्था प्राक्कल्पना की यह है कि इससे कोई न कोई निष्कर्ष अवश्य निकलना चाहिये जिससे हमारे लिये भविष्य में अनुसधान करने के लिये कुछ न कुछ कार्य-क्रम तैयार हो जावे।

इस प्रकार यदि हम एक कल्पना करते हैं कि कुछ घटनाओं के होने के लिये विशेष कारण हैं जो हमारे अनुभव से सर्वथा विपरीत हैं, जैसे भूत, राक्षस। इस प्रकार के पदार्थों को सिद्ध करना या असिद्ध करना अत्यन्त कठिन है। यदि मान लो हम ऐसे कारण की कल्पना करें, जैसे, ईथर। हालाँकि ईथर का साक्षात् इन्द्रिय-प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु इसके विषय में यह सोचा जा सकता है कि यह, जड़ पदार्थ सदृश कोई पदार्थ है क्योंकि वह लचकदार होता है, इसके द्वारा तरङ्गों को ग्रहण किया जा

उत्पन्न नहीं करना चाहिये जिसके विषय में हमारे पास निश्चित सबूत है। कभी कभी हम यह सोचने के लिये बाध्य हो जाते हैं कि एक कारण नियमित रूप में कार्य कर रहा है और उसके लिये हमारे पास अन्य कोई सम्बन्ध रखने वाला नियम नहीं है। अन्य प्रकार से सोचने का तो यह अभिप्राय है कि ज्ञान अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है। किन्तु विज्ञान हमें यह सिखाता है कि ज्ञान का समुद्र-क्षेत्र अनन्त है इसमें जितने गोते लगाये जायं उतने ही नये-नये रत्न निकलते हुए दिखाई देंगे। यह देखा भी जाता है कि एक युग के आविष्कृत अनेक सिद्धान्त या नियम दूसरे युग में असत्य सिद्ध किये जाते हैं। अतः यह नियम अक्षरशः सत्य नहीं मानना चाहिये किन्तु इसके विषय में सावधान रहना चाहिये (२) प्रत्येक प्राक् कल्पना को यथार्थताओं पर आधारित रहना चाहिये और इसके उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक सत्य कारण (Vera causa) होने की अत्यन्त आवश्यकता है। सबसे प्रथम हम पदार्थों या घटनाओं का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। हमें बिना किसी पूर्व आग्रह के पदार्थों या घटनाओं का अवलोकन करना चाहिये, तत्पश्चात् उनकी व्याख्या करने के लिये प्राक्कल्पनाओं की सृष्टि करनी चाहिये। जब हम अपनी प्राक्कल्पना की परीक्षा करें तब भी हमें पदार्थों या घटनाओं को बगैर पक्षपात के देखना चाहिये। अतः प्राक्कल्पना मूल में पदार्थों या घटनाओं पर निर्भर रहती है और समर्थन पर भी अवलम्बित रहती है। यदि प्राक्-कल्पना किसी कार्य या कारण के लिये की गई है तब तो यह सत्य कारण रूप होनी चाहिये। न्यूटन ने स्पष्ट कहा है 'केवल सत्य कारण ही पदार्थों की व्याख्या करने के लिये प्रयुक्त करना चाहिये'। यहाँ 'सत्य कारण' का अर्थ है निश्चयात्मक कारण। इस वाक्यांश का ऐसे कारण के अर्थ में प्रयोग नहीं करना चाहिये जिसके अस्तित्व को हम वास्तविक रूप से जानते हों या जिसको साक्षात् हम अपनी इन्द्रियों से देखते हों। यदि उक्त कथन को हम इस संकुचित अर्थ में प्रयोग करेंगे तो हम परमाणु या ईश्वर को प्राक् कल्पना के रूप में उपस्थित न कर सकेंगे क्योंकि दोनों ही वस्तुएँ ऐसी हैं जो हमारी दृष्टि में नहीं आ सकतीं। अतः इस कथन से यह अर्थ असमन्जस

चाहिये कि कारण वह है जिसकी सत्ता में विश्वास किया जा सके और जिसकी सत्ता में स्वात्यन्तिकविरोध न हो। इसके अतिरिक्त ऐसे कारण जैसे एक परमाणु या ईथर साक्षात् रूप से नहीं दीखते, उन्हें हम असाक्षात् रूप से देख सकते हैं क्योंकि उनके परिणाम तो इन्द्रियों से प्रत्यक्ष हो जाते हैं। वेन महोदय इनको प्रतिनिध्यात्मक कल्पना (Representative Fiction) के नाम से पुकारते हैं। इस अवस्था का सच्चा अर्थ यह है कि कारण के विषय में यह, केवल अन्दाज़ा लगाने से हमें अलग कर देती है। अन्ध-विश्वासी, या मिथ्या-विश्वासी मनुष्य जादू, टोने या मन्त्र वगैरह से पदार्थों की व्याख्या करने की कोशिशों के द्वारा इस नियम का उल्लघन करते हैं हैं क्योंकि जादू, टोना वगैरह मनुष्य के अनुभव के बाहर हैं।

(४) प्रत्येक प्राक्कल्पना समर्थन करने के योग्य होनी चाहिये—प्रत्येक प्राक्कल्पना का समर्थन होना चाहिये—का अर्थ यह है कि या तो इसकी सिद्धि करनी चाहिये या असिद्धि। यह ऐसी होनी चाहिये कि इससे हम निष्कर्ष निकाल सकें और इसकी वास्तविक उदाहरण के साथ तुलना भी कर सकें। जिस प्राक्कल्पना से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता उसका कोई मूल्य नहीं है, वह केवल अन्दाज़ा होता है। इसका कोई मतलब नहीं क्योंकि इसकी सिद्धि के लिए कोई सबूत या प्रमाण नहीं दिया जा सकता। अतः सबसे ज्यादा आवश्यक अवस्था प्राक्कल्पना की यह है कि इससे कोई न कोई निष्कर्ष अवश्य निकलना चाहिये जिससे हमारे लिये भविष्य में अनुसंधान करने के लिये कुछ न कुछ कार्य-क्रम तैयार हो जावे।

इस प्रकार यदि हम एक कल्पना करते हैं कि कुछ घटनाओं के होने के लिये विशेष कारण हैं जो हमारे अनुभव से सर्वथा विपरीत हैं, जैसे भूत, राक्षस। इस प्रकार के पदार्थों को सिद्ध करना या असिद्ध करना अत्यन्त कठिन है। यदि मान लो हम ऐसे कारण की कल्पना करें, जैसे, ईथर। हालाँकि ईथर का साक्षात् इन्द्रिय-प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु इसके विषय में यह सोचा जा सकता है कि यह, जड़ पदार्थ सदृश कोई पदार्थ है क्योंकि वह लचकदार होता है, इसके द्वारा तरङ्गों को ग्रहण किया जा

सकता है और न भेजी भी जा सकती है, तथा यह आकाश में कैसा हुआ है। अन्य जड़ पदार्थों के साथ ईथर की इस प्रकार की समानता दिखलाने के कारण यह सम्भव है कि हम उसके गुणों को जानकर उससे नियम निकाल लें और वास्तविक पदार्थों या घटनाओं के साथ उनकी तुलना भी कर डालें।

कारवेथ रीड के अनुसार दो ही अवस्थायें—(१) समर्थन और (२) निष्कर्ष आवश्यक हैं। इन अवस्थाओं के होने पर प्राक्कल्पना की सिद्धि भलीभाँति हो सकती है इसके लिये अन्य अवस्थाओं को संख्या निश्चित करने की आवश्यकता नहीं। तार्किकों ने दूसरी प्रकार की अवस्थायें प्राक्कल्पना के लिये बतलाई हैं जिनको हम यथार्थ में अवस्थायें कहने के लिये तैयार नहीं हैं और उनकी पूर्ति करने की ही आवश्यकता है। हाँ, कुछ अवस्थायें ऐसी अवश्य हैं जिनका हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं जिनकी पूर्ति होना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा वैज्ञानिक अनुसन्धान करना ही कठिन हो जायगा। अन्य तार्किकों द्वारा बतलाई अवस्थाओं को अवस्थायें न कहकर हम उन्हें योग्य प्राक्कल्पना के सबूत कह सकते हैं जब कि हमारी प्राक्कल्पना तय्यार हो जाती है और अनुसंधान शुरु हो जाता है। वास्तव में देखा जाय तो प्रतीत होगा कि प्राक्कल्पना के लिये किसी प्रकार के कठोर नियम निश्चित कर डालना अत्यन्त मुश्किल है।

(७) प्राक्कल्पना का सबूत

प्राक्कल्पना एक प्रकार की काल्पनिक कल्पना है जो पदार्थों या घटनाओं की व्याख्या करती है किन्तु प्रत्येक प्राक्कल्पना को वैज्ञानिक प्राक्कल्पना नहीं कहा जा सकता। किसी कल्पना के लिये यह आवश्यक है कि वह कुछ अवस्थाओं के अनुसार कार्य करे जिससे कि हम उसे उपयुक्त-प्राक्कल्पना बना सकें। एक उपयुक्त प्राक्कल्पना ही वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये लाभकारी हो सकती है। प्रश्न यह है। इस प्रकार की प्राक्कल्पना को कैसे सिद्ध किया जाय। जब एक उपयुक्त प्राक्कल्पना सिद्ध हो जाती है तब वह सिद्धान्त के पद को प्राप्त कर लेती है या वह नियम

कहलाती है। उपर्युक्त प्राक् कल्पना की हमें इस प्रकार परीक्षा कर लेनी चाहिये जिससे कि हम निश्चय कर लें कि हमारी प्राक्कल्पना पदार्थों की सच्ची व्याख्या करने वाली है या नहीं।

प्राक्कल्पना के सबूत की प्रथम आवश्यकता समर्थन है। समर्थन (Verification) का अर्थ है वास्तविक पदार्थों के प्रति प्राक्कल्पना को पुनर्विचार के लिये प्रेरित करना। समर्थन दो प्रकार से होता है (१) साक्षात्[1] और (२) असाक्षात्[2]। साक्षात् समर्थन प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग से होता है तथा असाक्षात् समर्थन विशेषानुमान द्वारा होता है और समुचित उदाहरणों के एकत्रित करने से होता है।

समर्थन उस समय साक्षात् रूप से होता है जब अनुभवगत पदार्थों के प्रति साक्षात् पुनर्विचार प्रेरित किया जाता है और उसके द्वारा प्रश्नगत प्राक्कल्पना का स्वरूप निश्चित कर दिया जाता है। यह या तो सामान्य प्रत्यक्षीकरण या प्रयोग द्वारा हो सकता है। यदि प्रत्यक्षीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा कल्पित कारण संसार में विद्यमान है जहाँ इसकी कल्पना की गई है तो हमारी प्राक्कल्पना प्रत्यक्षीकरण में समर्थित कहलाती है। इसी आधार पर ग्रह, यूरेनस के परिगणित मार्ग से उसकी विचलित गति के विषय में कल्पना की गई थी कि यह विचलन किसी अन्य ग्रह की स्थिति के कारण होना चाहिये। किन्तु जब दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा प्रत्यक्षीकरण किया गया तो प्रतीत हुआ कि आशास्य क्षेत्र में नेपच्यून ग्रह विद्यमान है जो गड़बड़ कर रहा है, तो हमारी प्राक्कल्पना का प्रत्यक्षीकरण द्वारा समर्थन हो गया। इसी प्रकार प्रयोग द्वारा भी प्राक्-कल्पना का समर्थन हो सकता है। प्रयोग द्वारा यह पता लगाया गया कि वायुमण्डल से प्राप्त किया हुआ ऑक्सिजन दूसरे पदार्थों से निकाले हुए ऑक्सिजनों की अपेक्षा अधिक भारी होता है, तब वैज्ञानिकों ने प्राक्-कल्पना करना आरम्भ किया कि वायु मण्डल से प्राप्त किये हुए ऑक्सिजन में अन्य गैस मिले हुए रहते हैं। पश्चात् प्रयोग द्वारा यह मालूम किया

---

(1) Direct (2) Indirect

गया कि यदि ऑक्सिजन को अलग कर लिया जाय तो बाद में कुछ बच रहता है जिसे आरगन नाम का गैस कहते हैं। इस उदाहरण में प्राक्कल्पना प्रयोग द्वारा समर्थित हुई है।

समर्थन असाक्षात् रूप से भी किया जाता है। जब हम साक्षात् प्रत्यक्षीकरण या प्रयोग द्वारा समर्थन नहीं कर सकते तब हम प्राक्कल्पना से निष्कर्ष निकालते हैं और वास्तविक उदाहरणों के साथ उनकी तुलना करते हैं। कुछ कारण ऐसे स्वभाव के हैं जिनके कारण उनका प्रत्यक्षीकरण नहीं हो सकता; जैसे ईथर, परमाणु इत्यादि। इन उदाहरणों में हम उनसे निष्कर्ष निकालते हैं और उनकी उदाहरणों के साथ तुलना करते हैं। यदि निकाले हुए निष्कर्ष उदाहरणों के साथ ठीक बैठते हैं तो हमें अपनी प्राक्कल्पना समर्थित समझनी चाहिये, और यदि वे ठीक नहीं बैठते हैं तो प्राक्कल्पना को असिद्ध समझना चाहिये। यहाँ समर्थन असाक्षात् है क्योंकि यहाँ कल्पित कारण को हम साक्षात् रूप से नहीं देख सकते हैं किन्तु उनसे निकाले हुए निष्कर्ष को अवश्य देख सकते हैं। कभी कभी असाक्षात् समर्थन दूसरा रूप भी धारण करता है। हम यह आशा नहीं कर सकते कि प्रत्येक वैज्ञानिक खोज के विभाग में इसी प्रकार का दृढ़ समर्थन हो सकेगा। इस प्रकार की अवस्थाओं में तो हमें केवल उदाहरणों का और प्रमाणों का संकलन करना चाहिये। यदि हम यह देखते हैं कि ऐसे उदाहरणों की संख्या अत्यधिक है जिनकी प्राक्कल्पनाओं के साथ पूरा सामञ्जस्यता है और आत्यन्तिक विरोधी उदाहरणों का सर्वथा अभाव है तो हम कुछ हद तक संतुष्ट रह सकते हैं और मान सकते हैं कि हमारी प्राक्कल्पना समर्थित हो गई है।

(२) प्राक्कल्पना उदाहरणों की व्याख्या करने के लिये उपयुक्त होनी चाहिये तथा ऐसा करने के लिये केवल यही प्राक्कल्पना होनी चाहिये। प्राक्कल्पना को सिद्ध करने की प्रक्रिया में समर्थन का पहला स्थान है और यह नहीं समझना चाहिये कि प्राक्कल्पना का समर्थन उसका निश्चयात्मक सबूत बनाता है। प्राक्कल्पना के समर्थन को उसके सबूत के साथ समान सिद्ध करना "हेतुमद्" की विधि करने का दोष' पैदा करना

है। यह समर्थन की प्रक्रिया, हेतु-हेतुमद्—निरपेक्ष सिलाजिज्म के रूप में रक्खी जा सकती है। जैसे :—

यदि प्राक्-कल्पना सत्य होगी तो इसके द्वारा निकाले हुए निष्कर्ष भी सत्य होंगे।

इसके निकाले हुए निष्कर्ष सत्य हैं,

∴ प्राक्-कल्पना सत्य है।

इससे यह सर्वथा स्पष्ट है कि इसमे हेतुमद् की विधि करने का दोष आता है। इसलिए एक प्राक-कल्पना को पूर्णतया सिद्ध करने के लिये समर्थन से कुछ अधिक की आवश्यकता है— अर्थात् इसमें यह दिखलाना चाहिये कि प्राक्-कल्पना उन सब उदाहरणों की व्याख्या कर सकती है जिनके लिये यह बनाई गई है तथा व्याख्या करने के लिये केवल यही पर्याप्त है।

कभी कभी यह देखा जाता है कि दो या अधिक प्रतियोगी प्राक्कल्पनाएँ होती हैं जो उदाहरणों की व्याख्या करने में समर्थ होती हैं। यह निश्चय करने के लिये कि इन प्रतियोगी प्राक्कल्पनाओं में से कौन सी प्राक्कल्पना उचित रीति से व्याख्या कर सकती है। हम इसके लिये शोधक उदाहरण (Crucial instance) ग्रहण करते हैं। **शोधक उदाहरण[1] वह कहलाता है जिसको प्रतिद्वन्दी प्राक्कल्पनाओं में से किसी एक के द्वारा ही व्याख्या हो सकती है अन्य के द्वारा नहीं।** इस प्रकार के शोधक उदाहरण प्रत्यक्षी करण द्वारा या प्रयोग द्वारा प्राप्त होते हैं। **यदि यह प्रयोग द्वारा प्राप्त होता है तो इसे शोधक प्रयोग** (Crucial experiment) **कहते हैं।** वेकन महोदय का कहना है कि (Crucial intsance) शोधक उदाहरण यह शब्द मार्गदर्शक स्तम्भों से बना है जो सड़कों पर खड़े रहते हैं और यात्रियों को मार्ग की सूचना देते हैं। जब हम ऐसे स्थान पर आते हैं जहाँ दो सड़के एक दूसरी को काटती हैं और हमें पता नहीं होता कि किस सड़क से जाना है जिससे कि हम

---

(1) Instantia Crucis

अपने लक्ष्य पर पहुँच जाय। वहाँ मार्ग द्योतक स्तम्भ निश्चित रूप से बतलाता है कि हमें अमुक रास्ते से जाना चाहिये। इसी प्रकार जब हम एक शोधक उदाहरण लेते हैं तब यह पूर्ण रूप से निश्चय करता है कि प्रतियोगी प्राक्कल्पनाओं में से किसकी सिद्धि हुई है। बेकेन्ड के शब्दों में हम यह सकते हैं कि शोधक उदाहरण एक प्राक्कल्पना को ही सिद्ध नहीं करता है किन्तु दूसरी का निषेध भी करता है। हाँ, यदि शोधक उदाहरण प्रयोग से प्राप्त किया जाय या वह शोधक प्रयोग हो तो सिद्धि की दृष्टि से इसका मूल्य प्रत्यक्षीकरण के द्वारा प्राप्त किए हुए उदाहरण से अत्यधिक है।

(८) प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त शोधक उदाहरणों के निदर्शन

(१) मान लो हमारे घर में चोरी हो गई है और हम यह निश्चय नहीं कर सकते कि चोर हमारे घर के नौकर के साथ मिला हुआ है या नहीं। जाँच पड़ताल के समय हम देखते हैं कि एक कागज पर हमारे घर का पूरा नक्शा मय रास्तों की सूचना के घर के आँगन में पड़ा हुआ है और उसमें उस स्थान का विशेष विल्लेख है जहाँ ज़ेवर वगैरह कीमती वस्तुएँ रखी हुई थी। इस कागज़ का मिल जाना शोधक उदाहरण है। इस उदाहरण से हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि हमारी पहली प्राक्कल्पना ठीक है और दूसरी ठीक नहीं है। क्योंकि घर के भेदी के बगैर कोई भी मनुष्य इस प्रकार की सूचना नहीं दे सकता था।

(२) मान लो दो, एक दूसरे की विरोधी प्राक्कल्पनाएँ हैं जैसे टोलेमी का सिद्धान्त जिसके अनुसार पृथ्वी विश्व का केन्द्र और सूर्य, चन्द्र शुक्र आदि ग्रह पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं; तथा कोपर्निकस का सिद्धान्त, जिसके अनुसार सूर्य विश्व का केन्द्र है और पृथ्वी, चन्द्र, शुक्र आदि ग्रह सब सूर्य का चक्कर लगाते हैं। किन्तु इस बात की खोज की गई कि प्रकाश के व्यतिक्रम की घटना ऐसी है जिसकी कोपर्निकस के सिद्धान्त से तो व्याख्या हो सकती है किन्तु टोलेमी के सिद्धान्त से नहीं हो सकती। अतः यह उदाहरण शोधक उदाहरण था है जो पहले सिद्धान्त को तो पुष्ट करता है किन्तु दूसरे सिद्धान्त को नहीं करता।

---

(1) Crucial Instance.

(६) प्रयोग से प्राप्त शोधक-उदाहरणो के निदर्शन

(१) मान लो एक अमृतवान है और उसमें कोई गैस भरा हुआ है और हम यह निश्चित करना चाहते हैं कि यह हाइड्रोजन है या ऑक्सिजन। हम देखते हैं—गैस मे न तो रग है, न रस है और न उसमें गध हैं। क्योंकि ये सब हाइड्रोजन और ऑक्सिजन के साधारण गुण है, हम जानना चाहते हैं कि अमृतवान में कौन सा गैस है? इसके लिये हम एक प्रयोग करते हैं। हम अमृतवान में एक जलती हुई दियासलाई डालते हैं और देखते हैं कि गैस जलने लगता है। इससे प्रतीत होता है कि शीघ्रता के साथ जलने की शक्ति अमृतवान में भरे हुए गैस का गुण है, क्योंकि यह गुण केवल हॉइड्रोजन मे पाया जाता है और ऑक्सिजन में नहीं। अत. यह प्रयोग निश्चित रूप से सिद्ध करता है कि अमृतवान में रक्खा हुआ गैस हॉइड्रोजन है, ऑक्सिजन नहीं।

(२) पहले यह समझा जाता था कि भौतिक पदार्थ पृथ्वीपर एकसी गति से गिरते हैं जो उसके भार के अनुपात से निश्चित की जाती है। गैलिलीओ का सिद्धान्त इसके विपरीत था। वह कहता था कि भौतिक पदार्थों के भार उनकी गति से कोई सम्बन्ध नहीं रखते जिससे वे गिरते है। इस के लिये गेलिलीओ ने पिसा[1] की मीनार पर चढ़कर भिन्न-भिन्न भार के गोले ज़मीन पर छोड़े तो उसे पता लगा कि वे एक ही समय पर गिरते हैं। इस प्रयोग से गैलिलीओ के सिद्धान्त की सत्यता सिद्ध हो गई और दूसरी प्राक्कल्पना असिद्ध हो गई।

(१०) सामान्यानुमानों की अनुरूपता

सामान्यानुमानों की अनुरूपता[2] से हमारा अभिप्राय उस गुण से है जो प्राक्कल्पना में पाया जाता है जिसके द्वारा उनके अतिरिक्त, जिनके लिये प्राक्कल्पना बनाई जाती है, अन्य पदार्थों या घटनाओं की व्याख्या की जाती है। यदि हमने एक प्राक्कल्पना बनाई है जिसके द्वारा एक

---

(1) Pisa (2) Concilience of Induction

अपने लक्ष्य पर पहुँच जाय। वहाँ मार्ग दर्शक स्तम्भ निश्चित रूप से बतलाता है कि हमें अमुक रास्ते से जाना चाहिये। इसी प्रकार जब हम एक शोधक उदाहरण लेते हैं तब यह पूर्ण रूप से निश्चय करता है कि प्रतियोगी प्राक्कल्पनाओं में से किसकी सिद्धि हुई है। वेवेल के शब्दों में हम कह सकते हैं कि शोधक उदाहरण एक प्राक्कल्पना को ही सिद्ध नहीं करता है किन्तु दूसरी का निरोध भी करता है। हाँ, यदि शोधक उदाहरण प्रयोग से प्राप्त किया जाय या यह शोधक प्रयोग हो तो सिद्धि की दृष्टि से इसका मूल्य प्रत्यक्षीकरण के द्वारा प्राप्त किये हुए उदाहरण से अत्यधिक है।

(८) प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त शोधक उदाहरणों के निदर्शन

(१) मान लो हमारे घर में चोरी हो गई है और हम यह निश्चय नहीं कर सकते कि चोर हमारे घर के नौकर के साथ मिला हुआ है या नहीं। जाँच पड़ताल के समय हम देखते हैं कि एक कागज पर हमारे घर का पूर्ण नक्शा मय रास्तों की सूचना के घर के आंगन में पड़ा हुआ है और उसमें उस स्थान का विशेष विश्लेषण है जहाँ जेवर वगैरह कीमती वस्तुएं रखी हुई थीं। इस कागज का मिल जाना शोधक उदाहरण है। इस उदाहरण से हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि हमारी पहली प्राक्कल्पना ठीक है और दूसरी ठीक नहीं है। क्योंकि घर के भेदी के बगैर कोई भी मनुष्य इस प्रकार की सूचना नहीं दे सकता था।

(२) मान लो दो एक दूसरे की विरोधी प्राक्कल्पनायें हैं जैसे टॉलेमी का सिद्धान्त जिसके अनुसार पृथ्वी विश्व का केन्द्र और सूर्य, चन्द्र, शुक्र आदि ग्रह पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं तथा कोपर्निकस का सिद्धान्त जिसके अनुसार सूर्य विश्व का केन्द्र है और पृथ्वी चन्द्र, शुक्र आदि ग्रह सब सूर्य का चक्कर लगाते हैं। किन्तु इस बात की खोज की गई कि प्रकाश के व्यतिक्रम की घटना ऐसी है जिसकी कोपर्निकस के सिद्धान्त से तो व्याख्या हो सकती है किन्तु टॉलेमी के सिद्धान्त से नहीं हो सकती। अतः यह उदाहरण शोधक उदाहरण का है जो पहले सिद्धान्त को तो पुष्ट करता है किन्तु दूसरे सिद्धान्त को नहीं करता।

---

(1) Crucial instance.

(९) प्रयोग से प्राप्त शोधक-उदाहरणों के निदर्शन

(१) मान लो एक अमृतवान है और उसमें कोई गैस भरा हुआ है और हम यह निश्चित करना चाहते हैं कि यह हाइड्रोजन है या ऑक्सि-जन। हम देखते हैं—गैस में न तो रंग है, न रस है और न उसमें गंध है। क्योंकि ये सब हाइड्रोजन और ऑक्सिजन के साधारण गुण हैं, हम जानना चाहते हैं कि अमृतवान में कौन सा गैस है? इसके लिये हम एक प्रयोग करते हैं। हम अमृतवान में एक जलती हुई दियासलाई डालते हैं और देखते हैं कि गैस जलने लगता है। इससे प्रतीत होता है कि शीघ्रता के साथ जलने की शक्ति अमृतवान में भरे हुए गैस का गुण है, क्योंकि यह गुण केवल हॉइड्रोजन में पाया जाता है और ऑक्सिजन में नहीं। अतः यह प्रयोग निश्चित रूप से सिद्ध करता है कि अमृतवान में रक्खा हुआ गैस हॉइड्रोजन है, ऑक्सिजन नहीं।

(२) पहले यह समझा जाता था कि भौतिक पदार्थ पृथ्वीपर एकसी गति से गिरते हैं जो उसके भार के अनुपात से निश्चित की जाती है। गैलिलीओ का सिद्धान्त इसके विपरीत था। वह कहता था कि भौतिक पदार्थों के भार उनकी गति से कोई सम्बन्ध नहीं रखते जिससे वे गिरते हैं। इस के लिये गेलिलीओ ने पिसा[1] की मीनार पर चढ़कर भिन्न-भिन्न भार के गोले ज़मीन पर छोड़े तो उसे पता लगा कि वे एक ही समय पर गिरते हैं। इस प्रयोग से गैलिलीओ के सिद्धान्त की सत्यता सिद्ध हो गई और दूसरी प्राकृकल्पना असिद्ध हो गई।

(१०) सामान्यानुमानों की अनुरूपता

सामान्यानुमानों की अनुरूपता[2] से हमारा अभिप्राय उस गुण से है जो प्राकृकल्पना में पाया जाता है जिसके द्वारा उनके अतिरिक्त, जिनके लिये प्राकृकल्पना बनाई जाती है, अन्य पदार्थों या घटनाओं की व्याख्या की जाती है। यदि हमने एक प्राकृकल्पना बनाई है जिसके द्वारा एक

(1) Pisa (2) Concilience of Induction

निश्चित प्रकार की घटनाओं या पदार्थों की व्याख्या की जाती है किन्तु यदि लगता है कि इसके द्वारा न केवल उन पदार्थों या घटनाओं की जिनकी व्याख्या के लिये इसको बनाया गया है बल्कि अन्य पदार्थों और घटनाओं की भी व्याख्या की जाती है, तो उस हालत में इसका मूल्य और भी बढ़ जाता है उदाहरणार्थ जब हम यह जानते हैं कि गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त न केवल पृथ्वीपर गिरनेवाले पदार्थों की व्याख्या करने में ही समर्थ है अपितु इसके द्वारा समुद्र के ज्वार भाटा की भी व्याख्या हो सकती है, ग्रहों की गतियों की भी व्याख्या हो सकती है, तो इसको अत्यधिक उत्तम प्राक्कल्पना माना जाता है।

(११) ह्वेवेल का मन्तव्य

किसी प्राक्कल्पना की सफलता का एक लक्षण यह भी है कि उसमें भविष्यवाणी करने की सामर्थ्य हो। भविष्य की बात को बतलाने की शक्ति प्राक्कल्पना की एक असाधारण विशेषता है। ज्योतिषी लोग ग्रहण के बारे में पहले से ही भविष्यवाणी कर सकते हैं और वह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होती है। नेप्च्यून की स्थिति के विषय में भविष्यवाणी कर देना भी एक प्राक्कल्पना की शक्ति का अच्छा उदाहरण है। यहां यह जानने योग्य बात है कि इस तरह भविष्यवाणी करना ही केवल प्राक्कल्पना का निश्चित सबूत नहीं है। प्राचीन काल में प्टोलोमी के सिद्धान्त के अनुसार भी ग्रहण वगैरह के विषय में भविष्यवाणी की जाती थी और वह सत्य सिद्ध होती थी किन्तु अन्त में उसका सिद्धान्त गलत सिद्ध हुआ।

संक्षेप में प्राक्कल्पना के विषय में हम यह कह सकते हैं कि किसी प्राक्कल्पना की सिद्धि के लिये इसका समर्थन होना चाहिये। प्रसंगगत पदार्थों की व्याख्या करने के लिये यह पूर्णतया समर्थ होनी चाहिये और केवल एक ही प्राक्कल्पना होनी चाहिये जो अच्छी तरह व्याख्या कर सके। इसको केवल अपने विषयगत पदार्थों की ही व्याख्या नहीं करना चाहिये अपितु दूसरे पदार्थों और उदाहरणों की भी व्याख्या करने की भी सामर्थ्य होनी चाहिये और अन्त में इसमें भविष्यवाणी करने की भी शक्ति होना आवश्यक है।

(१२) काम चलानेवाली प्राक्कल्पना

कुछ प्राक्कल्पनाएँ चाहे वे कारणों से सम्बन्ध रखती हों या नियमों से सम्बन्ध रखती हों, शुरू से ही उनकी योग्यता के बारे में बहुत कम सम्भावना रखनी चाहिये। यह हो सकता है कि हम किसी पदार्थ या घटना की व्याख्या करना चाहें, लेकिन यदि यह इतनी अपरिचित है कि हम उसके न तो कारण के बारे में कोई कल्पना कर सकते हैं और न उसके नियामक नियम की कल्पना कर सकते हैं, तो उसकी व्यख्या न होगी। किन्तु कोई न कोई सामयिक प्राक्कल्पना अत्यन्त आवश्यक है जिसके द्वारा हम उसके स्वभाव या गुण का अध्ययन कर सकें। इस प्रकार के पदार्थ या घटनाओं को अध्ययन करने के लिये की **काम चलाऊ प्राक्-कलपना** की ज़रूरत होती है। **अतः काम चलाने वाली प्राक्-कल्पना[1] एक कल्पना है जिसको हम कुछ समय के लिये, उसके प्रर्याप्त न होने पर भी, सत्य मान लेते है और उसके द्वारा पदार्थों की व्याख्या करते है।** क्योंकि उस समय के लिये उससे उत्तम प्राक्-कल्पना नहीं मिलती है इसलिये उसको आगे की खोज के लिये उत्तम प्राक्-कल्पना समझ कर, इससे कार्य निकालना चाहिये। जैसे, हम मानते है कि विद्युत् एक तरल पदार्थ है। यह काम चलानेवाली प्राक् कल्पना है। यह प्राक्-कल्पना यद्यपि अपर्याप्त है तथापि वर्तमान अवस्थाओं में सबसे उत्तम है।

(१३) व्याख्यात्मक और वर्णनात्मक प्राक्-कल्पनाएँ

यह पहले बतलाया जा चुका है कि प्राक्-कल्पनाओं के तीन रूप होते हैं—(१) कर्ता सम्बन्धी प्राक्-कल्पना (२) सामग्री सम्बन्धी प्राक्-कल्पना और (३) नियम सम्बन्धी प्राक्-कल्पना। कर्ता और सामग्री दोनों मिलकर कारण को बनाते हैं, अत. हम प्राक्-कल्पना के दो रूपों की चर्चा कर सकते हैं अर्थात् (१) कारण सम्बन्धी प्राक्कल्पना और (२) नियम सम्बन्धी प्राक्-कल्पना।

---

(1) Working Hypothesis

कारण सम्बन्धी प्राक्-कल्पना अर्थात् किसी पदार्थ या घटना के सत्य कारण के रूप में किसी पूर्वगामी अवस्था की कल्पना व्याख्यात्मक प्राक्-कल्पना (Explanatory Hypothesis) कहलाती है क्योंकि यह पदार्थों या घटनाओं की व्याख्या करती है। नियम सम्बन्धी प्राक्-कल्पना को इसके विपरीत, वर्णनात्मक प्राक्-कल्पना (Descriptive Hypothesis) कहते हैं क्योंकि यह उस रीति को बतलाती है जिसके अन्दर प्रश्नगत घटना को उत्पन्न होना है। इस प्रकार व्याख्यात्मक प्राक्-कल्पना एक कारण की कल्पना कर पदार्थों की व्याख्या करती है और वर्णनात्मक प्राक्-कल्पना वह है जो कारण को नियमित करने वाले नियम की व्याख्या करती है। पर देखने की बात है कि वास्तव में दोनों में कोई खास विरोध नहीं है। उपर्युक्त लिखित वर्णनात्मक प्राक्-कल्पना या नियम सम्बन्धी प्राक्-कल्पना उस रीति को बतलाती है जिसमें पदार्थ पैदा होता है या घटता है। इससे हमें कुछ हद तक सत्य कारण का पता लगता है और इस अर्थ में इसको व्याख्यात्मक कहा जाता है। इससे हम निष्कर्ष निकालते हैं कि इनमें कोई वास्तविक विरोध नहीं है। यदि यथार्थ में देखा जाय तो मालूम होता कि सब प्राक्-कल्पनाएँ व्याख्यात्मक ही होती हैं क्योंकि वे सब पदार्थों के व्याख्यान के लिये काल्पनिक कल्पनायें हैं।

(१४) प्रतिनिध्यात्मक कल्पनाएँ

प्रतिनिध्यात्मक कल्पना (Pepresentative Fiction) शब्द का निर्माण वेन ने किया था। उनके शब्दों की ही पेश करके कहा जाता है कि कुछ प्राक्-कल्पनाएँ ऐसी होती हैं जो पदार्थों की सूक्ष्म रचना और कार्यों पर प्रकाश डालती हैं। इन पदार्थों के स्वाभाविक रूप पर विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि उनको हम साक्षात् रूप से सिद्ध नहीं कर सकते। उनका गुण केवल इतना ही है कि वे पदार्थों की व्याख्या करने में किसी प्रकार समर्थ होती हैं। इन्हीं को प्रतिनिध्यात्मक कल्पनाएं कहते हैं।

परमाणु की रचना के विषय में जितने कथन होंगे वे सब काल्पनिक या विचारात्मक होंगे। किन्तु उन्हें हमको इसलिये नहीं छोड़ देना चाहिये क्योंकि हम उनकी साक्षात् सिद्धि नहीं कर सकते। उनके मूल्यांकन का उचित प्रमाण यह है कि वे पदार्थों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। यह दिखलाना कि ताप परमाणुओं की गति से पैदा होता है सर्वथा असम्भव है, किन्तु यदि यह कल्पना सब दृश्य पदार्थों के अनुरूप है और इसके द्वारा हम सब दृश्य पदार्थों का सामान्य वाक्य द्वारा वर्णन कर सकते हैं तो इस से हमारा एक बड़ा भारी बौद्धिक मतलब सिद्ध हो जाता है।

समुचित प्राक्कल्पना की अवस्थाओं में से एक अवस्था यह है कि कल्पित कर्ता या कारण एक सत्य कारण[1] होना चाहिये, किन्तु वह ऐसा होना चाहिये कि जिसके विचार में आत्यान्तिक विरोध न हो और जिसकी सत्ता के विषय में भी हम विश्वास कर सकें। प्रतिनिध्यात्मक कल्पनाएँ इस अर्थ में सत्य कारण रूप होती हैं।

(१५) प्राक्कल्पना और भावप्रथक्करण[2]

कभी कभी प्राक्कल्पना शब्द का व्यवहार वास्तविक पदार्थों को छोड़ कर भाववाचक वस्तुओं में किया जाता है। इस अर्थ में ड्यूगाल्ड स्टीवर्ट तथा अन्य विद्वानों ने रेखागणित सम्बन्धी तर्कणाओं को प्राक्कल्पनाओं पर आधारित माना है। जैसे रेखागणित में, बिन्दुका लक्षण इस प्रकार किया है कि इसका स्थान नियत होता है किन्तु इसके लिये कहा जाता है कि इसका परिमाण नहीं होता। इसी प्रकार रेखा का लक्षण बनाते हैं कि इसकी लम्बाई होती है किन्तु इसके लिये कहा जाता है कि इसमें चौड़ाई नहीं होती। इन लक्षणों के होने पर भी बिन्दु का वास्तव में, कुछ न कुछ परिमाण अवश्य होता है। वास्तविक रेखा भी इसी प्रकार लम्बाई के अतिरिक्त कुछ न कुछ चौड़ाई अवश्य रहती है। इन उदाहरणों में हम एक गुण को छोड़कर अवशिष्ट सबका भावप्रथक्करण करते हैं। बिन्दुका विचार करते समय अन्य सब गुणों को छोड़ कर केवल

(1) Vera causa (2) Abstraction,

स्थान का निर्देश करते हैं। रेखा का विचार करते समय अन्य गुणों को छोड़कर केवल लम्बाई का ही विचार उपस्थित करते हैं। इस प्रकार के भावप्रथक्करण का नाम प्राक्कल्पना रखा गया क्योंकि भाव प्रथक्करण में कल्पना अवश्य काम करती है और वह वास्तविक पदार्थों का प्रतिनिधित्व करता है। प्राक्कल्पना में भी जब इसका हम सामान्य अर्थ लेते हैं हम कल्पना करते हैं और भावप्रथक्करण में भी हम कल्पना करते हैं। किन्तु प्राक्कल्पना और भावप्रथक्करण में वास्तविक भेद यह है कि प्राक्कल्पना में हम किसी अज्ञात वस्तु के विषय में प्राक्कल्पना करते हैं तथा भावप्रथक्करण में हम यह कल्पना करते हैं कि यह वास्तविक वस्तु के लिये किया गया है और इसमें अन्य किसी अवस्थाओं का विचार नहीं किया गया है। इसलिये भावप्रथक्करण के लिये प्राक्कल्पना का व्यवहार करना अनुचित है। कारवेथ रीड ने ठीक कहा है "पद का यह विस्तार सर्वथा भ्रमोत्पादक और अनावश्यक प्रतीत होता है क्योंकि प्राक्कल्पना तो किसी क्या का, सामग्रीका, तथा नियम का प्रस्ताव करती है जिसको हम अभी तक नहीं जानते तथा इसके विपरीत भाव—प्रथक्करण, ज्ञात पदार्थ के अनुभाग को विचार से निकाल देता है। इस बात में हमें कोई तथ्य प्रतीत नहीं होता कि अन्तिम प्रक्रिया को भी भावप्रथक्करण क्यों नहीं कहते। इस प्रकार यद्यपि प्राक्कल्पना और सामान्यानुमान में भाव-प्रथक्करण सम्मिलित रहता है तथापि परिमाण रूप विचार इतने भावात्मक नहीं होते जितने गणित-शास्त्रीय विचार होते हैं।

(१६) न्यूटन और प्राक्कल्पना

आइन्स्टीन (Einstien) ने एक बार लिखा था कि जिस दिन विश्व के पदार्थों को कुछ गणित के सिद्धान्तों के द्वारा, व्यवस्था की जायगी जिसका अर्थ है कि जिस दिन प्राक्कल्पनाओं और इन्द्रियानुभावों के बीच एक दरार बन जायगी उस दिन विज्ञान सरल बन जायगा। गैलिलियो ने भी इन्द्रियग्राह्य पदार्थों को गणित के सिद्धान्तों से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया था किन्तु उसके ऊपर यह अपराध लगाया गया था कि उसने बुद्धि

के द्वारा इन्द्रियों पर अत्याचार किया है। तो क्या प्राक्कल्पनाओं को विश्व तत्वों से अलग कर देना चाहिये। इसके लिये यह कहा जा चुका है कि यद्यपि सामान्यानुमान में भावप्रथक्करण सम्मिलित है तथापि इस आधार पर इसे प्राक्कल्पनाओं को नहीं अपनाना चाहिये क्योंकि प्राक्-कल्पनाएँ पदार्थों से सर्वथा भिन्न होती हैं। न्यूटन प्राक्कल्पना की विधि के विरुद्ध नहीं था यद्यपि उसने एक बार यह कहा था **"मैं प्राक्कल्पना नहीं किया करता"**। उसके अनुसार प्राक्कल्पनाओं को पदार्थों की व्याख्या करने के लिये बनाना चाहिये, वे केवल भावात्मक विचार मात्र ही न हों। वास्तव में वह अतिभौतिकज्ञान सम्बन्धी तथा निरर्थक कल्पनाओं को बनाने के विरुद्ध था। इसी मन्तव्य को लेकर कुछ तार्किकों ने प्राक्कल्पनाओं को जगली जातियों के समान बना दिया है जिनमें नियम और राज्य व्यवस्था का सर्वथा अभाव रहता है। किन्तु न्यूटन ने वैज्ञानिकों के लिये यही कहा था कि उन्हें प्राक्कल्पना करते समय सावधान रहना चाहिये।

(१७) प्राक्कल्पना की उपयोगिता

उपर्युक्त प्राक्कल्पना के पर्यालोचन से हम इसकी उपयोगिता का बहुत जल्दी निर्णय कर सकते हैं। **प्राक्कल्पना पदार्थों की व्याख्या करने के लिये एक सामयिक कल्पना है।** इसको यदि वैज्ञानिक खोज का साधन माना जाय तो इसको कुछ अवस्थाओं के अनुसार कार्य करना चाहिये और यह उपयुक्त[1] होनी चाहिये। कभी-कभी यह होता है कि उपर्युक्त प्राक्कल्पनाओं को बनाने में बड़ी कठिनाई होती है क्योंकि खोज का विषय बड़ा अपरिचित होता है और ऐसे स्थानों पर हमें केवल कल्पनाओं पर निर्भर रहना पड़ता है जो कामचलाऊ प्राक्-कल्पनाओं[2] के रूप में अपर्याप्त गिनी जाती हैं। किन्तु इस प्रकार की काम चलाऊ प्राक्कल्पना में कल्पनाएँ आवश्यक अवश्य है क्योंकि बिना किसी प्रकार की कल्पना के वैज्ञानिक अनुसधान का कार्य हो ही नहीं सकता। इसलिये प्राक्-कल्पनाओं की निम्नलिखित उपयोगिताएँ स्वीकार करनी चाहिये —

(१) प्राक्कल्पनाएँ वैज्ञानिक अनुसंधान के आरभ बिन्दु

(1) Legitimate (2) Working Hypothesis

होती हैं और इनके ज्ञान पर ही प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग सम्भव हो सकते हैं—वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये यह आवश्यक है कि हम प्रथम कुछ न कुछ प्राक्कल्पना के रूप में अन्दाजा लगायें जिससे अनुसंधान का कार्य चल सके। वैज्ञानिक सामान्यानुमान कारणता के सम्बन्ध को स्थापित करता है और कारणता के सम्बन्ध की स्थापना के लिये यह आवश्यक है कि कुछ न कुछ प्राक्कल्पनायें बनाई जाँय जिससे यह ज्ञात हो जाय कि कारण का स्वरूप क्या है और वह किस प्रकार काम करता है।

यह पहले कहा जा चुका है कि प्राक्कल्पनायें आरम्भ से ही प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग के ऊपर निर्भर रहती हैं। प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग सामान्यानुमान के लिये विषय तय्यार करते हैं और ये विषय या प्रतिज्ञा वाक्य अनुभवगम्य पदार्थ होते हैं। हमें इन्हीं अनुभवगम्य पदार्थों से सामान्य नियम बनाना होता है। इन असाधारण पदार्थों में कोई न कोई ऐसी वस्तु अवश्य होती है जो इन सब को एक सूत्र में बाँध देती है गोकि अन्य बातों में वे भिन्न भिन्न होते हैं। इस एक सूत्रता को हम किस प्रकार स्थापित कर सकते हैं? प्रकृति हमें पदार्थों को बिखरे रूप में प्रदान करती है। यदि मस्तिष्क को इनके अन्दर एकता का सम्बन्ध स्थापित करना है तो यह निरपेक्षित देखने की प्रक्रिया मात्र नहीं हो सकती। इसे सुनिश्चित प्रयत्न का रूप धारण करना चाहिये और इसका कोई न कोई निश्चय उद्देश्य होना चाहिये। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इसकी सफलता के लिये कोई न कोई प्राक्कल्पना करना चाहिये जिसके द्वारा हम एकता का सम्बन्ध स्थापित कर सकें। यदि प्राक्कल्पना के अभाव में प्रत्यक्षीकरण असम्भव है तो प्रयोग तो और भी असम्भव होगा। प्रयोग में तो हम कृत्रिम रूप से ज्ञात अवस्थाओं के अन्दर वस्तुओं का पुनर्निर्माण करते हैं। इस प्रकार के पुनर्निर्मित पदार्थ किसी न किसी प्राक्कल्पना से सम्बन्धित किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, हम जानते हैं कि हॉइड्रोजन और ऑक्सिजन यदि किसी निश्चित परिमाण में मिलाये जाँय तो वे पानी पैदा कर देते हैं। हम इनका प्रयोग करते हैं और देखते हैं कि हमारी कल्पना ठीक है। कभी-कभी एक

दिये हुए उदाहरण में हमारी प्राक्कल्पना मिथ्या भी सिद्ध हो सकती है, किन्तु सब उदाहरणों में प्रयोग के लिए किसी न किसी कल्पना की आवश्यकता अवश्य होती है। इस प्रकार हम देख चुके हैं प्राक्कल्पना के द्वारा प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग दोनों पर नियन्त्रण होता है।

(२) प्राक्कल्पना से सामान्यानुमान की प्रक्रिया सुलभ हो जाती है। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि जिनमें प्रत्यक्षीकरण के परिणाम अनिश्चित सिद्ध होते हैं और उनमें प्रयोग का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के उदाहरणों में यदि कारणता-सम्बन्ध को स्थापित करने का कोई उपाय है तो किसी सिद्धान्त की कल्पना करना और उससे परिणाम या निष्कर्ष निकालना। पश्चात् हम उनकी वास्तविक पदार्थों के साथ तुलना भी कर सकते हैं।

(३) प्राक्कल्पना व्याख्या करने के लिये अत्यन्त सहायक क्रिया है। प्रकृति के पदार्थों की व्याख्या करना प्राक्कल्पना का कार्य है। किसी पदार्थ की व्याख्या तब पूर्ण समझी जाती है जब हम उसके कारण या कार्य के नियम को सिद्ध कर लेते हैं। प्राक्कल्पनाएँ, कर्ता, सामग्री और नियम की व्याख्या करने के लिये बनाई जाती हैं। प्रत्येक उदाहरण में पदार्थ को हम तब व्याख्या किया हुआ समझते हैं जब तत्सम्बन्धी प्राक्कल्पना सिद्ध हो जाती है।

हमारे व्याख्या करने के प्रयत्न में जिस समय हम देखते हैं कि पदार्थ नवीन स्वभाववाला है और इसके लिये नियमपूर्ण प्राक्कल्पना की रचना असम्भव है, उस समय हमें कामचलाऊ प्राक्कल्पना करके सन्तुष्ट रहना पड़ता है। इस प्रकार की प्राक्कल्पनाएँ वास्तव में असंतोषजनक और अपर्याप्त होती हैं। हाँला कि यह मानना पड़ेगा कि वे किसी के न होने की अपेक्षा अच्छी हैं क्योंकि वे पदार्थों की कुछ न कुछ तो व्याख्या करती ही हैं। जैसे विद्युत्—जिसको एक प्रकार का तरल पदार्थ बतलाकर, व्याख्या की जाती है। हाला कि यह कल्पना बिलकुल असंतोषप्रद है तथापि किसी न किसी हद तक यह वस्तुतत्व का व्याख्यान तो करती ही है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक ग़लत प्राक्कल्पना भी, जिसका पीछे से चाहे खण्डन

हो जाय, एक सामयिक व्यवस्था को उपस्थित कर सकती है और उस सीमा तक इसको हम उपयोगी मान सकते हैं। इसमें हमको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। जैसे, टॉलेमी का सिद्धान्त, जो यह मानता है कि पृथ्वी स्थिर है और अन्य सूर्य, चन्द्रादि ग्रह इसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं, सर्वथा निरर्थक नहीं था। कम से कम इस सिद्धान्त से बहुत ज्योतिष सम्बन्धी बातों की व्यवस्था की जाती थी और वह सर्वथा असत्य नहीं होती थी। किन्तु इसको अन्त में, कोपर्निकस ने खण्डन किया और सिद्ध कर दिया कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी, चन्द्र आदि ग्रह इसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं।

(१८) प्राक्कल्पना की सिद्धि

पहले हम प्राक्कल्पना के लिये विशेषानुमानीय सिद्धि[1] की आवश्यकता बतला आये हैं। मिल महोदय का कहना है कि प्राक्कल्पना के लिये सामान्यानुमान में विशेषानुमानीय सिद्धि की आवश्यकता है; किन्तु बहुत सी प्राक्कल्पनायें प्रयोगिक विधियों की सहायता से साक्षात् रूप में भी सिद्ध की जा सकती हैं। वे विधियाँ निम्नलिखित हैं :—(१) अन्वय-विधि (२) व्यतिरेक-विधि (३) अन्वयव्यतिरेकविधि (४) सहगामि-विचरण-विधि और (५) अवशेष-विधि। आगे के अध्याय में हम इन सब पर विचार करेंगे कि ये विधियाँ कहाँ तक सामान्यानुमान में कार्यकारी हैं।

अभ्यास प्रश्न

(१) सामान्यानुमान के क्षेत्र में प्राक्कल्पना का क्या स्थान है? उपयुक्त प्राक्कल्पना की अवस्थाओं का वर्णन करो।

(२) प्राक्कल्पनायें कितने प्रकार की होती हैं? प्रत्येक का प्रकार-स्वरूप लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(३) प्राक्कल्पना किसे कहते हैं? साधारण जीवन में से एक प्राक्कल्पना का उदाहरण दो।

(४) कार्यमूलक और कारणमूलक प्राक्कल्पनाओं के लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

---

(1) Deductive proof.

(५) उपयुक्त प्राक्कल्पना किसे कहते हैं ? इसकी अवस्थाओं का स्पष्ट वर्णन करो।

(६) प्राक्-कल्पनाके सबूत से आपका क्या अभिप्राय है ? इसकी प्रथम आवश्यकता कौनसी है ? स्पष्ट लिखो।

(७) शोधक-प्रयोग और शोधक-उदाहरण मे क्या अन्तर है ? प्रत्येक का उदाहरण देकर अपने उत्तर को ठीक बनाओ।

(८) सामान्यानुमानों की अनुरूपता से तुम्हारा क्या अभिप्राय है ? प्राक् कल्पनाओं के विषय में ह्वेवेल महोदय का क्या मन्तव्य है ?

(९) कामचलाऊ प्राक्-कल्पना और उपयुक्त प्राक्-कल्पना में क्या अन्तर है ? दोनों के लक्षण लिखकर उदाहरण भी दो।

(१०) क्या प्रत्यक्षीकरण में प्राक्-कल्पना सहायता करती है ? यदि करती है तो किस प्रकार ? इसका विशद वर्णन करो।

(११) प्राक्-कल्पना, सिद्धान्त और उदाहरण के अलग अलग लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(१२) 'मान लो आपके कमरे में चोरी हो गई है' आप इस विषय के बारे में किस प्रकार प्राक्-कल्पना करेंगे ?

(१३) शोधक प्रयोग का लक्षण लिखकर उदाहरण से स्पष्ट करो।

(१४) प्रतिनिध्यात्मक कल्पना का आप क्या अर्थ समझते है ? उदाहरण देकर अपने उत्तर को स्पष्ट बनाओ।

(१५) प्राक् कल्पना और भाव प्रथक्करण में क्या सम्बन्ध है ? प्रकाश डालो।

(१६) न्यूटन का प्राक्-कल्पनाओं के विषय मे क्या मन्तव्य है ? 'मैं प्राक्कल्पनाएँ नहीं किया करता' इससे उसका क्या मतलब है ?

(१७) प्राक् कल्पनाओं को वैज्ञानिक अनुसधान का आरम्भ विन्दु क्यों माना गया है ? स्पष्ट विवेचन करो।

(१८) जीवन में और वैज्ञानिक क्षेत्र में प्राक्-कल्पनाओं की उपयोगिता पर प्रकाश डालो।

अध्याय ६

(१) प्रायोगिक विधियाँ

इन प्रायोगिक विधियों द्वारा सामान्यानुमान में कारणता के सम्बन्ध की खोज करते हैं और उसको सिद्ध करते हैं। सामान्यानुमान, कारणता सम्बन्ध के आधार पर सामान्य वाक्यों का निर्माण करता है। तार्किकों ने इसके लिये कुछ विधियों का आविष्कार किया है जिनके द्वारा हम सरलता-पूर्वक कारणता-सम्बन्ध को खोज सकते हैं। इनका जन्मदाता मिल है। मिल की इन विधियों को हम सामान्यानुमानीय सिद्धान्त, प्रायोगिक विधियाँ, प्रायोगिक खोज की विधियाँ आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। सामान्यानुमान के क्षेत्र में मिल महोदय ने इनको बड़ा महत्व दिया है। हर्शेल (Herschel) ने इनको अपूर्ण रूप से सोचा था किन्तु इनका परिष्कृत रूप मिल ने ही स्थापित किया था। मिल महोदय ने पाँच प्रायोगिक विधियाँ बतलाई हैं। वे निम्नलिखित हैं:—

(१) अन्वय-विधि।

(२) व्यतिरेक-विधि।

(३) सम्मिलित अन्वय-व्यतिरेक विधि।

(४) सहगामि-विचरण-विधि।

(५) अवशेष-विधि।

इन पाँचों विधियों पर सम्यक्-रूप से विचार करने पर प्रतीत होगा कि इनमें से प्रथम दो ही मुख्य और मौलिक विधियाँ हैं और अन्य शेष विधियाँ हैं। सम्मिलित-अन्वय-व्यतिरेक विधि वास्तव में अन्वय-विधि का ही विशेष प्रकार है। सहगामि-विचरण-विधि को या तो अन्वय-विधि का विशेष प्रकार माना जा सकता है या व्यतिरेक-विधि का विशेष प्रकार माना जा सकता है। जहाँ तक अवशेष-विधि का सम्बन्ध है उसको तो

व्यतिरेक-विधि का एक विचित्र प्रकार मानना होगा। दो मुख्य विधियों में भी व्यतिरेक विधि का विशेष स्थान है क्योंकि अन्वय-विधि मुख्य रूप से प्रत्यक्षीकरण से सम्बन्ध रखती है और कारणता के बारे में, सिद्धि की अपेक्षा, सूचना मात्र देती है। यह व्यतिरेक विधि की ही विशेषता है कि हम अपने साक्षात् अनुभव के आधार पर कारणता के सम्बन्ध में निश्चय-पूर्वक निर्णय दे सकते हैं। कुछ आधुनिक तार्किक, जैसे मैलोन (Mellone) कॉफी (Coffey) आदि ने, एक नवीन विधि बतलाई जिसको वे सम्मिलित व्यतिरेक-अन्वय-विधि कहते हैं।

यहाँ यह बतलाना अनुचित न होगा कि यद्यपि इन विधियों को पूर्ण रूप से स्थापित करने का श्रेय मिल महोदय को ही है किन्तु इनकी खोज करने वाला कोई अन्य ही व्यक्ति था। इन विधियों का पूर्ण रूप बेकन ने अपनी विधि-तालिका, निषेध-तालिका मात्रा तालिका के रूप में हमें पहले ही दे दिया था किन्तु मिल की विधियों का यथार्थ रूप उसके समक्ष उपस्थित नहीं था। हरशेल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्राकृतिक दर्शन के अध्ययन पर प्राथमिक आलोचन' (Preliminary Discourse on the Study of Natural Philosophy) नामक ग्रन्थ में दार्शनिक चिन्तन के ९ नियम बतलाये हैं। यह बात ऐतिहासिक तथ्य से परिपूर्ण है कि मिल ने इन विधियों को वहाँ से ग्रहण किया था, तथापि मिल को इतना श्रेय अवश्य दिया जाता है कि वह प्रथम व्यक्ति है जिसने इनका वैज्ञानिक रूप हमारे सामने रक्खा है और इनकी सामान्यानुमान के क्षेत्र में महत्ता बतलाई है।

इसके अतिरिक्त यह भी बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि ये प्रायोगिक विधियाँ केवल प्रथक्करण (Elimination) की ही विधियाँ नहीं है किन्तु इनके द्वारा कारणता का सम्बन्ध भी स्थापित किया जाता है। मिल महोदय इन विधियों को प्रथक्करण की विधियाँ कहा करते थे। प्रथक्करण[1] का अर्थ है आकस्मिक अवस्थाओं को अलग कर देना। इस

---

(1) Elimination

प्रकार प्रथक्करण एक निरपात्मक प्रक्रिया है। यदि इनको केवल प्रथक्करण की विधियाँ ही समझा जाय तो इनका अर्थ यह होगा कि ये विधियाँ केवल आकस्मिक और अप्रकार अवस्थाओं को दूर करने के लिये ही हैं। किन्तु यदि वास्तविक दृष्टि से विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि इन विधियों के विध्यात्मक और निरपात्मक दोनों रूप हैं। निषेध की दृष्टि से हम उन्हें प्रथक्करण की विधियाँ कह सकते हैं क्योंकि इनकी सहायता से आकस्मिक और निरर्थक अवस्थाएँ अलग कर दी जाती हैं। लेकिन विधि दृष्टि से इनका काम है कारणता के सम्बन्ध को खोजना और उसको सिद्ध करना। प्रथक्करण को हम अन्तिम ध्येय मानने के लिये तय्यार नहीं हैं, यह ध्येय की प्राप्ति के लिये साधन मात्र है। ध्येय है कारणता के सम्बन्ध को खोजना और उसकी प्रतिष्ठापना करना। अनावश्यक और आकस्मिक अवस्थाओं को इसलिये अलग किया जाता है कि आवश्यक और उपयोगी अवस्थाओं को ग्रहण किया जाय और कारणता के सम्बन्ध का स्वरूप निश्चित किया जाय।

प्रायोगिक विधियों का मुख्य काम प्रथक्करण की प्रक्रिया से कारणतासम्बन्ध की खोज करना और उसको स्थापित करना है। सामान्यानुमान केवल अन्वयों का प्रथक्करण ही नहीं चाहता अपितु कारणता की स्थापना भी चाहता है। अतः यह मानना चाहिये कि प्रायोगिक विधियाँ प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग दोनों के प्रयोग के नियम हैं जिनसे हम आकस्मिक अवस्थाओं को अलग कर और एक पदार्थ को छाँटकर उसको किसी घटना का कार्य या कारण सिद्ध कर सकें की सहायता ग्रहणीय किया है।

कुछ तार्किकों का कहना है कि 'प्रायोगिक विधियाँ' यह शब्द ठीक नहीं है क्योंकि इसका यह अर्थ होता है कि ये केवल प्रयोगों का ही इस्तेमाल करती हैं। किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। ये प्रायोगिक विधियाँ दोनों प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग, का प्रयोग करती हैं। इनको प्रायोगिक इसलिये कहा जाता है कि ये अनुभव पर निर्भर होती हैं जिसमें प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग दोनों शामिल हैं। इस प्रकार जब मैं 'प्रायोगिक खोज' की

विधियाँ गिनी जाती हैं तब वहाँ यह पद 'अनुभव पर निर्भर' पद के समान है अर्थात् ये प्राय. अनुभव पर आधारित अनुमानिक विधियाँ हैं, केवल प्रयोग से ही उत्पन्न होनेवाली नहीं। अन्वयविधि, उदाहरणार्थ, केवल प्रत्यक्षी करण की विधि है।

(२) प्रथक्करण के सिद्धान्त और उनका प्रायोगिक विधियों से सम्बन्ध। यह पहले बतलाया जा चुका है कि प्रथक्करण की प्रक्रिया में अनावश्यक अवस्थाओं को निकाल दिया जाता है जिससे कि कारणता-सम्बन्ध की खोज हो सके और उसकी स्थापना की जा सके। अब प्रश्न यह है कि वे नियम या सिद्धान्त क्या हैं जो प्रथक्करण की प्रक्रिया पर शासन करते है ?

बेन महोदय का कहना है कि प्रथक्करण के सिद्धान्त कारणता के सिद्धान्त के निष्कर्ष है अर्थात् ये कारणता के लक्षण से ही निकलते हैं। मिल ने कारण का लक्षण बतलाया है कि यह अपरिवर्त्तनीय, उपाधिरहित पूर्ववर्ती किसी कार्य की अवस्था का नाम है। कारण वह है जिसके अभाव में कार्य उत्पन्न ही नहीं होता। इस लक्षण से प्रथक्करण के आधारभूत निम्नलिखित सिद्धान्त निकाले जाते हैं :—

(१) कार्य की हानि पहुँचाने के अतिरिक्त जो कोई पूर्ववर्ती अवस्था छोड़ी जा सकती है. वह कारण का अंश नहीं हो सकती।

कारणता का सिद्धान्त यह प्रतिपादन करता है कि कारण वह है जो कार्य को पैदा करता है। चूँकि कारण विद्यमान है इसलिये कार्य उत्पन्न होना चाहिये। चूँकि कारणता विद्यमान नहीं है इसलिये कार्य भी उत्पन्न नहीं होना चाहिये। कारणता के नियम से यह असम्भव हो जाता है कि कारण तो अविद्यमान रहे और कार्य तौभी उत्पन्न हो जाय, इसलिये हम इसके लिये निश्चय कर सकते हैं कि जो कुछ वस्तु छोड़ी जा सकती है और उसके छोड़ने से कार्योत्पत्ति में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती, वह उसका कारण नहीं हो सकती। यदि हम एक रस्सी को काटें, जिसके सहारे एक वस्तु लटकी हुई है और फिर वह उसी स्थान पर लटकी रहती है तो वह रस्सी, उसके लटकने का कारण नहीं हो सकती। अन्वय-विधि का सिद्धान्त इसी नियम पर निर्भर है। इस विधि के अनुसार किसी घटना या पदार्थ

मगर प्रथक्करण एक निषेधात्मक प्रक्रिया है। यदि इनको केवल प्रथक्करण की विधियाँ ही समझा जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि ये विधियाँ केवल आकस्मिक और बेकार अवस्थाओं को दूर करने के लिये ही हैं। किन्तु यदि वास्तविक दृष्टि से विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि इन विधियों के विध्यात्मक और निषेधात्मक दोनों रूप हैं। निषेध की दृष्टि से हम इन्हें प्रथक्करण की विधियाँ कह सकते हैं क्योंकि इनकी सहायता से आकस्मिक और निरर्थक अवस्थाएँ अलग कर दी जाती हैं। लेकिन विधि दृष्टि से इनका कार्य है कारणता के सम्बन्ध को खोजना और उसको सिद्ध करना। प्रथक्करण को हम अन्तिम ध्येय मानने के लिये तय्यार नहीं हैं यह ध्येय की प्राप्ति के लिये साधन मात्र है। ध्येय है कारणता के सम्बन्ध को खोजना और उसकी प्रतिष्ठापना करना। अना-वश्यक और आकस्मिक अवस्थाओं को इसलिये अलग किया जाता है कि आवश्यक और उपयोगी अवस्थाओं को ग्रहण किया जाय और कारणता के सम्बन्ध का स्वरूप निश्चित किया जाय।

प्रायोगिक विधियों का मुख्य काम प्रथक्करण की प्रक्रिया से कारणतासम्बन्ध की खोज करना और उसको स्थापित करना है। सामान्यानुमान केवल अवस्थाओं का प्रथक्करण ही नहीं चाहता अपितु कारणता की स्थापना भी चाहता है। अतः यह मानना चाहिये कि प्रायोगिक विधियाँ प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग दोनों के प्रयोग के नियम हैं जिससे हम आकस्मिक अवस्थाओं को अलग कर सकें और एक पदार्थ को खोजकर उसको किसी घटना का कार्य या कारण सिद्ध कर सकें और इसका उल्लेखनीय विषय है।

कुछ तार्किकों का कहना है कि 'प्रायोगिक विधियाँ' यह शब्द ठीक नहीं है क्योंकि इसका यह अर्थ होता है कि ये केवल प्रयोगों का ही इस्तेमाल करती हैं। किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। ये प्रायोगिक विधियाँ दोनों प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग, का प्रयोग करती हैं। इनको प्रायोगिक इसलिये कहा जाता है कि ये अनुभव पर निर्भर होती हैं जिनमें प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग दोनों शामिल हैं। इस प्रकार जब ये 'प्रायोगिक खोज' की

क्या अवशिष्ट रहता है। इस नियम का जोसेफ महोदय ने इस प्रकार वर्णन किया है.—

"जो अन्य पदार्थ का कारण हो सकता है वह प्रस्तुत पदार्थ का कारण नहीं माना जा सकता है।

यह नियम भी कारणता के सिद्धान्त से निष्पन्न है और यह अवशेष विधि का प्रतिष्ठापक माना गया है।

(३) अन्वय-विधि—

अन्वय-विधि का स्वरूप मिल महोदय ने इस प्रकार लिखा है:—

"यदि किसी घटना या पदार्थ के दो या अधिक उदाहरण परीक्षण विधि में आये हुए केवल एक अवस्था को सामान्यरूप में रखते हैं तो वह अवस्था जिसमें सब उदाहरण अनुकूल होकर रहते हैं, या तो दिये हुये पदार्थ या घटना का कारण होगी या कार्य होगी"

मिल महोदय स्वय लिखते हैं कि कारणता के सम्बन्ध की खोज और सिद्धि निम्नलिखित सिद्धान्त पर निर्भर हैं—"पदार्थ या घटना को हानि न पहुँचाते हुए जो कोई अवस्थाएँ अलग की जा सकती हैं उनका कारणता की दृष्टि से उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।" यदि कुछ अवस्थाएँ छोड़ी जा सकती हैं और फिर भी दिया हुआ पदार्थ या घटना विद्यमान रहती है तो हमें मानना पड़ेगा कि उन दोनों में कारणता का सम्बन्ध कोई नहीं है। इस विधि के अनुसार, इस सिद्धान्त के आधार पर, यह स्पष्ट है कि यदि कुछ अवस्थाएँ सर्वदा विद्यमान रहती हैं जब कि दिया हुआ पदार्थ या घटना विद्यमान है तो उनके बीच में अवश्य कारणता का सम्बन्ध होगा।

फारवेथ रीड ने मिल के उपर्युक्त कथन में कुछ सशोधन किया है यदि अनुसधान में आये हुए किसी पदार्थ या घटना के दो या अधिक उदाहरण केवल एक दूसरी अवस्था को, चाहे वह पूर्ववर्ती हो या उत्तरवर्ती हो, सामान्यरूप में रखते हैं वह अवस्था या तो कारण है या आवश्यक

की। समग्र पूर्वावस्थाओं को, केवल एक को छोड़कर अलग कर दिया जाय फिर भी वह रहता है तो इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि निकाली हुई पूर्वावस्थायें कारण नहीं हैं किन्तु एक ही अवस्था कारण है।

(२) जब हम किसी कार्य की पूर्वावस्था को बिना कार्य के खोये हुए छोड़ नहीं सकते तो ऐसी पूर्वावस्था या तो कारण होगी या कारण का भाग या हिस्सा होगी।

यह नियम भी कारणता के सिद्धान्त में अन्तर्भूत है। यदि कुछ अवस्थाओं को छोड़ दिया जाय और उनके छोड़ने से हमारा परिणाम ठीक नहीं रहता तो हमें जानना चाहिये कि उनके अन्दर अवश्य कारणता का सम्बन्ध है। यदि हम एक रस्सी को काट दें जिसको हम समझते हैं कि वह किसी पदार्थ के सहारे का कारण है और हम देखते हैं कि फिर भी पदार्थ गिर जाता है तो कहना पड़ेगा कि उस पदार्थ के सहारे का कारण रस्सी भी। यह नियम व्यतिरेक विधि का मूल कारण है।

(३) यदि एक पदार्थ की पूर्वावस्था और उत्तरावस्था दोनों गणाना अन्य-सहगामिता में साथ ही उठती हैं और दोनों का साथ ही पतन होता है तो उसको आपस में कारण-कार्य-सम्बन्ध से अनुविध समझना चाहिये।

यह नियम भी कारणता के सिद्धान्त में छिपा हुआ है यदि इसे परिमाण की अपेक्षा से समझा जाय। शक्ति की स्थिरता[1] के नियम के अनुसार कार्य केवल कारण का पुनर्विभाजित स्वरूप है; अतः यदि कोई परिमाण का विचरणता कारण में पाई जाती है तो उसी प्रकार का विचरण कार्य में भी होना चाहिये। यह नियम सहगामी-विचरण-विधि का सच्चा आधार है।

बेन महोदय का कहना कि ये तीन मुख्य विधियाँ हैं। किन्तु क्योंकि कारणों की खोज में अत्यन्त सहायता हुई है इसलिये एक और भी सिद्धान्त बनाया जा सकता है। यदि हम उन सब कारणों को अर्थ के ऊपर प्रभाव डालने देते हैं तो हम बतला सकते हैं कि कारण के अवशेष से कार्य का

(1) Conservation of Energy

क्या अवशिष्ट रहता है। इस नियम का जोसेफ महोदय ने इस प्रकार वर्णन किया है:—

"जो अन्य पदार्थ का कारण हो सकता है वह प्रस्तुत पदार्थ का कारण नहीं माना जा सकता है।

यह नियम भी कारणता के सिद्धान्त से निष्पन्न है और यह अवशेष विधि का प्रतिष्ठापक माना गया है।

(३) अन्वय-विधि—

अन्वय-विधि का स्वरूप मिल महोदय ने इस प्रकार लिखा है:—

"यदि किसी घटना या पदार्थ के दो या अधिक उदाहरण परीक्षण विधि में आये हुए केवल एक अवस्था को सामान्यरूप में रखते हैं तो वह अवस्था जिसमें सब उदाहरण अनुकूल होकर रहते हैं, या तो दिये हुये पदार्थ या घटना का कारण होगी या कार्य होगी"

मिल महोदय स्वयं लिखते हैं कि कारणता के सम्बन्ध की खोज और सिद्धि निम्नलिखित सिद्धान्त पर निर्भर है—"पदार्थ या घटना को हानि न पहुँचाते हुए जो कोई अवस्थाएँ अलग की जा सकती हैं उनका कारणता की दृष्टि से उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।" यदि कुछ अवस्थाएँ छोड़ी जा सकती हैं और फिर भी दिया हुआ पदार्थ या घटना विद्यमान रहती है तो हमें मानना पड़ेगा कि उन दोनों में कारणता का सम्बन्ध कोई नहीं है। इस विधि के अनुसार, इस सिद्धान्त के आधार पर, यह स्पष्ट है कि यदि कुछ अवस्थाएँ सर्वदा विद्यमान रहती है जब कि दिया हुआ पदार्थ या घटना विद्यमान है तो उनके बीच में अवश्य कारणता का सम्बन्ध होगा।

कारवेथ रीट ने मिल के उपर्युक्त कथन मे कुछ संशोधन किया है यदि अनुसंधान में आये हुए किसी पदार्थ या घटना के दो या अधिक उदाहरण केवल एक दूसरा अवस्था को, चाहे वह पूर्ववर्ती हो या उत्तरवर्ती हो, सामान्यरूप में रखते हैं वह अवस्था या तो कारण है या आवश्यक

अवस्था है या पदार्थ का परिणाम है या कारणता के सम्बन्ध से बँधी हुई है।'

अब यहाँ उपर्युक्त अन्वयविधि की स्पष्ट व्याख्या की जाती है। सर्व प्रथम हम एक पदार्थ या घटना को परीक्षार्थ ग्रहण करते हैं और इसके कारण या कार्य का निश्चय करना चाहते हैं। यदि दिया हुआ पदार्थ या घटना कार्य है तो इसके कारण का निश्चय करना है। और यदि वह कार्य है तो उसके कारण का निश्चय करना है। अन्वय-विधि का प्रयोग करने के लिये हम दो या अधिक पदार्थ के उदाहरण परीक्षार्थ ग्रहण करते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण द्वारा हम अनेक उदाहरणों को इकट्ठा करते हैं जिनमें घटना या पदार्थ को पैदा होना है। दिया हुआ पदार्थ या घटना सब उदाहरणों में समान रहती है किन्तु अन्य बातों की अपेक्षा से वे भिन्न हैं। यदि दिया हुआ पदार्थ या घटना कार्य है तो हम उसका कारण खोजना चाहते हैं। इसके लिये प्रत्यक्षीकरण द्वारा हम पदार्थों की पूर्ववर्ती अवस्थाओं को इकट्ठा करते हैं जिनमें यह पदार्थ या घटना उत्पन्न होती है। जब हम ऐसा कर लेते हैं तब देखते हैं कि इन पूर्ववर्ती अवस्थाओं में केवल एक अवस्था सर्व-साधारण है किन्तु अन्य हालतों में वे भेद रखती हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि अपरिवर्तनीय साधारण पूर्ववर्ती अवस्था दिये हुये पदार्थ या घटना का कारण है। यदि दिया हुआ पदार्थ या घटना कारण हो और यदि हम इसका कार्य जानना चाहते हैं तो हम प्रत्यक्षीकरण द्वारा उदाहरणों के परिणामों को इकट्ठा कर लेते हैं जिनमें पदार्थ या घटना उत्पन्न होती है। जब हम यह देखते हैं कि कार्यों में केवल एक अवस्था समान है किन्तु अन्य बातों में वे भिन्न हैं तब हम निष्कर्ष निकालते हैं कि अपरिवर्तनीय और साधारण परिणाम, दिये हुए पदार्थ या घटना का कार्य है। भिन्न भिन्न अवस्थाएँ जो कभी विद्यमान रहती हैं और कभी नहीं रहती और फिर भी दिया हुआ पदार्थ या घटना विद्यमान रहती है, तो उसका इसके साथ कोई कारणता का सम्बन्ध नहीं हो सकता। इस प्रकार अन्वय-विधि निम्नलिखित दो बातों को बोधती हैं :—

(१) "किसी पदार्थ की केवल अपरिवर्तिनी पूर्ववर्ती अवस्था ही उसका कारण हो सकती है (२) और किसी पदार्थ का केवल अपरिवर्तनीय परिणाम ही उसका कार्य हो सकता है।"

इसका बीजात्मक उदाहरण निम्नलिखित होगा :—

क ख ग ... . क' ख' ग'
क घ ङ . ... क' घ' ङ'
क च छ .. .. .क' च' छ'

'क' कारण है 'क'' का अथवा 'क'' कार्य है 'क' का। इनमें बिना चिह्न वाले क वगैरह वर्ण, पूर्ववर्ती अवस्थाओं के द्योतक हैं और चिह्न वाले क वगैरह उत्तरवर्ती अवस्थाओ के द्योतक है।

मान लो दिया हुआ पदार्थ एक कार्य है और हम उसके कारण का पता लगाना चाहते हैं तो हमें कई उदाहरणों को इकठा करना पड़ेगा जिनमे 'क'' पैदा होता है, जैसे क' ख ग, क' घ ङ, क' च छ। 'क' कारण इनके पूर्ववर्ती अवस्थाओं में अवश्य मिलना चाहिये, अत प्रत्यक्षीकरण के द्वारा हम तीन उदाहरणों की पूववर्ती अवस्थाओं को इकट्ठा करते हैं और देखते हैं कि वे क्रमानुसार क ख ग, क घ ङ और क च छ हैं। इन पूर्ववर्ती अवस्थाओं में केवल एक सर्वसाधारण है जैसे 'क', बाकी सब भिन्न हैं। भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ जैसे ख, ग, घ, ङ, च, छ, कारण नहीं कही जा सकती क्योंकि वे 'क' का कुछ भी नुकसान न करते हुए अलग हो सकती हैं। इसलिये अपरिवर्तनीय और सर्व साधारण 'क' ही कारण कहा जा सकता है। मानलो कि दिया हुआ पदार्थ या घटना कारण 'क' है; हम इसके कार्य का पता लगाना चाहते हैं। हम कई उदाहरण इकट्ठे करते हैं जिनमें कारण 'क' पैदा होता है, जैसे क ख ग, क घ ङ, क च छ। कार्य अवश्य ही उत्तरवर्ती अवस्थाओं में होना चाहिये। अत प्रत्यक्षीकरण के द्वारा हम उदाहरणों की उत्तरवर्ती अवस्थाओं को एकत्रित करते हैं और देखते हैं कि वे क्रमानुसार क' ख ग, क' घ ङ, क' च छ हैं। इन उत्तरवर्ती अवस्थाओं में 'क'' सर्वसाधारण है किन्तु अन्य बातों में वे आपस में भिन्न हैं। अत. अपरिवर्तनीय और सर्वसाधारण 'क'' कार्य है।

अब हम इस विधि के यथार्थ उदाहरणों को लेते हैं :—

'कार्य से कारण'

(क) मान लो हम किसी बीमारी का निदान (कारण) जानना चाहते हैं, जैसे जूड़ी का बुखार। हम ऐसे अनेक उदाहरण एकत्रित करते हैं जहाँ यह पैदा होता है। प्रत्यक्षीकरण के द्वारा हमें यह पता लगता है कि इनमें से प्रत्येक उदाहरण में एनोफ़ील (मलेरिया के मच्छर) नामक जन्तुओं के काटने से पैदा हुआ है, जब कि दूसरी हालतें अलग भिन्न हैं जैसे जिन व्यक्तियों पर मलेरिया बुखार का हमला हुआ है उनकी आदतें दूसरे प्रकार की हैं, वे भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन करते हैं तथा भिन्न भिन्न स्थानों में रहते हैं इत्यादि। इसलिये साधारण पूर्ववर्ती अवस्था अर्थात् एनोफ़ील द्वारा काटा जाना, मलेरिया बुखार का कारण है।

(ख) मिल मलोरन का उदाहरण—मान लो हम रवे बनाने के कार्य का कारण जानना चाहते हैं। इसके लिये हम ऐसे उदाहरणों की तुलना करते हैं जिनमें भौतिक वस्तुएँ रवे के रूप को धारण करती हैं जिनमें और कोई समानता का लक्षण नहीं पाया जाता। हमारा प्रत्यक्षीकरण बतलाता है कि इन उदाहरणों में केवल एक पूर्ववर्ती अवस्था सर्वसाधारण है अर्थात् किसी पदार्थ की द्रवावस्था से घन या ठोस अवस्था का होना। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि द्रवावस्था से किसी पदार्थ की घन या ठोस अवस्था का होना रवे बनाने के कार्य का कारण है।

कारण से कार्य।

(क) मानलो हम वायु के परिवर्तन से उत्पन्न कार्य के स्वरूप को जानना चाहते हैं। इसके लिये हम प्रत्यक्षीकरण द्वारा उन मनुष्यों के, जो छुट्टियों में स्वास्थ्य के लिये पहाड़ों पर जाते हैं उदाहरण इकट्ठे करते हैं। जब वे वहाँ से लौटते हैं तब उनके स्वास्थ्य में विशेष परिवर्तन दिखाई देता है यद्यपि वे अनेक प्रकार की शिकायतें भी करते रहते हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि स्वास्थ्य में जो परिवर्तन हुआ है वह वायु-परिवर्तन का परिणाम या कार्य है।

(ख) मिल का उदाहरण:—मानलो हम, किसी चार गुण वाले

द्रव्य का तेल के साथ मिलाने पर क्या परिणाम होता है — यह जानना चाहते हैं। इसके लिये हम प्रत्यक्षीकरण द्वारा कई उदाहरण ऐसे लेते हैं जिनमें ऐसी वस्तुओं का संयोग हुआ है। हमें मालूम होता है कि इस प्रकार के सब उदाहरणों में साबुन बन जाता है। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि साबुन बनने का कार्य क्षार द्रव्य और तेल के संयोग से उत्पन्न होता है।

इस विधि का नाम मिल महोदय ने अन्वय-विधि (The Method of agreement) कहा है क्योंकि यह विधि भिन्न भिन्न उदाहरणों की तुलना करके यह निश्चय कराती है कि वे किस बात में समान हैं। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि सिद्धि यहाँ पर उदाहरणों की समानता में ही केवल नहीं मिलती, किन्तु एक अवस्था के अन्वय में मिलती है जब हम अन्य अवस्थाओं की इसके साथ तुलना करने पर उनमें भेद पाते हैं। यह समानता का अकेलापन ही है जिससे सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इसी कारण कुछ तार्किक लोग जैसे, मेलोन, कॉफी, इस विधि को **एकाकी अन्वय की विधि** (The Method of single agreement) कहते हैं।

अन्वय विधि विशेष रूप से प्रत्यक्षीकरण की विधि है। प्रयोग से इसका विशेष सम्बन्ध नहीं। इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्वय-विधि केवल प्रत्यक्षीकरण से ही सम्बन्धित है और इसका प्रयोग के उदाहरणों से कोई सम्बन्ध नहीं। प्रयोग, प्रत्यक्षीकरण को सर्वथा अलग नहीं कर देता, क्योंकि जहाँ जहाँ प्रयोग सम्भव होता है, वहाँ प्रत्यक्षीकरण भी अवश्य सम्भव होता है। यद्यपि इसका विपरीत नियम सत्य नहीं है। अत किसी हद तक अन्वय-विधि, प्रयोग के उदाहरणों में भी निश्चय-पूर्वक प्रयोग की जा सकती है। अन्वय-विधि विशेष रूप से प्रत्यक्षीकरण की विधि है इसका अभिप्राय यह है कि इसका प्रयोग उन उदाहरणों में किया जाता है जहाँ परीक्षागत पदार्थों या घटनाओं पर हमारा पूरा नियन्त्रण होता है— उसका क्षेत्र इतना सीमित है कि वहाँ प्रयोग सम्भव नहीं है। यह, वह विधि है जिसको हम तब ग्रहण करते हैं जब हम देखते हैं कि वहाँ प्रयोग सम्भव

नहीं है। अन्वय-विधि को कोई लाख और मिश्रित प्रकार के उदाहरणों की आवश्यकता नहीं है। कोई भी उदाहरण जिसमें परीक्षागत पदार्थ या घटना उत्पन्न होती है, इस विधि के लिये परीक्षार्थ लिया जा सकता है। अत प्रत्यक्षीकरण इसके उदाहरण दे सकता है। व्यतिरेक विधि को विशेष रूप से प्रयोग-विधि के नाम से कहा जाता है क्योंकि इस विधि के लिये यह आवश्यक है कि हम विशेष प्रकार के उदाहरणों को प्रस्तुत करें। वास्तव में देखा जाय तो प्रतीत होगा कि यह प्रयोग ही है, प्रत्यक्षीकरण नहीं जो इस प्रकार के उदाहरणों को दे सकता है।

क्योंकि अन्वय-विधि विशेष रूप से प्रत्यक्षीकरण की विधि है अतः अन्वय-विधि के, दूसरी विधियों की अपेक्षा कुछ अधिक लाभ है। प्रत्यक्षीकरण का विस्तार प्रयोग की अपेक्षा अधिक है। अनुसंधान के कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिनको हम किसी प्रकार से प्रत्यक्षीकरण के नियन्त्रण में नहीं ला सकते और न उनको प्रत्यक्षीकरण का विषय ही बनाया जा सकता है। इसलिये अन्वय-विधि को अनेक प्रकार के अनुसन्धान क्षेत्रों में काम में लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्षीकरण द्वारा हम केवल दिये हुए कारण के कार्य का ही केवल पता नहीं लगा सकते; अपितु दिये हुए कार्य के कारण का भी पता लगा सकते हैं। इसलिये अन्वय-विधि का प्रयोग हम दोनों दिशाओं में कर सकते हैं अर्थात् इसके द्वारा कारणता सम्बन्ध की खोज भी हो सकती है और सिद्धि भी हो सकती है। इन अपेक्षाओं से अन्वय-विधि अन्य विधियों से अवश्य ही श्रेष्ठ है।

(४) अन्वय-विधि के दोष तथा उनको दूर करने के सम्भव उपाय। अन्वय-विधि के निम्नलिखित दोष हैं:—

(१) स्वभावगत अपूर्णता—अन्वय-विधि को हम कारण बहुत्व के सिद्धान्त के द्वारा निरर्थक सिद्ध कर सकते हैं। मिल महोदय ने इसको अन्वय-विधि की स्वाभाविक निर्बलता बतलाया है क्योंकि यह वस्तुओं की जड़ को पकड़ती है और इस विधि के द्वारा प्राप्त किये हुए परिणामों को यह सर्वथा अनिश्चित बतलाता है।

कारण बहुत्व का सिद्धान्त यह बतलाता है कि वही कार्य भिन्न-भिन्न

समयों पर भिन्न-भिन्न कारण-जन्य होता है। यदि ऐसा है तो यह हो सकता है कि जिस कार्य के कारण का हम निश्चय करना चाहते हैं, उसके भिन्न-भिन्न उदाहरणों को देखने पर यह मालूम हो कि उसके भिन्न-भिन्न कारण हैं और अपरिवर्तनीय तथा साधारण अवस्था का, कार्य के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। इस प्रकार कल्पना करो कि तीन प्रकार के विष पानी के साथ मिलाकार तीन प्रकार के जानवरों के दिये गये हैं और वे तीनों मर जाते हैं। यहाँ हम इस प्रकार तर्क नहीं कर सकते कि पानी मिलाने की सर्वसाधारण अवस्था उन सबकी मृत्यु का कारण है। बल्कि तीन प्रकार के विष तीन भिन्न-भिन्न प्रकार की मृत्यु के तीन भिन्न-भिन्न कारण हैं। इसी प्रकार यदि तीन प्रकार की रेचक (दस्तावर) औषधियाँ गुलाबजल के साथ तीन प्रकार के व्यक्तियों को दी जाँय तो तीनों को दस्त हो जाते हैं। इससे हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि गुलाबजल का मिलाना, जो कि साधारण अवस्था है, दस्तों का कारण है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि कारण-बहुत्व का सिद्धान्त अन्वय विधि की सफलता का बाधक है। यह सत्य है कि यह सिद्धान्त, वास्तव में, अधिक ठीक नहीं है, किन्तु इस प्रकार के उदाहरणों में यह कुछ प्रायोगिक दिक्कतों को पैदा करता है जब हम केवल प्रत्यक्षीकरण के उपर ही अवलम्बित रहते हैं।

कारण बहुत्व के द्वारा जो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं उनको हम दो प्रकार से दूर कर सकते हैं (१) उदाहरणों को अधिक सख्या में लेने से और (२) सम्मिलित—विधि के प्रयोग से।

(१) उदाहरणों की अधिक संख्याः—अन्वयविधि की एक कठिनाई जो कारण बहुत्व से उत्पन्न होती है उसको हम अधिक सख्या में उदाहरणों को ग्रहण कर दूर कर सकते हैं। यदि हम अधिक संख्या में उदाहरणों को लें और देखें कि एक अवस्था सब उदाहरणों में विद्यमान है तो हमारा किष्कर्ष, कि यह पदार्थ के साथ कारणता से सम्बन्धित है—अधिक सम्भव हो जाता है। यह कठिनता से सत्य हो सकता है कि इन सब उदाहरणों में जो साधारण अवस्था है वह आकस्मिक रूप से विद्यमान हो। अतः अन्वयविधि के अन्दर जितनी अधिक सख्या में उदाहरण लिये जाँयगे

उतनी ही अधिक नियमों के सत्य होने की सम्भावना हो सकती है। लेकिन निष्कर्ष पूर्ण रूप से कभी निश्चयात्मक सत्य नहीं माने जा सकते। इस दृष्टि से उदाहरणों का अधिक संख्या में एकत्रित करना अन्वयविधि में कारण बहुत्व के सिद्धान्त से आनेवाली कठिनाइयों को दूर करने में काफी सहायता पहुँचाता है किन्तु यह पूर्णरूप से दोष को दूर नहीं कर सकता।

सम्मिलित विधि का प्रयोग :—

सम्मिलित विधि (Joint method) अन्वय-विधि से विशेषता रखती है क्योंकि यह निषेधात्मक और विध्यात्मक दोनों प्रकार के उदाहरणों का उपयोग करती है। विध्यात्मक उदाहरण यह बतलाते हैं कि दिया हुआ पदार्थ विद्यमान है और एक दूसरी अवस्था भी विद्यमान है। निषेधात्मक उदाहरण यह बतलाते हैं कि दिया हुआ उदाहरण विद्यमान नहीं है तथा अन्य अवस्थायें भी विद्यमान नहीं है। कारण बहुत्व की कठिनाई को दूर करने के लिये सम्मिलित विधि में निषेधात्मक उदाहरणों को अत्यधिक रूप से निकाल दिया जाता है जिससे कि जो कुछ विध्यात्मक उदाहरणों के समूह में एक रूप से विद्यमान है, उसको छोड़कर अन्य सब अवस्थाओं को ग्रहण किया जा सके। यदि वे अवस्थायें विद्यमान हैं और फिर भी कार्य उत्पन्न नहीं होता है तो उनको हम कारण नहीं कह सकते। अतः इस सम्मिलित विधि को प्रयोग करके हम कारण बहुत्व से उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयों को सरलतापूर्वक दूर कर सकते हैं।

(२) प्रायोगिक अपूर्णता :— अन्वय विधि की एक और बड़ी कठिनाई यह है कि हमारे लिये यह निश्चय करना असम्भव है कि हम सब पूर्ववर्ती अवस्थाओं को जानते हैं। इस बात की हमेशा सम्भावना है कि कोई अवस्था छिपी हुई हो जो हमारी निगाह से बच गई है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि हम सामान्यीकरण की गलती करते हैं। इस दोष को अन्वयविधि की प्रायोगिक अपूर्णता कहा जाता है।

क्योंकि अन्वय-विधि प्रायः करके प्रत्यक्षीकरण की ही विधि कही जाती है अतः हम यह निश्चय पूर्वक कभी नहीं कह सकते कि सब आवश्यक अवस्थाओं का सम्यक् प्रकार से निरीक्षण किया जा चुका है। हम सोच सकते

हैं कि हमने यह देखा है कि अमुक प्रकार की अवस्था ही एक स्थिर अवस्था है किन्तु सम्भव है कोई दूसरी अवस्था भी मौजूद हो और उसका प्रत्यक्षीकरण नहीं किया गया हो। तथापि यह वह अवस्था है जो परीक्षा-गत पदार्थों के साथ कारणता के सम्बन्ध से अनुबद्ध रहती है। इस विधि के लिये ऐसे उदाहरणों की आवश्यकता है जो केवल एक अवस्था में समानता रखते हों। यह वह भाग है जो अभ्यासावस्था में मुश्किल से पूरी की जा सकती है। क्योंकि हम अपने उदाहरणों को सामान्य प्रत्यक्षीकरण या अवलोकन से ही ग्रहण करते हैं।

यह प्रायोगिक अपूर्णता, जिसमें हम समग्र उदाहरणों का प्रत्यक्षीकरण करने में असमर्थ होते हैं केवल कुछ हद तक उदाहरणों की सख्या बढाने से दूर हो सकती है। यदि हम विचारार्थ अधिक सख्या में उदाहरण ग्रहण करें तो हमको सब आवश्यक अवस्थाओं का निरीक्षण करने का अवसर मिल सकता है किन्तु यह स्वीकार करना चाहिये कि ऐसा होनेपर भी हम उदाहरणों के बारे में पूर्णरूप से निश्चित ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। अत यह कठिनाई पूर्णरूप से दूर नहीं की जा सकती।

(५) अन्वयविधि से हम कारणता और सहवर्तित्व इन दोनों के भेद को नहीं जान सकते।

कारणता में क्रम अन्तर्भूत है इसलिये इसको सहवर्तित्व[1] के साथ गड़बड़ में नहीं डालना चाहिये। जब दो पदाथ या घटनायें साथ-साथ उत्पन्न होती हैं तब यह आवश्यक नहीं है कि वे आपस में कारणकार्यभाव से भी सम्बन्धित हों। हो सकता है कि वे दोनों उसी कारण के सहवर्ती कार्य हों जैसे, दिन और रात, ताप और प्रकाश, विद्युत् और कड़क। अत यह स्पष्ट है कि अन्वय विधि के द्वारा कारणता और सहवर्तित्व के अन्तर को जानना अत्यन्त कठिन है।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अन्वय-विधि कारणता सबन्ध की केवल सूचना दे सकती है, यह उसको सिद्ध नहीं कर सकती। यथार्थ में इसको वैज्ञानिक—अनुसधान प्रक्रिया में एक क्रम मानना चाहिये

(1) Co-exastence.

बॉसी ने ठीक कहा है "इसका मुख्य उपयोग इस बात में है कि यह समर्थन के लिये प्राक्-कल्पना के रूप में कारणता के सम्बन्ध की सूचना देती है।" इसी दृष्टि से यह कहा गया है कि अन्वय-विधि अनुसंधान व खोज की विधि है, सिद्धि से इसका कोई प्रयोजन नहीं।

(५) अन्वय-विधि और साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान

यह पहले बतलाया जा चुका है कि साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान एक अनुमान की विधि है जिसमें आत्यन्तिक विरोध से रहित अनुभव के आधार पर हम सामान्य वाक्य का *निर्माण* करते हैं। अनुभवद्वारा हमें ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं जिनमें दो पदार्थ या घटनायें एक साथ अनुभव में आती हैं और अन्य कोई विरुद्ध उदाहरण होता हुआ प्रतीत नहीं होता। अतः इस आत्यन्तिक विरोध रहित अनुभव से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वे सर्वदा एक साथ रहते हैं। जहाँ तक हमारे अनुभव का सम्बन्ध है—सब कौए काले ही देखे जाते हैं। दूसरे रंग का कोई अन्य कौआ देखने में नहीं आया है। अतः इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सब कौए काले होते हैं। यह निष्कर्ष साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान से निकाला गया है।

अन्वय-विधि दो पदार्थों या घटनाओं के बीच में कारणता के संबन्ध को इस आधार पर सिद्ध करती है कि अनुभव द्वारा हमें अधिक अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो एक खास अवस्था की विद्यमानता में समान होते हैं जब कभी भी परीक्षागत पदार्थ या घटना उपस्थित होती है जैसे, हम मलेरी के बुखार के कुछ उदाहरण देखते हैं और *मालूम* करते हैं कि इस प्रकार के प्रत्येक उदाहरण की पूर्वावस्था मच्छरों का काटना है तो हम एक दम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इन दोनों में कारणता का सम्बन्ध है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों के अन्दर सामान्यीकरण द्वारा हम विध्यात्मक कुछ उदाहरण एकत्रित करते हैं जो दो पदार्थों या घटनाओं की विद्यमानता में समानता रखते हैं। दोनों के अन्दर निष्कर्ष की सिद्धि इस अवस्था पर निर्भर है कि इस प्रकार के कुछ उदाहरण हैं—और

ऐसे उदाहरणों की संख्या जितनी अधिक होगी उतनी ही अधिक उसके निष्कर्ष की सम्भावना होगी। इससे कोई यह विचार कर सकता है कि साधारण गणना-जन्य-सामान्यानुमान अन्वय-विधि को छोड़ कर और कुछ नहीं है। लेकिन ऐसा विचार भ्रम-पूर्ण है और दोनों के मध्य, वास्तव में, विशेष अन्तर है। अन्वय विधि प्रयोग-साध्य विधि है जो अवस्थाओं के परिवर्तन के साथ निरर्थक बातों या पदार्थों को सर्वथा अलग कर देती है जिससे कि कारणता का सम्बन्ध स्थापित किया जा सके किन्तु साधारण-गणना-जन्य सामान्यानुमान में इस प्रकार का कोई पृथक्-करण नहीं किया जाता। अन्वय-विधि में हम प्रत्यक्षीकरण द्वारा न केवल उदाहरणों को एकत्रित करते हैं अपितु कुछ उदाहरणों को छाँट लेते हैं और शेष को अलग कर देते हैं। साधारण-गणना-जन्य-सामान्या-नुमान में ऐसे उदाहरण नहीं छाटे जाते। इसकी सत्यता केवल इसी बात पर निर्भर है कि इसमें कुछ उदाहरणों की गणना अवश्य की जाती है जो हमारे अनुभव में आते हैं। यह उदाहरणों के स्वरूप की ओर बिलकुल ध्यान नहीं देता। अन्वय विधि के अन्दर हम उदाहरणों की संख्या पर अधिक निर्भर नहीं रहते किन्तु उनके स्वरूप पर निर्भर रहते हैं। हम उदाहरणों की विभिन्नता तथा संख्या दोनों पर अधिक ध्यान देते हैं। इसी हेतु से फाउलर महोदय कहते हैं "अन्वय विधि की आवश्यकता की पूर्ति के लिये अच्छी तरह छांटे हुए कुछ उदाहरण ही पर्याप्त हैं। किन्तु उतनी ही संख्या, जब हम उन आधारों को अलग करते हैं जिन पर उनको छाँटा गया है, साधारणगणना-जन्य-सामान्यानुमान को सिद्ध करने के लिये, सर्वथा अनुपयुक्त और अपर्याप्त होगी।

(७) अन्वय और व्यतिरेक की सम्मिलित-विधि—

अन्वयव्यतिरेक की सम्मिलित विधि के विषय में मिल महोदय ने निम्नलिखित सूत्र बतलाया है :—

"यदि दो या अधिक उदाहरण, जिनमें पदार्थ या घटना उत्पन्न होती है केवल एक अवस्था में समानता रखते हैं तथा दो या अधिक उदाहरण, जिनमें यह नहीं उत्पन्न होती है, एक

अवस्था को छोड़कर अन्य अवस्थाओं में किसी प्रकार की समानता नहीं रखते हैं, तो वह अवस्था जिसमें ही केवल दो प्रकार की अवस्थाएं विभिन्नताएं रखती हैं—वह या तो उस पदार्थ या घटना का कार्य है या कारण है या कारण का आवश्यक अंश या भाग है।"

यह सम्मिलित-अन्वय-व्यतिरेक की विधि, वास्तव में, अन्वय-विधि का द्विगुणित प्रयोग है। इस प्रकार हम बहुत से उदाहरणों को देखते हैं जिनमें परीक्षागत पदार्थ या घटना विद्यमान रहती है और मालूम करते हैं कि ये उदाहरण केवल एक ही अवस्था की विद्यमानता में समानता रखते हैं। यह विध्यात्मक उदाहरणों का समूह कहा जाता है। यथार्थ में यह विध्यात्मक रूप में अन्वय विधि है। इसके अतिरिक्त हम कुछ उदाहरणों को और भी देखते हैं जिनके अन्दर परीक्षागत पदार्थ या घटना अविद्यमान रहती है और हम मालूम करते हैं कि एक अवस्था जो विध्यात्मक उदाहरणों के समूह में एक रूप से विद्यमान रहती है, केवल एक अवस्था है जो एक रूप से यहाँ अविद्यमान है। यह निषेधात्मक उदाहरणों का समूह है; इसको हम अन्वय-विधि का निषेधात्मकरूप भी कह सकते हैं। क्योंकि इस मामले में उदाहरण परीक्षागत-पदार्थ या घटना की एक अविद्यमानता में उसी प्रकार समान रहते हैं जैसे कि दूसरी अवस्था में।

मिल महोदय ने इस विधि को, सिद्धि के लिये कोई स्वतन्त्र या भिन्न विधि नहीं स्वीकार किया किन्तु यह बतलाया है कि यह केवल अन्वय-विधि का ही सुधार या विस्तार है। इस विधि के द्वारा हम कारणता-सम्बन्ध की स्थापना करते हैं जिसकी सूचना हमें अन्वय-विधि के द्वारा मिलती है।

इसका बीजात्मक उदाहरण निम्नलिखित है :—

विधि में अन्वय		निषेध में अन्वय	
विध्यात्मक उदाहरणों का समूह		निषेधात्मक उदाहरणों का समूह	
क ख ग	क' ख' ग'	ख ग घ	ख' ग' घ'
क ग घ	क' ग' घ'	घ ङ च	घ' ङ' च'
क घ ङ	क' घ' ङ'	ङ च छ	ङ' च' छ'

अत फ' का कारण क है

यहाँ हमारे सामने उदाहरणों के २ समूह हैं (१) विध्यात्मक और (२) निषेधात्मक। विध्यात्मक उदाहरणों के समूह में क समान रूप से सर्व पूर्ववर्ती अवस्थाओं में विद्यमान है और उसी प्रकार समान रूप से फ' उत्तरवर्ती अवस्थाओं में भी विद्यमान है। निषेधात्मक उदाहरणों के समूह में क समान रूप से पूर्ववर्ती अवस्थाओं में अविद्यमान है और उसी प्रकार से फ' उत्तरवर्ती अवस्थाओं में भी समान रूप से अविद्यमान है। अन्वयविधि के अनुसार विध्यात्मक उदाहरणों का समूह यह बतलाता है कि क, फ' का कारण है। यह अनुमान निषेधात्मक उदाहरणों के समूह से भी सिद्ध किया जाता है जिसमे क समान रूप से पूर्ववर्ती अवस्थाओं में अविद्यमान है तथा उसी प्रकार से फ' उत्तरवर्ती अवस्थाओं में भी अविद्यमान है।

यहाँ यह बात समझनी चाहिये कि निषेधात्मक समूह में उदाहरण, जिनमें परीक्षा गत-पदार्थ या घटना पैदा नहीं हुई है इस प्रकार के होने चाहिये कि अगर वे प्रश्न गत अवस्था को छोड़कर किसी अन्य कारण से उत्पन्न हुए हों तो वे अन्य कारण अपना स्वरूप प्रकट कर देंगे। निषेधात्मक समूह बतलाता है कि ख, ग, घ, ङ, च, छ, फ के कारण नहीं हो सकते क्योंकि वे विद्यमान हैं और कार्य अविद्यमान है।

इसके यथार्थ उदाहरण निम्नलिखित हैं —

(क) एक आदमी कई उदाहरण ग्रहण करता है और उनमें एक विशिष्ट प्रकार का भोजन करता है और बदहज़मी पैदा कर लेता है। इस विध्यात्मक उदाहरणों के समूह से, अन्वयविधि के अनुसार, वह अनुमान करता है कि उस प्रकार के आहार के ग्रहण करने से उसे बदहज़मी हो गई है। अनन्तर वह एक निषेधात्मक उदाहरणों का समूह लेता है और देखता है कि जब वह उस प्रकार की वस्तु ग्रहण नहीं करता है, तब उसको बदहज़मी की कोई तकलीफ नहीं होती। इस प्रकार उसका पहले का निष्कर्ष सत्य सिद्ध हो जाता है।

(ख) यह देखा जाता है कि जब एक खास सेनापति युद्ध का सञ्चालन कर रहा है तब सेना जीतती चली जाती है तथा जब वह स्वयं अनुपस्थित

अवस्था को छोड़कर अन्य अवस्थाओं में किसी प्रकार की समानता नहीं रखते हैं, तो वह अवस्था जिसमें ही केवल दो प्रकार की अवस्थाएं विभिन्नताएं रखती हैं—वह या तो उस पदार्थ या घटना का कार्य है या कारण है या कारण का आवश्यक अंश या भाग है।"

यह सम्मिलित-अन्वय-व्यतिरेक की विधि, वास्तव में, अन्वय-विधि का द्विगुणित प्रयोग है। इस प्रकार हम बहुत से उदाहरणों को देखते हैं जिनमें परीक्षागत पदार्थ या घटना विद्यमान रहती है और मालूम करते हैं कि ये उदाहरण केवल एक ही अवस्था की विद्यमानता में समानता रखते हैं। यह विध्यात्मक उदाहरणों का समूह कहा जाता है। यथार्थ में यह विध्यात्मक रूप में अन्वय विधि है। इसके अतिरिक्त हम कुछ उदाहरणों को और भी देखते हैं जिनके अन्दर परीक्षागत पदार्थ या घटना अविद्यमान रहती है और हम मालूम करते हैं कि एक अवस्था जो विध्यात्मक उदाहरणों के समूह में एक रूप से विद्यमान् रहती है, केवल एक अवस्था है जो एक रूप से यहाँ अविद्यमान है। यह निषेधात्मक उदाहरणों का समूह है इसको हम अन्वय-विधि का निषेधात्मकरूप भी कह सकते हैं। क्योंकि इस मामले में उदाहरण परीक्षागत पदार्थ या घटना की एक अविद्यमानता में उसी प्रकार समान रहते हैं जैसे कि दूसरी अवस्था में।

मिल महोदय ने इस विधि को, सिद्धि के लिये कोई स्वतन्त्र या भिन्न विधि नहीं स्वीकार किया; किन्तु यह बतलाया है कि यह केवल अन्वय-विधि का ही सुधार या विस्तार है। इस विधि के द्वारा हम कारणता-सम्बन्ध की स्थापना करते हैं जिसकी सूचना हमें अन्वय-विधि के द्वारा मिलती है।

इसका बीजात्मक उदाहरण निम्नलिखित है :—

विधि में अन्वय		निषेध में अन्वय	
विध्यात्मक उदाहरणों का समूह		निषेधात्मक उदाहरणों का समूह	
क ख ग	क' ख' ग'	ख घ ङ	ख' घ' ङ'
क ग घ	क' ग' घ'	घ ङ च	घ' ङ' च'
क घ ङ	क' घ' ङ'	ङ च छ	ङ' च' छ'

के बाहर हों। इसकी हानियाँ ये है कि दोनों ही प्रकार के उदाहरण कारणता के सबंध को सिद्ध नहीं कर सकते। यद्यपि सम्मिलित विधि के निष्कर्ष, जिसमें निषेधात्मक उदाहरणों पर अधिक बल दिया जाता है, अन्वयविधि के निष्कर्षों की अपेक्षा अधिक सम्भव होते हैं। अन्वयविधि की मुख्य कमज़ोरी यह है कि यह कारण बहुत्व के सिद्धान्त द्वारा खडित हो जाती है तथा इसमें ऐसी लुप्त और अज्ञात अवस्थाएँ भी होती है जो हमारे प्रत्यक्षीकरण से बच जाती है जिसमें हमें सहवर्तित्व (Coexistence) को कारणता से अलग करना कठिन हो जाता है। सम्मिलितविधि में एक यह भी अपूर्णता है कि इसमें बहुत सी लुप्त और अदृष्ट बातें होती हैं जिनके कारण हम सहवर्तित्व से कारणता को अलग नहीं कर सकते। लेकिन सम्मिलितविधि, कारणबहुत्व से पैदा होने वाले दोष से सर्वथा छूटी हुई है। यदि वास्तव में विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि सम्मिलित विधि का आविष्कार, कारण बहुत्व से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिये ही किया गया था यहाँ हम अन्वयविधि का बीजात्मक उदाहरण लेते हैं :—

क ख ग	क′ ख′ ग′
क ग घ	क′ ग′ घ′
क घ ङ	क′ घ′ ङ′

∴ क, क′ का कारण है।

यह कारण बहुत्व के सिद्धान्त से दूषित हो जाता है क्योंकि पहले उदाहरण में यह सम्भव है कि 'ख' कारण 'क' का हो, दूसरे उदाहरण में 'ग' 'क' का कारण हो और तीसरे उदाहरण में 'ङ' 'क' का कारण हो और 'क' का पूर्ववर्ती अवस्थाओं में एक समान विद्यमान होना केवल आकस्मिक अवस्था हो।

अब हम एक निषेधात्मक उदाहरणों के समूह को लेते हैं —

ख ग घ	ख′ ग′ घ′
घ ङ च	घ′ ङ′ च′
ङ च छ	ङ′ च′ छ′

पड़ता है तब सेना हारती जाती है। यहाँ हम यही अनुमान कर सकते हैं कि सेना की सफलता का मुख्य हेतु सेनापति का व्यक्तित्व है।

(ग) मिल महोदय का उदाहरण। हम यह देखते हैं कि वस्तुओं पर ओस पड़ गई है जो शीघ्रता से ताप को निकाल रही है। हम यह भी देखते हैं कि उन पदार्थों पर ओस नहीं जम रही है, जो ताप के शीघ्रता से निकलने की अविद्यमानता में समानता रखते हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि शीघ्रता से ताप का निकलना ओस जमने का कारण है।

इस संयुक्तविधि को मिल महोदय ने व्यतिरेक की अप्रत्यक्ष विधि का भी नाम दिया है क्योंकि यहाँ निषेधात्मक उदाहरण प्रयोग से प्राप्त नहीं हुए हैं किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुए हैं। यह दिखलाते हुये कि यदि प्रयोग किया जाय तो निश्चय क्या निकलेगा इसको अन्वय-व्यतिरेक की सम्मिलित विधि भी कहा गया है। यह अन्वय विधिरूप इसलिये है क्योंकि इसमें विध्यात्मक उदाहरणों के समूह का प्रयोग किया गया है। विध्यात्मक उदाहरण प्रश्नगत अवस्था की विद्यमानता में समानता रखते हैं। यह व्यतिरेक रूप इसलिये है क्योंकि यह विध्यात्मक और निषेधात्मक दोनों प्रकार के उदाहरणों के समूहों को काम में लाती है। विध्यात्मक और निषेधात्मक उदाहरण इस बात में भेद रखते हैं कि प्रश्नगत अवस्था एक रूप से विध्यात्मक उदाहरणों में विद्यमान है और निषेधात्मक उदाहरणों में एकरूप से अविद्यमान है। कुछ तार्किक लोग इसको अन्वय की द्विगुणित विधि कहना पसन्द करते हैं क्योंकि इसमें द्विगुणित अन्वय है—अन्वय, विधि में और अन्वय निषेध में। अतः इसको द्विगुणित अन्वय विधि कहना अधिक अच्छा है और इसको हमें किसी भी कारण से व्यतिरेक विधि के साथ गड़बड़ में नहीं डालना चाहिये।

अन्वयविधि की तरह संयुक्त या सम्मिलितविधि भी वास्तव में अन्वीक्षण की विधि है—प्रयोग की नहीं। अतः इसमें, अन्वीक्षण के लाभ और अलाभ दोनों पाए जाते हैं। इसके लाभ तो ये हैं कि दोनों विधियों का क्षेत्र उन से विस्तृत है और इसका ऐसे उदाहरणों में भी प्रयोग किया जा सकता है जिनमें परीक्षात्मक पदार्थ या घटना हमारे नियन्त्रण

के बाहर हों। इसकी हानियाँ ये है कि दोनों ही प्रकार के उदाहरण कारणता के सबध को सिद्ध नहीं कर सकते। यद्यपि सम्मिलित विधि के निष्कर्ष, जिसमें निषेधात्मक उदाहरणों पर अधिक बल दिया जाता है, अन्वयविधि के निष्कर्षों की अपेक्षा अधिक सम्भव होते हैं। अन्वयविधि की मुख्य कमज़ोरी यह है कि यह कारण बहुत्व के सिद्धान्त द्वारा खडित हो जाती है तथा इसमें ऐसी लुप्त और अज्ञात अवस्थाएँ भी होती है जो हमारे प्रत्यक्षीकरण से बच जाती है जिसमें हमें सहवर्तित्व (Coexistence) को कारणता से अलग करना कठिन हो जाता है। सम्मिलितविधि में एक यह भी अपूर्णता है कि इसमें बहुत सी लुप्त और अदृष्ट बातें होती हैं जिनके कारण हम सहवर्तित्व से कारणता को अलग नहीं कर सकते। लेकिन सम्मिलितविधि, कारणबहुत्व से पैदा होने वाले दोष से सर्वथा छूटी हुई है। यदि वास्तव में विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि सम्मिलित विधि का आविष्कार, कारण बहुत्व से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिये ही किया गया था यहाँ हम अन्वयविधि का बीजात्मक उदाहरण लेते हैं :—

क ख ग	क' ख' ग'
क ग घ	क' ग' घ'
क घ ङ	क' घ' ङ'

∴ क, क' का कारण है।

यह कारण बहुत्व के सिद्धान्त से दूषित हो जाता है क्योंकि पहले उदाहरण में यह सम्भव है कि 'ख' कारण 'क' का हो, दूसरे उदाहरण में 'घ' 'क' का कारण हो और तीसरे उदाहरण में 'ङ' 'क' का कारण हो और 'क' का पूर्ववर्ती अवस्थाओं में एक समान विद्यमान होना केवल आकस्मिक अवस्था हो।

अब हम एक निषेधात्मक उदाहरणों के समूह को लेते हैं :—

ख ग घ	ख' ग' घ'
घ ङ च	घ' ङ' च'
ङ च छ	ङ' च' छ'

प्रथम निषेधात्मक उदाहरण यह बतलाता है कि प ग घ पूर्ववर्ती अवस्थाओं में विद्यमान हैं और फिर भी 'क' उत्तरवर्ती अवस्थाओं में विद्यमान नहीं है। यह बतलाता है कि ये 'क' के कारण नहीं हो सकते। इसी प्रकार 'ब' भी 'क' का कारण नहीं हो सकता जैसा कि दूसरे निषेधात्मक उदाहरण में पाया जाता है इत्यादि। इस प्रकार यदि निषेधात्मक उदाहरण पूर्णरूप से सिद्ध हो जाँय और उनमें सब अवस्थाएँ पायी जावें केवल उनको छोड़कर जो विध्यात्मक समूह में एकरूप से पायी जाती हैं तो कारण भूल नहीं हो सकता। यदि यह शर्त पूरी नहीं होती तो कारण भूल की सम्भावना अलग नहीं की जा सकती।

(८) व्यतिरेक विधि

मिल का कहना है कि व्यतिरेक विधि, (The method of difference) का जब कभी प्रयोग किया जाय, यह अन्वयविधि की कमियों को पूर्ण करती है। वे इसका लक्षण इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं :—

"एक उदाहरण जिसमें अनुसंधानगत पदार्थ या घटना पैदा होती है और अन्य उदाहरण जिसमें यह पदार्थ या घटना नहीं उत्पन्न होती है, ये दोनों उदाहरण, केवल एक अवस्था को छोड़कर सब में समानता रखते हैं और यह केवल पहले उदाहरण में उत्पन्न होती है, तब यह अवस्था जिसमें ही केवल दोनों उदाहरण भेद रखते हैं वह या तो पदार्थ का कार्य है या कारण है या कारण का आवश्यक अंग है।"

व्यतिरेकविधि इस सिद्धान्त पर निर्भर है कि जिस किसी अवस्था को, बिना अनुसंधानगत पदार्थ या घटना के त्याग करने के त्याग नहीं कर सकते, वह अवस्था अवश्य ही पदार्थ या घटना से कारणता के सम्बन्ध में अनुबिद्ध है। यदि एक अवस्था निकाल दी जाय और उसमें अनुसंधानगत पदार्थ या घटना गायब हो जाती है तो अन्य वस्तुओं के उसी प्रकार रहते हुये, दोनों के अन्दर अवश्य ही कारणता का सम्बन्ध होना चाहिये।

व्यतिरेकविधि में हम दो उदाहरण लेते हैं और केवल दो ही उदाहरण लेते हैं। प्रत्येक उदाहरण में पूर्ववर्ती अवस्थाओं का समूह होता

है और उसके अनुसार उत्तरवर्ती अवस्थाओं का भी समूह होता है। दोनों उदाहरण केवल एक अवस्था (चाहे वह पूर्ववर्ती अवस्था हो या उत्तरवर्ती अवस्था हो) में भेद रखते हैं जो एक में विद्यमान रहती है और दूसरी में विद्यमान नहीं रहती। अन्य सब बातों में दोनों उदाहरण बिलकुल समान होते हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि जिस अवस्था में दो पूर्ववर्ती अवस्थाओं के समूह भेद रखते हैं वह उस अवस्था का कारण है, जिसमें ही केवल दो उत्तरवर्ती अवस्थाओं के समूह भेद रखते हैं।

यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि व्यतिरेक विधिके दो रूप हो सकते हैं। हम पूर्ववर्ती अवस्थाओं में कुछ और मिला सकते हैं और उसका परिणाम यह होता है कि उत्तरवर्ती अवस्थाओं में कुछ नवीनता आजाती है। या हम पूर्ववर्ती अवस्थाओं में से कुछ निकाल लेते हैं तो हम देखेंगे कि उत्तरवर्ती अवस्थाओं में से भी कुछ निकल जाता है। इसी हेतु से मेलोन साहब व्यतिरेक विधि का इस प्रकार वर्णन करते हैं :—

"जब किसी पदार्थ या घटना के अन्दर उसकी पूर्ववर्ती अवस्था मे कुछ मिला देने से उत्तरवर्ती अवस्था में कुछ मिला हुआ प्रतीत होता है और उस में से कुछ घटा देने से कुछ घटा हुआ प्रतीत होता है तब, अन्य अवस्थाओं के समान रहने पर भी, वह कुछ अवश्य ही पदार्थ या घटना के साथ कारणता के सम्बन्ध से सम्बन्धित है।"

इसको उन्होंने व्यतिरेक विधि कहा है क्योंकि दोनों उदाहरणों की तुलना करने पर, जिनको हम ग्रहण करते हैं, हम देखेंगे कि वे केवल एक अवस्था में ही भेद रखते हैं। यह केवल भेद की ही इकाई है जो सिद्धि का मुख्य कारण है और इसलिये ही कॉफी और मेलोन इस विधि को एकाकी व्यतिरेक विधि (The method of single difference) कहते हैं। इस प्रकार अन्वय विधि में बहुत से उदाहरण केवल एक अवस्था में एक समान होते हैं (दूसरी अवस्था में भेद रहते हैं) किन्तु व्यतिरेक विधि में दो उदाहरण केवल एक अवस्था में भेद रखते हैं (दूसरी अवस्थाओं में वे एक समान होते हैं।)

हम निम्नलिखित बीजात्मक उदाहरण लेते हैं —

(१) क ख ग   क' ख' ग'   (२) ख घ   ख' घ'
ख ग   ख' ग'   क ख घ   क' ख' ग

प्रथम उदाहरण में पूर्ववर्ती अवस्थाओं में से 'क' अलग कर दिया गया है और उसका परिणाम यह है कि 'क' निष्कर्ष में से गायब हो गया है। द्वितीय उदाहरण में 'क' पूर्ववर्ती अवस्थाओं में जोड़ दिया गया है और उसका परिणाम यह है कि 'क' उसमें से गायब नहीं हुआ है। इस प्रकार 'क' ही एक ऐसी अवस्था है जिसमें दो पूर्ववर्ती अवस्थाओं के अनुरूप भेद रखते हैं। उसी प्रकार 'क' ही केवल एक अवस्था है जिसमें दो उत्तरवर्ती अवस्थाओं के अनुरूप भेद रखते हैं। दूसरी अवस्थाएँ समान हैं अतः हम निष्कर्ष निकालते हैं कि 'क' 'क'' का कारण है।

इसके यथार्थ उदाहरण अधोलिखित हैं :—

(क) यदि हम एक हवा से भरे हुए घड़े में घंटी बजाते हैं तो घंटी की आवाज सुनाई देती है। यदि वही घंटी उस घड़े के अन्दर बजाई जाय जिसकी हवा निकाल दी गई है तो उसका शब्द सुनाई नहीं देता। अन्य अवस्थाएँ उसी प्रकार रहती हैं; इसलिये हवा का होना शब्द की उत्पत्ति का मुख्य कारण है।

(ख) जब किसी मनुष्य के हृदय में गोली मारी गई तब हम इस विधि के द्वारा यह जानते हैं कि उसकी मृत्यु गोली के लगने से हुई है क्योंकि गोली के लगने से पहले वह अच्छा स्वस्थ जीवन बिता रहा था केवल गोली लगने की ओर को छोड़कर अन्य सब अवस्थाएँ समान थीं। अतः गोली का लगना उसकी मृत्यु का मुख्य कारण है।

पैसे और पंख का प्रयोग—जब किसी वायुपम्प के ग्राहक (Receiver) में हमने एक साथ पैसा और पंख छोड़ा। चूँकि वायु उसमें वर्तमान है इसलिये पंख पैसे की अपेक्षा देर में पहुँचता है। बाद में हम पम्प में से वायु निकाल लेते हैं और पैसा और पंख एक साथ ही छोड़ते हैं तो हम देखते हैं कि दोनों चीजें एक साथ ही तल पर

पहुँचती हैं। यहाँ भेद सूचक केवल एक ही अवस्था-हवा का होना है; अन्य अवस्थाएँ उसी प्रकार हैं। अतः इसका निष्कर्ष यह है कि हवा की रुकावट ही एक कारण है जिसके रहने से पंख अधिक देर से गिरा और पैसा जल्दी गिर गया। हमारी दैनिक अनुमान विधि में व्यतिरेक विधि अत्यन्त सहायक होती है। मान लो एक मनुष्य भूखा है, उसको भोजन मिल गया, उसकी क्षुधा शान्त हो गई। हम एक दियासलाई को बक्स से रगड़ते हैं और देखते हैं कि एक दम प्रकाश होकर आग उत्पन्न हो जाती है। सूर्योदय होता है और एकदम प्रकाश होता है और गरमी शुरू हो जाती है। सूर्यास्त होता है और अन्धकार छा जाता है। यदि कभी व्यतिरेक विधि का असावधानी से प्रयोग किया जाय तो 'इसके बाद ऐसा; अतः ऐसा हुआ' (Post hoc ergo propter hoc) अर्थात् काकतालीय दोष उत्पन्न हो जायगा। आकाश में पुच्छलतारे के उदित होने से किसी देश के राजा की मृत्यु हो सकती है किन्तु इससे हम यह अनुमान नहीं लगा सकते कि पुच्छल तारे का प्रकट होना राजा की मृत्यु का अवश्य कारण होगा। उसी प्रकार यदि एक मनुष्य किसी गाँव में से चला गया है और वहाँ चोरी होना बंद हो गया है, इससे हम यह अनुमान नहीं लगा सकते कि अमुक व्यक्ति का गाँव से चला जाना चोरी के बंद होने का कारण है मनुष्य का वहां रहना चोरी का कारण था। व्यावहारिक जीवन में ऐसे उदाहरणों को प्राप्त करने के लिये हमें प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर रहना पड़ता है किन्तु इस प्रकार की अवस्थाओं में हम व्यतिरेक-विधि से निश्चित निष्कर्षों को प्राप्त नहीं कर सकते। इस विधि की मुख्य आवश्यकता की पूर्ति के लिये हमें प्रयोग द्वारा उदाहरणों की पूर्ति करनी होगी। इसमें कोई संशय नहीं कि व्यतिरेक-विधि प्रयोग विधि है क्योंकि इस विधि की आवश्यकता की पूर्ति के लिये हमें प्रयोग द्वारा ही उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। इस विधि की प्रधान आवश्यकता यह है कि दो उदाहरण, ठीक एक प्रकार के होने चाहिये सिवाय इसके कि एक उदाहरण में अनुसंधानगत पदार्थ या घटना विद्यमान रहती है और दूसरे उदाहरण में वह अविद्यमान रहती है। इस प्रकार प्राप्त किये हुए उदाहरण कठोर और निश्चित होते हैं। केवल एक

हम निम्नलिखित बीजात्मक उदाहरण लेते हैं :—

(१) क ख ग   क' ख' ग'   (२) ख ग   ख' ग'
     ख ग   ख' ग'   क ख ग   क' ख' ग'

प्रथम उदाहरण में पूर्ववर्ती अवस्थाओं में से 'क' अलग कर दिया गया है और उसका परिणाम यह है कि 'क'' निष्कर्ष में से गायब हो गया है। द्वितीय उदाहरण में 'क' पूर्ववर्ती अवस्थाओं में जोड़ दिया गया है और उसका परिणाम यह है कि 'क'' उसमें से गायब नहीं हुआ है। इस प्रकार 'क' ही एक ऐसी अवस्था है जिसमें दो पूर्ववर्ती अवस्थाओं के समूह भेद रखते हैं। उसी प्रकार 'क'' ही केवल एक अवस्था है जिसमें दो उत्तरवर्ती अवस्थाओं के समूह भेद रखते हैं। दूसरी अवस्थायें सर्वथा समान हैं अतः हम निष्कर्ष निकालते हैं कि 'क' 'क'' का कारण है।

इसके यथार्थ उदाहरण अधोलिखित हैं :—

(क) यदि हम एक हवा से भरे हुए घड़े में घंटी बजाते हैं तो घंटी की आवाज सुनाई देती है। यदि वही घंटी उस घड़े के अन्दर बजाई जाय जिसकी हवा निकाल दी गई है तो उसका शब्द सुनाई नहीं देता। अन्य अवस्थायें वैसी प्रकार रहती हैं; इसलिये हवा का होना शब्द की उत्पत्ति का मुख्य कारण है।

(ख) जब किसी मनुष्य के हृदय में गोली मारी गई तब हम इस विधि के द्वारा यह जानते हैं कि उसकी मृत्यु गोली के लगने से हुई है क्योंकि गोली के लगने से पहले वह अच्छा स्वस्थ जीवन बिता रहा था केवल गोली लगने की चोट को छोड़कर अन्य सब अवस्थायें समान थीं। अतः गोली का लगना उसकी मृत्यु का मुख्य कारण है।

पैसे और पंख का प्रयोग—जब किसी वायुयन्त्र के ग्राहक (Receiver) में हमने एक साथ पैसा और पंख छोड़ा। चूँकि वायु उसमें वर्तमान है इसलिये पंख पैसे की अपेक्षा देर में पहुँचता है। बाद में हम यन्त्र में से वायु निकाल देते हैं और पैसा और पंख एक साथ ही छोड़ते हैं तो हम देखते हैं कि दोनों चीजें एक साथ ही तल पर

है। नमक केवल एक अवस्था है, लेकिन अन्य भी अवस्थाएँ हैं जिनका भी हमें विचार करना चाहिये जिससे कि हम कारण के पूर्ण रूप का निश्चय कर सकें। इसी प्रकार जब हम एक जलती हुई दियासलाई किसी वस्तु में लगाते हैं तो उसमें आग लग जाती है। उसमें आग लगने पर मुख्य कारण केवल जलती हुई दिया सलाई ही नहीं है। मिल इस बात को स्वीकार करता है जब वह कहता है कि 'एक अवस्था जिसमें ही केवल दो उदाहरण भेद रखते हैं, कारण का एक आवश्यक भाग हो सकता है।

(६) व्यतिरेकान्वय की सम्मिलितविधि

मेलोन और कॉफी ने एक नयी विधि का प्रयोग किया है और उन्होंने इसका नाम व्यतिरेकान्वय-सम्मिलितविधि (Joint method of Difference and Agreement) रखा है। मेलोन ने इस सिद्धान्त को इस प्रकार कहा है :–

'दो हुई हालतों के अन्दर जब एक पदार्थ या घटना दूसरों का, एकाकी भेद को विधि द्वारा कारण बतलाई जाती है और जब हम किसी उदाहरण को जानने और बनाने में असफल हो जाते है जहाँ एक पदार्थ या घटना पैदा हो जाती है और दूसरी नहीं होती, तब इस प्रकार की सम्भावना हो जाती है कि प्रथम, दूसरी की उपाधि-रहित अपरिवर्तनीय पूर्वावस्था है, अर्थात् दूसरी, बिना पहली के, पैदा ही नहीं हो सकती, तथा यह सम्भावना, निषेधात्मक उदाहरणों की सख्या और भिन्नता के कारण, जो कार्य और संशयित कारण दोनों की अविद्यमानता में समानता रखते हैं, बढ़ती ही जाती है।

यह विधि, एकाकी-व्यतिरेकविधि की पूर्व कल्पना करती है तथा इसको पूरा भी करती है। जब हम इसमें सफल होते हैं कि:—

(१) यदि क है तो क' है और।

(२) यदि क नहीं है तो क' नहीं है।

तो निश्चय पूर्वक हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि 'क' और 'क'' में कारणता का सम्बन्ध है। एकाकी-व्यतिरेक की विधि यह सिद्ध करती है

है क्योंकि अवस्थाएँ जो एक क्रम से विद्यमान रहती हैं वे सम्भव है, केवल आकस्मिक अवस्थायें ही हों। इसके अतिरिक्त यथार्थ कारण भिन्न भिन्न उदाहरणों में भिन्न हो सकता है।¹ जहाँ तक व्यतिरेकविधि का सम्बन्ध है यह कारणबहुत्व के सिद्धान्त के आधार पर निरपवाद सिद्ध नहीं की जा सकती। यदि प्रयोग द्वारा ज्ञात अवस्थाओं में कुछ नवीन तत्व जोड़ दी जाय और उससे कुछ उत्पन्न भी हो जाय तो अन्य अवस्थाओं के समान रहने पर, पहली अवस्था उत्तर अवस्था का अवश्य ही कारण गिनी जायगी। जहाँ तक इस उदाहरण का सम्बन्ध है उत्तर अवस्था का और कोई कारण नहीं हो सकता। लेकिन इससे यह कभी सिद्ध नहीं होता कि उत्तरवर्ती अवस्था का दूसरे उदाहरणों में अन्य कोई कारण नहीं हो सकता। अतः व्यतिरेकविधि केवल यही सिद्ध कर सकती है कि एक खास पूर्ववर्ती अवस्था दिये हुए उदाहरण में कारण है लेकिन यह, यह सिद्ध नहीं कर सकती कि केवल यही कारण है या दूसरे उदाहरणों में अन्य कारण हो ही नहीं सकते। यह, यह तो सिद्ध करती है कि 'क' कारण है लेकिन यह, यह नहीं सिद्ध करती कि यही केवल कारण है इससे यही प्रतीत होता है कि व्यतिरेकविधि भी कारणबहुत्व के सिद्धान्त से पैदा होने वाले दोषों को पूर्ण रूप से दूर नहीं कर सकती।

(ग) व्यतिरेकविधि द्वारा हम कारण को अवस्था से भिन्न नहीं कर सकते।

व्यतिरेकविधि अन्य प्रकार से भी दोष पूर्ण है। माना कि ख ग ख' ग' को पैदा करता है तथा 'क' को मिलाने से हम निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि यह क का कारण है। यह हम निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते। यह हो सकता है क का कारण ख और ग के साथ मिलकर बन गया हो। अतः हम नहीं कह सकते कि एक नयी वस्तु के मिलाने से अवश्य ही कोई नया परिवर्तन पैदा होगा। हो सकता है कि वह केवल एक अवस्था ही हो। उदाहरणार्थ, यदि एक तस्करी ज़ामनेस्वार न हो—उसी समय नमक डालने से वह ज़ामनेस्वार बन जाय। लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि सुन्दर आपके का कारण केवल नमक

है। नमक केवल एक अवस्था है, लेकिन अन्य भी अवस्थाएँ हैं जिनका भी हमें विचार करना चाहिये जिससे कि हम कारण के पूर्ण रूप का निश्चय कर सकें। इसी प्रकार जब हम एक जलती हुई दियासलाई किसी वस्तु में लगाते हैं तो उसमें आग लग जाती है। उसमें आग लगने पर मुख्य कारण केवल जलती हुई दिया सलाई ही नहीं है। मिल इस बात को स्वीकार करता है जब वह कहता है कि 'एक अवस्था जिसमें ही केवल दो उदाहरण भेद रखते हैं, कारण का एक आवश्यक भाग हो सकता है।

(६) व्यतिरेकान्वय की सम्मिलितविधि

मेलोन और कॉफी ने एक नयी विधि का प्रयोग किया है और उन्होंने इसका नाम व्यतिरेकान्वय-सम्मिलितविधि (Joint method of Difference and Agreement) रखा है। मेलोन ने इस सिद्धान्त को इस प्रकार कहा है :—

'दी हुई हालतों के अन्दर जब एक पदार्थ या घटना दूसरी का, एकाकी भेद की विधि द्वारा कारण बतलाई जाती है और जब हम किसी उदाहरण को जानने और बनाने में असफल हो जाते है जहाँ एक पदार्थ या घटना पैदा हो जाती है और दूसरी नहीं होती, तब इस प्रकार की सम्भावना हो जाती है कि प्रथम, दूसरी की उपाधि-रहित अपरिवर्तनीय पूर्वावस्था है, अर्थात् दूसरी, बिना पहली के, पैदा ही नहीं हो सकती, तथा यह सम्भावना, निषेधात्मक उदाहरणों की संख्या और भिन्नता के कारण, जो कार्य और सशयित कारण दोनों की अविद्यमानता में समानता रखते हैं, बढ़ती ही जाती है।

यह विधि, एकाकी-व्यतिरेकविधि की पूर्व कल्पना करती है तथा इसको पूरा भी करती है। जब हम इसमें सफल होते हैं कि—

(१) यदि क है तो क' है और।

(२) यदि क नहीं है तो क' नहीं है।

तो निश्चय पूर्वक हम यह सिद्ध कर सकते है कि 'क' और 'क'' में कारणता का सम्बन्ध है। एकाकी-व्यतिरेक की विधि यह सिद्ध करती है

कि पहले मामले में 'क' 'ख' का कारण है। अधिक सिद्ध करने के लिये कि 'क' का 'ख' ही सम्भव कारण है यह आवश्यक है कि सब भिन्न-भिन्न निषेधात्मक उदाहरणों में अनुसंधान किया जाय। भिन्न-भिन्न निषेधात्मक उदाहरण वे हैं जो अनुसंधान के उसी विभाग से संबंध रखते हैं। उदाहरण के लिये, यदि अनुसंधान क्षेत्र[1] रसायन शास्त्र है तो हमें निषेधात्मक और विध्यात्मक उदाहरणों की खोज रसायन-शास्त्र के विषय में ही करनी चाहिये। इस तरह यदि 'क' अविद्यमान है तो 'ख' भी अविद्यमान है—यह सिद्ध करके हमें चाहिये कि इस नियम के क्षेत्र को विस्तृत सिद्ध कर दें। यह सम्मिलित व्यतिरेकान्वयविधि, एकाकी व्यतिरेक विधि की स्वतन्त्र रूप से निषेधात्मक उदाहरणों की खोज करके पूर्ति करती है। व्यतिरेक या भेद का सम्बन्ध कारणता-सम्बन्ध से है जिसको विध्यात्मक उदाहरण में प्रयोग द्वारा निश्चित किया जाता है तथा अन्वय का सम्बन्ध, परीक्षा किये हुए सब निषेधात्मक उदाहरणों में, अपरीक्षित कारण के साथ साथ कार्य की अविद्यमानता से जाना जाता है।

जैसे द्विगुणित अन्वयविधि एकाकी अन्वय-विधि की पूर्ति करती है उसी प्रकार यह सम्मिलित व्यतिरेकान्वय विधि भी एकाकी व्यतिरेक विधि की पूर्ति करती है। द्विगुणितविधि और सम्मिलित विधि के बीच में अन्तर केवल इतना है कि प्रथम विधि में विध्यात्मक और निषेधात्मक उदाहरण प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त किये जाते हैं तथा द्वितीय विधि में वे प्रयोग द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। सम्मिलित व्यतिरेकान्वय विधि में निषेधात्मक उदाहरणों को बनाना पड़ता है अर्थात् उनको प्रयोग के द्वारा इस प्रकार प्राप्त किया जाता है कि कार्य, उनमें से किसी में उत्पन्न नहीं हो सकता।

(१) सहगामि-विपर्यय-विधि—

इस विधि का प्रयोग उन उदाहरणों में किया जाता है जिनमें कारण का पृथक् करना सम्भव नहीं है। जैसे, कारणों के नित्य नियम में

---

(1) Field of Investigation.

अथवा ध्रुव प्राकृतिक कर्ताओं में यह सम्भव नहीं है कि हम उनमें से कारणों को प्रथक् कर सकें। ताप, आकर्षण-शक्ति, रगड़ आदि को हम एक शरीर से अलग नहीं कर सकते किन्तु परिणाम मे हम उनको घटा, बढ़ा सकते हैं और इस प्रकार घटाने और बढ़ाने से उत्पन्न होने वाले कार्यों को हम देख सकते हैं। यह विधि इस विश्वास पर अवलम्बित है कि कारण की शक्ति कार्य की शक्ति के बराबर होती है। अर्थात् एक में घटाव या बढ़ाव से उसी के अनुसार दूसरे में घटाव या बढ़ाव होता है। इस विधि के द्वारा हम कारण और कार्य के मध्य परिमाण-सम्बन्ध कायम कर सकते है। मिल महोदय इस विधि का वर्णन इस प्रकार करते हैं.—

"जब कोई पदार्थ या घटना किसी प्रकार से परिवर्तन को प्राप्त होती है और दूसरा पदार्थ या घटना किसी खास रूप में परिवर्तित होती है, तब वह या तो कारण है या उस पदार्थ या घटना का कार्य है या किसो कारणता सम्बन्ध से उसके साथ अनुविद्ध है।"

यह विधि इस सिद्धान्त की प्रतिपादिका है कि कारण और कार्य शक्ति की अपेक्षा से परिमाण में एक होते हैं और जब एक में घटाव या बढ़ाव होता है तब उसी के अनुरूप अन्य में भी घटाव या बढ़ाव होता है। इस प्रकार जब दो पदार्थ या घटनाएँ हमेशा सदृश परिवर्तन दिखलाती हैं तब हमको कहना पड़ता है कि वे आपस में कार्यकारणभाव से सम्बन्धित हैं। इन दो घटनाओं या पदार्यों मे एक पूर्ववर्ती अवस्था है और दूसरी उत्तर-वर्ती अवस्था है। यदि वे दोनों परिवर्तित होती हैं तब पूर्ववर्ती अवस्था उत्तर वर्ती अवस्था का कारण होती हैं। सहगामि-विचरण-विधि को साक्षात्-परिवतन भी कहा जा सकता है क्योंकि इसमें पूर्ववर्ती अवस्था और उत्तरवर्ती-अवस्था उसी दिशा मे परिवर्तित होती हैं, अर्थात् वे एक साथ उठती हैं और एक साथ गिरती हैं। अथवा वे विपरीत-सम्बन्ध में परिवर्तित होती हैं जिसमें पूर्ववर्ती अवस्था और उत्तरवर्ती अवस्था विरुद्ध दिशाओं में परिवर्तित होती हैं अर्थात् एक में वृद्धि होने से अन्य में हानि होती है, और एक में हानि होने से अन्य में वृद्धि होती है।

इसका बीजात्मक उदाहरण निम्नलिखित है —

$क_1$ ख ग	क′ ख′ ग′
$क_1$ ख घ	क′ ख′ घ′
$क_1$ ख ग	क′ ख′ घ′

क कारण 'क′' का है।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि दो पदार्थ या घटनाएँ एक साथ परिवर्तन या विचरण कर रही हैं। जब पूर्ववर्ती अवस्था में 'क' परिवर्तन को प्राप्त हो रहा है तब उत्तरवर्ती अवस्था में भी 'क' परिवर्तन को प्राप्त हो रहा है। अतः हम निष्कर्ष निकालते हैं कि 'क' 'क′' का कारण है या दोनों आपस में कारणता संबंध से सम्बन्धित हैं। इस उदाहरण में हम देखते हैं कि सहभावी अवस्थाएँ ख, ग नहीं हैं। अतः यह उदाहरण यह बतलाता है कि सहगामि-विचरण-विधि व्यतिरेक विधि का एक खास रूप है। उदाहरण, 'क' के सहगामि-परिवर्तन को पूर्ववर्ती अवस्थाओं में छोड़कर और 'क′' के सहगामि-परिवर्तन को उत्तरवर्ती अवस्थाओं में छोड़कर अन्य अवस्थाएँ में परिवर्तित नहीं होते हैं। इससे इतना तो स्पष्ट और निश्चित है कि जब उदाहरण केवल प्रयोग द्वारा प्राप्त होते हैं तब अन्य अवस्थाएँ उसी प्रकार की होती हैं।

कारवेथ रीड ने सहगामि-विचारण-विधि का एक और रूप बतलाया है जिसमें साथ रहनेवाली अवस्थाएँ वही नहीं होतीं; किन्तु भिन्न होती हैं। निम्नलिखित बीजात्मक उदाहरण द्वारा हम इस रूप को स्पष्ट करते हैं —

$क_1$ ख ग	$क_1$ ख′ ग′
$क_1$ घ ङ	$क_1$ ख′ घ′
$क_1$ च छ	$क_1$ ख′ ग′

क कारण क′ का है।

इस उदाहरण में हम देखते हैं कि साथ रहनेवाली अवस्थाएँ एक उदाहरण से दूसरे उदाहरण तक बदलती जा रही हैं। केवल एक अवस्था है जिसमें यह दिखलाया गया है कि क में भी वृद्धि रूप परिवर्तन होने से क′ में भी वृद्धि रूप परिवर्तन हो रहा है। इस प्रकार की समानता है

हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि 'क' कारण 'फ" का है। यह ठीक है कि इस उदाहरण में सहगामि-विचरण-विधि अन्वयविधि का विशेष रूप है और जो अपूर्णताएँ अन्वयविधि में विद्यमान हैं वे इसमें भी विद्यमान हैं। इस प्रकार सहगामि-विचरण-विधि या तो व्यतिरेक-विधि का या अन्वय-विधि का विशेष रूप है, जब हम देखते हैं कि साथ रहनेवाली अवस्थाएँ वहीं हैं या भिन्न हैं। पहली हालत में तो यह प्रयोग-विधि है और दूसरी अवस्था में यह प्रत्यक्षीकरण की विधि है।

इस विधि के निम्नलिखित यथार्थ उदाहरण हैं :—

(क) हम एक थर्मामीटर (तापमापक यन्त्र) को लेते हैं। उसमे हम देखते हैं कि गर्मी के बढ़ने से पारा भी बढ़ जाता है। इससे हम अन्दाज़ा लगाते हैं कि पारे के बढ़ने का कारण ताप है।

(ख) पेसकाल (Pascal) ने यह सिद्ध किया कि सहगामि-विचरण-विधि से हम जानते हैं कि किसी बेरोमीटर में पारे की ऊँचाई वायु-मण्डल के भार पर निर्भर रहती है। वह एक पहाड़ पर चढ़ गया और ज्योंही वह अधिक ऊँचा चढ़ता चला गया वायुमडल का भार भी कम होता गया। ज्योंही उसने देखा कि वायुमडल का भार कम होता चला जा रहा है पारे की ऊँचाई भी बेरोमीटर में उसी अनुपात से कम होती चली जा रही है। इसलिये उसने यह निष्कर्ष निकाला कि वायुमडल का भार ही पारे के बढ़ाव का कारण था।

(ग) ऑलबर्ट महान ने इस विधि के द्वारा चन्द्रमा और ज्वारभाटे के मध्य कार्यकारण सम्बन्ध स्थापित किया था। उसने देखा कि चन्द्रमा की आकृति के परिवर्तन ज्वारभाटा के परिवर्तन के साथ-साथ होते हैं और निष्कर्ष निकाला कि इन दोनों में कारणता का सम्बन्ध है।

(घ) यह देखा जाता है कि गेहूँ के उत्पादन में कमी होने के कारण गेहूँ की कीमत बढ़ जाती है और जब गेहूँ का उत्पादन अधिक होता है तो गेहूँ की कीमत घट जाती है। इस प्रकार के मूल्यों के आँकड़े, लेने पर हम यह अनुमान लगा लेते हैं कि इन दोनों में आपस में कारणता का सम्बन्ध है। क्योंकि ज्योंही आमद बढ़ती है त्योंही माँग घटती जाती

है और विपरीत रूप में भी ऐसा ही होता है। इस सम्बन्ध को, जो ग्रामद और माँग में पाया जाता है व्यस्तानुपात (Inverse ratio) कहते हैं।

(११) सहगामि-विचरण-विधि की विशेषताएँ।

सहगामि-विचरण-विधि की मुख्य विशेषता यह है कि जहाँ पृथ प्रथक्करण सम्भव नहीं है वहाँ भी इसका उपयोग किया जा सकता है। कुछ ऐसे कारण हैं जिनको पृथ रूप में अलग नहीं किया जा सकता। वे अवस्थाएँ ऐसी हैं जिनको भिन्न के शब्दों में नित्य कारण (Permanent cause) कहा जा सकता है, जैसे ताप आकर्षण-शक्ति, वायु मण्डल का दबाव, रात, विद्युत् का प्रसर, चुम्बक का असर, इत्यादि। हम किसी पदार्थ में से ताप को सर्वथा अलग नहीं कर सकते—कारण का स्वरूप ही ऐसा है कि इस प्रकार की सम्भावना ही नहीं है। इसी प्रकार हमें ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिल सकता जिसमें आकर्षण-शक्ति या वायुमण्डल का दबाव सर्वथा अविद्यमान हो। यद्यपि इन नित्य कारणों को सर्वथा अलग करना असम्भव है तथापि वे मात्राओं में परिवर्तित होते रहते हैं और इसलिए हम उनको आंशिक रूप से अलग कर सकते हैं। हम पदार्थों से सर्वथा तो छुटकारा नहीं पा सकते किन्तु वे अधिक या कम परिमाण में प्रतीत होते हैं। सहगामि विचरण-विधि इन नित्य कारणों के उदाहरणों में कारणता सम्बन्ध को निश्चित करने के लिये विशेष रूप से प्रयोग की जाती है। इन नित्यकारणों को सर्वथा प्रथक् नहीं किया जा सकता किन्तु आंशिक रूप से अलग किया जा सकता है क्योंकि वे परिवर्तित मात्राओं में प्रकट होते हुए प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ हम ऐसे उदाहरण लेते हैं जिनमें अनुसन्धान-गत पदार्थ मात्राओं में परिवर्तित प्रतीत होते हैं और जब हम देखते हैं कि अन्य पदार्थों में भी समान रूप से परिवर्तन दिखाई देता है तब हम निष्कर्ष निकालते हैं कि इनमें आपस में कारणता का सम्बन्ध है। व्यतिरेक विधि का तो केवल वहाँ प्रयोग होता है जहाँ पृथ रूप से प्रथक्करण सम्भव हो अर्थात् अनुसंधानगत पदार्थ एक उदाहरण में विद्यमान हो और दूसरे उदाहरणों में सर्वथा अविद्यमान हो। अतः सहगामि-विचरण-विधि का केवल

उन्हीं उदाहरणों में प्रयोग किया जाता है जहाँ व्यतिरेक विधि का प्रयोग नहीं हो सकता।

उक्त विधि का सुचित्रित रूप निम्नलिखित है —

हम एक ग्राफ लेते हैं जिसमें एक पदार्थ या घटना को हम तिर्यक् रेखा (Horizontal line) से दिखलाते हैं जो कई स्थानों पर कटी हुई है तथा अन्य घटनाओं का स्पष्टीकरण उर्ध्व रेखाओं से बतलाया गया है जो भिन्न भिन्न लम्बाई रखती हैं। ये उर्ध्व रेखाएँ तिर्यक् रेखा पर भिन्न-भिन्न बिन्दुओं से खींची गई हैं और उनको क्रम से बढ़ते हुए दिखलाया गया है। जैसे,

ताप की मात्राएँ

इस चित्र में तिर्यक् रेखा ताप की मात्राओं को बतलाती है तथा कई बिन्दु, जिन पर इसको विभाजित किया जाता है, ताप की मात्रा में वृद्धि को जाहिर करते हैं। तथा उर्ध्व रेखाएँ (Perpendicular lines) पारे के आयतन को स्पष्ट करती हैं। ज्यों ही ताप की मात्रा बढ़ती है त्यों ही बेरोमीटर में पारे का आयतन भी बढ़ता जाता है।

(१२) सहगामि-विचरण-विधि की सीमाएँ

सहगामि-विचरण विधि की निम्नलिखित सीमाएँ हैं :—

(१) सहगामि-विचरण-विधि का, प्रत्यक्षीकरण द्वारा देखे हुए पदार्थों के परे प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस विधि के अनुसार हम इस प्रकार तर्क करते हैं कि जब दो पदार्थ या घटनाएँ एक साथ परिवर्तन

है और विपरीत रूप में भी ऐसा ही होता है। इस सम्बन्ध को, जो अन्तर और माँग में पाया जाता है व्यस्तानुपात (Inverse ratio) कहते हैं।

(११) सहगामि-विचरण-विधि की विशेषताएँ।

सहगामि-विचरण विधि की मुख्य विशेषता यह है कि जहाँ पृथक् करण सम्भव नहीं है वहाँ भी इसका उपयोग किया जा सकता है। कुछ ऐसे कारण हैं जिनको पूर्ण रूप से अलग नहीं किया जा सकता। ये अवस्थाएँ ऐसी हैं जिनको मिल के शब्दों में नित्य कारण (Permanent cause) कहा जा सकता है जैसे, ताप आकर्षण-शक्ति, वायु मंडल का दबाव, प्रकाश, विद्युत् का प्रभाव, चुम्बक का प्रभाव, इत्यादि। हम किसी पदार्थ में से ताप को सर्वथा अलग नहीं कर सकते—कारण का स्वरूप ही ऐसा है कि इस प्रकार की सम्भावना ही नहीं है। इसी प्रकार हमें ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिल सकता जिसमें आकर्षण-शक्ति या वायुमंडल का दबाव सर्वथा अविद्यमान हो। यद्यपि इन नित्य कारणों को सर्वथा अलग करना असंभव है तथापि वे मात्राओं में परिवर्तित होते रहते हैं और इसलिए हम उनको आंशिक रूप से अलग कर सकते हैं। हम पदार्थों से सर्वथा ताप को दूर नहीं कर सकते किन्तु वे अधिक या कम परिमाण में प्रतीत होते हैं। सहगामि-विचरण-विधि इन नित्य कारणों के उदाहरणों में, कारणता सम्बन्ध को निश्चित करने के लिए, विशेष रूप से प्रयोग की जाती है। इन नित्यकारणों को सर्वथा पृथक् नहीं किया जा सकता किन्तु आंशिक रूप से अलग किया जा सकता है क्योंकि ये परिवर्तित मात्राओं में प्रकट होते हुए प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ हम ऐसे उदाहरण लेते हैं जिनमें अनुसन्धान-गत पदार्थ मात्राओं में परिवर्तित प्रतीत होते हैं और जब हम देखते हैं कि अन्य पदार्थों में भी समान रूप से परिवर्तन दिखाई देता है तब हम निष्कर्ष निकालते हैं कि इनमें आपस में कारणता का सम्बन्ध है। व्यतिरेक विधि का तो केवल वहाँ प्रयोग होता है जहाँ पूर्ण रूप से पृथक्-करण सम्भव हो अर्थात् अनुसन्धानगत पदार्थ एक उदाहरण में विद्यमान हो और दूसरे उदाहरणों में अथवा अविद्यमान हो। अतः सहगामि-विचरण-विधि का केवल

विशेषानुमानीयविधि का प्रयोग कर सकते हैं जिसका स्वरुप इस प्रकार का है। **"किसी दिये हुए पदार्थ या घटना में से उस भाग को निकाल दो जो पहले सामान्यानुमान के आधार पर कुछ पूर्ववर्ती अवस्थाओं का निष्कर्ष या परिणाम समझा गया है, तो पदार्थों या घटनाओं का अवशेष भाग, अवश्य ही अवशिष्ट पूर्ववर्ती अवस्थाओं का कार्य होगा"**

इसका हम बीजात्मक उदाहरण देते हैं.—

क ख ग	क' ख' ग'
ख ग	ख' ग' (क्योंकि हमें मालूम है कि ख, ख' का कारण है और ग, ग' का कारण है)

∴ 'क' कारण 'क'' का है।

इस उदाहरण में हम देखते हैं कि मिश्र घटना क' ख' ग', क ख ग से उत्पन्न हुई है। हम पहले सामान्यानुमानों से यह भली भाँति जानते हैं कि ख, ख' का कारण है और ग, ग' का कारण है। हिसाब करके हम यह निश्चित करते हैं कि ख ग, ख' ग' का कारण है। दिये हुए पदार्थ या घटना का अवशेष भाग 'क' है। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि अवशिष्ट 'क'' अवशिष्ट पूर्ववर्ती अवस्था 'क' का कार्य है।

इसके यथार्थ उदाहरण निम्नलिखित है :—

(क) हम एक बोझे से लदी हुई गाड़ी को लेकर तौलते हैं। हम गाड़ी के वज़न को पहले ही से जानते हैं। गाड़ी के भार को समग्र भार से निकाल कर अर्थात् गाड़ी और बोझ दोनों के भार से गाड़ी के भार को अलग कर हम निष्कर्ष निकालते हैं कि वज़न के भेद का कारण बोझ का भार है।

(ख) जेवेन्स महोदय ने यह उदाहरण दिया है। रासायनिक विश्लेषण प्रक्रिया में जब पदार्थ मिश्रित रहते हैं तब आनुपातिक भार को निश्चित करने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार जल के बनाने को निश्चित करने के लिये हम एक तावे के द्रव्य (Oxide of

की प्राप्त होती हैं तब हम उन्हें कारणता के सम्बन्ध से अनुविद्ध मानते हैं। किन्तु इससे हम यह कभी अनुमान नहीं करते कि यह परिवर्तन हमारे प्रत्यक्षीकरण की सीमा से बाहर भी चला जायगा। उदाहरणार्थ, हम देखते हैं कि ताप के प्रभाव के कारण कुछ उदाहरणों में पानी फैलता है और शीत के प्रभाव के कारण घटता है। ज्यों ही ताप गहरा होता जाता है, पानी भी आयतन में बढ़ता जाता है और ज्यों ही ताप कम होता जाता है, पानी भी सिकुड़ता जाता है। लेकिन यह सोचना गलत होगा कि ये परिवर्तन सब मात्राओं में ठीक ही बैठते हैं। बल्कि प्रयोग के आधार पर यह निश्चित किया गया है कि पानी सिकुड़ने की अपेक्षा बढ़ता जाता है जब यह एक खास तापमान अर्थात् ३९.४ F, से नीचे गिर जाता है। इस लिये *सहगामि-विपरण-विधि*, एक खास प्रत्यक्षीकरण द्वारा ज्ञात सीमा से परे कारणता का ज्ञान नहीं दे सकती।

(९) सहगामि-विपरण-विधि उन उदाहरणों में भी कामकारी सिद्ध नहीं होती जिनमें गुणों का परिवर्तन होता है। इस विधि का उपयोग वहीं किया जाता है जहाँ परिमाणात्मक परिवर्तन देखे जाते हैं अर्थात् जब दो पदार्थ या घटनाएँ मात्राओं में परिवर्तित होती हैं। यदि इसमें गुण का परिवर्तन देखने में आता है तो इसका अर्थ यह है इसमें एक नई अवस्था का प्रवेश कर दिया गया है और यह विधि उसको सिद्ध नहीं कर सकती।

(१३) अवशेष-विधि

पाँचवीं विधि अवशेष-विधि (Method of Residues) कही जाती है। जब एक भिन्न अनुक्रम की उत्तरवर्ती अवस्थाओं में किसी के साथ कारणता का सम्बन्ध निश्चित हो चुका है तब हम इस विधि का प्रयोग करके सिद्ध कर सकते हैं कि अवशिष्ट पूर्ववर्ती अवस्थाएँ अवशिष्ट उत्तरवर्ती अवस्थाओं के कारण हैं। यदि पहले का, निकाला हुआ निष्कर्ष विश्वसनीय है तो यह विधि अच्छी सिद्धि प्राप्त करा सकती है। कुछ मामलों में जहाँ हम न तो व्यतिरेक विधि का प्रयोग कर सकते हैं और न वहाँ सहगामि-विपरण-विधि का प्रयोग कर सकते हैं वहाँ हम इस

मान लो एक मिश्र पदार्थ या घटना है जिसके एक भाग की व्याख्या हो चुकी है किन्तु इसके अन्य भाग की व्याख्या अभी तक नहीं हुई है। हमें इस अव्याख्यात भाग या अवशिष्ट भाग का कारण नहीं मालूम है। इसको जानने के लिये हम अधिक अन्वेषण करते है और कारण को जानने में सफल होते हैं। इस प्रकार यह विधि मेलोन के शब्दों मे अव्याख्यात पदार्थ या घटनाओं के लिये मार्गदर्शक स्तम्भ (Finger-post) का कार्य करती है। इस सिद्धान्त के इस प्रकार प्रयोग करने से अवशेष-विधि, सिद्धि की अपेक्षा खोज की विधि ठहरती है। यह प्राक् कल्पनाओं का स्रोत है, उनकी परीक्षा और समर्थन का कारण नहीं है। निम्नलिखित यथार्थ उदाहरण अवशेष विधि पर अधिक प्रकाश डालते है :—

आर्गन का आविष्कार—लार्ड रैले (Rayleigh) और प्रो सर डबल्यू रेमजे (W. Ramsay) ने इस विधि से एक गैस की खोज की जिसका नाम आर्गन है। उन्होंने यह देखा कि नाइट्रोजन जिसको वायु से पैदा किया जाता है वह अन्य कारणों से उत्पन्न हुए नाइट्रोजन की अपेक्षा अधिक भारी होता है। इस अन्तर के कारण को खोजने के लिये उन्होंने पता लगाया कि वायु से उत्पन्न होनेवाले नाइट्रोजन में कोई अन्य गैस मिला हुआ है जिसके कारण भार में अन्तर होता है। उस गैस का उनको सर्वथा ज्ञान नहीं था। अत. इस बात की खोज की गई कि यह नवीन गैस आर्गन है जिसके कारण भार में अन्तर हुआ था।

नेपच्यून ग्रह की खोज :— महाशय आदम्स (Adams) और लेवेरिअर (Le Verrier) ने नेपच्यून ग्रह की इसी विधि से खोज की थी। यह देखा गया कि यूरेनस ग्रह अपनी गति में कुछ विचित्रताएँ दिखला रहा है—अर्थात् वह अपनी कक्षा से कुछ हटा हुआ प्रतीत हुआ, जो गणित की विधि से नहीं होना चाहिये था। सूर्य तथा अन्य ग्रहों के प्रभाव को अच्छी तरह परिगणित कर लेने पर यह पता लगा कि यूरेनस परिगणित कक्षा पर गमन नहीं कर रहा है। इससे उसकी गति के अन्तर की खोज की गई और पता लगाया गया कि इसका निश्चित कक्षा से बाहर गमन करना किसी अन्य ग्रह की चाल के कारण

copper) के भार को लेते हैं और एक गरम नली में, इसके ऊपर से हॉइड्रोजन निकाल देते हैं और एक गन्धक के तेज़ाब से भरी हुई नली में बने हुए पानी को जमाकर देखते हैं। यदि हम भरी हुई नली में से शुरू के भार को आखिर भार में से निकाल दें तो हम जान सकते हैं कि कितना पानी पैदा किया गया है। इसके अन्दर ऑक्सिजन के परिमाण का तांबे के द्रव्य के भार को मूल भार में से निकाल कर पता लगाया गया है। यदि हम ऑक्सिजन के भार को पानी के भार में से अलग कर दें तो हमें हॉइड्रोजन जिसको हमने ऑक्सिजन के साथ मिला दिया है, भार का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। तथा जब प्रयोग अच्छी तरह किया जाता है तब हम देखते हैं कि शत प्रतिशत जल बनाने के लिये ८८.८१ भाग, ऑक्सीजन को ११.११ भाग हॉइड्रोजन के साथ मिलना आवश्यक होता है।

यह विधि इस सिद्धान्त पर अवलम्बित है कि जो एक वस्तु का कारण है वह दूसरी वस्तु का कारण नहीं हो सकता।

जब हम किसी पदार्थों के मिश्र समूह से व्यवहार कर रहे हैं और हम उनमें से कुछ के कारण जानते हैं तब हम निष्कर्ष निकालते हैं कि अवशेष या अवशिष्ट पदार्थ का कारण अवश्य ही अवशिष्ट पूर्ववर्ती अवस्थाओं में मिलना चाहिये। कारवेथ रीड महोदय बतलाते हैं कि इस सिद्धान्त में यदि पदार्थ या घटना को कार्य माना गया है तो अवशिष्ट कारणों के लिये उसी प्रकार का सिद्धान्त बनाना चाहिये कभी-कभी इस विधि को कुछ भिन्न रूप में उपस्थित किया जाता है। बजाय इसके कि अवशिष्ट उत्तरवर्ती अवस्थाओं को पूर्ववर्ती अवस्थाओं का परिणाम बतलाया जाय हम पदार्थ में अनावश्यक तत्व के विद्यमान होने से इसके अज्ञात कारण को खोजते हैं। इसी बात को स्पष्ट करने के लिये मैथोन महोदय ने निम्नलिखित नियम बतलाया है :—

"जब किसी मिश्र पदार्थ या घटना के एक भाग की व्याख्या निश्चित कारणों द्वारा नहीं हुई है, तब उस अवशिष्ट भाग के लिये कोई अन्य कारण अवश्य खोजना चाहिये।"

उदाहरणों के समूह भेद रखते हैं। दोनों विधियों में अन्तर यह है कि व्यतिरेक विधि में, वह उदाहरण जिसमें अवस्था नहीं उत्पन्न होती है उसे अनुभव देता है, तथा अवशेष विधि में उदाहरण, पूर्व समान्यानुमान से उपलब्ध विशेषानुमान से लिया जाता है। व्यतिरेक विधि, इसमें कोई सशय नहीं, सर्वोत्कृष्ट सामान्यानुमानीय विधि है। तथा अवशेष-विधि में विशेषानुमान का कुछ तत्व दिखाई देता है।

(१५) उपर्युक्त पाँच विधिओं का परस्पर सम्बन्ध

कारणता-सम्बन्ध के परिणाम के लिये मिल महोदय ने ५ विधियाँ स्थापित कीं, जिनके नाम निम्नलिखित हैं·—

(१) अन्वय-विधि।

(२) व्यतिरेक-विधि।

(३) सम्मिलित-अन्वय-विधि।

(४) सहगामि-विचरण विधि।

(५) अवशेष-विधि।

इन पाँचों विधियों मे से अन्वय और व्यतिरेक इन दो विधियों को मिल ने मौलिक विधियाँ माना है तथा अन्य विधियाँ इन्हीं दो विधियों के विशेष रूप हैं।

जैसे, सम्मिलित-विधि कोई स्वतन्त्र-विधि नहीं है किन्तु अन्वय-विधि का ही एक विशेष रूप है। यह हम देख चुके हैं कि अन्वय विधि कारण बहुत्व के सिद्धान्त से खण्डित होती है और इस दिक्कत को दूर करने के लिये हम सम्मिलित-विधि का प्रयोग करते हैं। यह सम्मिलित-विधि अन्वय-विधि का द्विगुणित प्रयोग है क्योंकि इसके अन्दर हम उदाहरणों के दो समूह लेते हैं—एक में हम विद्यमानता में समानता दिखलाते हैं तथा दूसरे में अविद्यमानता में समानता दिखलाते हैं। इसी कारण से सम्मिलित विधि को ठीक प्रकार से द्विगुणित अन्वय-विधि कहा गया है। इस सम्मिलित-विधि को हमें व्यतिरेक-विधि के साथ गड़बड़ में नहीं डालना चाहिये।

जहाँ तक सहगामि-विचरण-विधि का सम्बन्ध है हम उसको अवस्थाओं के अनुसार अन्वय विधि का एक खास विशिष्ट रूप मान सकते हैं या

है जो इस पर अपना प्रभाव फेंक रहा है और जिसको हम तब तक नहीं जानते थे। इस अपरिचित ग्रह का नाम नेपच्यून था जिसकी इस विधि से खोज हुई।

(१४) अवशेष-विधि की विशेषताएँ

इस विधि की विशेषता यह है कि इसका प्रयोग हम तभी कर सकते जब हमारा कारणता-विषयक ज्ञान कुछ अधिक हो जाय। अर्थात् जब हमने सामान्यानुमानीय प्रक्रिया में कुछ विशेष उन्नति कर ली हो और कारणता के कुछ उदाहरणों को सिद्ध कर लिया हो। तथा जब हमने किसी पदार्थ या घटना के कारणों को अपुत ग्रहों में जान लिया हो और उसके ज्ञान में कुछ कमी या अधिकता या व्यतिक्रम अनुभव में आता हो तब भी हम इस विधि को प्रयोग में ला सकते हैं।

अवशेष-विधि में हमें कुछ विशेषानुमान का तत्त्व घुसा हुआ प्रतीत होता है। इसके अन्दर मान्यकरण भी कुछ कर सकता है वह यह है कि कुछ पूर्ववर्ती अवस्थाओं के पश्चात् उत्तरवर्ती अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। इसके पश्चात् गणना या विशेषानुमान की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। हम परिज्ञात कारणों के कार्यों की गणना कर डालते हैं और पूर्ण कार्य में से इस परिगणित कार्य को निकाल देते हैं। इस प्रकार अवशिष्ट उत्तरवर्ती अवस्था अवशिष्ट पूर्ववर्ती अवस्था का कार्य प्रतीत होती है। इस विधि में साक्षात् अनुभव इतना कार्य-कारी नहीं होता जितनी गणना या विशेषा नुमान कार्यकारी होता है। यही हेतु है कि तार्किक लोग अवशेष-विधि को विशेषरूप से विशेषानुमान की ही विधि मानते हैं।

कुछ तार्किकों का कहना है कि अवशेष-विधि को व्यतिरेक-विधि का ही एक विशेष रूप मानना चाहिये। क्योंकि, यदि विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि दोनों के अन्दर सिद्धान्त वही ग्रहण किया गया है; अर्थात् यदि वे उदाहरण जिसे कोई भी केवल एक अवस्था में भेद रखते हैं जो एक उदाहरण में विद्यमान हैं और दूसरे उदाहरण में अविद्यमान हैं तब, वह अवस्था जिसमें केवल दो उदाहरणों के समूह भेद रखते हैं दूसरी अवस्था का कारण हैं जिसमें ही केवल दो

एक वस्तु के ही दो रूप हैं। यदि दो वस्तुएँ एक बात में समान हैं तो इसका अर्थ यह है कि वे अन्य बातों में भेद रखती है। अन्वय और व्यतिरेक दोनों साथ साथ रहते हैं और दोनों एक समान मौलिक हैं। एक को दूसरे में अन्तर्भूत करना सर्वथा निरर्थक है। अतः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि अन्वय-विधि और व्यतिरेक-विधि दोनों ही मौलिक हैं तथा अन्य तीन विधियाँ इनके ही विशिष्ट रूप हैं।

(१६) प्रत्यक्षीकरण की विधियाँ तथा प्रयोग की विधियाँ

क्या हमारे लिये यह सम्भव है कि हम इन विधियों का इस प्रकार विभाजन करें कि अमुक विधियाँ प्रत्यक्षीकरण की है और अमुक विधियाँ प्रयोग की हैं?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इन विधियों को हम इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण की विधियो और प्रयोग की विधियों में विभाजित नहीं कर सकते। क्योंकि इस प्रकार का विभाग इस बात का द्योतक होगा कि वास्तव में प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग में मौलिक भेद है—लेकिन यह दिखलाया जा चुका है कि दोनों में कोई वास्तविक भेद नहीं है। प्रयोग केवल प्रत्यक्षीकरण का ही विशिष्ठ रूप है।

अन्वयविधि आवश्यक रूप से प्रत्यक्षीकरण की ही विधि है क्योंकि जिस प्रकार के उदाहरणों की इसमें आवश्यकता होती है वे प्रत्यक्षीकरण द्वारा ही प्राप्त किये जाते हैं। यदि प्रत्यक्षीकरण इस विधि के उदाहरणों को दे सकता है तो प्रयोग को तो इस प्रकार के उदाहरण देने में कोई दिक्कत पैदा हो ही नहीं सकती। जब हम यह कहते हैं कि यह मुख्य रूप से प्रत्यक्षीकरण की विधि है तब हमारा मतलब यह नहीं है कि यह प्रयोग से अपने विषय को प्राप्त नहीं कर सकती किन्तु हमारा अभिप्राय यह है कि यदि हम प्रयोग को काम में ला सकते हैं तो हमे विधियों की भी सहायता लेनी चाहिये (जैसे कि व्यतिरेक विधि,) जिससे हम अत्यधिक-बलवान निष्कर्ष निकाल सकें।

व्यतिरेक-विधि वास्तव में प्रायोगिक विधि है। इस विधि को हम

व्यतिरेक-विधि का एक रूप विशिष्ट रूप मान सकते हैं। यदि अन्य सब दशाएँ सही हों तो हमें इसको व्यतिरेक-विधि का विशेष रूप मानना पड़ेगा और यदि अन्य अवस्थाएँ भिन्न-भिन्न हों तो हमें इसको अन्वय विधि का विशेष रूप मानना पड़ेगा।

मिल महोदय के अनुसार अन्वयेतर-विधि, वास्तव में, व्यतिरेक-विधि का एक विशिष्ट रूप है। सिद्धान्त दोनों में एक ही हैं केवल भेद निषेधात्मक उदाहरण के प्राप्त करने के तरीके में है। व्यतिरेक-विधि में निषेधात्मक उदाहरण जिनमें परीक्षागत पदार्थ या घटना नहीं उपस्थित हुए हैं प्रयोग से प्राप्त किये जाते हैं तथा अन्वयेतर विधि में निषेधात्मक उदाहरण पूर्व सामान्यानुमान द्वारा प्राप्त विशेषानुमान द्वारा प्राप्त किये जाते हैं।

अन्वय-विधि और व्यतिरेक-विधि इन दोनों में मिल महोदय के अनुसार व्यतिरेक-विधि अधिक मौलिक है क्योंकि अन्वयविधि तो कारणता सम्बन्ध की केवल सूचना देती है तथा व्यतिरेक-विधि केवल कारणता सम्बन्ध को सिद्ध करती है।

कारवेथ रीड का विचार यह है कि अन्वयविधि को व्यतिरेक-विधि में सम्मिलित किया जाता है क्योंकि अन्वय विधि की प्रामाणिकता, एक उदाहरण के बाद दूसरे उदाहरण में अन्य सब अवस्थाओं के त्याग पर निर्भर है जो त्याग, व्यतिरेक का मुख्य चिन्ह है। अन्वय विधि में उदाहरण केवल एक बात में समान दिखाई देते हैं तथा अन्य बातों में उनमें भेद दिखलाई देता है। अतः यह कहा जा सकता है कि हम अन्वयविधि को व्यतिरेक-विधि में परिवर्तित कर सकते हैं क्योंकि व्यतिरेक-विधि उन विधियों में अत्यधिक मौलिक है।

कुछ तार्किकों के विचारानुसार किसी अर्थ में व्यतिरेक-विधि को भी अन्वयविधि में अन्तर्भूत किया जा सकता है। व्यतिरेक-विधि के लिए केवल यही आवश्यकता है कि दो उदाहरण एक बात में भेद रखते हों और अन्य बातों में समानता रखते हों। अतः व्यतिरेक-विधि के पहले अन्वयविधि का होना आवश्यक सा प्रतीत होता है।

यथार्थ में देखा जाय तो यही मालूम पड़ता है कि अन्वय और व्यतिरेक

को सर्वोत्कृष्ट विधि है। सम्मिलित-विधि को हम अनुसधान की विधि की अपेक्षा सिद्धि की विधि ही कह सकते हैं। इसका प्रयोग, हम विशेष रूप से कारण बहुत्व से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिये जिससे अन्वय विधि निरर्थक सिद्ध होती है, करते हैं। अत. इसके द्वारा हम निषेधात्मक उदाहरणों के समूह को लेकर अन्यव-विधि के द्वारा अनुमानित कारण की परीक्षा कर सकते हैं।

सहगामि-विचारण-विधि अनुसंधान के लिये अत्यन्त उपयोगी है। जब दो पदार्थ एक साथ परिवर्तन को प्राप्त होते हैं तब यह एक हमारे मस्तिष्क के लिये सूचना देती है कि उन दोनों में परस्पर कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य है। जब यह व्यतिरेक विधि का ही विशेष रूप मानी जाती है तब यह सूचना सत्य सिद्ध होती है और जब यह अन्वय-विधि का विशेष रूप मानी जाती है तब निष्कर्ष केवल सम्भाव्य प्रतीत होते हैं।

अवशेष-विधि, व्यतिरेक-विधि का ही विशेष रूप है किन्तु यह केवल सिद्धि की ही विधि नहीं है अपितु अनुसधान की भी विधि है। इस विधि के प्रयोग से वैज्ञानिक क्षेत्र में कितने ही महत्वशाली आविष्कार किये गये हैं। जब हम देखते हैं कि पदार्थ में कुछ भाग अव्याख्यात रहता है जिसको हम दूसरी प्रकार जान सकते हैं तब हम इसके अव्याख्यात भाग के कारण की खोज करने की कोशिश करते हैं। इसलिये अवशेष-विधि अव्याख्यात भाग के लिये सूचक स्तम्भ (Finger-post) का कार्य करती है।

(१८) विधियों की समालोचना

मिल महोदय का कहना है कि प्रायोगिक विधियों का सामान्यानुमान के क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट स्थान है। उनके अनुसार खोज के लिये इससे अच्छी विधियाँ हो ही नहीं सकतीं। यथार्थ में सामान्यानुमान की प्रतिष्ठा इन्हीं के द्वारा हो सकती है। उनका यह भी कहना है कि सामान्यानुमान हमें नियम और विधान देता है। यदि नियम और विधान क अनुसार हमारे तर्क ठीक बैठते हैं तो उनसे निकाले हुए निष्कर्ष निश्चयात्मक होंगे। इस निश्चयात्मकता को दिखलाने और सिद्ध करने के लिये ही प्रायोगिक विधियाँ काम मे लाई जाती हैं।

साधारण प्रत्यक्षीकरण के प्रयोग में ला सकते हैं—जैसे, हम अपने दैनिक अनुमानों में इसको लगाते हैं। जब हम अपने विषय को साधारण प्रत्यक्षीकरण से प्रहण करते हैं तब हमारे निष्कर्ष निश्चयात्मक नहीं होते। यह प्रयोग ही है जो निश्चयात्मक और सही उदाहरण दे सकता है और जो व्यतिरेक-विधि की आवश्यकता को पूर्ण रूप से पूरी कर सकता है।

सम्मिलित-विधि अन्वय-विधि का द्विगुणित रूप होने के कारण कोई स्वतन्त्र विधि न होती हुई, अन्वयविधि के ही समान विधि है।

सहगामि-विचरण-विधि को या तो हम अन्वय-विधि का विशेष परिवर्तन मान सकते हैं या व्यतिरेक-विधि का परिवर्तन मान सकते हैं। जब यह अन्वय विधि का रूप माना जाता है तब यह प्रत्यक्षीकरण का ही विशेष रूप है किन्तु जब यह व्यतिरेक-विधि का रूप माना जाता है तब यह वास्तव में व्यतिरेक-विधि का ही विशेष रूप है।

अवशेष-विधि व्यतिरेक-विधि का खास रूप है और इसलिये इसको व्यतिरेक का रूप मानना अधिक उपयुक्त है। इस विधि का प्रयोग प्रत्यक्षीकरण में भी किया जाता है; किन्तु उस अवस्था में निकाले हुए इसके निष्कर्ष तभी निश्चयात्मक गिने जा सकते हैं जब हम प्रयोग को काम में लावें।

(१७) अनुसंधान की विधियाँ और सिद्धि की विधियाँ

मिल महोदय का कहना है कि जितनी प्रायोगिक विधियाँ हैं वे सब सिद्धि की विधियाँ हैं अनुसंधान की नहीं। किन्तु विचार करने पर प्रतीत होगा कि मिल अपने विचारों में सामंजस्य नहीं रखता अर्थात् इस विषय में उसके विचार अनुरूप नहीं हैं। जहाँ तक अन्वय-विधि का सम्बन्ध है उनका कहना है कि यह कारणता के सम्बन्ध की सूचना देती है; यह इसको सिद्ध नहीं कर सकती। अन्वय-विधि कारण की सूचना देती है तथा व्यतिरेक-विधि यह निश्चित करती है कि अनुमानित कारण सच कारण है; अतः इस दृष्टिबिन्दु के अनुसार यह कहा जा सकता है कि अन्वय-विधि अनुसंधान की विधि है इसके बजाय कि इसे सिद्धि की विधि कहा जाय। जहाँ तक व्यतिरेक विधि का सम्बन्ध है मिल का कहना है कि यह सिद्धि

मिल महोदय इस आपत्ति को इस प्रकार सुलझाते हैं और वे स्वीकार करते हैं कि सामान्यानुमानीय वाक्य कठिनता से प्राप्त होते हैं और उनको सामान्य रूपों में रखना और भी कठिन है। किन्तु इस प्रकार के पेचीदे पदार्थों या घटनाओं को सरल करने के पहिले 'यह जानना आवश्यक हो जाता है कि हम उन रूपों को जानें जिनमें हमें उन पदार्थों या घटनाओं को प्रकट करना है। जैसे विशेषानुमान में सिलाजिज्म एक अनुमान का रूप है जिसके अन्दर समग्र विशेषानुमानीय तर्क को दिखलाना है, वैसे ही सामान्यानुमान में भी हम विधियों को उपस्थित करते हैं जिनके अन्दर तमाम सामान्यानुमानीय तर्क प्रकट करना चाहिये जिससे हम उनकी प्रमाणिकता सिद्ध कर सकें।

(२) कारण-बहुत्व का सिद्धान्त और कार्य-सम्मिश्रण का सिद्धान्त विधिओं की प्रमाणिता के लिये अत्यन्त घातक है।

सामान्यानुमानीय विधियाँ केवल दो बातों की कल्पना करती हैं :—

(१) एक कार्य का केवल एक कारण होता है अर्थात् कार्य की कुछ पूर्ववर्ती अवस्थाएँ होती हैं (२) भिन्न-भिन्न कार्य अलग अलग रक्खे जाते हैं और हम उनमें भेद कर सकते हैं। किन्तु इन दोनों कल्पनाओं के लिये हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है।

कारण बहुत्व का सिद्धान्त हमें यह बतलाता है कि भिन्न भिन्न अवसरों पर वही कार्य भिन्न-भिन्न कारणों से उत्पन्न हो सकता है। इससे अन्वय-विधि निरर्थक सिद्ध हो जाती है। यह हो सकता है कि अनेक उदाहरणों के इकट्ठे करने से और सम्मिलित-विधि के प्रयोग करने से अन्वय-विधि की असफलता के अवसरों को कुछ रोका जा सके किन्तु गलती की सम्भावना को सर्वथा नहीं हटाया जा सकता। व्यतिरेक-विधि भी केवल यही सिद्ध कर सकती है कि दिये हुए उदाहरण में एक खास अवस्था कारण कही जा सकती है क्योंकि दूसरी विधियाँ या तो अन्वय-विधि के या व्यतिरेक-विधि के रूप हैं, इसलिये उनको भी कारण-बहुत्व का सिद्धान्त निरर्थक सिद्ध कर सकता है।

कार्य-सम्मिश्रण के सिद्धान्त के अनुसार हमारे लिये यह सम्भव न हो

मिल महोदय का यह साध्य अन्य तार्किकों को मान्य नहीं है और वे निम्नलिखित आपत्तियाँ उठाते हैं:—

(१) प्रथम विधियों के आधार पर हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि प्रकृति के पेचीदे पदार्थ या घटनाओं को हम साधारण सूत्रों में अनूदित कर सकते हैं।

(२) द्वितीय, कारणबहुत्व का सिद्धान्त और कार्यसंमिश्रण का सिद्धान्त, विधियों की प्रामाणिकता के लिये अत्यन्त घातक है।

(३) तृतीय, विधियाँ स्वरूपतः सामान्यानुमानीय नहीं हैं ये विशेष नुमानीय हैं।

अब हम इन आपत्तियों पर विशेष रूप से विचार करेंगे।

(१) विधियों के आधार पर हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि प्रकृति के पेचीदे पदार्थों या घटनाओं को हम साधारण सूत्रों में अनूदित कर सकते हैं।

विधियों के आधार पर हम यह सोचने लग जाते हैं कि प्रकृति के पदार्थ और घटनाएँ इतनी सरल हैं कि हम उनको अत्यन्त सरल सूत्रों में अनूदित कर रख सकते हैं। विधियों के अन्दर हमारे सामने कुछ निश्चित पूर्ववर्ती अवस्थाएँ होती हैं और उन्हीं के अनुसार उत्तरवर्ती अवस्थाएँ भी होती हैं—हम उन्हीं के आधार पर कार्य-कारण-भाव सिद्ध करने लगते हैं। यथार्थ में प्राकृतिक पदार्थों और घटनाओं का स्वरूप इतना पेचीदा होता है कि उनमें से कुछ अवस्थाओं को क ख ग के पूर्व रूप में मानकर उन्हीं के अनुरूप क' ख' ग' को उत्तर रूप में प्रकट करना धोखे से खाली नहीं होता है। अवस्था को पूर्व रूप में और विशिष्ट रूप में प्रकट करने से हम एकदम यह जान जाते हैं कि अमुक अवस्थाएँ पूर्ववर्ती हैं और अमुक उत्तरवर्ती। किन्तु प्रायः ऐसा नहीं होता। इसी हेतु से हेवेल (Whewell) साहब यह आपत्ति उठाते हैं कि विधियों के अन्दर हम किसी वस्तु को मानकर बैठ जाते हैं जिसकी खोज करना अत्यन्त दुर्लभ है—अर्थात् पेचीदे पदार्थों और घटनाओं को साधारण समझ बैठते हैं। यह विधियों की प्रथम कमज़ोरी है।

मिल महोदय इस आपत्ति को इस प्रकार सुलझाते हैं और वे स्वीकार करते हैं कि सामान्यानुमानीय वाक्य कठिनता से प्राप्त होते हैं और उनको सामान्य रूपों में रखना और भी कठिन है। किन्तु इस प्रकार के पेचीदे पदार्थों या घटनाओं को सरल करने के पहिले 'यह जानना आवश्यक हो जाता है कि हम उन रूपों को जानें जिनमें हमें उन पदार्थों या घटनाओं को प्रकट करना है। जैसे विशेषानुमान में सिलाजिज्म एक अनुमान का रूप है जिसके अन्दर समग्र विशेषानुमानीय तर्क को दिखलाना है, वैसे ही सामान्यानुमान में भी हम विधियों को उपस्थित करते हैं जिनके अन्दर तमाम सामान्यानुमानीय तर्क प्रकट करना चाहिये जिससे हम उनकी प्रमाणिकता सिद्ध कर सकें।

(२) कारण-बहुत्व का सिद्धान्त और कार्य-सम्मिश्रण का सिद्धान्त विधिओं की प्रमाणिता के लिये अत्यन्त घातक हैं।

सामान्यानुमानीय विधियाँ केवल दो बातों की कल्पना करती हैं :—

(१) एक कार्य का केवल एक कारण होता है अर्थात् कार्य की कुछ पूर्ववर्ती अवस्थाएँ होती हैं (२) भिन्न-भिन्न कार्य अलग अलग रक्खे जाते हैं और हम उनमें भेद कर सकते हैं। किन्तु इन दोनों कल्पनाओं के लिये हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है।

कारण बहुत्व का सिद्धान्त हमे यह बतलाता है कि भिन्न भिन्न अवसरों पर वही कार्य भिन्न-भिन्न कारणों से उत्पन्न हो सकता है। इससे अन्वय-विधि निरर्थक सिद्ध हो जाती है। यह हो सकता है कि अनेक उदाहरणों के इकठ्ठे करने से और सम्मिलित-विधि के प्रयोग करने से अन्वय-विधि की असफलता के अवसरों को कुछ रोका जा सके किन्तु गलती की सम्भावना को सर्वथा नहीं हटाया जा सकता। व्यतिरेक विधि भी केवल यही सिद्ध कर सकती है कि दिये हुए उदाहरण में एक खास अवस्था कारण कही जा सकती है क्योंकि दूसरी विधियाँ या तो अन्यव-विधि के या व्यतिरेक-विधि के रूप हैं, इसलिये उनको भी कारण-बहुत्व का सिद्धान्त निरर्थक सिद्ध कर सकता है।

कार्य-संमिश्रण के सिद्धान्त के अनुसार हमारे लिये यह सम्भव न हो

कि भिन्न-भिन्न कारणों को अलग-अलग कर उन्हें और एक पदार्थ या घटना सम्मिलित कारणों का फल हो उदाहरणार्थ, अच्छी फसल एक उदाहरण है जो अनेक कारणों का सम्मिलित कार्य है अर्थात् उसमें जमीन का भी हिस्सा है अच्छी वर्षा भी उसमें काम कर रही है, किसान के परिश्रम का भी योग है, इत्यादि। प्रायोगिक विधियाँ यह चाहती हैं कि भिन्न-भिन्न कार्य, क ख ग 'क' ख' ग' के रूप में अलग-अलग प्रतीत होने चाहिये। यदि भिन्न-भिन्न कार्य एक साथ मिला दिये जाते हैं तो यह निर्णय करना असम्भव हो जायगा कि सम्मिलित कार्य में से कौन सा भाग किस कारण से उत्पन्न हुआ है। अतः इस प्रकार के मामलों में ये विधियाँ निरर्थक सिद्ध होती हैं।

सम्मिलित कार्यों के मामलों में सहगामि-विचरण-विधि और अवशेष-विधि कुछ सहायता कर सकती हैं। यदि दो पदार्थ या घटनायें एक साथ परिवर्तन को प्राप्त होती हैं तो वहाँ प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि वे दोनों कारणता के सम्बन्ध से सम्बन्धित हैं या नहीं और हमारी यह आराम्भ सफल परिणामों का आरम्भ बिन्दु बन सकती है। इसी प्रकार अवशेष विधि भी हमारी बड़ी सहायता कर सकती है क्योंकि जब हम कुछ अज्ञात अवशेष पाते हैं तो हम उस अवशेष के लिये कारणान्तर की कल्पना करते हैं और उस दिशा में पुनः खोज करना आरम्भ कर देते हैं।

यहाँ पर ध्यान देना आवश्यक है कि ये प्रायोगिक विधियाँ कारण बहुत्व या कार्य-सम्मिश्रण से उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयों को दूर नहीं कर सकती। यदि हम इन कठिनाइयों को पार करना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम विशेषानुमानीय विधि का प्रयोग करें जो कि सामान्य-नुमान और विशेषानुमान का सुन्दर मिश्रण है।

(४) उक्त विधियाँ स्वरूपतः सामान्यानुमानीय नहीं हैं; वे विशेषा-नुमानीय हैं।

सबसे बड़ी आपत्ति जो प्रायोगिक-विधियों के विरुद्ध उठाई जा सकती है वह यह है कि प्रायोगिक-विधियाँ स्वरूपतः सामान्यानुमानीय नहीं हैं किन्तु विशेषानुमानीय हैं अर्थात् इनसे हम विशेष से सामान्य की ओर

गमन नहीं करते अपितु सामान्य से विशेष की ओर गमन करते हैं। बेन (Bain) कहते हैं इन विधियों को हम अनुग्रह से सामान्यनुमानीय कह सकते हैं, अधिक उपयुक्त तो यही होगा कि इनको विशेषानुमानीय विधियाँ कहा जाय क्योंकि हम इन्हें विशेष रूप से सामान्यानुमानीय अनुसधानों में प्रयुक्त पाते हैं। इस आलोचना की सत्यता तब अधिक स्पष्ट होगी जब हम इन विधियों में होनेवाली तर्क-प्रणाली को भली भाँति समझ लें।

अन्वय-विधि इस सिद्धान्त पर अवलम्बित है.—"**कार्य के भाव को न बिगाड़ते हुए हम जो कुछ अलग कर सकते हैं वह कारण का भाग नहीं बनाया जा सकता**"। यह सिद्धान्त कारणता के सिद्धान्त से निकाला गया है। इस सिद्धान्त को हम मुख्य वाक्य मानकर निम्नलिखित सिलाजिज्म बनाते हैं :—

"जो कुछ अलग किया जा सकता है वह कारण नहीं हो सकता।

ख ग, घ ङ अलग किये जा सकते हैं।

∴ ख, ग, घ ङ आदि कोई कारण नही हो सकते।"

किन्तु कारणता का सिद्धान्त बतलाता है कि प्रत्येक कार्य का कारण अवश्य होता है, इसलिये अन्वय-विधि यह बतलाती है कि अपरिवर्तितनीय पूर्वावस्था 'क' अपरिवर्तनीय उत्तर अवस्था 'क" का कारण है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि अन्वय-विधि कारणता के सिद्धान्त से निकाला हुआ सिद्धान्त है अर्थात् विशेषानुमान है और प्रथक्करण का सिद्धान्त भी कारणता के सिद्धन्त से निकाला हुआ सिद्धान्त है। अत. दोनों विशेषानुमान रूप हैं।

इसी प्रकार व्यतिरेक-विधि भी विशेषानुमान का रूप है। व्यतिरेक विधि इस सिद्धान्त पर अवलम्बित है—"**बिना कार्य के बिगाड़े हुए हम जिस किसी अवस्था को अलग नहीं कर सकते वह उसका कारण है**"। इसको हम मुख्य वाक्य बनाकर निम्नलिखित सिलाजिज़्म बनाते हैं —

जो कुछ अलग नही किया जा सकता है वह कारण है।

'क अलग नहीं किया जा सकता।

∴'क' कारण है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यतिरेक-विधि उपर्युक्त सिद्धान्त का निष्कर्ष है जो पुनः कारणता के नियम से निकाला गया है। ठीक इसी प्रकार यह भी दिखलाया जा सकता है कि सहगामि-विचरण-विधि इस सिद्धान्त से निकली हुई है "यदि एक पूर्ववर्ती अवस्था और उत्तरवर्ती अवस्था सहगामि-अवस्था में एक साथ घटती हैं और बढ़ती हैं तो उनमें अवश्य ही कार्यकारण-भाव-सम्बन्ध होगा।

यहाँ एक सम्मिलित-विधि का सम्बन्ध है यह अन्वय-विधि का विशेष रूप है। इसलिए अन्वय-विधि के समान यह भी विशेषानुमानीय ही विधि है।

अवशेष-विधि के बारे में तो मिल का स्वयं कहना है कि इसमें विशेषानुमान का कुछ तत्व अवश्य है क्योंकि निषेधात्मक उदाहरण जो परीक्षागत पदार्थ या घटना की अविद्यमानता को प्रकट करते हैं, उनको हम न तो प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त कर सकते हैं और न प्रयोग से प्राप्त कर सकते हैं किन्तु पूर्वज्ञान से उत्पन्न निष्कर्ष या विशेषानुमान से प्राप्त करते हैं। यह स्पष्ट है क्योंकि यह व्यतिरेक-विधि का विशेष रूप है इसलिये इसके अन्दर वही आपत्तियाँ उपस्थित हो सकती हैं जो व्यतिरेक विधि में पाई जाती हैं।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ये सामान्यानुमानीय विधियाँ सामान्यानुमानरूप कदापि नहीं हैं किन्तु केवल विशेषानुमान रूप हैं। ये सब कारणता के सिद्धान्त से निकली हुई विधियाँ हैं। जैसा कि कारवेथ रीड ने कहा है "हम सामान्यानुमानीय तर्क को केवल रूप-स्वभाव[1] का रूप मान सकते हैं क्योंकि यह (१) कार्य-कारणभाव के सम्बन्ध में पाया जाता है (२) इस सिद्धान्त से कुछ अनन्तरानुमानों को निकाला जाता है जिनका विस्तार नियमों में किया जा सकता है तथा (३) यह सिद्धान्तरूप के रूप में नियमों के प्रयोगों को प्रकट करता है जिनको अनुमान वाक्य के रूप में रखकर कारणता के विधेय के स्वरूप में रखा जा सकता है जिससे

---

(1) Formal Character

यह दिखाया जा सके कि कुछ उदाहरण नियमों का पूर्णरूप से परिपालन करते हैं।"

अभ्यास प्रश्न

(१) तर्कशास्त्र में प्रायोगिक-विधियों की आवश्यकता क्यों बतलाई गई है? सबके लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(२) प्रायोगिक-विधियों के दो मूल सिद्धान्त कौन से हैं जिनके आधार पर उनको परिवर्धित किया गया है? अच्छी तरह विवेचन करो।

(३) वे कौन से दो प्रकार हैं जिनमें अवशेष-विधि का प्रयोग किया जा सकता है? उदाहरण देकर अपने उत्तर को स्पष्ट बनाओ।

(४) प्रायोगिक-विधियों से आपका क्या अभिप्राय है? इनको प्रायोगिक विधियाँ क्यों कहा गया है?

(५) प्रथक्करण के भिन्न-भिन्न सिद्धान्त क्या हैं? इनका प्रायोगिक-विधियों के साथ क्या सम्बन्ध है?

(६) अन्वयविधि का उदाहरण पूर्वक लक्षण लिखो। इस विधि में कौन-कौन कमियाँ हैं? वे किस प्रकार दूर की जा सकती हैं?

(७) कारण-बहुत्व और कार्य-समिश्रण के सिद्धान्त किस प्रकार अन्वय विधि में बाधा उपस्थित करते हैं? इसका हल दो।

(८) व्यतिरेक-विधि पर पूर्ण प्रकाश डालकर यह सिद्ध करो कि यह अन्वय-विधि से अधिक उपयोगी है।

(९) अन्वय-विधि का यथार्थ उदाहरण दो तथा यह बतलाओ कि सम्मिलितान्वय-व्यतिरेक विधि का कब प्रयोग आवश्यक है?

(१०) "अन्वय-विधि और व्यतिरेक-विधि ये दोनों प्रत्यक्षीकरण और प्रयोग की विधियाँ हैं" इस वक्तव्य का क्या अभिप्राय है?

(११) "अन्वयविधि खोज की विधि है और व्यतिरेक-विधि सबूत की विधि है" इस कथन पर प्रकाश डालो।

(१२) अन्वय-विधि के द्विगुणित प्रयोग का लक्षण लिखकर उदाहरण दो। इस विधि का विशेष उपयोग क्या है?

(१३) व्यतिरेक विधि का लक्षण लिखकर यथार्थ और [illegible]

दो तथा यह सिद्ध करो कि व्यावहारिक जीवन में इस विधि का अत्यन्त उपयोग है।

(१४) सहगामि विचरण-विधि का मिल के अनुसार लक्षण लिखकर उदाहरण दो। इसको स्वतन्त्र विधि क्यों माना गया है? इसकी सार्थकता प्रकट करो।

(१५) सहगामि-विचरण-विधि का विशेष उपयोग कब किया जाता है? इसके प्रयोग की सीमाएँ बतलाओ।

(१६) सहगामि विचरण-विधि का लक्षण लिखकर इसका व्यतिरेक-विधि से सम्बन्ध स्थापित करो।

(१७) अवशेष-विधि का लक्षण लिखकर यथार्थ और बीजात्मक दोनों प्रकार के उदाहरण दो। यह विधि निगमानुमान रूप क्यों मानी गई है?

(१८) सिद्ध करो कि सब सामान्यानुमानीय विधियाँ स्वभाव से विशेषानुमानीय हैं?

(१९) निषेधात्मक उदाहरण किसे कहते हैं? इसका किस विधि में विशेष उपयोग होता है? उदाहरण देकर समझाओ।

(२) सामान्यानुमानीय विधियों की सामर्थ्यता-पूर्वक व्याख्या करो। अन्य लोगों ने इनकी महत्ता को क्यों नहीं स्वीकार किया?

(२१) क्या अवशेष-विधि को सामान्यानुमानीय माना जा सकता है? यदि हाँ तो क्यों?

(२२) गर्मी से वस्तु पिघलती है' यह निष्कर्ष किस विधि से निकाला गया है? उदाहरण-पूर्वक विधि का उल्लेख करो।

(२३) पाँचों विधियों का आपस में सम्बन्ध स्थापित कर यह सिद्ध करो कि ये सब सामान्यानुमान में अत्यधिक उपयोगी विधियाँ हैं।

(२४) प्रकृति के नियमों के आविष्कार में प्रायोगिक विधियों से कहाँ तक सहायता ली है — इस पर प्रकाश डालो।

अध्याय ७

(१) प्रायोगिक विधियों की कठिनाइयाँ और उनको दूर करने के उपाय

यह हम पहले बतला चुके हैं कि प्रायोगिक विधियों की मुख्य कठिनाइयाँ दो हैं (१) **कारण बहुत्व और (२) कार्य-संमिश्रण**। आगे चलकर हम यह बतलावेंगे कि हम किस प्रकार इन कठिनायों को **सम्भावना के सिद्धान्त** (Theory of probability) **अथवा अवसर-गणना** (Calculation of chances) के द्वारा दूर कर सकते हैं। इस अध्याय में तो हम केवल यही विचार करेंगे कि कार्य-समिश्रण के द्वारा उत्पन्न हुई कठिनाइयों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है।

(२) कार्य-संमिश्रण और प्रायोगिक विधियाँ

पहले यह बतलाया गया है कि कार्य-समिश्रण के दो रूप होते हैं (१) **समानजातीय कार्य-समिश्रण और (२) भिन्नजातीय कार्य-समिश्रण**। समानजातीय कार्य-समिश्रण में प्रत्येक कारण का अलग-अलग कार्य पैदा होता चला जाता है और ये अलग-अलग कार्य एक समुदाय में एकत्रित होते जाते हैं जिसको हम मिश्र-कार्य (Complex effect) कहते हैं। भिन्न जातीय कार्य-समिश्रण में प्रत्येक कारण का अलग-अलग कार्य समाप्त होता चला जाता है और सर्वथा एक नवीन मिश्र-कार्य उत्पन्न होता है। कभी-कभी भिन्न जातीय कार्य-समिश्रण एक नवीन रूप को धारण करता है जिसे हम परिवर्तनों के नाम से पुकारते हैं, इनमें कारण और कार्य का परस्पर परिवर्तन किया जाता है। उदाहरणार्थ हाइड्रोजन और ऑक्सिजन पानी पैदा करते हैं और पुन पानी हाइड्रोजन और ऑक्सिजन पैदा कर देता है। इस प्रकार के भिन्नजातीय कार्य-समिश्रण को

हम प्रयोग से अच्छी तरह समझ सकते हैं और इसीलिये इस प्रकार के कार्यों में प्रायोगिक विधियाँ काम में लाई जाती हैं। किन्तु अन्य प्रकार के मिश्र-कार्यों में विशेष रूप से जो समानजातीय कार्य-संमिश्रण से उत्पन्न होते हैं प्रायोगिक विधियाँ काम में नहीं लाई जा सकती। समानजातीय कार्य संमिश्रण में अनेक कारण होते हैं और कार्य उत्पन्न करने में प्रत्येक कारण का कुछ न कुछ हिस्सा होता है। अतः इस प्रकार कार्य के संमिश्रण में जितने अधिक कारण होंगे और प्रत्येक का जितना कम भाग होगा प्रायोगिक विधियों का प्रयोग उतना ही कठिन होगा। मिल महोदय का मन्तव्य है कि मिश्रकार्य के अनुसन्धान में प्रत्यक्षीकरण की विधि और प्रयोग की विधि दोनों समानरूप से काम में लाई जा सकती हैं।

हम तपेदिक के रोग से मुक्त होने का उदाहरण लेते हैं। यहाँ प्रश्न यह है—क्या कॉड मछली के यकृत[1] का तेल का खाना इस रोग के दूर होने का कारण है? साधारण प्रत्यक्षी-करण का प्रयोग इसमें कार्यकारी सिद्ध नहीं हो सकता। यह स्पष्ट है कि कई भिन्न कारणों को मिलकर काम उत्पन्न करना चाहिये क्योंकि यहाँ कई कारण मिलकर कार्य कर रहे हैं इसलिये प्रत्येक कारण का भाग कार्य में अत्यन्त अल्प है और इसीलिये भाग किसी कारण विशेष का उसकी उपस्थिति या अनुपस्थिति या परिवर्तन में अनुसरण नहीं कर रहा है। इसी हेतु से अन्वयविधि व्यतिरेकविधि और सहगामि विचरणविधि का जब प्रत्यक्षीकरण की विधि के रूप में प्रयोग किया जाता है तब वे विशेष कार्यकारी सिद्ध नहीं होतीं। इसी प्रकार प्रायोगिक विधि भी उपयोग में नहीं लाई जा सकती क्योंकि प्रयोग को काम में लाने के लिये हमें कुछ सावधान होने की आवश्यकता है जिसको करने के लिये हम असमर्थ हैं। उदाहरणार्थ प्रयोग में किसी अज्ञात अवस्था को अलग रखना नहीं है। जब हम किसी बीमार मनुष्य को कॉड मछली का तेल औषधी के रूप में देते हैं उस समय हमें बीमार की हालत का कुछ भी ज्ञान नहीं होता जिसका तपेदिक के रोग पर प्रभाव हो सकता है। अतः व्यतिरेक विधि हमारा विशेष कार्य नहीं कर सकती।

(1) Liver

अतः मिश्र कार्यों के विषय में प्रायोगिक विधियों का इतना ही प्रयोजन है कि ये हमें यह बतला सकती हैं कि प्राय करके अमुक कारण से अमुक कार्य उत्पन्न हो सकता है। इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि इनके द्वारा हम कार्य-कारण-भावको निश्चित कर सकते हैं। मिल महोदय का इन में यह सुझाव है कि ऐसी अवस्थाओं में हमें विशेपानुमानीय विधि से काम लेना चाहिये। अत हमें विशेपानुमानीय विधि का वहां प्रयोग करना चाहिये जहां हम प्रत्यक्षी-करण और प्रयोग का साक्षात् प्रयोग करने में असमर्थ हों।

(३) विशेपानुमानीय विधि

विशेपानुमानीय विधि (Deductive method) के तीन रूप हैं।
(१) साक्षात् विशेपानुमानीय विधि (२) व्यत्ययात्मक विशेपानुमानीय विधि (३) भावात्मक विशेपानुमानीय विधि।

(१) साक्षात् विशेपानुमानीयविधि

साक्षात् विशेपानुमानीय विधि (Direct Deductive method) को **भौतिक विधि** भी कहा जाता है। इसके ३ क्रम हैं (१) साक्षात् सामान्यानुमान द्वारा भिन्न-भिन्न कारणों के नियम निश्चित करना (२) युक्तितर्क (Ratiocination) और (३) समर्थन (Varification)।

प्रथम क्रम में हम कुछ समय के लिये पूर्व सामान्यानुमान द्वारा निकाले हुए निष्कर्षों को स्वीकार कर लेते हैं। सामान्यानुमान हमें प्रायोगिक विधियों की सहायता से कारण और उनके नियमों का ज्ञान कराता है। यह हमारा ज्ञान निर्णयात्मक नही होता, इसी हेतु से हमें इसको परीक्षा के लिये विशेपानुमानीय विधि का प्रयोग करना पडता है। आरम्भ के लिये हम सामान्यानुमान द्वारा प्राप्त किये हुए निर्णयों को स्वीकार कर लेते हैं। जब हमारे सामने एक मिश्र कार्य आता है तब हम प्रथम सामान्यानुमान द्वारा निश्चित कर लेते हैं कि उसके प्रथक्-प्रथक् कारण और नियम क्या हो सकते हैं? जब हमें सामान्यानुमान द्वारा इस प्रकार की व्याख्या नही मिलती तब हम उसके विषय में प्राक् कल्पनाओं (Hypotheses) का सहारा लेते हैं। द्वितीय क्रम में संयुक्त निष्कर्ष का गणना के द्वारा निर्णय करते हैं।

हम प्रयोग से अच्छी तरह समझ सकते हैं और इसीलिये इस प्रकार के कार्यों में प्रायोगिक विधियाँ काम में लाई जाती हैं। किन्तु अन्य प्रकार के मिश्र-कार्यों में विशेष रूप से जो समानजातीय कार्य-संमिश्रण से उत्पन्न होते हैं प्रायोगिक विधियाँ काम में नहीं लाई जा सकती। समानजातीय कार्य समिश्रण में अनेक कारण होते हैं और कार्य उत्पन्न करने में प्रत्येक कारण का कुछ न कुछ हिस्सा होता है। अत इस प्रकार कार्य के संमिश्रण में जितने अधिक कारण होंगे और प्रत्येक का जितना कम भाग होगा प्रायोगिक विधियों का प्रयोग उतना ही कठिन होगा। मिल महोदय का मन्तव्य है कि मिश्रकार्य के अनुसन्धान में प्रत्यक्षीकरण की विधि और प्रयोग की विधि दोनों समानरूप से काम में लाई जा सकती हैं।

हम तपेदिक के रोग से मुक्त होने का उदाहरण लेते हैं। यहाँ प्रश्न यह है—क्या कॉड मछली के यकृत[1] का तैल का खाना इस रोग के दूर होने का कारण है? साधारण प्रत्यक्षी-करण का प्रयोग इसमें कार्यकारी सिद्ध नहीं हो सकता। यह स्पष्ट है कि कई भिन्न कारणों को मिलकर काम उत्पन्न करना चाहिये क्योंकि यहाँ कई कारण मिलकर कार्य कर रहे हैं इसलिये प्रत्येक कारण का भाग कार्य में अत्यन्त अल्प है और इसीलिये कार्य किसी कारण विशेष का उसकी उपस्थिति या अनुपस्थिति या परिवर्तन में अनुसरण नहीं कर रहा है। इसी हेतु से अन्वयविधि व्यतिरेकविधि और सहगामि-विचरणविधि का जब प्रत्यक्षीकरण की विधि के रूप में प्रयोग किया जाता है तब वे विशेष कार्यकारी सिद्ध नहीं होती। इसी प्रकार प्रायोगिक विधि भी उपयोग में नहीं लाई जा सकती क्योंकि प्रयोग को काम में लाने के लिये हमें कुछ सावधान होने की आवश्यकता है जिसके करने के लिये हम असमर्थ हैं। उदाहरणार्थ प्रयोग में किसी अज्ञात अवस्था की आवश्य नहीं है। जब हम किसी बीमार मनुष्य को कॉड मछली का तैल ... रूप में देते हैं उस समय हमें बीमार की हालत का कुछ भी ज्ञान होता जिसका तपेदिक के रोग पर प्रभाव हो सकता है। अतः व्यतिरेक-विधि हमारा विशेष कार्य नहीं कर सकती।

(1) Liver

अत मिश्र कार्यों के विषय में प्रायोगिक विधियों का इतना ही प्रयोजन है कि ये हमें यह बतला सकती हैं कि प्राय करके अमुक कारण से अमुक कार्य उत्पन्न हो सकता है। इससे यह तो सिद्ध नही होता कि इनके द्वारा हम कार्य-कारण-भावको निश्चित कर सकते हैं। मिल महोदय का इस में यह सुझाव है कि ऐसी अवस्थाओं में हमें विशेषानुमानीय विधि से काम लेना चाहिये। अत हमें विशेषानुमानीय विधि का वहाँ प्रयोग करना चाहिये जहाँ हम प्रत्यक्षी-करण और प्रयोग का साक्षात् प्रयोग करने में असमर्थ हों।

(३) विशेषानुमानीय विधि

विशेषानुमानीय विधि (Deductive method) के तीन रूप हैं।

(१) साक्षात् विशेषानुमानीय विधि (२) व्यत्ययात्मक विशेषानुमानीय विधि (३) भावात्मक विशेषानुमानीय विधि।

(१) साक्षात् विशेषानुमानीयविधि

साक्षात् विशेषानुमानीय विधि (Direct Deductive method) को **भौतिक विधि** भी कहा जाता है। इसके ३ क्रम हैं (१) साक्षात् सामान्यानुमान द्वारा भिन्न-भिन्न कारणों के नियम निश्चित करना (२) युक्तितर्क (Ratiocination) और (३) समर्थन (Varification)।

प्रथम क्रम में हम कुछ समय के लिये पूर्व सामान्यानुमान द्वारा निकाले हुए निष्कर्षों को स्वीकार कर लेते हैं। सामान्यानुमान हमें प्रायोगिक विधियों की सहायता से कारण और उनके नियमों का ज्ञान कराता है। यह हमारा ज्ञान निर्णयात्मक नही होता, इसी हेतु से हमें इसको परीक्षा के लिये विशेषानुमानीय विधि का प्रयोग करना पडता है। आरम्भ के लिये हम सामान्यानुमान द्वारा प्राप्त किये हुए निर्णयों को स्वीकार कर लेते हैं। जब हमारे सामने एक मिश्र कार्य आता है तब हम प्रथम सामान्यानुमान द्वारा निश्चित कर लेते हैं कि उसके प्रथक्-प्रथक् कारण और नियम क्या हो सकते हैं? जब हमें सामान्यानुमान द्वारा इस प्रकार की व्याख्या नही मिलती तब हम उसके विषय में प्राक् कल्पनाओं (Hypotheses) का सहारा लेते हैं। द्वितीय क्रम में सयुक्त निष्कर्ष का गणना के द्वारा निर्णय करते हैं।

इसको हम युक्ति-तर्क (Ratiocination) कहते हैं। इसके द्वारा हम यह जान लेते हैं कि भिन्न-भिन्न कारणों के नियमों द्वारा गणना करके उनके सम्मिलित प्रयत्न से कैसे निष्कर्ष उत्पन्न हो सकते हैं। प्रथम क्रम में हम अन्दाजा लगा लेते हैं कि उनके संयुक्त निष्कर्ष क्या होने चाहिये। इस क्रम को विशेषानुमानीय विधि में विशेषानुमान कहा जाता है।

तृतीय क्रम में समर्थन (Verification) से काम लेना पड़ता है। अर्थात् परिगणित निष्कर्षों का समर्थन करने के लिये हम अनुभव से प्राप्त वस्तुओं की ओर दृष्टि डालते हैं और देखते हैं कि वे ठीक उतरती हैं या नहीं। यदि हम द्वितीय क्रम पर ही ठहर जाते हैं तो हम देखेंगे कि विशेषानुमानीय गणना कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। हमारे परिगणित निष्कर्ष का पदार्थों के साथ सामाञ्जस्य अवश्य होना चाहिये। यदि इसकी संगति नहीं बैठती है तो हमें समझना चाहिये कि प्रथम क्रम में कुछ न कुछ दोष अवश्य है—अर्थात् हमने सब कारणों पर विचार नहीं किया है और नियमों को ही कार्य में लिया है या हमने उनके सम्मिलित कार्य की गलत गणना करने में गलती की है। अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस विधि में समर्थन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह विशेषानुमानीय विधि में सामान्यानुमान का क्रम है।

यहाँ कारवेथ रीड के मन्तव्य का उल्लेख करना अनुचित न होगा—किसी मिश्र मानसिक वस्तु के लेने पर एक परीक्षक विचार करता है—(१) सामान्यानुमान से निश्चित किये हुए कौन से नियमों का इसमें प्रयोग किया गया है। (यदि परिज्ञात नियम कार्यकारी सिद्ध नहीं होते तो उनकी जगह प्राक्-कल्पनायें काम में लाई जा सकती हैं) (२) पश्चात् वह कार्य की गणना करता है जो पहले कार्य की तरह इन अवस्थाओं में इन नियमों से फलित होता है। (३) अनन्तर वास्तविक पदार्थ के साथ उसकी तुलना कर अपने निष्कर्ष की जाँच करता है।

साक्षात् विशेषानुमानीय विधि का उदाहरण निम्नलिखित है—मान लो हम आकाश में फेंकी हुई किसी वस्तु के मार्ग के नियम का निश्चय करना चाहते हैं। प्रथम हम कारणों का पता लगाते हैं। सामान्यानुमान

व्यत्यय-विशेषानुमानीय-विधि को ऐतिहासिक विधि कह कर पुकारते हैं क्योंकि इसका विशेष उपयोग इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र आदि में होता है। यह हम जान चुके हैं कि साक्षात् विशेषानुमानीय-विधि को भौतिक विधि बतलाया गया है क्योंकि इसका विशेष उपयोग भौतिक विज्ञानों में होता है। यह विचार करना गलत होगा कि साक्षात्-विधि और व्यत्यय-विधि क्रमश भौतिक विज्ञानों और ऐतिहासिक विज्ञानों में ही प्रयोग की जाती हैं। यथार्थता यह है कि कारण जो मिश्र कार्य के स्वरूप को निश्चित करते हैं वे इतना अधिक सख्या में होते हैं या इतने अनिश्चित होते हैं कि उनके सम्मिलित कार्य की परिगणना पहले से कदापि नही हो सकती जिससे ऐतिहासिक-विधि कुछ लाभदायक सिद्ध हो सके।

(३) भावात्मक विशेषानुमानीय विधि

भावात्मक विशेषानुमानीय विधि (The Abstract Deductive method) शुद्ध रूप से विशेषानुमानीय विधि है। इसको रेखागणितीय विधि भी कहते हैं। यह हम देख चुके हैं कि साक्षात्-विशेषानुमानीय विधि और व्यत्यय-विशेषानुमानीय विधि दोनों विशेषानुमान और सामान्यानुमान का प्रयोग करती हैं यद्यपि भिन्न क्रम में। इसी कारण से जेवन्स महोदय ने इनका नाम **सयुक्त विधियों या मिश्र विधियाँ** रक्खा है। कोई कोई इनको **भावात्मक विशेषानुमानीय विधि या रेखागणितीय विधि** से प्रथक् बोध कराने के लिये **द्रव्यात्मक विशेषानुमानीय विधियाँ** कहते हैं। भावात्मक विशेषानुमानीय विधि या रेखागणितीय विधि सामान्यानुमान का सर्वथा उपयोग नही करती अपितु विशेषानुमान का उपयोग करती है। इसमें न तो प्रत्यक्षीकरण का और न अनुभव के आधार पर समर्थन का प्रश्न उठता है क्योंकि यह प्रधान रूप से भाव से सम्बन्ध रखती है न कि द्रव्यात्मक पदार्थो से। रेखागणित, भावात्मक विशेषानुमानीय विधि को प्रयोग में लाता है। रेखागणित ऐसे भावों से सम्बन्ध रखता है जैसे, विन्दु, रेखा, इत्यादि जो भौतिक अणुओं से और भौतिक रेखाओं से सर्वथा भिन्न हैं क्योंकि यह भावात्मक विचारों को ही प्रयोग में लाती है, इसलिये इसके विरोधी अश नही होते और यदि शुद्ध रीति से विशेषानुमान निकाला

है कि उसके पूर्व कई प्रकार की मान्यताएँ विद्यमान थीं—जैसे सीप इत्यादि से बरसात विदेशी थी और अन्याय करती थी इत्यादि। फिर हम यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि जहाँ ऐसे कारण विद्यमान होते हैं वहाँ यह स्वाभाविक है कि भ्रान्ति हो। इस प्रकार जो कुछ देखा गया है उसको हम विशेषानुमान से उच्चतर नियमों के आधार पर सिद्ध करते हैं। अतः उच्चतर नियमों के आधार पर विशेषानुमान द्वारा हम पहले देखे हुए उदाहरणों के स्वरूप का निर्धारण करते हैं।

यहाँ व्यत्यय-विशेषानुमानीय विधि का साक्षात् विशेषानुमान विधि के साथ तुलना करना अधिक उपयुक्त होगा। दोनों विधियाँ भिन्न-भिन्न कार्य के कारण को निश्चित करने के लिये प्रयोग में लाई जाती हैं और दोनों में सामान्यानुमान तथा विशेषानुमान का प्रयोग किया जाता है। साक्षात् विशेषानुमानीय विधि में हम पहले कुछ कारणों को मान लेते हैं पश्चात् उनके सम्मिलित कार्यों की परिगणना करते हैं और अन्त में अनुभव को प्रमाण मानकर उसका समर्थन करते हैं। प्रथम दो क्रम कारणों की कल्पना से तथा विशेषानुमान द्वारा उनके निष्कर्षों की परिगणना से सम्बन्ध रखते हैं। अन्तिम क्रम सामान्यानुमान का है जिसमें प्रत्यक्षीकरण या प्रयोग पहले विशेषानुमान का समर्थन करता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि विशेषानुमान पहले आता है और सामान्यानुमान बाद में आता है। इसी हेतु से इसको साक्षात् विशेषानुमानीय विधि कहा जाता है। व्यत्यय-विधि में सामान्यानुमान का पहले प्रयोग किया जाता है क्योंकि हम प्रथम पदार्थों के आकारों का अवलोकन करते हैं और तब उच्चतर सिद्धान्तों से विशेषानुमान द्वारा निष्कर्ष निकालकर सिद्ध करना चाहते हैं कि यथार्थ उनसे निकलता है। साक्षात् विशेषानुमान-विधि में सामान्यानुमान पहले के विशेषानुमान का समर्थन करता है किन्तु व्यत्यय-विशेषानुमानीय-विधि में उच्चतर सिद्धान्तों से निकाले हुए सामान्यानुमान का समर्थन किया जाता है। साक्षात् विधि में विशेषानुमान प्रधानरूप से कार्य करता है और सामान्यानुमान गौणरूप से। इसके विपरीत व्यत्यय-विधि में सामान्यानुमान प्रधानता से काम करता है और विशेषानुमान गौण रूप से। तार्किक लोग

व्यत्यय-विशेपानुमानीय-विधि को ऐतिहासिक विधि कह कर पुकारते हैं क्योंकि इसका विशेष उपयोग इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र आदि में होता है। यह हम जान चुके हैं कि साक्षात् विशेपानुमानीय-विधि को भौतिक विधि बतलाया गया है क्योंकि इसका विशेष उपयोग भौतिक विज्ञानों में होता है। यह विचार करना ग़लत होगा कि साक्षात्-विधि और व्यत्यय-विधि क्रमश भौतिक विज्ञानों और ऐतिहासिक विज्ञानों में ही प्रयोग की जाती हैं। यथार्थता यह है कि कारण जो मिश्र कार्य के स्वरूप को निश्चित करते हैं वे इतनी अधिक सख्या में होते हैं या इतने अनिश्चित होते हैं कि उनके सम्मिलित कार्य की परिगणना पहले से कदापि नही हो सकती जिससे ऐतिहासिक-विधि कुछ लाभदायक सिद्ध हो सके।

(३) भावात्मक विशेपानुमानीय विधि

भावात्मक विशेपानुमानीय विधि (The Abstract Deductive method) शुद्ध रूप से विशेपानुमानीय विधि है। इसको रेखागणितीय विधि भी कहते हैं। यह हम देख चुके हैं कि साक्षात्-विशेपानुमानीय विधि और व्यत्यय-विशेपानुमानीय विधि दोनों विशेपानुमान और सामान्यानुमान का प्रयोग करती हैं यद्यपि भिन्न क्रम में। इसी कारण से जेवन्स महोदय ने इनका नाम **सयुक्त विधियाँ या मिश्र विधियाँ** रक्खा है। कोई कोई इनको **भावात्मक विशेपानुमानीय विधि या रेखागणितीय विधि** से प्रथक् बोध कराने के लिये **द्रव्यात्मक विशेपानुमानीय विधियाँ** कहते हैं। भावात्मक विशेपानुमानीय विधि या रेखागणितीय विधि सामान्यानुमान का सर्वथा उपयोग नही करती अपितु विशेषानुमान का उपयोग करती है। इसमें न तो प्रत्यक्षीकरण का और न अनुभव के आधार पर समर्थन का प्रश्न उठता है क्योंकि यह प्रधान रूप से भाव से सम्बन्ध रखती है न कि द्रव्यात्मक पदार्थों से। रेखागणित, भावात्मक विशेपानुमानीय विधि को प्रयोग में लाता है। रेखागणित ऐसे भावों से सम्बन्ध रखता है जैसे, बिन्दु, रेखा, इत्यादि जो भौतिक अणुओं से और भौतिक रेखाओं से सर्वथा भिन्न हैं क्योंकि यह भावात्मक विचारों को ही प्रयोग में लाती है, इसलिये इसके विरोधी अश नही होते और यदि शुद्ध रीति से विशेषानुमान निकाला

जाय तो इसमें गलती के लिये कोई स्थान नहीं होता जैसे त्रिभुज के गुणों से निष्कर्ष निकाला जाता है कि किसी त्रिभुज के अन्तरस्थ तीन कोण मिलकर दो समकोण के बराबर होते हैं।

(४) विशेषानुमानीय विधि का औचित्य

उपर्युक्त विवेचन से यह बिलकुल स्पष्ट है कि सामान्यानुमान के तर्क शास्त्र में इस विधि के विवेचन के लिये कहाँ तक औचित्य है। यह विधि सदा विशेषानुमानीय विधि है। इसके औचित्य के लिये केवल एक ही आधार है कि कभी-कभी विचारक रेखागणितीय विधि का भी इसके क्षेत्र के बाहर प्रयोग कर डालते हैं जैसे वे इसका राजनीति अर्थशास्त्र और धर्म-शास्त्र में प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ एक सामान्यीकरण—सब मनुष्य विवेकशील हैं" से यह निष्कर्ष विशेषानुमान द्वारा निकाला जाता है कि वह अपनी इच्छानुसार चिन्तन करने के लिये स्वतंत्र है उसे अन्य बातों की ओर जो उसकी इसमें या अन्य बातों में स्वतंत्रता को रोकती हैं सर्वथा ध्यान देने की आवश्यकता नहीं।

अभ्यास प्रश्न

(१) प्रायोगिक विधियों की क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं? वे कैसे दूर हो सकती हैं?

(२) कार्य-संमिश्रण के सिद्धान्त में प्रायोगिक-विधियों का क्या उपयोग है? उदाहरण देकर स्पष्ट व्याख्या करो।

(३) विशेषानुमानीय विधि का स्वरूप लिखकर यह बतलाओ कि इसका कहाँ-कहाँ उपयोग होता है?

(४) साक्षात् विशेषानुमानीय विधि का किस प्रकार उपयोग किया जाता है, स्पष्ट लिखो।

(५) व्यतिरेक-विशेषानुमानीय विधि का स्वरूप लिखकर उदाहरण दो।

(६) मात्रात्मक विशेषानुमानीय विधि का प्रयोग विशेष रूप से किस शास्त्र में होता है? उदाहरण से उत्तर को स्पष्ट करो।

(७) सामान्यानुमान के प्रकरण में विशेषानुमानीय विधि का प्रयोग कहाँ तक उचित है? इस पर प्रकाश डालो।

अध्याम ८

(१) संयोग[1] और इसका प्रथक्-करण

गत अध्याय में हम यह देख आए हैं कि कार्य-समिश्रण से उत्पन्न हुई कठिनाइयों को किस प्रकार विशेषानुभानीय-विधि के प्रयोग द्वारा दूर किया जा सकता है। इस अध्याय में इस बात का विवेचन करेंगे कि कारण-बहुत्व के सिद्धान्त से उत्पन्न हुई कठिनाइयों को किस प्रकार सयोग और प्रथक्-करण के सिद्धान्तों के द्वारा कुछ हद तक दूर किया जा सकता है। कारण-बहुत्व के सिद्धान्त के अनुसार कार्य 'स' क, ख, ग इनमें से किसी एक कारण से उत्पन्न हो सकता है। जहाँ तक अन्वय-विधिका सम्बन्ध है वह इसमें सर्वथा कार्यकारी सिद्ध नही होती। कुछ मामलों में जहाँ हम निर्णयात्मक निष्कर्षो को प्राप्त नही कर सकते वहाँ हमें सम्भावनात्मक निकर्षों से ही सतोष करना पडता है। सयोग का सिद्धान्त कुछ नियम बनाता है जिनका प्रयोग कर के हम निर्णय करते हैं कि 'क' की स के कारण होने की सम्भावना, ख और ग के कारण होने से, अधिक या कम है। यदि हमें यह पता लगता है कि क और स प्राय एक साथ रहते हैं तो हम निर्णय करते हैं कि यह मामला आकस्मिक या सम्भावनात्मक नही है किन्तु इन दोनों में कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है। अथवा दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिये कि उनमें शायद कुछ कारणता का सम्बन्ध है और यह कारणता सम्बन्ध की सम्भावना मात्र नही है। अब हम जहाँ सयोग और सम्भावना के सिद्धान्त तथा उनके कारणों का विचार करेंगे।

(२) संयोग

जब हम कहते हैं कि यह कार्य सयोग वश हुआ है तब हमें उसमें

---

(1) Chance

कोई कार्य कारण सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि यदि कोई कार्य संयोगवश हुआ है तो उसका कोई कारण है ही नहीं। विश्व में जो कुछ होता है वह सकारण होता है किन्तु कुछ काम ऐसे हैं जो एक खास समय या क्षेत्र में पैदा होते हैं जिनके अन्दर आपस में प्रत्यक्षरूप से कोई कारण सम्बन्ध दृष्टि में नहीं आता। उनका पैदा होना या एक साथ होना संयोग से पैदा होना कहलाता है। जैसे एक आदमी कहीं जाने के लिये मोटर के अड्डे पर प्रतीक्षा कर रहा है इतने में वहीं एक सड़क के किनारे पर खड़े हुए आम को चार बजे एक पुराने मित्र से भेंट हो गई। इस प्रकार की भेंट को हम संयोग से मिलना कहते हैं। यह संयोग वश मिलना है क्योंकि इस प्रकार की भेंट के लिये पहले से कोई प्रबन्ध नहीं था। इसी प्रकार जो घटनाएँ जिनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है एक साथ पैदा होती हुई सी प्रतीत होती हैं तो हम उन्हें संयोग से पैदा हुई कहते हैं क्योंकि हम उनके बीच किसी प्रकार का कार्य-कारण-सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते चाहे हम कितना ही प्रयत्न क्यों न करें। इसी प्रकार कुछ ऐसी भी घटनाएँ हैं जिनका पैदा होना इतना अनियमित या अनिश्चित है कि हम उनके नियमों का पता ही नहीं लगा सकते जिनके अनुसार उनके कारण इकट्ठे हो कर उनको पैदा करते हैं। मान लो चौपड़ के खेल में हम २ बार गोटियाँ फेंकते हैं और हम देखते हैं कि तीन और पाँच चेहरे वाली गोटियों में से प्रत्येक चार बार ऊपर को गिरी है और दो और चार चेहरेवाली गोटियों में से प्रत्येक तीन बार गिरी है और एक और छह चेहरे वाली गोटियों में से प्रत्येक तीन बार गिरी है। यदि ९ बार फिर गोटियाँ फेंकी जाँय तो परिणाम वही नहीं होगा। इस प्रकार के पदार्थों या घटनाओं को हम संयोग से उत्पन्न मानते हैं। इसी प्रकार यदि हम एक रुपये को फेंकते हैं और देखते हैं कि सिर उसका ऊपर को आता है और पूँछ नहीं आती तो हम कहते हैं कि ऐसा संयोगवश हुआ है।

जब हम यह कहते हैं कि दो घटनाएँ संयोगवश हुई हैं जैसे एक पुराने मित्र का मोटर के अड्डे पर मिलना या एक रुपये के फेंकने पर सीधा गिरना तो हम यह कभी नहीं कहते कि इनमें जो परिणाम उत्पन्न हुआ

है वह कारणों से मिलकर हुआ है। हमारा केवल इतना ही कहना होता है कि यह कैसे हुआ, हम कह नही सकते। हम कुछ नही कह सकते, मित्र की मोटर के अड्डे पर क्यों मुलाकात हुई, न हम कह सकते हैं रुपये के फेंकने पर वह सिर की ओर ही क्यों गिरा ? इसके विपरीत हम सोचते हैं कि यदि हम सब बातों को समझ लेते और सब कारणों को जान जाते तो हम भलीभाँति व्याख्यान कर देते कि अमुक खास घटना क्यों हुई अथवा क्यों दो-घटनायें जिनको हम कार्यकारण भाव से सम्बन्धित नही पाते, एक साथ पैदा होती हैं ? इस निष्कर्ष पर हम इसलिये पहुँचते हैं कि ससार में कोई कार्य विना कारण के उत्पन्न नही होता और दिये हुए उदाहरण में हम कार्यकारणभाव को निश्चित करने में सर्वथा असमर्थ हैं। इसका मुख्य कारण हमारी बुद्धि की निर्वलता है। यदि कोई सर्वज्ञ होता तो वह सब कुछ जान लेता और उसके लिये वस्तु सयोगवश पैदा होती हुई नही दीख पडती। हम समझते हैं कि ऐसे पूर्ण ज्ञान का होना सम्भव नही है क्योंकि हमारी शक्तियाँ सीमित हैं और विश्व के पदार्थ अत्यन्त जटिल हैं। अत यही कहा जा सकता है कि हमें 'सयोग', या नियम का अज्ञान है।

यद्यपि एक सर्वज्ञ के लिये सयोग नाम की वस्तु नही है, किन्तु जब हम समझते है कि एक घटना या पदार्थों का एक साथ होना सयोगवश होता है तब उस समय हम स्वीकार करते हैं कि हमारी बुद्धि का क्षेत्र सीमित है। लेकिन फिर भी हम यह स्वीकार नही कर सकते कि सयोग केवल आत्मीय कल्पना ही है। यह सत्य है कि हम कारणों को नही जानते किन्तु यह अज्ञान वैषयिक पदार्थ-जन्य है और इसका कारण विश्व-तत्व का विशाल और जटिल होना है। इसी हेतु से मिल महोदय ने सयोग का लक्षण लिखते हुए यह कहा है कि यह एक घटनाओं का ऐसा मेल है जिसकी अनुरूपता के वारे में हम कोई अनुमान नही लगा सकते। हम किसी घटना को सयोगजन्य तब कहते हैं जब हम प्राकृतिक पदार्थों की जटिलता के कारण उसके साथ किसी का कारणता-सम्बन्ध स्थापित करने में असमर्थ हो जाते हैं।

(३) संयोग का प्रथक्करण

संयोग का प्रथक्करण[1] एक प्रकार की विधि है जिसके द्वारा हम सिद्ध करते हैं कि दो घटनाओं के मध्य जो संयोग है वह आकस्मिक नहीं है किन्तु सकारण है। इस सिद्धान्त का आधार यह है कि यदि दो घटनाएँ केवल संयोग से सम्बन्धित हैं तो उनका सम्बन्ध बारम्बार नहीं होगा। यदि वे दोनों बारम्बार एक साथ पैदा होती हैं तो सम्भव है उसमें कारणता-सम्बन्ध विद्यमान हो। यदि वे बारम्बार एक साथ पैदा नहीं होती हैं तो सम्भव है उनमें कोई कारणता का सम्बन्ध नहीं हो।

इसका प्रतिपादन वेन ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है :—

'घटनाओं के विविक्ष्य से बार बार होने पर विचार करो और यह देखो कि इससे दोनों का बार-बार होना कितनी बार होता है यह विचार करते हुए कि उन दोनों में न तो सम्बन्ध है और न विरोध है। यदि दोनों अधिक बार एक साथ पैदा होती हैं तो उनमें सम्बन्ध है यदि कम बार पैदा होती हैं तो विरोध है।"

विविक्ष्य से बार-बार होने से वेन का अर्थ यह है कि दोनों परस्पर सम्बन्धित घटनाएँ, कितनी बार स्वाभाविक रूप से पैदा होती हैं। इस प्रकार, मानलो हम सोच रहे हैं कि लाल आकाश और वर्षा में कोई सम्बन्ध है या नहीं तो अर्थ प्रथम हमें दोनों घटनाओं के बार-बार होने को निर्धारित करना चाहिये। मान लो तीन दिन में रक्ताम्बर एक बार होता है और वर्षा सात दिन में एक बार ही होती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि दोनों एक साथ एक बार पैदा होते हैं। यदि दोनों घटनाओं को संयोग वश माना जाय तो दोनों का मिलना हमारी आशा के अनुसार एक बार होता है। यदि हम देखते हैं कि वास्तव में वे कई बार एक साथ पैदा होती हैं तब हम अनुमान लगाते हैं कि उन दोनों में अवश्य सम्बन्ध है। यदि इसके विपरीत हम देखते हैं कि वे कई बार एक साथ नहीं पैदा होती हैं तो हमें मानना पड़ता है कि उनमें आपस में विरोध है। इसी प्रकार मान लो एक चौसर के खेल में छह संख्या वाली गोटी कई बार गिरती

(1) Elimination

है। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है—क्या छह सख्या वाली गोटी का बार-बार गिरना किसी कारणता के सम्बन्ध से होता है ? हम जानते हैं कि यदि गोटी साधारण है तो इसको छह बार में एक बार सीधा गिरना चाहिये; यदि दिए हुए मामले में यह पाँच बार सीधी गिरती है तो हम निष्कर्ष निकालते हैं कि इसके फेंकने में कहीं न कही कुछ गड़बड़ है।

यहाँ अब एक और कठिनाई उपस्थित होती है। यह तब होती है जब फेंकने की सख्या अनिश्चित हो और हम प्रत्येक गोटी के चेहरों को छह दफा में एक बार ऊपर पड़ता हुआ देखें। एक सामान्य गोटी के गेरने में पहले छह फेंकावों में चार दफा उपर को चेहरे का आना कोई असम्भव कार्य नही है। यद्यपि यह अच्छी तरह औसत से अधिक मालूम होता है किन्तु इस अवस्था से हम यह अनुमान नही कर सकते कि हमारी फेंकने की डब्बी गोटियों से भरी हुई है। अधिक से अधिक हम यही कह सकते हैं कि सम्भव है यह गोटियों से भरी हुई हो। मान लो हम १००० बार फेंकें और उसी प्रकार की अधिकता देखने में आवे तो इस बात की सम्भावना कि यह गोटियों से भरी हुई है, बढ जाती है। सख्या कितनी ही औसत से अधिक क्यों न हो, यह हमेशा अधिक या कम का प्रश्न है। यदि सख्या केवल अनिश्चित हो तो क्या हम निश्चय की आशा कर सकते हैं ? क्योंकि अनन्त सख्या असम्भव है, अतः यह कहना पड़ेगा कि सयोग के प्रथक् करण का प्रश्न सम्भावना के प्रश्न से बँधा हुआ रहता है।

(४) सम्भावना

सम्भावना[1] शब्द का अर्थ स्पष्ट नही हैं। इस शब्द के साधारण अर्थ से वैज्ञानिक अर्थ सर्वथा भिन्न है। साधारण रीति से जब हम यह कहते हैं कि अमुक कार्य या घटना की अधिक सम्भावना है तो इसका अर्थ यह होता है कि अमुक कार्य या घटना की न होने की अपेक्षा होने की अधिक सम्भावना है। एक कार्य या घटना जो कदाचित् उत्पन्न

(1) Probability

होती है उसे साधारण बोलचाल में सम्भावनात्मक नहीं कहते हैं किन्तु शक्य[1] कहते हैं। अतः साधारण जीवन में हम सम्भावना और शक्यता में भेद दिखलाते हैं। किसी वस्तु को हम शक्य तब कहते हैं जब उसमें हम कोई आत्यन्तिक विरोध नहीं पाते। इस अर्थ में एक सुवर्ण-गिरि शक्य है किन्तु साधारण बोलचाल की भाषा में यह सम्भव नहीं है। वैज्ञानिक रूप से हम एक कार्य को सम्भावनात्मक कहते हैं यदि वह एक ओर असम्भव न हो और दूसरी ओर निश्चित न हो। यदि वस्तु आत्यन्तिक विरोध से परिपूर्ण हो तो हम उसे सर्वथा अशक्य कहते हैं, तथा कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिन्हें हम निश्चित कहते हैं। जैसे जब दो घटनाओं में कारणता सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है तब हम उनको निश्चित कहते हैं। अतः यह कहना उपयुक्त है कि सम्भावना एक मात्राओं या अंशों (Degrees) का मामला है जो असम्भवता से कुछ अधिक है किन्तु निश्चयता से कुछ कम है। अतः साधारण भाषा में हम जिसे शक्य कहते हैं वैज्ञानिक भाषा में सम्भव भी कहलाती है।

कुछ विद्वानों ने सम्भावना को भिन्न (Fraction) के रूप में भी प्रकट किया है। मान लो १ निश्चय के लिए रक्खा गया है और असम्भव के लिये रक्खा गया है तो सम्भावना एक भिन्न होगी और वह [illegible] या [illegible] हो सकती है। इसमें हर[2] एक घटना के होने के बारों को बतलाता है और अंश[3] उसके दूसरी घटना के साथ होने के बारों को बतलाता है। जीवन के खेल में छह को ऊपर गिरने की सम्भावना हर के लिये फेंकने की संख्या रखकर प्रकट किया गया है और बारों की संख्या के अनुसार अंश के लिये छह बार फेंका गया है। यह हम देख चुके हैं कि यदि कई बार फेंकने का प्रयत्न किया जाय तो छह की ऊपर गिरने की सम्भावना १/६ होगी अर्थात् इसके गिरने की सम्भावना छह में एक बार है।

कुछ गणितज्ञ तार्किक लोग सम्भावना के सिद्धान्त को अनुपात द्वारा प्रकट करते हैं। उनका कहना है कि यदि छह के ऊपर गिरने

---

(1) Possible, (2) Denominator, (3) Numerator

की भिन्न की सम्भावना ⅙ है तो जिन मामलों में यह होता है उनका अनुपात १ : ५ होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि इसके होने के संयोग १ : ५ हैं अथवा न होने के संयोग ५ : १ हैं।

उपर्युक्त विवरण से हम यह स्पष्ट समझ गये होंगे कि किस प्रकार के उदाहरणों में सम्भावना का प्रश्न उठता है। ऐसे उदाहरणों में जिनके होने की संख्या सीमित है उनमें घटना कई बार होती है, तथापि हम निश्चय पूर्वक नहीं जान सकते कि अमुक उदाहरण में यह घटना होगी या नहीं। पश्चात् हम इसकी सम्भावना की परिगणना करना आरम्भ करते हैं। हम विश्वास करते हैं कि कुछ नियम ऐसे हैं जो घटनाओं पर शासन करते हैं इसलिये उनको अवश्य होना चाहिये, किन्तु उनके कारण और नियमों का हमारा ज्ञान अपूर्ण होता है। यदि हमारा ज्ञान पूर्ण होता तो हम घटना के निश्चय पूर्वक होने की सम्भावना कर सकते थे। चूँकि हमारा ज्ञान अपूर्ण होता है, अत हम इसकी सम्भावना की कूत लगाते हैं।

(५) सम्भावना के आधार

सम्भावना के आधार के विषय में तार्किक लोग हमेशा से विचार-विभेद रखते आये हैं। इनमें जेवन्स (Jevons) आदि महानुभावों का यह विचार है कि सम्भावना के आधार आत्मीय (Subjective) होते हैं। सम्भावना बहुत कुछ हमारे इस विश्वास पर अवलम्बित है कि अमुक घटना उत्पन्न होती है या इस प्रकार होती है। अन्य तार्किकों के अनुसार यह केवल वैषयिक (Objective) है और यह अनुभव पर आधारित है। इस विषय में कारवेथ रीड ने अपने समालोचनात्मक विचार, कि सम्भावना केवल आत्मीय है, इस प्रकार निबद्ध किये हैं —

(क) प्रथम, विश्वास का हम संतोष पूर्वक माप नहीं कर सकते। यह कोई नहीं कह सकता कि विश्वास, आत्मा की एक अवस्था या वृत्ति की भाँति, एक भिन्न के रूप में प्रकट किया जा सकता है। उदाहरणार्थ यदि एक पोस्ट आफिस के थैले में बहुत से पत्र भर दिये जाँय और हमें केवल यह ज्ञान हो कि इसमें एक पत्र रामू के नाम का है। हम पत्रों को एक-एक करके निकालते हैं और हर बार अपने विश्वास का मूल्याङ्कन

करते जाते हैं कि अब की राम् का पत्र निकलेगा। अब सोचिये—क्या हमारा विश्वास राम् के पत्र को दूसरी बार निकालने में बढ़ता जाता है ज्योंही कि पत्रों की संख्या घटती जाती है? हमारे लिये ऐसा निश्चित रूप से कह देना सम्भव नहीं है।

(ख) द्वितीय, हम देखते हैं कि विश्वास की वास्तविक वस्तुओं के साथ अनुरूपता दृष्टि गोचर नहीं होती। मनोविज्ञान की दृष्टि से विश्वास एक चित्त-वृत्ति है जिसमें आशा भय स्नेह, लोभ आग्रह आदि बातें भरी रहती हैं और वह केवल अनुभव पर अवलम्बित नहीं रहता। दो मनुष्यों का अनुभव एक समान होने पर भी उनमें से एक कह सकता है कि मैंने शाम के समय भूत देखा है और इसके विपरीत दूसरा व्यक्ति जो अन्ध विश्वासी नहीं है कह सकता है कि उसने केवल चांद की ज्योति के अन्दर अस्पष्ट प्रकाशित एक वस्तु मात्र को ही देखा है। इससे यह सिद्ध है कि यदि यह केवल विश्वास का ही कार्य है तो हम इसकी सम्भावना का कोई अन्दाजा नहीं लगा सकते।

(ग) तृतीय यदि सम्भावना का संबन्ध सामान्यानुमान से बतलाया जाय तो वह अवश्य ही अनुभव पर आधारित समझी जायगी। क्योंकि सामान्यानुमान की तमाम सामग्री अनुभव से ही ली जाती है। सामान्यानुमान का आधार विश्वास नहीं है किन्तु इसका आधार वह विश्वास हो सकता है जो वस्तुओं से सामञ्जस्यता रखता हो। अतः यह विचार कि सम्भावना केवल आत्मीय विषय है गलत है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस विचार पर पहुँचते हैं कि सम्भावना का सिद्धान्त जिसका हमने सामान्यानुमान में विचार किया है उसका केवल आत्मीय[1] पक्ष नहीं है किन्तु विषय पक्ष[2] भी है। आत्मीय दृष्टि से तो यह कहना पड़ेगा कि यह आत्मीय या मानसिक परिणति है किन्तु विषय की दृष्टि से तो यह अनुभव पर अवलम्बित है। यथार्थ में यही कहना उचित है कि सम्भावना आत्मीय और वैषयिक दोनों है। इसलिये जब

(1) Subjective. (2) Objective. (3) Side.

कभी हम कहते हैं कि यह घटना सम्भव है तो हमारा अभिप्राय यही होता है कि इसके होने में कुछ न कुछ साक्षी अवश्य है और कुछ न कुछ नही भी है। और जब हम यह देखते हैं कि इसके होने के सयोग, न होने की अपेक्षा, अधिक है तब हम कहते हैं कि हमारा विश्वास है कि ऐसा होगा। इस प्रकार हमने देखा कि इसमें आत्मीय और वैषयिक दोनों तत्व विद्यमान हैं।

(६) सम्भावना और सामान्यानुमान

साधारण रूप से तार्किकों का यह विचार है कि सम्भावना का सिद्धान्त सामान्यानुमान पर अवलम्बित है किन्तु इसके विपरीत जेवन्स महोदय का मत है कि सामान्यानुमान सम्भावना पर अवलबित है क्योंकि सामान्यानुमान द्वारा निकाले हुए निष्कर्ष सम्भावनात्मक होते हैं, सर्वथा निश्चयात्मक नही होते।

जेवन्स का कहना है कि प्रकृति इतनी विशाल है और प्राकृतिक पदार्थों का रूप इतना जटिल है कि हम यह निश्चय रूप से कभी नही कह सकते कि हमने जो कारणता का सम्बन्ध स्थापित किया है वह अवश्य ही सत्य होगा। किन्तु यह पहले बतलाया गया है कि सामान्यानुमान प्रकृति की एकरूपता पर अवलम्बित है। अत इससे निकाले हुए निष्कर्ष सत्य हो सकते हैं यदि प्रकृति वास्तव में एक रूप हो और सर्वदा के लिए उसी प्रकार रहे। जैसा कि उनका कहना है "सामान्यानुमान् निश्चयात्मक हो सकता है यदि हमारा ज्ञान, उन शक्तियों का, पूर्ण हो जो कि विश्व में कार्य कर रही हैं और हमें उसी समय यह भी निश्चय हो जाय कि जिस शक्ति ने विश्व को पैदा किया है वही शक्ति इसको इसी प्रकार चलाती रहेगी और उसमें किसी प्रकार का मनमानी परिवर्तन न होने देगा।' किन्तु हमें ऐसे कारणों की सत्ता की भी सम्भावना है जिनका हमें ज्ञान नही है और ऐसा समय कभी भी आ सकता है कि कोई आशातीत घटना घट जावे, इसलिये कहना होगा कि सामान्यानुमान द्वारा प्राप्त किये हुए निष्कर्ष केवल सम्भावनात्मक होते हैं और सामान्यानुमान का आधार सम्भावना है।

किन्तु इस पर यदि समालोचनात्मक दृष्टि से विचार किया तो प्रतीत

होगा कि यह वेवल का विचार केवल निश्चय (Certainty) के सम्पूर्ण न होने के कारण प्रतीत होता है। यह बहुत हद तक ठीक है कि प्राकृतिक पदार्थों की जटिलता के कारण हम कारणता के सम्बन्ध को ठीक रूप से नहीं समझ सकते। किन्तु यह कहना कि हम उसे किसी प्रकार समझ ही नहीं सकते अतिशयोक्ति पूर्ण है। सैद्धान्तिक रूप से हम यह कह सकते हैं कि विश्व में सर्वथा कोई वस्तु निश्चित नहीं है किन्तु वैज्ञानिक क्षेत्र में हम इस प्रकार की निश्चिति नहीं चाहते। फाउलर महोदय ने इसी के अनुरूप बहुत ठीक कहा है जहाँ तक मनुष्य के ज्ञान की सीमा है सब सामान्यानुमान द्वारा निकाले गये निष्कर्ष निश्चयात्मक होते हैं।" सामान्यानुमान के द्वारा निकाले हुए निष्कर्षों के बारे में कोई खास प्रकार की अनिश्चितता नहीं बतलाई जा सकती। अपेक्षा-वाद के आधार पर यह कहना होगा कि सामान्यानुमान द्वारा निर्धारित सत्य अन्य सत्यों की तरह खास-खास अवस्थाओं के अन्दर अवश्य निश्चयात्मक होते हैं। यह हमारे ज्ञान की सीमा के बाहर की बात है कि हम उससे परे की चिन्ता करते हैं। मनुष्य के ज्ञान की सापेक्षता इसी में है कि वह अपनी सीमाओं के अन्दर अवस्थाओं के अनुसार सत्य का ज्ञान करता रहता है। इसलिये कहना होगा कि वेवल महोदय का सिद्धान्त अधिक विङ्गपूर्ण है।

यथार्थ और सम्यक् विचार तो यही है कि सम्भावना का आधार सामान्यानुमान है। सामान्यानुमान सम्भावना का वैषयिक आधार है क्योंकि वे पदार्थ जिन पर हम अपने सम्भावनात्मक नियम बनाते हैं अनुभव पर अवलम्बित रहते हैं। जैसा कि मिल महोदय का कहना है कि "हम अपने दीर्घकाल से पुरिक्षित प्रत्यक्षीकरण के आधार पर अवस्थित सामान्यानुमान पर पूरा विश्वास करते हैं और हमारी तमाम आनुमानिक प्रक्रियाएँ इसी प्रकार कार्य करती हैं। यदि कई सालों के बीतने पर हमारे अनुभव में यह आता है कि प्रत्येक वर्ष तीन दिन वर्षा होने के बाद चार दिन सूखा रहता है तो हमें इसमें सामान्यानुमानीय नियामकता प्रतीत होती है और हम इसी आधार पर कहते हैं कि भविष्य में भी ऐसा ही होगा। अतः स्पष्ट है कि सम्भावना सामान्यानुमान पर अवलम्बित रहती है।

(७) सम्भावना का तार्किक आधार

वैज्ञानिकों का कहना है कि विश्व की रचना बुद्धि पूर्ण है और हम विश्व की प्रत्येक वस्तु का कारणता के सिद्धान्त के आधार पर व्याख्यान कर सकते हैं, किन्तु मानवीय ज्ञान की अपूर्णता के कारण बहुत से कार्य सयोग या दैवयोग से उत्पन्न होते हुए से प्रतीत होते हैं। फिर भी हम प्रयत्न करते हैं कि विश्व के पदार्थों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय। सम्भावना के सिद्धान्त के द्वारा हम सयोगजन्य पदार्थों या घटनाओं का व्याख्यान करते हैं। अत' हमारी सम्भावना की गणना कुछ ज्ञान और अज्ञान के समिश्रण पर अवलंबित रहती है। असम्भावना, सम्भावना की विरोध सूचक नही है। असम्भावना का 'अर्थ केवल यही है कि यह सम्भावना की लघु मात्रा को प्रदर्शित करती है। जैसे, हम कहते हैं कि आज वर्षा की असम्भावना है—इसका अर्थ यह नही है कि आज वर्षा का होना असभव है किन्तु इसका यही अर्थ है कि ऋतु की अवस्था के अनुसार यही सम्भव है कि आज वर्षा न होगी। सम्भावना का तार्किक आधार वैकल्पिक निर्णय (Disjunctive judgement) है अथवा इस प्रकार के निर्णयों का समूह है जिसमें विशेषानुमानीय निर्णय भी सम्मिलित हैं। वैकल्पिक निर्णय जिनसे हम सम्भावना को निकालते हैं उनमें हमारे सभी विकल्प एक दूसरे के व्यावर्तक, निश्चित, समग्रतासूचक तथा समान मूल्यवाले होने चाहिए।

समान सभव विकल्प ही हमारे ज्ञान के विषय होते हैं और जब उनमें से एक को अधिक मानने के लिये कोई आधार नही होता तभी सम्भावना कार्य करती है। जैसे, एक टोकरी में तीन गेंदे रक्खी हुई हैं। उनमें एक काली और दो सफेद हैं। जब हम उसमें से एक गेंद निकालना चाहते हैं तब शक पैदा होती है कि सफेद निकलेगी या काली। किन्तु सम्भावना निश्चयपूर्वक यह बतलाती है और सख्या में निर्धारित करती है कि इसका क्या परिणाम होगा। उपर्युक्त उदाहरण की प्रदर्शित सम्भावना वैकल्पिक वाक्य द्वारा इस प्रकार बतलाई जा सकता है "स या तो क है या ख है

या प है' । यहाँ 'ख' निकालने के लिये और 'क', काली गेंद के लिये 'ग', सफेद गेंदों में से एक के लिये और 'घ' दूसरी सफेद गेंद के लिये प्रयोग किये गये हैं। इस वैकल्पिक वाक्य में हम देखेंगे कि विकल्प पृथक् और एक दूसरे के व्यावर्तक हैं। क्योंकि इसमें केवल तीन विकल्प हैं अतः काली गेंद के निकलने की सम्भावना [illegible] या १ [illegible] है और सफेद गेंद निकलने की सम्भावना [illegible] या २ : १ है। इससे हमें यह भी मालूम होता है कि यहाँ जो गणना वैकल्पिक वाक्य से सम्बन्धित है वह विशेष गुणानीय है। सम्भावना के सिद्धान्त का प्रयोग, गवाही या साक्षी की सत्यता तथा भविष्य-वाणियों की सत्यता की परख करने के लिये किया जाता है। सम्भावना की परिगणना करने के लिये हमें गणितशास्त्रीय क्रम समग्र[1] और संयोग के सिद्धान्त का अवलम्बन करना होगा। इसके लिये निम्नलिखित नियम काम में लाये जाते हैं —

(८) सम्भावना की परिगणना के नियम—

सम्भावना की परिगणना के लिये तार्किक गणितज्ञों ने कई विधियाँ निकाली हैं जिनका हम यहाँ उल्लेख करते हैं—

(१) यदि हमें केवल विकल्पों के एक समूह को लेकर ही विचार करना है जिसमें प्रत्येक विकल्प समान मूल्य वाला हो तो हम उस की हर वस्तु को एक वैकल्पिक-वाक्य द्वारा प्रकट कर सकते हैं। जैसे $क_1$ $क_2$ ... $क_{न}$ $\frac{म}{क}$ है। तब हम प्रत्येक विकल्प की सम्भावना को $\frac{१}{न}$ भिन्न से प्रकट कर सकते हैं। इसका अंकगणित द्वारा भी व्याख्यान हो सकता है। मान लो क या तो $क_1$ $क_2$ $क_3$ $क_4$ हैं और ये सब सम्भाव्य विकल्प हैं। ये सब एक दूसरे के व्यावर्तक और समान मूल्य के भी हैं। इसमें केवल चार विकल्प हैं (अर्थात् न = ४ है)। तब प्रत्येक विकल्प की सम्भावना $(\frac{१}{न})$ ¼ है। यदि विकल्पों की संख्या न हो तब एक खास विकल्प के

(1) Permutation.

सयोग, पता न लगने के कारण $\left(\frac{न - १}{न}\right)$ होंगे। यदि ४ विकल्प हों तो एक खास विकल्प के सयोग, पता न लगने के कारण $\frac{४-१}{४}$ होंगे। मान लो एक कलश में ३ गोलियाँ हैं उनमें एक काली है और २ सफेद हैं। तब एक काली गोली निकलने की सम्भावना $\frac{१}{३}$ होगी और सफेद गोलियाँ निकलने की $\frac{२}{३}$ होगी। काली गोली की न निकलने की सम्भावना $\left(\frac{३-१}{३}\right)$ अर्थात् $\frac{२}{३}$ होगी और सफेद गोलियों की न निकलने की सम्भावना $\left(\frac{३-२}{३}\right)$ अर्थात् $\frac{१}{३}$ होगी।

(२) यदि दो घटनाएँ स्वतत्र हों और उनमें से एक की सम्भावना $\frac{१}{म}$ है और दूसरी की सम्भावना $\frac{१}{न}$ है, तब दोनों की एक साथ होने की सम्भावना $\frac{१}{म\ न}$ होगी। यदि एक मनुष्य को 'क' पाँच वार में एक वार मिलता है और 'ख' दो वार तो 'क' और 'ख' दोनों की एक साथ मिलने की सम्भावना $\frac{१}{५} \times \frac{२}{५} = \frac{२}{२५}$ होगी। इसका इस प्रकार नियम वनता है—यदि दो घटनाएँ स्वतत्र हैं अर्थात् उनका आपस में न तो सम्वन्ध है और न विच्छेद है तो उनके एक साथ होने की सम्भावना उनकी अलग अलग सम्भावनाओं को गुणा करके निश्चित की जा सकती है। यदि 'क' और 'ख' पचीस वार में दो से अधिक वार मिलते रहते हैं तो हो सकता है, उनमें सम्वन्ध हो, तथा यदि उससे कमवार मिलते हैं तो दोनों के वीच में विच्छेद मालूम होता है।

(३) निभर[1] घटनाओं के मामले में सम्भावना को निश्चित करने के लिये वही नियम है जो स्वतत्र घटनाओं के मामले में प्रयोग किया जाता है। एक सिक्के की ऊपर गिरने की सँभावना जब उसको पहली वार फेंका जाय तव $\frac{१}{२}$ है, जव दूसरी वार फेंका जाय तव $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२}$ अर्थात् $\frac{१}{४}$ है और जब तीसरी वार फेंका जाय तव $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{२}$ अर्थात् $\frac{१}{८}$ है। यदि हम इसको

---

(1) Dependent

वीयावतरों में प्रभावित करें तो, यदि 'क' की सम्भावना $\frac{1}{म}$ है और 'ख' की सम्भावना $\frac{1}{न}$ है तो 'क' और 'ख' की सम्भावना $\frac{1}{म न}$ होगी। इस प्रकार की गणना से गवाही वगैरह का मूल्य नियत किया जा सकता है। गवाही खराब तब हो जाती है जब वह एक हाथ से दूसरे हाथ में चली जाती है। मान लो 'क' की गवाही का मूल्य $\frac{1}{2}$ है और वह इसको 'ख' को बतलाता है—जिसकी गवाही का मूल्य भी $\frac{1}{2}$ है और 'ख' इसको 'ग' को बतलाता है—जिसकी गवाही का मूल्य भी $\frac{1}{2}$ है तो 'ग' की गवाही का फलस्वरूप मूल्य $\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2}$ अर्थात् $\frac{1}{8}$ होगा। इस प्रकार सबकी इकट्ठी गवाही की सम्भावना विपरीत गई है जैसे कि पहले के उदाहरण में भिन्न २ घटनाओं की सम्भावनाओं का परिणाम दिखलाया गया था।

(४) यदि दो घटनाएं एक साथ नहीं उत्पन्न होतीं तो दोनों के होने की सम्भावना प्रत्येक की सम्भावनाओं का जोड़ होगा। मान लो किसी मनुष्य के बुखार से मरने की सम्भावना $\frac{1}{5}$ है और हैजे से मरने की सम्भावना $\frac{1}{10}$ है तब या तो बुखार से मरने की सम्भावना या हैजे से मरने की सम्भावना ($\frac{1}{5} + \frac{1}{10}$) अर्थात् $\frac{3}{10}$ होगी। हम देख चुके हैं कि फेंकने पर सिक्के के ऊपर गिरने की सम्भावना $\frac{1}{2}$ है और दूसरी फेंकान में ऊपर गिरने की सम्भावना जो पहले फेंकाव पर निर्भर है, $\frac{1}{4}$ है अब हम देख सकते हैं कि इन दोनों में लगातार फेंकने पर ऊपर गिरने की सम्भावना $\frac{1}{2} + \frac{1}{4} = \frac{3}{4}$ होगी।

(५) यदि किसी व्यक्ति ने १० दिन के लिये क्रम पूर्वक वायव लिये हैं तो उसकी एक बार और लेने की सम्भावना का अनुपात १ १ १ होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे अपने लगातार सर्वथा अविरोधी अनुभव के साथ साथ किसी घटना के एक बार भी गुजरने की सम्भावना, बहुत अधिक हो जाती है। इस प्रकार की सम्भावना की गणना से साधारण-गणना-जन्य सामान्यानुमान का अच्छी तरह से मूल्यांकन हो सकता है।

(६) यदि 'क', 'ख' और 'ग' के साथ उत्पन्न होता है और 'क' और 'ख' दोनों की एक साथ होने की सम्भावना ४/५ है और 'क' और 'ख' की ४/५ है तो 'ख' और 'ग' की एक की सम्भावना जो 'क' का चिह्न है, उनकी असम्भावनाओं को मिलाकर अर्थात् (१/५ × १/५) = १/२५ होगी। और इसको १ में से घटाने पर परिणाम (१ − १/२५) = २४/२५ होगा। इसकी गणना करने का नियम यह है—यदि एक घटना, दो या अधिक स्वतन्त्र घटनाओं के साथ घटती है, तो यह सम्भावना, कि ये सब मिलकर इनका संकेत बनेंगी, सब भिन्नों का गुणा करके जो असम्भावना को बतलाती हैं, और जो प्रत्येक, इसका संकेत है उनके योग को १ में से घटा देने से, प्राप्त होती है। इस नियम के द्वारा हम कोर्ट में सम्मिलित गवाही के मूल्य का माप कर सकते हैं। मान लो कचहरी में एक गवाह की गवाही का मूल्य ३/४ है और दूसरे की गवाही का मूल्य भी ३/४ है और अन्य का भी मूल्य ३/४ है तो उनकी गवाहियों का सम्मिलित मूल्य १ − (१/४ × १/४) = (१ − १/१६) = १५/१६ होगा। यहाँ पहली गवाही की असम्भावना १/४ है और दूसरी की भी १/४ है। उनका योग हुआ १/१६। यदि १/१६ को १ में से घटा दें तो हमें १५/१६ मिलेंगे।

(९) सम्भावनात्मक तर्क और संक्लिष्ट-सामान्यीकरण

सम्भावनात्मक तर्क, उसे कहते हैं जिसके वाक्य, हमें निश्चित निष्कर्ष न देकर सम्भावनात्मक निष्कर्ष देते हैं। इनके अनेक श्रोत हो सकते हैं। कुछ को तो हम अभी जान चुके हैं। जैसे, साधारण-गणनाजन्य-सामान्यानुमान उपमा-जन्य-सामान्यानुमान, असमर्थित प्राक्कल्पना आदि इनसे प्राप्त निष्कर्ष, केवल सम्भवनात्मक होते हैं, निश्चित नहीं। साधारण-गणना-जन्य सामान्यानुमान में हम कोई कारणता का सम्बन्ध नहीं देखते, अत इससे निकाला हुआ निष्कर्ष सम्भावनात्मक ही होता है—सम्भावना भी प्रत्यक्षीकरण किये हुए उदाहरणों की संख्या तथा अनुभव के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।

(1) Probable argument

उपमा-सम्भ-सामान्यानुमान में भी हम देखते हैं कि अनुमान अपूर्ण समानता या सादृश्य पर निर्भर रहता है और तर्क की सम्भावना भी सादृश्य या समानता की बातों की संख्या पर अवलंबित रहती है। इसी प्रकार एक असमर्थित किन्तु योग्य प्राक्कल्पना से प्राप्त किया हुआ निष्कर्ष भी सम्भावनात्मक होता है। यह निश्चिति को तभी प्राप्त कर सकता है जब यह सिद्ध हो जाता है। पश्चात् यह नियम कहलाता है। इसका विवेचन हम पांचवें अध्याय में कर चुके हैं।

सम्भावनात्मक तर्क का दूसरा स्रोत अशिकट—सामान्यीकरण द्वारा निकाले हुए निष्कर्ष हैं। अशिकट-सामान्यीकरण (Approximate Generalisation) का रूप इस प्रकार है:-प्रायः 'क' 'ख' होते हैं। यहाँ प्रायः शब्द के पर्यायवाची शब्द बहुत प्रायः करके अधिकतर आदि दिये जा सकते हैं। विशेषानुमान में ये सब विशेषणात्मक शब्द 'कुछ' के बराबर हैं। किन्तु सामान्यानुमानीय वाक्य विषय की ओर ध्यान आकर्षित करता है अतः यहाँ निश्चिति प्राप्त नहीं की जा सकती वहाँ हम वाक्य की सम्भावना के रूप का विचार करते हैं। अशिकट-सामान्यी-करण की सम्भावना की मात्रा उदाहरणों की संख्या जो अशिकट सामान्यीकरण के साथ मेल रखती है और दूसरे उदाहरण की संख्या जो अशिकट-सामान्यीकरण के साथ मेल नहीं रखती है के मध्य अनुपात पर अवलंबित रहती है। कार्यात्मक जीवन में अशिकट-सामान्यीकरणों का बड़ा महत्व है क्योंकि यद्यपि किसी खास मामले में हमें निश्चय न भी हो कि यह सत्य है तथापि हमारी दैनिक आवश्यकताएँ चाहती हैं कि हमें किसी न किसी रूप में कार्य करना ही चाहिये। इसलिये ही यह कहा जाता है कि सम्भावना जीवन की पथप्रदर्शक होती है। इसी हेतु से कहावतों का अपना निज का मूल्य होता है। यह हो सकता है कि वैज्ञानिक रूप से उनमें सर्वसत्य ही क्यों न हो और इसलिये वे असत भी हों। जैसे एक व्यापारी 'ईमानदारी सब से उत्तम नीति है' (Honesty is the best policy) इस विश्वास पर अपने व्यापार की नीति का निर्माण करता है। इसी प्रकार अन्य काम

भी ससार के चलते हैं । किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में सन्निकट-सामान्यीकरण का मूल्य बहुत कम है ।

सन्निकट-सामान्यीकरण दो प्रकार के होते हैं—(१) **वे जिनके बारे में हम जानते हैं कि वे निश्चित रूप से सम्भावनात्मक हैं और (२) वे जो ज्ञान की वर्तमान अवस्था के अन्दर सम्भावनात्मक गिने जाते हैं किन्तु ज्ञान के पुनः विकास के साथ निश्चित भी सिद्ध किये जा सकते हैं** । हम देख चुके हैं कि साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान, वैज्ञानिक-सामान्यानुमान का आरम्भ बिन्दु बन सकता है । उसी प्रकार उपमा-जन्य सामान्यानुमान (Analogy) के द्वारा कारणता-सम्बन्ध की खोज मिल सकती है और तब हमारा वाक्यात्मक अनुमान अपवादों का निर्देश करके सत्य सिद्ध हो सकता है । उदाहरण के लिये, यह वाक्य—'बहुत सी धातुएं ठोस हैं' सन्निकट सामान्यीकरण है । किन्तु रासायनिकों ने यह निश्चित रूप से बतला दिया है कि केवल एक ही धातु है—पारा—जो ठोस नहीं है । जब यह पता लग गया तब सन्निकट सामान्यीकरण, अपवाद को प्रकट करके, सत्य सिद्ध हो सकता है । जैसे, 'सब धातुएं, केवल पारे को छोड़ कर ठोस हैं ।'

इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सन्निकट-सामान्यीकरण द्वारा निकाले हुए निष्कर्ष सम्भावनात्मक होते हैं । निश्चयात्मक अनुमान केवल सामान्य वाक्यों से निकाला जा सकता है, जैसे, 'सब मनुष्य मरणशील हैं' 'कोई मनुष्य पूर्ण नहीं है' । अब एक सन्निकट-सामान्यीकरण का भी उदाहरण लीजिये, 'अधिकतर जुआरी बेईमान होते हैं' । यदि कोई खास व्यक्ति जुआरी है तो हम इससे यही अनुमान निकाल सकते हैं कि वह शायद बेईमान होगा । हमारा यह तर्क सम्भावनात्मक है क्योंकि इसका वाक्य सामान्य निष्कर्ष को सिद्ध नहीं कर सकता । सामान्य निष्कर्ष तो केवल सामान्यानुमान से ही प्राप्त हो सकते हैं ।

अभ्यास प्रश्न

(१) सयोग का क्या अर्थ है ? उदाहरण दो । इसका पृथक्-करण कैसे किया जा सकता है ?

उपमा-अन्य-सामान्यानुमान में भी हम देखते हैं कि अनुमान अपूर्ण समानता या सादृश्य पर निर्भर रहता है और तर्क की सम्भावना भी सादृश्य या समानता की बातों की संख्या पर अवलंबित रहती है। इसी प्रकार एक असमर्थित किन्तु योग्य प्राक्कल्पना से प्राप्त किया हुआ निष्कर्ष भी सम्भावनात्मक होता है। यह निश्चिति को तभी प्राप्त कर सकता है जब यह सिद्ध हो जाता है। पश्चात् यह नियम कहलाता है। इसका विवेचन हम पांचवें अध्याय में कर चुके हैं।

सम्भावनात्मक तर्क का दूसरा स्रोत सन्निकट—सामान्यीकरण द्वारा निकाले हुए निष्कर्ष हैं। सन्निकट-सामान्यीकरण (Approximate Generalisation) का रूप इस प्रकार है:-प्राय: क' 'ख' होते हैं। यहां प्राय: शब्द के पर्यायवाची शब्द बहुत प्राय: करके अमूमन अक्सर आदि दिये जा सकते हैं। विशेषानुमान में ये सब विवेचनात्मक शब्द 'कुछ' के बराबर हैं। किन्तु सामान्यानुमानीय वाक्य विषय की ओर ध्यान आकर्षित करता है अतः यहां निश्चिति प्राप्त नहीं की जा सकती यहां हम वाक्य की सम्भावना के रूप का विचार करते हैं। सन्निकट-सामान्यी-करण की सम्भावना की मात्रा उदाहरणों की संख्या जो सन्निकट सामान्यीकरण के साथ मेल रखती हैं और दूसरे उदाहरण की संख्या जो सन्निकट-सामान्यीकरण के साथ मेल नहीं रखती है के मध्य अनुपात पर अवलंबित रहती है। कार्यात्मक जीवन में सन्निकट-सामान्यीकरणों का बड़ा महत्व है क्योंकि यद्यपि किसी खास मामले में हमें निश्चय न भी हो कि यह सत्य है तथापि हमारी दैनिक आवश्यकताऐं चाहती हैं कि हमें किसी न किसी रूप में कार्य करना ही चाहिये। इसलिये ही यह कहा जाता है कि सम्भावना जीवन की पथप्रदर्शक होती है। इसी हेतु से कहावतों का अपना निज का मूल्य होता है। यह हो सकता है कि वैज्ञानिक रूप से उनमें सर्वसत्य ही क्यों न हो और इसलिये वे गलत भी हों। जैसे एक व्यापारी 'ईमानदारी सब से उत्तम नीति है' (Honesty is the best policy) इस विश्वास पर अपने व्यापार की नीति का निर्णय करता है। इसी प्रकार अन्य कार्य

(११) "एक या दो घटनाएँ जो नही हो सकती—उनके होने की सम्भावना—अलग अलग होनेवाली सम्भावनाओं का जोड है।" उक्त नियम की व्याख्या करो और इसका यथार्थ उदाहरण भी दो।

(१२) सयोग और सम्भावना में अन्तर प्रकट करो और सामान्यानुमान के क्षेत्र में सम्भावना का स्थान बतलाओ। तथा यह भी बतलाओ कि सम्भावना के द्वारा किस प्रकार निश्चित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

(२) क्या संसार में संयोग भी कोई वस्तु है ? संयोगवश और कारणवश इनका अभिप्राय स्पष्ट करो ।

(३) सम्भावना और सामान्यानुमान में क्या सम्बन्ध है ? सम्भावना द्वारा किसी वस्तु का हमें किस प्रकार का ज्ञान होता है ?

(४) सम्भावनात्मक तर्क का लक्षण लिखकर उदाहरण दो । सम्भावना की रचना के नियम बतलाओ और इनके उदाहरण भी दो ।

(५) सम्भावना और सामान्यानुमान में क्या अन्तर है ? सम्भावना के दो नियमों का उल्लेख करो जिनके द्वारा निश्चित परिणाम निकाले जा सकें ।

(६) सम्भावना की गणना के लिये जितने नियम बतलाए गये हैं उन सबका उल्लेख करो । साथ साथ उदाहरण भी दो ।

(७) सामान्यानुमान द्वारा प्राप्त कोई भी निष्कर्ष निश्चित नहीं होता' इस कथन पर प्रकाश डालो ।

(८) दो वाक्य दिये हुए हैं —

(१) अधिकतर 'क' 'ग' हैं ।

(२) अधिकतर 'क' 'ख' हैं ।

क्या इनसे कोई निष्कर्ष निकल सकता है ? यदि निकल सकता है तो किस प्रकार का ? उसका मूल्याङ्कन करो ।

(९) निम्नलिखित की व्याख्या करो ?

(१) यह घटना सम्भावनात्मक है ।

(२) इस घटना की सम्भावना २ है ।

(३) क और ख घटनाएं संयोग से हुई हैं ।

(४) क और ग घटनाएँ साथ-साथ हुई हैं — यह केवल संयोग है ।

(१०) 'सम्भावना अनुभव पर आधारित विश्वास है' । दो स्वतंत्र रूप से होनेवाली घटनाओं के होने की सम्भावना का किस प्रकार पता लगाओगे ? इसका यथार्थ उदाहरण दो ।

(११) "एक या दो घटनाएँ जो नही हो सकती—उनके होने की सम्भावना—अलग अलग होनेवाली सम्भावनाओं का जोड है।" उक्त नियम की व्याख्या करो और इसका यथार्थ उदाहरण भी दो।

(१२) सयोग और सम्भावना में अन्तर प्रकट करो और सामान्यानुमान के क्षेत्र में सम्भावना का स्थान बतलाओ। तथा यह भी बतलाओ कि सम्भावना के द्वारा किस प्रकार निश्चित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

अध्याय ६

(१) उपमानन्य-सामान्यानुमान

सामान्यानुमान के स्वरूप और भेदों का विचार पहले किया जा चुका है। शुद्ध-सामान्यानुमान (Inductions proper) के तीन भेद किये गये थे (१) वैज्ञानिक-सामान्यानुमान (२) अवैज्ञानिक या गणनाजन्य सामान्यानुमान और (३) उपमाजन्य-सामान्यानुमान। इस अध्याय में विशेष रूप से उपमाजन्य-सामान्यानुमान का वर्णन किया जायगा। इसके साथ यह भी दिखलाया जायगा कि यह अनुमान का निर्बल रूप है।

उपमाजन्य-सामान्यानुमान का अर्थ

उपमाजन्य-सामान्यानुमान (Analogy) शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। सब प्रथम, अरस्तू ने अनालोजिया (Analogia) शब्द का प्रयोग किया था जिसका अर्थ होता है अनुपातों की समानता। इसके अनुरूप शब्द अंकगणित में समानुपात (Proportion) है। इसलिये अरस्तू के सिद्धान्त के अनुसार उपमाजन्य-सामान्यानुमान से निम्न लिखित रूप में तर्क किया जायगा :—

१ २ २ ४

अर्थात् जो एक का दो से सम्बन्ध है वही दो का चार से सम्बन्ध है। इस प्रकार संख्याओं के समानुपात से हम अन्य समानुपातों पर जाते हैं

जिनमें उसी प्रकार के पद प्रयुक्त नहीं होते। जैसे

(१) स्वास्थ्य शरीर धर्म आत्मा

(२) कोयला इञ्जन भोजन शरीर

जिस प्रकार स्वास्थ्य शरीर के लिये आवश्यक है उसी प्रकार धर्म आत्मा के लिये आवश्यक है। जिस प्रकार कोयला इञ्जन के लिये आवश्यक है उसी प्रकार भोजन शरीर के लिये आवश्यक है। इसका अर्थ यह हुआ कि

स्वास्थ्य और शरीर का सम्बन्ध उसी प्रकार का है जैसा कि धर्म और आत्मा का और कोयला और इञ्जन का सम्बन्ध उसी प्रकार का है जैसा कि भोजन और शरीर का। इसी अंकगणित के समानुपात के सिद्धान्त को विचार में रखते हुए ह्वॉटले महोदय ने उपमाजन्य-सामान्यानुमान का लक्षण यह किया है—**"उपमाजन्य सामान्यानुमान वह है जिसमें सम्बन्धों की समानता या सादृश्यता से हम अनुमान करते हैं।"** उदाहरणार्थ, जब एक देश दूसरी जगह उपनिवेश बनाता है तो उस देश को 'मातृ-भूमि' कह कर पुकारते हैं। यह कथन उपमाजन्य-सामान्यानुमान मूलक है जिसका अर्थ यह है कि एक देश के उपनिवेशों का उसके साथ वही सम्बन्ध होता है जैसा कि बच्चों का माता-पिता के साथ होता है। यदि इस सम्बन्ध की समानता मे हम अनुमान करते हैं "मातृभूमि उपनिवेशों से आज्ञा-वर्तन की आशा करती है" तो यह उपमाजन्य सामान्यानुमान मूलक अनुमान कहलायगा। इस प्रकार के अनुमान को कुछ तार्किक लोग "सम्बन्ध-जन्य-शादृश्यानुमान कहते हैं।" इसका निम्नलिखित उदाहरण है—

क, ख से सम्बन्वित है, जैसे ग, घ से सम्बन्वित है।
क और ख के सम्बन्ध से, ङ उत्पन्न होता है।
∴ग और घ के सम्बन्ध से भी ङ उत्पन्न होगा।

वास्तविक उदाहरण :—

(१) एक जहाज के कप्तान का जहाज के साथ वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि एक गवर्नर का एक स्टेट के साथ होता है।

कप्तान जहाज की गति की देखरेख रखता है।

∴ गवर्नर को भी स्टेट की गतिविधि की देखरेख रखना चाहिये।

(२) पार्लियामेण्ट का देश के साथ वैसा ही सम्बन्ध है जैसा बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स का किसी जॉइन्ट स्टॉक कम्पनी के साथ सम्बन्ध होता है। एक जॉइन्ट स्टाक कम्पनी का चुने हुए बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स से अच्छा इन्त-जाम होता है, इसलिये एक देश का, निर्वाचित पार्लियामेंट द्वारा अच्छा इन्तजाम होता है। इस प्रकार के तर्क का आधार यह नहीं है कि देश जॉइन्ट स्टॉक कम्पनी के सदृश है या पार्लियामेण्ट कोई डाइरेक्टरों का बोर्ड है किन्तु

पार्लियामैण्ट और देश में वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि बोर्ड ऑफ डारेक्टर्स और जॉइन्ट स्टाक कम्पनी में है।

उपमाजन्य-सामान्यानुमान शब्द का प्रयोग तर्कशास्त्र में सम्बन्धों की सादृश्यता से अधिक अर्थ में किया जाता है। जैसा कि मिल महोदय का कहना है 'सादृश्य-मूलक तर्क की प्रक्रिया के अर्थ को हमें इस प्रकार विचार करना चाहिये जिससे कि हम इसको किसी प्रकार की समानता से, यदि वे पूर्ण सामान्यानुमान के रूप को नहीं पहुंचते हैं तक कर सकें और हमें खास तौर से सम्बन्ध की समानता पर भी जोर न देना पड़े।" इस कथन में हम देखते हैं कि मिल के विचार बहुत कुछ बटलर (Butler) और काण्ट (Kant) से मिलते जुलते हैं। वर्तमान काल में भी तार्किक लोग इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करते हैं। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि जिसको वर्तमान कालीन तर्कशास्त्री उपमाजन्य-सामान्यानुमान कहते हैं उसको अरस्तू ने उदाहरण से तर्क करने की विधि (Paradeigma) बतलाया था। उदाहरणार्थ अरस्तू यह बतलाता है "क्योंकि पहलवानों का चुनाव सामूहिक रूप से नहीं किया जाता; इसलिये राजनीतिज्ञों का भी चुनाव सामूहिक रूप से नहीं होना चाहिये।" अब हम उपमाजन्य-सामान्यानुमान का अर्थ इस रूप में बयान करेंगे।

(२) उपमाजन्य-सामान्यानुमान का स्वरूप

मिल महोदय ने उपमाजन्य-सामान्यानुमान[1] का यह सूत्र लिखा है 'यदि दो वस्तुयें, एक या अधिक बातों में समानता रखती हैं तो यदि एक के बारे में एक वाक्य सत्य सिद्ध होता है तो वह अन्य के बारे में भी सत्य होगा।" बेन भी इसका लक्षण इस प्रकार करते हैं— 'उपमाजन्य-सामान्यानुमान अन्य अनुमानों के रूपों से भिन्नता रखता हुआ कल्पना करता है कि यदि दो वस्तुओं के बीच कुछ बातों में समानता है तो वे अन्य बातों में भी समानता रक्खेंगी; जो अन्य बातें समानता रखनेवाली बातों से भिन्न हैं और न उनके बीच कोई कारणता

(1) Analogy

का सम्बन्ध होता है या महभूपना होता है"। कारवेथ रीड का लक्षण बहुत सुन्दर है। वे कहते हैं "उपमाजन्य-सामान्यानुमान अपूर्ण समानता के आधार पर एक प्रकार का सम्भावनात्मक सबूत है जो तुलना के विषय और हमारे तर्क के विषय में पाया जाता है" वेल्टन ने भी करीब-करीब यही कहा है कि "उपमाजन्य-सामान्यानुमान अपूर्ण-समानता के तत्व से पूर्ण-समानता के तत्व की स्थापना करता है"। इन लक्षणों से यह स्पष्ट है कि उपमाजन्य-सामान्यानुमान एक प्रकार का अनुमान है जिसमें अपूर्ण समानता के आधार पर विशेष से विशेष का अनुमान किया जाता है और जिसमें निष्कर्ष केवल सम्भावनात्मक होता है। इसका निम्नलिखित बीजात्मक उदाहरण है —

'क' के अन्दर कुछ गुण हैं जैसे 'च', 'छ', 'ज', इत्यादि, वे 'ख' के समान हैं, ख के अन्दर एक गुण 'झ' और है।

∴ 'क' में 'झ' गुण और है यद्यपि 'झ' तथा 'च', 'छ', 'ज' इत्यादि में कोई सम्बन्ध नहीं है।

इसका वास्तविक उदाहरण निम्नलिखित है —

मगल (Mars) और चन्द्रमा (Moon) दोनों में कुछ बातों को लेकर समानता है। जैसे, दोनों में वैसी ही आबोहवा है, दोनों में एक समान भूमि है, दोनों में समुद्र हैं, तापमान भी दोनों में एक समान है, दोनों सूर्य के चारों तरफ भ्रमण करते हैं और सूर्य से ही प्रकाश ग्रहण करते हैं।

पृथ्वी में मनुष्य के निवास का एक और गुण है।

∴ मगल में भी मनुष्य के निवास का गुण होना चाहिये।

(३) उपमाजन्य-सामान्यानुमान और सामान्यानुमान

उपमाजन्य-सामान्यानुमान में तर्क का आधार समानता या सादृश्य है। हम तर्क करते हैं कि दो वस्तुएँ कुछ बातों में समान हैं तो वे अन्य में भी समान होंगी। जैसे 'क' कुछ बातों में 'ख' के सदृश है, वह अन्य बातों में भी 'ख' के सदृश होगा। किन्तु यह कोई सादृश्यमूलक अनुमान की ही विशेपता नहीं है। हम देखेंगे कि सामान्यानुमान और विशेषा-

गुमान दोनों में हम समानता के आधार पर तर्क करते हैं। सामान्यानुमान में उदाहरणार्थ —

क, ख, ग घ मनुष्य हैं जिनकी परीक्षा की गई है, मरणशील हैं सब मनुष्य (चाहे उनकी परीक्षा की गई हो या नहीं) जो उनके मनुष्य होने में समान हैं (जैसे क ख ग घ) वे मरणशील होने में भी समानता रक्खेंगे।

सामान्यानुमान और उपमाजन्य-सामान्यानुमान में केवल यही अन्तर है कि सामान्यानुमान में कारणता-सम्बन्ध रहता है किन्तु उपमाजन्य सामान्यानुमान में कारणता सम्बन्ध का सर्वथा अभाव रहता है। जब हम समानता के आधार पर यह अनुमान करते हैं कि मंगल में भी मनुष्यों का वास होगा जैसा कि पृथ्वी पर है तब हमें यह बिलकुल पता नहीं होता कि उन दोनों में कोई कारणता का सम्बन्ध है या नहीं। यदि ऐसे सम्बन्ध का पता होता तो हमारा तर्क सामान्यानुमान या उपमाजन्य-सामान्यानुमान नहीं कहलाता अपितु उसका स्थान वैज्ञानिक सामान्यानुमान का होता। इसी प्रकार विशेषानुमान में भी हमारा तर्क समानता पर अवलम्बित रहता है। जैसे,

'सब मनुष्य मरणशील हैं।
कुन्दकुन्द एक मनुष्य है।
कुन्दकुन्द मरणशील है।

इसका भेद है कुन्दकुन्द दूसरे मनुष्यों के साथ कुछ बातों में समानता रखता है अतः यह मरणशीलता में भी अन्य के साथ समानता रक्खेगा। विशेषानुमान और उपमाजन्य-सामान्यानुमान में यदि भेद है तो केवल यही कि प्रत्येक सिलाजिज्म का एक वाक्य हमें सामान्य रखना पड़ता है और इस प्रकार का वाक्य उपमाजन्य-सामान्यानुमान में दिखाई नहीं देता। यदि इस प्रकार का कोई सामान्य नियम कि "सब ग्रहों में मनुष्य रहते हैं होता तो हम बड़ी सरलता से यह निष्कर्ष कि 'मंगल में भी मनुष्य हैं' निकाल देते। इससे यह स्पष्ट है कि सब प्रकार का तर्क चाहे वह सामान्यानुमान हो या विशेषानुमान या उपमाजन्य-सामा

न्यानुमान—इन सब का आधार समानता (Resemblance) है। केवल उपमाजन्य-सामान्यानुमान में यह समानता अपूर्ण है। अन्य में तो वह पूर्ण है।

(४) उपमाजन्य-सामान्यानुमान और वैज्ञानिक सामान्यानुमान

हम पहले युक्त सामान्यानुमान के ३ भेद कर आये हैं (१) वैज्ञानिक सामान्यानुमान (२) साधारण-गणनाजन्य-सामान्यानुमान और (३) उपमाजन्य सामान्यानुमान। सामान्यानुमान का सार सामान्यानुमानीय कुदान में है अर्थात् जब हम ज्ञात से अज्ञात का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। यह गुण उपमाजन्य सामान्यानुमान में भी विद्यमान है, अत इसको युक्त सामान्यानुमान का उपभेद मानना चाहिये। उपमाजन्य-सामान्यानुमान यद्यपि सामान्यानुमान का निर्बल रूप है क्योंकि इसका आधार अपूर्ण समानता या सादृश्य है। अब हम दोनों में भेद बतलाकर इसका अध्ययन करेंगे।

(१) वैज्ञानिक सामान्यानुमानों में हम विशेष से सामान्य की ओर उद्गमन करते हैं तथा उपमाजन्य-सामान्यानुमान में हम विशेष से विशेष की ओर ही गमन करते हैं।

वैज्ञानिक सामान्यानुमानों में हम विशेष उदाहरणों को देखकर सामान्य वाक्य की स्थापना करते हैं किन्तु उपमाजन्य-सामान्यानुमान में एक उदाहरण विशेष को देखकर हम दूसरे उदाहरण विशेष का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं जिसको हमने आज तक देखा नही है। जब अनेक मृत्यु के उदाहरणों का प्रत्यक्षीकरण करके हम सामान्य वाक्य "सब मनुष्य मरण शील हैं" बनाते हैं तब हमें वैज्ञानिक सामान्यानुमान का स्वरूप मिलता है। किन्तु जब हम एक ग्रह के मुख्य लक्षणों को देखकर, जैसे, 'पृथ्वी', किसी अन्य ग्रह के विषय में अनुमान करते हैं, जैसे 'मगल', तब हमें उपमाजन्य-सामान्यानुमान का स्वरूप मिलता है।

मिल महोदय ने जो यह बतलाया है कि उपमाजन्य-सामान्यानुमान विशेष से विशेष के लिये होता है—इसको शब्दश सत्य नही मानना

चाहिये। यदि हम एक विशेष से अन्य विशेष के बारे में अनुमान करें जिसकी पहले विशेष के साथ समानता है, तब हम ऐसा कर सकते हैं क्योंकि हमने अपने मन में गुप्तरूप से, एक सामान्य, जो साधारण गुणों का द्योतक है बना लेते हैं और अचेतन भाव से दोनों उदाहरणों को सामान्य के अधिकार में ले आते हैं। अतः सामान्यानुमान और उपमाजन्य-सामान्यानुमान में यह अन्तर है कि सामान्यानुमान में तो हम जान करके सामान्य वाक्य के रूप में सामान्य को प्रकट करते हैं किन्तु उपमाजन्य-सामान्यानुमान में ऐसा नहीं करते, यद्यपि दोनों मामलों में हम विशेषों के अन्दर रहे हुए सामान्य तत्त्व पर अवलंबित रहते हैं जो हमारे तर्क का आधार होता है। इसलिये अधिक से अधिक हम यही कह सकते हैं कि उपमाजन्य-सामान्यानुमान—जब तक यह उपमाजन्य-सामान्यानुमान है—विशेष उदाहरण में ही भ्रमण रहेगा और उसमें कोई सम्बन्ध द्योतक नियम नहीं प्रतीत होगा।

(२) वैज्ञानिक सामान्यानुमान कारणता-सम्बन्ध पर निर्भर है किन्तु उपमाजन्य-सामान्यानुमान में इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहता। वैज्ञानिक सामान्यानुमान में हम प्रयोगिक विधियों को प्रयोग में लाकर कारणता का सम्बन्ध स्थापित करते हैं किन्तु उपमाजन्य-सामान्यानुमानीय तर्क में इस प्रकार के कारणता-सम्बन्ध की स्थापना की आवश्यकता नहीं होती और न ऐसा प्रतीत ही होता है कि इस प्रकार का कोई सम्बन्ध इसमें है। उपमाजन्य-सामान्यानुमान में हम उदाहरणों की तुलना करके या वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके दो पदार्थों या घटनाओं में सम्बन्धजनक किसी नियम की स्थापना नहीं करते। हम केवल किसी पदार्थ की व्याख्या के लिए उसकी अवस्थाओं में और उस पदार्थ की अवस्थाओं में जिसको हम जानते हैं समानता देखते हैं और एक को आधार मान कर दूसरे के विषय में निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करते हैं।

(३) सादृश्यानुमान से हमें केवल सम्भावनात्मक निष्कर्ष मिलते हैं। इसके विपरीत वैज्ञानिक सामान्यानुमान में निश्चित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। यह सत्य है कि सम्भावना का सिद्धान्त मात्राओं से सम्बन्ध रखता है और इसलिये उपमाजन्य-सामान्यानुमान में सम्भावना की भिन्न भिन्न मात्राएँ

शून्य से लेकर करीब करीब निश्चय तक हो सकती है। किन्तु उपमाजन्य-सामान्यानुमान चाहे कितना ही प्रबल क्यों न हो हमें उसके द्वारा निश्चित निष्कर्ष प्राप्त नही हो सकता। निश्चित निष्कर्ष हमें वैज्ञानिक सामान्यानुमान द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। वैज्ञानिक सामान्यानुमान में कारणता का सम्बन्ध पाया जाता है और निष्कर्ष आवश्यक रूप से निकलता है। किन्तु इसके विपरीत उपमाजन्य-सामान्यानुमान में समानता, अल्प रूप में या अधिक रूप में, अपूर्ण रहती है और इस प्रकार निष्कर्ष के विषय में कुछ न कुछ संशय अवश्य बना रहता है। इसी हेतु से हम कहते हैं कि उपमाजन्य-सामान्यानुमान में निष्कर्ष सम्भावनात्मक होते हैं और सामान्यानुमान में निश्चयात्मक निष्कर्ष होते हैं।

(४) इनके अतिरिक्त उपमाजन्य-सामान्यानुमान को वैज्ञानिक सामान्यानुमान की आधार शिला कहा जाता है। यह कहा जा चुका है कि उपमाजन्य-सामान्यानुमान में कारणता-सम्बन्ध नही पाया जाता किन्तु यह कहना सर्वथा सत्य नही है। उपमाजन्य सामान्यानुमान में यद्यपि स्पष्ट रूप से कारणता-सम्बन्ध दिखाई नही देता किन्तु हमारे दिल में एक अस्पष्ट भान सा रहता है कि भविष्य में कोई न कोई कारणता-सम्बन्ध इसमें निकल आवेगा और वह वैज्ञानिक सामान्यानुमान के स्थान को ग्रहण कर लेगा। तब तक इस उद्देश्य की प्राप्ति नही होती तब तक उपमाजन्य-सामान्यानुमान को वैज्ञानिक सामान्यानुमान के राजपथ पर एक स्थान विशेष ही कहा जायगा। अथवा मिल महोदय के शब्दों में इसको एक मार्ग सूचक तखता गिना जायगा जिसके द्वारा हमें वैज्ञानिक अनुसंधान करने की प्रेरणा मिलती है। उपमाजन्य-सामान्यानुमान प्राक्कल्पनाओं का भी श्रोत है जिनको यदि सिद्ध कर लिया जाय तो वे वैज्ञानिक सामान्यानुमान के पद को प्राप्त हो सकती हैं।

(५) उपमाजन्य-सामान्यानुमान और साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान

साधारण-गणना-जन्य सामान्यानुमान में हम इस प्रकार तर्क करते हैं

मान लो, कई कौओं को हम काले देखते हैं और उनमें एक कालेपन का गुण पाया जाता है—इस पर से हम सामान्य वाक्य बना डालते हैं कि "सब कौए काले होते हैं"। उपमाजन्य-सामान्यानुमान में दो वस्तुओं को देखकर हम यह ज्ञान करते हैं कि दोनों में बहुतसी बातों की समानता है किन्तु एक वस्तु में एक बात अधिक है तो हम अनुमान करते हैं कि यह अधिक बात अन्य में भी अवश्य पायी जायगी। साधारणगणना-जन्य-सामान्यानुमान पद द्रव्यार्थ से सम्बन्ध रखता है। इसमें कौआ पद का द्रव्यार्थ हमारे ज्ञान में अधिक आता है जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण में प्रकट किया गया है। उपमाजन्य-सामान्यानुमान इसके विपरीत पद के भावार्थ से सम्बन्ध रखता है और वास्तविक उदाहरण में हमारा भावार्थ-विषयक ज्ञान मंगल ग्रह के बारे में बढ़ जाता है। क्योंकि द्रव्यार्थ और भावार्थ दोनों आपस में सम्बन्धित हैं इसलिये ये दोनों अनुमान के रूप एक दूसरे में मिल जाते हैं। यदि दोनों में अन्तर है तो केवल इतना ही कि साधारण-गणना-जन्य सामान्यानुमान में हम विशेष से सामान्य का अनुमान करते हैं और उपमाजन्य-सामान्यानुमान में यह नहीं होता कि हम कोई सामान्य वाक्य का निर्माण कर रहे हैं।

(६) उपमाजन्य-सामान्यानुमान की शक्ति

यह बतलाया जा चुका है कि उपमाजन्य-सामान्यानुमान अपूर्ण समानता पर निर्भर रहता है और इसलिये ही इसके द्वारा प्राप्त किये हुए निष्कर्ष सम्भावनात्मक गिने जाते हैं। सम्भावना का प्रश्न भी मात्राओं से सम्बन्ध रखता है। उपमाजन्य-सामान्यानुमान में तर्क की मात्रा शून्य से लेकर करीब-करीब निश्चय तक होती है। अब हम यहाँ उपमाजन्य-सामान्यानुमान की विशेषताएँ बतलायेंगे जिनपर इसकी शक्ति निर्भर रहती है।

मिल महोदय का कहना है कि उपमाजन्य-सामान्यानुमान का मूल्य निश्चित समानता के विस्तार पर निर्भर रहता है। इसमें हम भिन्नता की बातों को देखकर यह देखने का प्रयत्न करते हैं कि ऐसी अन्य कौन सी बातें हैं जिनमें समानता सिद्ध हो सकती है। बेकन का भी करीब-करीब ऐसा ही

कहना है "वे लिखते हैं उपमाजन्य-सामान्यानुमान में सम्भावना का माप, अज्ञात बातों को ज्ञातों के साथ तुलना करते हुये, भेदकता की बातों की सख्या और महत्ता के साथ-साथ समानता की बातों की सख्या और महत्ता से किया जाता है"। अत यह मानना पड़ेगा कि उपमाजन्य-सामान्यानुमान का सारा वल, भेदक और अज्ञात बातों की सख्या और महत्ता के साथ साथ समानता की बातों की सख्या और महत्ता पर, निर्भर रहता है। इसके लिये निम्नलिखित ३ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) ज्ञात बातों की जितनी अधिक सख्या और महत्ता होगी उतना ही अधिक उपमाजन्य सामान्यानुमान का मूल्य होगा। जैसे, मनुष्य और पशुओं में समानता की बातें सख्या में और महत्ता में मनुष्य और पौधों की अपेक्षा अधिक हैं। अत यह उपमाजन्य-सामान्यानुमान, "जैसे मनुष्य सुख और दु ख का अनुभव करते हैं वैसे ही पशु करते हैं", अधिक सम्भावना पूर्ण है अपेक्षा कृत इसके कि "जैसे मनुष्य सुख दुख का अनुभव करते हैं वैसे ही पौदे अनुभव करते हैं"।

(२) ज्ञात बातों की जितनी अधिक भिन्नता और महत्ता होगी उतना ही कम उपमाजन्य-सामान्यानुमान का मूल्य होगा। जैसे, पृथ्वी और चन्द्र में ज्ञात बातों की भिन्नता की सख्या और महत्ता पृथ्वी और मगल की अपेक्षा अधिक है। हम जानते हैं कि चन्द्र में वातावरण नही है और वायु जीवन का मुख्य तत्व है। अत चन्द्र में वातावरण का अभाव होना एक खास भिन्नता की बात है। इसकी अपेक्षा पृथ्वी और मगल में ज्ञात भिन्नता की बातों की सख्या और महत्ता कम है। अत यह तर्क कि 'चन्द्र में भी पृथ्वी की भाँति मनुष्यों का आवास है', 'मगल में पृथ्वी की तरह मनुष्यों का आवास है' की अपेक्षा बहुत कम सम्भावना-पूर्ण है।

(३) जितनी अधिक अज्ञात बातों की सख्या, ज्ञात बातों के साथ तुलना करने पर होगी, उतना ही उपमाजन्य सामान्यानुमान का मूल्य कम होगा। अमुक प्रकार की बातों की समानता अत्यधिक है और भिन्नता अत्यन्त अल्प है और हमारा ज्ञान दोनों के विषय में विशाल है, तो ऐसी अवस्था में उपमाजन्य-[illegible]

है किन्तु इतना तो निश्चित है कि यह उतनी निश्चयात्मकता को नहीं पहुँच सकता जितना सामान्यानुमान पहुँचता है।

ध्यान से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि उपमाजन्य-सामान्यानुमान का मूल्य केवल समानता की बातों की संख्या पर ही निर्भर नहीं है किन्तु उनकी महत्ता पर भी है। अन्य बातों के समान होने पर भी जितनी समानता की बातें अधिक होंगी, उपमाजन्य-सामान्यानुमान का मूल्य भी उतना ही अधिक होगा। लेकिन इसके कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि निष्कर्ष का मूल्य, समानता की ज्ञात बातों की संख्या के अनुपात के अनुसार होगा। उदाहरणार्थ हम यह तर्क कर सकते हैं "दो मनुष्यों का कद समान है, उनकी उम्र भी एक समान है, उनके नामों के संक्षिप्ताक्षर भी वही हैं दोनों एक ही मकान में रहते हैं एक ही गाँव के रहने वाले हैं। उनमें से एक बहुत अधिक बुद्धिमान है अतः दूसरा भी उतना ही बुद्धिमान होना चाहिये"। इस उदाहरण में उपमाजन्य-सामान्यानुमान निरर्थक है क्योंकि इसमें जितनी समानता की बातें बतलाई गई हैं वे कोई महत्व की बात नहीं हैं। इसलिये वेल्टन (Velton) साहब का इस विषय में उल्लेख विचारणीय है "उपमाजन्य-सामान्यानुमान के तर्क की शक्ति सारूप्यता के स्वभाव पर निर्भर रहती है न कि समानता के परिमाण पर"। बोसानकेट (Bosanquet) का यह कहना बिल्कुल ठीक है कि हमें समानता की बातों का सम्यक् सतुलन करना चाहिये इसकी अपेक्षा कि हम केवल उन्हें गिन कर छोड़ दें"।

कुछ तर्क शास्त्रियों ने उपमाजन्य-सामान्यानुमान का स्वरूप गणित शास्त्रीय-विधि द्वारा निम्नलिखित भिन्न के रूप में प्रगट किया है :—

$$\frac{\text{समानता}}{\text{विभिन्नता + अज्ञात बातें}}$$

इस गणित शास्त्रीय व्याख्या का अभिप्राय यह है कि अंश[1] उन बातों का बतलाता है जो तर्क की शक्ति का निर्माण करते हैं तथा हर[2] उन

(1) Numerator (2) Denominator

भागों का बनाया गया है जो तर्क की शक्ति को कमजोर बनाते हैं जिससे कि यह भिन्न उपमाजन्य-सामान्यानुमान के एक तर्क के मूल्य का समुचित विवरण दे सके। हमें यह विचार नही करना चाहिये कि गणित शास्त्रीय अनुपात से हम किमी उपमाजन्य-सामान्यानुमान के तर्क का मूल्याङ्कन ठीक ठीक कर सकते हैं। उपर्युक्त भिन्न, साधारण रूप से यह बतलाती है कि समानता की बातों की सख्या और महत्ता एक, अच्छी अनुकूल बातों को बतलाती है और अन्य दो, प्रतिकूल बातों को प्रकट करती हैं। इन दोनों अनुकूल और प्रतिकूल बातों से ही हम उपमाजन्य-सामान्यानुमान के स्वरूप का निर्णय कर सकते हैं।

उपर्युक्त प्रदर्शन से हम यह भी विचार कर सकते हैं कि उपमाजन्य-सामान्यानुमान के तर्क का मूल्याङ्कन करना एक प्रकार की यान्त्रिक प्रक्रिया है जैसी कि हम गणित शास्त्र में देखते हैं। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रक्रिया इतनी सरल नही है जैसा कि हमने समझ रक्खा है। इस विषय में हमारे सामने दो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। प्रथम, इसमें दो भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों से काम लिया गया है अर्थात् बातों की सख्या और उनकी महत्ता। इसके अतिरिक्त समानता की बातों की सख्या की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नही है जब कि उनकी महत्ता अत्यल्प हो, अत यह निर्णय करना कठिन है कि दिये हुये उदाहरण में हम सख्या को या महत्ता को विशेष स्थान दें और किसको अपना मार्गदर्शक बनावें। द्वितीय अज्ञात बातों के विषय में चर्चा करना निरर्थक है। यदि वे अज्ञात हैं तो हम कैसे जान सकते हैं कि उनकी सख्या क्या है? अज्ञात को हम कदापि तुलना का मापदड नही बना सकते।

(७) सम्यक् उपमाजन्य-सामान्यानुमान और मिथ्या उपमाजन्य-सामान्यानुमान

यह पहले बतलाया जा चुका है कि सादृश्यानुमान की शक्ति समानता की बातों की सख्या और महत्ता पर तथा विभिन्नता की बातों की सख्या और महत्ता पर तथा अज्ञात बातों की सख्या पर निर्भर है। अत सम्यक्[1]

(1) Good analogy

उपमाजन्य-सामान्यानुमान का अर्थ है कि यह वह तर्क है जिसमें दो वस्तुओं के अन्दर ज्ञात समानता की विद्यमानता को देखकर निष्कर्ष निकाला जाता है। मिथ्या उपमाजन्य सामान्यानुमान वह है जिसमें केवल बाहरी समानता की बातों को देखकर निष्कर्ष निकाला जाता है। फाउलर (Fowler) महोदय के शब्दों में यह कहा जा सकता है "मिथ्या-उपमाजन्य-सामान्यानुमान पद उन उपमाजन्य-सामान्यानुमानों के लिये प्रयुक्त किया जाता है जिनमें उपमाजन्य-सामान्यानुमान के लिये कोई आधार न हो। निम्नलिखित उदाहरण मिथ्या-उपमाजन्य-सामान्यानुमान के स्वरूप को अच्छी तरह व्यक्त करते हैं :—

(१) पशु मनुष्य के समान पैदा होते हैं खाते पीते हैं, बढ़ते हैं मर जाते हैं। मनुष्य भाषा का व्यवहार करते हैं इस लिये पशु भी भाषा का व्यवहार करते हैं। यह मिथ्या-उपमाजन्य-सामान्यानुमान है। इसमें समानता की बातों में और अनुमानित गुण में हम कोई ज्ञात सम्बन्ध नहीं पाते।

(२) पौधे पैदा होते हैं, बढ़ते हैं और नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य भी पैदा होते हैं बढ़ते हैं और नष्ट हो जाते हैं। मनुष्यों में बुद्धि होती है; अतः पौधों में भी बुद्धि होती है। यह मिथ्या उपमाजन्य-सामान्यानुमान है क्योंकि यहाँ भी समानता की बातों में और अनुमानित गुण में कोई विशेष सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता।

(३) कभी-कभी मिथ्या-उपमाजन्य-सामान्यानुमान के बड़े आश्चर्य जनक उदाहरण देखने में आते हैं। जैसे रेडियो ठेठ मनुष्य है क्योंकि वे मनुष्यों की तरह बोलते रोते गाते, और हँसते देखे जाते हैं। या ग्रामोफोन मनुष्य हैं क्योंकि वे मनुष्यों की तरह बोलते चालते और गाते पाए जाते हैं। दो विद्यार्थी एक ही कॉलिज में पढ़ते हैं दोनों की एक ही उम्र है, एक सी पोशाक पहनते हैं एक सी ही भाषा बोलते हैं, इस लिये दोनों एक समान बुद्धिवाले हैं, इत्यादि अनेक उदाहरण मिथ्या उपमाजन्य-सामान्यानुमान के दिये जा सकते हैं।

(1) Bad analogy

अभ्यास प्रश्न

(१) उपमाजन्य-सामान्यानुमान का क्या अर्थ है ? उपमाजन्य-सामान्यानुमानीय तर्क का लक्षण लिखकर उदाहरण दो। तथा यह भी बतलाओ कि इस प्रकार के तर्क का मूल्य किस बात पर निर्भर रहता है।

(२) उपमाजन्य सामान्यानुमान और वैज्ञानिक-सामान्यानुमान में क्या सम्बन्ध है ? दोनों के लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(३) उपमाजन्य-सामान्यानुमान किस बात पर निर्भर रहता है ? सम्यक् और मिथ्या उपमाजन्य-सामान्यानुमानों के लक्षण लिखकर अलग-अलग उदाहरण दो।

(४) उपमाजन्य-सामान्यानुमान का लक्षण, मूल्य, और उपयोगिता लिखकर यथार्थ और बीजात्मक उदाहरण दो।

(५) उपमाजन्य-सामान्यानुमान की शक्ति का माप किस प्रकार किया जाता है ? उदाहरण देकर समझाओ।

(६) 'उपमाजन्य-सामान्यानुमान में हमें समानता की बातों को तोलना चाहिये' इस कथन से क्या अभिप्राय है ? स्पष्टार्थ लिखो।

(७) सामान्यानुमान के प्रकरण में उपमाजन्य-सामान्यानुमान का क्या स्थान है ? इस पर अपने विचार प्रकट करो।

(८) 'सब अनुमानों का मूल समानता है' इस पर अपने समालोचनात्मक विचार प्रकट करो।

(९) उपमाजन्य-सामान्यानुमान को किस अर्थ में अपूर्ण गिना गया है ? अपने विचार प्रकट करो।

(१०) 'उपमाजन्य-सामान्यानुमान का मूल्य समानता के प्रकार तथा मात्रा पर अवलम्बित रहता है' इस कथन का स्पष्ट विवेचन करो।

(११) "उपमाजन्य-सामान्यानुमान से प्राप्त निष्कर्ष सम्भावनात्मक होते हैं" यह कथन कहाँ तक ठीक है ? स्पष्ट उत्तर दो।

(१२) उपमाजन्य-सामान्यानुमान की साधारण गणनाजन्य सामान्यानुमान के साथ तुलना करो।

अध्याय १०

(१) नियम के भिन्न-भिन्न अर्थ

नियम (Law) शब्द का अर्थों में प्रयोग किया गया है। मूल में इसका प्रयोग किसी विशिष्ट सत्ता की आज्ञा के अर्थ में किया गया था जिसका पालन करना आवश्यक होता था। पश्चात् इसका प्रयोग एक-रूप वाले सम्बन्धों में किया जाने लगा जो प्राकृतिक पदार्थों में पाये जाते हैं तथा इनके अतिरिक्त इसका प्रयोग एक प्रकार के मापदण्ड के अर्थ में भी किया गया है जिसके अनुसार हमें बर्तना चाहिये यदि हम किसी उद्देश्य की प्राप्ति करना चाहते हैं।

प्रथम नियम का अर्थ है आज्ञा या परमात्मा या किसी महान के मुख से निकलती है और एक समाज पर लागू जाती है जो उसके अधीन होती है। इसके अन्दर एकता का भाव छिपा रहता है जिसका प्रजा या समाज अच्छी तरह जानकर प्रतिपालन करती है और इस प्रकार की एकता का भाव समाज या प्रजा के व्यवहार में सुगमता और एकरूपता को पैदा करता है। इस अर्थ में हम जितने राज्य के नियम (Laws of the State) हैं उन सब को सम्मिलित करते हैं। यह नियम का मौलिक अर्थ है।

द्वितीय नियम का अर्थ 'एकरूपता' भी है। इस अर्थ में हम प्रकृति के नियमों को लेते हैं। प्रकृति के नियम से हमारा अभिप्राय उन एकरूप सम्बन्धों से होता है जो प्राकृतिक पदार्थों में पाए जाते हैं। प्राकृतिक नियम से यह कदापि ध्वनित नहीं होता कि विश्व में कोई सर्वोपरि सत्ता है जिसकी आज्ञा का परिपालन आवश्यक है। इनका केवल यही अर्थ है कि विश्व में कुछ नियम हैं जो अपने आप कार्य करते हैं। जिनका न आदि है और न अन्त।

यथार्थ में देखा जाय तो प्रतीत होगा कि प्राकृतिक नियमों को हम

नियम, केवल सादृश्यानुमान की दृष्टि से पुकारते हैं। हमें प्रतीत होता है कि प्राकृतिक पदार्थों में जो क्रम दृष्टिगोचर होता है वह एक नियम-बद्धता का सूचक है और उसकी समानता मनुष्य के व्यवहार के साथ पाई जाती है जो राज्य के नियमों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। एक-रूपता का भाव आज्ञा से अलग करके नियम के अर्थ, एकरूपता में सवद्ध कर दिया गया है। सम्भव है यह अर्थ, मूल में विश्व की नियन्त्रण करने वाली शक्ति को देखकर किया गया हो, किन्तु इस प्रकार का अभिप्राय अब नहीं लिया जाता है। विज्ञान के क्षेत्र में नियम का अर्थ है केवल एकरूपता। यह वैज्ञानिक अभिप्राय लेपलेस (Laplace) के शब्दों मे अच्छी तरह व्यक्त किया जा सकता है जब कि उसने सम्राट नेपो-लियन के प्रश्न के उत्तर के रूप में अपना विचार प्रकट किया था। एक दिन सम्राट नेपोलियन ने लेपलेस से कहा, "महाशय, लोग कहते हैं आपने एक सुन्दर पुस्तक 'मेकेनिक सेलेस्टे' (Ma'canique Ce'leste) लिखी है जो विश्व के सगठन की चर्चा करती है किन्तु उसमें आपने जगत्कर्ता का नाम कहीं नहीं लिया है"। ज्योतिषी लेपलेस ने सावधान होकर उत्तर दिया "महाराज, मुझे इस प्रकार की कल्पना कभी आवश्यक ही नहीं पड़ी"। विज्ञान केवल पदार्थों से सम्बन्ध रखता है। पदार्थों की व्याख्या करना ही इसका उद्देश्य है। यह दर्शनशास्त्र या धर्म-शास्त्र का काम है कि वे ईश्वर या जगत्कर्ता की खोज करें। अतः नियम का प्रयोग विज्ञान के क्षेत्र में केवल एकरूपता के लिए ही किया गया है, और इसका यही अर्थ उपयुक्त है।

इस प्रकार हम राज्य के नियम और प्रकृति के नियम के मध्य जो अन्तर है उसे भली भाँति समझ सकते हैं। राज्य के नियम परिवर्तनीय हैं और उन्हें उल्लघित भी किया जा सकता है किन्तु प्रकृति के नियमों को न तो कोई परिवर्तित कर सकता है और न कोई उनका उल्लघन कर सकता है। राज्य के नियम परिवर्तनीय इसलिये हैं क्योंकि वे भिन्न भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं और एक ही देश में भी देश, काल, क्षेत्र की अपेक्षा बदलते रहते हैं, किन्तु प्रकृति के नियमों को नहीं बदला जा-

सकता। यह हो सकता है कि हमारा ज्ञान एक खास नियम के विषय में सम्पूर्ण हो और जिसको हम एक समय, प्रकृति का नियम समझते हों और यह पश्चात् प्रकृति का नियम न रहे। प्राकृतिक नियम कभी परिवर्तनशील नहीं होते। राज्य के नियमों का उल्लंघन किया जा सकता है किन्तु प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। हम आकर्षण के नियम का कभी उल्लंघन नहीं कर सकते; किन्तु किसी देश के राज्य के नियम का हम सरलता से उल्लंघन कर सकते हैं जैसे अपराध-सम्बन्धी, या उत्तराधिकार-सम्बन्धी या सम्पत्ति-सम्बन्धी नियमों की अवहेलना की जा सकती है।

तृतीय, नियम शब्द का प्रयोग 'मापदंड' के अर्थ में भी किया जाता है। हमें किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कुछ मापदण्डों के अनुरूप कार्य करना पड़ता है। इस अर्थ में हम तर्कशास्त्र के नियम, सौन्दर्य-शास्त्र के नियम, और आचरण-शास्त्र के नियमों को लेते हैं। तर्कशास्त्र में सत्य का आदर्श होता है, सौन्दर्य शास्त्र में सौन्दर्य का आदर्श होता है, और आचरण शास्त्र में कल्याण का आदर्श होता है। यदि हम इन आदर्शों को प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें कुछ नियमों का अनुसरण करना होगा। अतः नियम का अर्थ मापदण्ड भी है।

प्राकृतिक नियमों और नियामक शास्त्रों के नियमों में निम्नलिखित भेद हैं। नियम एकरूपता के अर्थ में वस्तु-स्थिति-वाचक होता है। यह वस्तुओं की जैसी स्थिति होती है उनको उसी प्रकार वर्णन करता है। तथा इसके अतिरिक्त उस नियम को आदर्शात्मक (Normative) कहा जाता है जो किसी लक्ष्य की ओर संकेत करता है अर्थात् यह वस्तुओं को उस प्रकार प्रतिपादन करता है जैसा उनको होना चाहिये। प्रकृति के नियम वस्तुस्थिति प्रति-पादक होते हैं क्योंकि वे यह बतलाते हैं कि पदार्थ किस प्रकार वर्तते हैं। जैसे, आकर्षण का सिद्धान्त बतलाता है कि भौतिक पदार्थ एक दूसरे को खींचते हैं। किन्तु एक सौन्दर्य शास्त्र का नियम यह बतलाता है कि सुन्दर पदार्थों को यदि वे सुन्दर हैं तो एक सौन्दर्य के मापदण्ड के अनुसार किस प्रकार का होना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता किन्तु सौन्दर्य

शास्त्र या तर्कशास्त्र के नियमों का उल्लघन हो सकता है। इस विषय पर मेकेन्जी महोदय (Mackenzie) ने अच्छा प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं 'नियम के ठीक अर्थ न समझने के कारण बहुत गड़बड़ी हो गई है। इसके प्रायः दो अर्थ प्रधानरूप से लिये जाते है। हम देश या राष्ट्र के नियमों की भी चर्चा करते हैं और प्रकृति के नियमों का भी उल्लेख करते हैं, किन्तु हमें यह अवश्य जानना चाहिये कि दोनों प्रकार के नियम भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। किसी देश के नियम या राष्ट्र के नियमों का निर्माण या तो वहाँ की जनता द्वारा होता है या वहाँ के शासक उन्हें बनाते हैं। मीडीज़ (Medes) और पर्शियन्स के बारे में तो यह सर्वथा सम्भव है कि वे उनको बदल भी दें। तथा यह भी सम्भव है कि उन देशों के निवासी उनको न भी मानें। आमतौर से जहाँ तक अन्य देशों का सम्बन्ध है उनके नियम अन्य देशवासियों पर बिलकुल लागू नहीं होते हैं। इसके विपरीत प्राकृतिक नियम स्थिर, अनुल्लघनीय तथा सर्वव्यापी होते हैं' १

हम सब प्रकार के नियमों क ऊपर तीन अपेक्षाओं से विचार कर सकते हैं। कुछ नियम स्थिर होते हैं और दूसरे परिवर्तनीय होते हैं। कुछ अनुल्लघनीय होते है, और दूसरे उल्लघनीय होते हे। कुछ विश्वव्यापी होते हैं और कुछ सीमित क्षेत्र में लागू होते हैं। उपर्युक्त तीन प्रकार के वर्गीकरणों में से अन्तिम को हम कठिनता से अलग कर सकते हैं क्योंकि जो विश्वव्यापी होता है वह प्राय. करके स्थिर और आवश्यक भी होता है और जो स्थिर और आवश्यक होता है वह विश्वव्यापी भी होता है। अत. भिन्न भिन्न प्रकार के नियमों को अलग-अलग करना आवश्यक है। इसके दो सिद्धान्त हैं (१) परिवर्तनीय या अपरिवर्तनीय (२) उल्लघनीय या अनुल्लघनीय। इन सिद्धान्तों का आश्रय लेकर हमें ४ प्रकार के भिन्न-भिन्न नियम मिलते हैं (१) वे नियम जो बदल सकते हैं और जिनका उल्लघन भी किया जा सकता है (२) वे नियम जो बदले जा सकते हैं किन्तु जिनका उल्लघन नहीं किया जा सकता (३) वे नियम जिनका उल्लघन किया जा सकता है किन्तु जो बदले नहीं जा सकते। (४) वे नियम जिनको न बदला ही जा सकता है और न जिनका उल्ल-

कम ही हो सकता है। प्रथम और अन्तिम प्रकार के नियमों के उदाहरण दिये जा चुके हैं। द्वितीय प्रकार के नियमों के निम्नलिखित उदाहरण हैं —

सौर जगत् के नियम, रात और दिन के नियम, बीज बोने और काटने के नियम, ऋतुओं के परिवर्तन के नियम ऐसे हैं जिनको कोई नहीं बदल सकता जब तक कि उस प्रकार की अवस्थायें विद्यमान रहती हैं, यदि ये अवस्थायें बदल जाती हैं—मानलो सूर्य ठंढा हो जाय, या पृथ्वी की गति में परिवर्तन हो जाय, या इसकी टक्कर किसी अन्य ग्रह से हो जाय या उल्का-पात हो जाय तो नियम भी बदल जायँगे। राजनीतिक अर्थशास्त्र के बहुत कुछ नियम इसी प्रकार के हैं। ये एक प्रकार के विशेष सामाजिक वातावरण में तथा उन मनुष्यों में जिनके कुछ विशेष स्वभाव होते हैं काम करते हैं और इस अर्थ में इन्हें अपरिवर्तनीय कहा जाता है। किन्तु यदि वातावरण को बदल दिया जाय या मनुष्यों के स्वभाव बदल जाँय तो हम देखेंगे कि बहुत अर्थों में नियम स्थिर नहीं रहेंगे। इस प्रकार के नियमों को सापेक्ष नियम (Conditional rules) भी कहा जाता है। इनकी सत्यता तभी तक मानी जाती है जब तक उस प्रकार का वातावरण रहता है और वह नहीं बदलता। कुछ तार्किकों का यह भी विचार है कि गणित-शास्त्र-सम्बन्धी नियम भी लगभग इसी प्रकार के हैं—हम ऐसी दुनियाँ की भी कल्पना कर सकते हैं जिसमें दो और दो पाँच माने जाते हों और यदि पृथ्वी के व्यासार्ध को आधार मानकर एक त्रिभुज बनाया जाय और किसी तारे को उसका शीर्ष-बिन्दु मान लिया जाय तो हम देखेंगे कि इस प्रकार के त्रिभुज के तीन कोण मिलकर दो समकोण के बराबर नहीं होंगे। किन्तु इस प्रकार का चिन्तन गलत प्रतीत होता है क्योंकि गणित-शास्त्र-सम्बन्धी नियम यथार्थ में उपर्युक्त चार वर्गों में से अन्तिम वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं।

जहाँ तक नैतिक शास्त्र (Ethics) सम्बन्धी नियमों का विचार है वे अवश्य ही तृतीय वर्ग के नियमों से सम्बन्ध रखते हैं। उनको कोई परिवर्तित नहीं कर सकता किन्तु उनका उल्लंघन अवश्य किया जा सकता है। कुछ हद तक यह बात मानी जा सकती है कि व्याकरण-शास्त्र

सम्बन्धी कुछ नियम मनुष्य जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के कारण बदल सकते हैं, किन्तु जहाँ तक विशाल सिद्धान्तों का विचार है वे कदापि नहीं बदलते। उनका प्रयोग सब मनुष्यों के लिये साधारण होता है और सब बुद्धिमान उन्हें सार्वभौम ही समझते हैं। मानलो किसी अन्य संसार से कोई मनुष्य हमारे संसार में आ जाय तो यह सम्भव है कि हम उसके स्वभाव या शारीरिक संगठन का ज्ञान प्राप्त कर सकें, किन्तु इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि उसके लिये भी 'अहिंसा परम धर्म होगा' वह 'झूठ बोलना पसंद न करेगा'। वह यह अवश्य समझेगा कि 'जीवन प्रक्रिया एक दूसरे पर निर्भर है', संसार में जो कुछ होता है उसका कोई न कोई कारण अवश्य है,' इत्यादि। इसी हेतु से नैतिक या आचरण-शास्त्र-सम्बन्धी नियम अपरिवर्तनीय समझे जाते हैं किन्तु वे तोड़े जा सकते हैं।

नियमों का वर्गीकरण

सामान्यता की मात्रा के विचार से नियमों का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया जाता है—(१) स्वयं-सिद्ध[1] (२) प्राथमिक[2] या अन्तिम नियम और (३) सहायक या अमुख्य नियम[3]।

(१) स्वयं सिद्ध

स्वयं सिद्ध नियम वे कहलाते हैं जो यथार्थ हों, सार्वभौम हों, तथा अपनी सिद्धि के लिये किसी अन्य नियम की अपेक्षा न रखते हों। इस लक्षण से यह प्रतीत होता है कि स्वयं सिद्ध —

(१) यथार्थ (Real) वाक्य हैं, शाब्दिक या लक्षण-रूप नहीं।

(२) सामान्य (Universal) वाक्य हैं। इनका उपयोग सार्वभौम होता है। प्रत्येक स्वयंसिद्ध अपने अपने क्षेत्र में सत्य होता है। क्योंकि ये सर्व साधारण और चरम सामान्यता को लिये हुए होते हैं, इसलिये इनसे अधिक सामान्यधर्म वाले नियम नहीं होते। कुछ स्वयं-सिद्ध अन्य

---

(1) Axioms (2) Primary or ultimate laws (3) Secondary laws

स्वयं सिद्धों से अधिक सामान्यधर्म वाले होते हैं जैसे—विचारों के नियम (तादात्म्य, आत्यन्तिक विरोध मध्यमयोगपरिहार) गणित शास्त्र-सम्बन्धी नियमों से अधिक सामान्यधर्म को धारण करते हैं, क्योंकि गणित-शास्त्र-सम्बन्धी नियम केवल परिमाण से ही सम्बन्ध रखते हैं। हालाँकि गणित-शास्त्रीय नियम अपने क्षेत्र में अत्यधिक सामान्य धर्म वाले होते हैं।

(३) अपने आप सिद्धि को लिये हुए वाक्य हैं अर्थात् प्रत्येक की सिद्धि अपने पर निर्भर है। स्वयं-सिद्धों को सिद्ध करने के लिये किसी अन्य प्रमाण या सिद्धि की आवश्यकता नहीं। इनकी प्रामाणिकता के लिये किसी तर्क की ज़रूरत नहीं प्रतीत होती। ये इतने सरल होते हैं। कि इनकी प्रामाणिकता को अपने आप स्वीकार करना पड़ता है। इनके द्वारा कितने ही अन्य-सिद्धान्त सिद्ध किये जाते हैं। अतः प्रत्येक ज्ञान विज्ञान में कुछ न कुछ इस प्रकार के स्वयं-सिद्धों को माना जाता है जो उनकी आधार शिला का कार्य करते हैं। तर्क-शास्त्र विचारों के नियमों की सत्यता को मानकर चलता है। कार्वेथ रीड ने ठीक कहा है कि स्वयं सिद्ध तर्कशास्त्र की उर्ध्व सीमा को निर्धारित करते हैं जिनको तर्कशास्त्र, अन्य विज्ञानों की भाँति स्वीकार कर चलता है और जितने निगमना-नुमानीय और सामान्यानुमानीय तर्क हैं वे सब इनके द्वारा नियंत्रित किये जाते हैं'।

(२) माध्यमिक या अन्तिम नियम

स्वयं सिद्धों के अनन्तर माध्यमिक या अन्तिम नियमों की गणना की जाती है। माध्यमिक या अन्तिम नियम स्वयंसिद्धों से कम सामान्य-धर्म वाले होते हैं; किन्तु भिन्न-भिन्न विज्ञानों के क्षेत्र में ये सब से अधिक सामान्यता के प्रतिपादक कहे जाते हैं। इसी हेतु से उनकी सिद्धि की जाती है। ये नियम सब से अधिक सामान्यता के प्रतिपादक होते हैं जिनको भिन्न भिन्न विज्ञान सिद्ध करते हैं। आकर्षण शक्ति का नियम माध्यमिक नियम है।

(३) सहायक या अमुख्य नियम

सहायक – नियम, प्राथमिक या मुख्य नियमों से कम सामान्य धर्म वाले होते हैं। बेकन के शब्दों में इन्हें मध्यवर्ति-स्वय-सिद्ध (Media axiometa) कहा जाता है क्योंकि इस क्रम से ही हम उच्चतर नियमों के निर्माण मे समर्थ होते हैं। बेन महोदय का कहना है कि सहायक नियम उद्गमन कर के केवल प्राथमिक नियमों का ही रूप नहीं धारण करते अपितु प्राथमिक नियम स्वय सहायक नियमों में निगमन करते हैं। या हम यह भी कह सकते हैं कि प्राथमिक नियमों से हम सहायक नियमों को निकालते है और इस प्रकार उनको हम अधिक निश्चित रूप में प्रकट करते हैं। सहायक-नियम या तो अनुभव जन्य होते हैं या निष्कासित।

अनुभव-जन्य नियम (Empirical laws) **उन सहायक नियमों को कहते हैं जिनको हम अधिक सामान्य नियमों में अन्तर्भूत कर सकते हैं किन्तु अभी तक किया नहीं है।** यथार्थ में ये वे नियम हैं जिनका स्वरूप अभी तक निश्चित ही नहीं किया गया है। अत प्रथम, अनुभवजन्य नियम, क्योंकि वे सहायक नियम हैं, इसलिये प्राथमिक नियमों से कम सामान्य धर्म वाले है। द्वितीय, उन्हें अधिक सामान्य नियमों से निकाला जा सकता है, हम अभी तक उनको अधिक सामान्य नियमों में से निकालने को समर्थ नहीं हुए हैं। अन्वय विधि से निकाले हुए निष्कर्ष अनुभव-जन्य नियम कहे जाते हैं। यह पहले बतलाया जा चुका है कि अन्वय-विधि कारणता को सिद्ध नहीं कर सकती, किन्तु उसके विषय में सूचना या राय दे सकती है। इससे हम इतना ही जान सकते हैं कि दो वस्तुएँ या घटनाएँ एक साथ पाई जाती हैं। यह एक अनुभवजन्य नियम है। हम यह विश्वास करते हैं कि यह उच्चतर नियमों से निकाला जा सकता है, यद्यपि हमने इसको अभी निकाला नहीं है। 'कुनैन जूड़ी के बुखार या ज्वर को दूर करती है' यह एक अनुभवजन्य-नियम है। इस प्रकार की एक रूपता की स्थापना प्रत्यक्षीकरण द्वारा की जाती है। इसको अनुभव जन्य इस हेतु से कहते हैं क्योंकि यह अभी तक किसी उच्चतर नियम से नहीं निकाला गया है।

निष्कासित नियम (Derivative laws) वे सहायक नियम हैं जो प्राथमिक नियमों से निकाले जाते हैं। इस प्रकार जब अनुभवजन्य-नियम प्राथमिक नियमों से निकाले जाते हैं तब उन्हें निष्कासित नियम कहा जाता है। उदाहरणार्थ ऊँचे पहाड़ों पर बर्फ का गिरना किसी समय अनुभवजन्य-नियम माना जाता था। यह बहुत उदाहरणों में सत्य पाया गया है। इसको उच्चतर नियमों से अभी तक नहीं निकाला गया था; किन्तु अब इसको उन नियमों में सम्मिलित कर लिया गया है जो वायुमण्डल ताप से सम्बन्ध रखते हैं जो वायुमंडल से गुजरता है। उसी प्रकार पार्थिव-आकर्षण-शक्ति के नियम या ज्वारभाटा के नियम अनुभव-जन्य नियम माने जाते हैं किन्तु ये भी नियम निष्कासित नियम कहलाते हैं जब हम इनको आकर्षण-शक्ति के नियम से निकालते हैं।

यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि सहायक नियमों का सीमित प्रयोग होता है। जैसा कि बेन ने कहा है "निष्कासित नियम या अनुभव-जन्य नियम को समय क्षेत्र या अवस्था की सीमा के पार नहीं ले जाना चाहिये"। कारवेथ रीड का भी मन्तव्य लगभग इसी प्रकार का है "सहायक नियमों का विश्वास केवल समीपवर्ती उदाहरणों में ही किया जा सकता है। अर्थात् जहाँ अवस्थायें उनके समान हैं जिनमें नियम सही सिद्ध होते हैं।

जहाँ तक कि निष्कासित नियमों का सम्बन्ध है हम उन्हें केवल एक सामान्य नियम से निकाल सकते हैं या कई सामान्य नियमों से। जब ऐसा नियम किसी एक सामान्य-नियम से निकाला जाता है तब यह उसी प्रकार सामान्य रूप से सत्य होगा जैसे कि वह एक सामान्य नियम, जिससे यह निकाला गया है। किन्तु जब यह कई नियमों में से निकाला जाता है तब उन कई नियमों को अवश्य ही किसी रूप में सहयुक्त होना चाहिये और वहाँ किसी अन्य प्रतिरोधी नियमों को काम न करना चाहिये। जैसे, 'पानी को हम समुद्र की सतह से करीब ३३ फीट ऊँचा पम्प कर सकते हैं' यह नियम निष्कासित है। यह हमारी पृथ्वी पर सत्य है और यह मंगल ग्रह पर भी सत्य है। लेकिन यह हम तब जान सकते हैं जब हमें यह मालूम हो कि मंगल ग्रह पर इसी

प्रकार के, पानी जैसे तरल पदार्थ विद्यमान हैं। वहाँ पर भी उसी प्रकार का वातावरण है और उसका इसी प्रकार का दबाव[1] है। यदि वहाँ वातावरण नहीं है तो वहाँ पम्प द्वारा पानी ऊपर नहीं ले जाया जा सकता है। यदि वहाँ यहाँ से कम दबाव है तब भी उतनी दूर तक पानी पम्प द्वारा नहीं ले जाया जा सकता है। अब यह अनुभव निष्कासित नियमों के लिये सत्य है तो यह अनुभव-जन्य नियमों के लिये जिनको कि अभी तक किसी उच्चतर नियम से नहीं निकाला गया है, सत्य होगा। अनुभव जन्य-नियम के विषय में हम उनकी अवस्थाओं या कारणों से सर्वथा अनभिज्ञ रहते हैं और हम नहीं जानते कि यह नियम से निकाला गया है या अनेक नियमों से निकाला गया है। अत हमारे लिये यह कहना असंभव है कि असम्मिलित नियम अपनी सीमाओं के, जिनके अन्दर यह काम करता रहा है, परे भी सत्य सिद्ध होगा। उदाहरणार्थ, चिकित्सा-विज्ञान मे हमारा ज्ञान प्राय. करके अनुभव-जन्य-नियमों पर अवलम्बित रहता है। हम ऐसा अनुमान कभी नहीं कर सकते कि दो दवाए जो एक प्रकार की ही हैं उनका प्रभाव एक सा ही होगा। जैसे चिन्कोना की छाल और कुनैन का एक प्रकार का ही असर नहीं होता, यद्यपि चिन्कोना कुनैन का ही साधारण रूप है और कुनैन उसका विशेष-रूप आवश्यक सत् है।

(३) अन्य प्रकार के सहायक नियम

(क) अपरिवर्तनीय और आसन्न-सामान्य-नियम—

सहायक नियमों के दो भेद होते है.—(१) अपरिवर्तनीय सामान्य-नियम और (२) आसन्न सामान्य-नियम।

अपरिवर्तनीय सामान्य नियम (Invariable Generalisation) **वे कहलाते है जो विश्व में व्यापक रूप से जहाँ तक हमारे अनुभव का सम्बन्ध है, सत्य हों।** उदाहरणार्थ, 'सब कौए काले होते हैं' 'सब पार्थिव वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती हैं'। ये नियम अपरिवर्तनीय हैं क्योंकि इन वाक्यों में उद्देश्य और विधेय में सर्वव्यापकता का सम्बन्ध है। यह तथ्य हमारे अनुभव से भी सिद्ध है।

---

(1) Pressure

सन्निकट-सामान्य-नियम (Approximate generalisatiou) के रूप निम्नलिखित होते हैं:—बहुत से 'क' 'ख' होते हैं। "बहुत सी धातुएँ सामान्य ताप में ठोस ही रहती हैं" 'अधिकतर हैजा और प्लेग के मामले खतरनाक होते हैं', 'अधिक संख्यक मनुष्य स्वार्थी होते हैं', उत्तरी ध्रुव में रहने वाले जीव प्रायः सफेद रंग के होते हैं, इत्यादि। ये सब वाक्य करीब-करीब सामान्य रूप हैं, पूर्ण-रूप से नहीं। इनमें से कुछ सामान्य वाक्य अनुभव-जन्य हैं क्योंकि वे सर्वथा अनुभव पर ही निर्भर हैं और उनको अभी तक उच्चतर सामान्य-नियमों से नहीं निकाला गया है। तथा कुछ इनमें से एक अंश से अनुभवजन्य हैं तथा अन्य अंश से निष्कासित हैं। उदाहरणार्थ, 'उत्तरी ध्रुव के रहनेवाले जीव प्रायः गोरे होते हैं'। यह नियम एक अंश से निष्कासित है क्योंकि उनका गोरा होना अधिक काल तक बर्फ में उनके रहने के कारण होता है। तथा दूसरे अंश से यह अनुभवजन्य है क्योंकि हम अनुभव से यह जानते हैं कि वहाँ के रहनेवाले गोरे होते हैं।

सन्निकट-सामान्य-नियमों के विषयों में यह आवश्यक है कि हम उनमें आये हुए अपवादों का स्पष्टीकरण कर दें। जब हम कहते हैं कि 'प्रायः करके ऐसा होता है' तब हमारा अभिप्राय यही होता है कि 'कुछ में ऐसा नहीं भी होता है'। इसके लिये हमें इनके कारण या इनकी व्याख्या खोजनी चाहिये। यदि हमें इन अपवादों के कारण का पता लग जाता है तो हमारा नियम सर्वव्यापक बन जाता है और उस समय हमारा सामान्य वाक्य इस प्रकार का होता है 'सब धातुएँ, केवल पारे को छोड़कर, ठोस हैं।' किन्तु जब हम इसी वाक्य को इस प्रकार लिखते हैं—''सब धातुएँ, केवल एक को छोड़कर ठोस हैं'', तब यह विशेष वाक्य होता है और हम पता नहीं होता कि वह अपवाद क्या है ?

इस प्रकार के वाक्यों का जब हम मूल्यांकन करते हैं तब हमें प्रतीत होता है कि सन्निकट-सामान्य-नियमों के परिणाम सम्भावनात्मक होते हैं निश्चित नहीं। इन नियमों की प्रयोगात्मक क्षेत्र में अधिक उपयोगिता हो सकती है किन्तु वैज्ञानिक क्षेत्र में उनका कोई विशेष उपयोग नहीं। उन अवस्थाओं में जहाँ पदार्थों की अज्ञात परि-

लता है और सर्वव्यापक सामान्य वाक्यों का निर्माण नहीं किया जा सकता वहाँ आसन्न सामान्य-वाक्यों से वैज्ञानिक कार्य चलाया जाता है। जैसे, राजनैतिक शास्त्र में आसन्न-सामान्यीकरणों से अत्यधिक कार्य चलाया जाता है, क्योंकि राजनैतिक नियम प्राय कर के ठीक होते हैं। देखा जाता है कि एक देश के मनुष्य भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले होते हैं हैं। उनकी शिक्षा भो अन्य प्रकार की होती है। उनके जीवन के स्तर भी भिन्न भिन्न होते हैं, अतः उनके बारे में सर्वव्यापक नियमों का बनाना असभव सा हो जाता है। उनके विषय में नियम प्राय के अर्थ को लेकर ही बनाए जाते हैं। उदाहरण के लिये जैसे, 'दड का भय लोगों को अपराध करने से रोकता है' तो इससे राजनैतिक नेता को एक आवश्यक गतिविधि की सूचना ले लेनी चाहिये। आसन्न-सामान्य नियम वैज्ञानिक क्षेत्र में भी लाभप्रद होते हैं। जब हम किसी नियम की क्रमबद्ध, गणना (Statistics) करना आरम्भ करते हैं, जैसे, यह देखा जाता है कि अस्सी प्रतिशत टीका लगाए हुये व्यक्ति चेचक की बीमारी से उन्मुक्त रहते हैं—तो हम अवश्य इस प्रकार का सामान्यीकरण कर डालते हैं कि 'टीका लगाना चेचक का अच्छा इलाज है'। यह सामान्यीकरण आसन्न-सामान्यीकरण ही कहलाया जा सकता है।

(४) क्रमवर्ती और सहवर्ती सहायक नियम—

सहायक नियमों के दो अन्य प्रकार भी हो सकते हैं—(१) क्रमवर्ती और (२) सहवर्ती।

क्रमवर्ती-सहायक-नियमों (Secondary laws of succession) नियमों की तीन विधियाँ पाई जाती हैं :—(१) जिनमें साक्षात् कार्य-करण भाव पाया जाय। जैसे, "रोटी खाने से भूख मिटती है'। (२) जिनमें सुदूर कार्य-कारण भाव पाया जाय। जैसे, 'मेघाच्छन्न आकाश में बिजली चमकने से धड़ाका होता है'। (३) जहाँ सम्मिलित कार्य-कारण-भाव पाया जाय। जैसे, 'दिन के अनन्तर रात्रि उत्पन्न होती है'। इन दोनों का होना पृथ्वी की गति से सम्बन्ध रखता है।

सहवर्ती-सहायक नियम (Secondary laws of co-existence)

कई प्रकार के होते हैं।—(१) अन्वयविध्याश्रित-सामान्य-नियम[1], वे नियम हैं जो अन्वय विधि पर अवलम्बित होकर सामान्य वाक्य का निर्माण करते हैं; जैसे 'सब आकर्षणयुक्त पदार्थ क्रियारहित होते हैं'। (२) स्वाभाविक-प्रकाराश्रित-गुण-सहवर्तित्व-प्रतिपादक नियम[2] वे हैं जो स्वाभाविक प्रकारों के मध्य सहवर्ती गुणों का प्रतिपादन करते हैं। जैसे, सुवर्ण में अनेक प्रकार के गुणों का सहवर्तित्व पाया जाता है। (स्वाभाविक प्रकार वस्तुओं के वे वर्ग हैं जो आपस में समानता रखते हैं और अनेक गुणों में दूसरों से भेदकता रखते हैं) (३) एक-प्रकारबद्ध-सहवर्ति-गुणान्वित-समान-नियम[3], वे हैं जो किसी एक प्रकार में सहवर्ती गुणों को न दिखलाते हों किन्तु अन्य प्रकारों में दिखलाते हों। जैसे, सफेद रोम नाम की बिल्लियाँ जिनकी नीली आँखें होती हैं, बहरी होती हैं। (४) आपेक्षिक स्थान-अन्य-स्थिरता प्रतिपादक नियम[4] वे हैं जो वस्तुओं की आपेक्षिक स्थिरता को बतलाते हों। जैसे ज्यामिति सम्बन्धी आकृतियों में चार या चौथा अथवा पक्षों की भुजाएँ।

इन सहवर्ती नियमों को हम कारणता के सम्बन्ध में सम्मिलित कर सकते हैं। जब सहवर्ती नियम कारणता के सम्बन्ध के आधार पर सिद्ध नहीं किये जा सकते हैं तब हम उनको केवल उदाहरणों की गणना कर प्रकृति की एक रूपता पर विश्वास करते हुए, सिद्ध कर सकते हैं। यदि अपवाद न मिलें तो हमारे नियम अनुमान-जन्य कहलावेंगे जो हमारी खोज के क्षेत्र में हमको सम्भावनात्मक ज्ञान प्रदान कर सकते हैं। यदि अपवाद पैदा होते हैं तो हमारे समानीकरण आगम-सामान्यीकरण कहलावेंगे। जैसे "अधिकतर बालुएँ सफेद होती हैं। 'काले बादलों के आनेपर प्रायः वर्षा होती है'। इत्यादि।

(1) Certain laws based on the Method of Agreement.

(2) Coexistence of properties in the Natural Kinds.

(3) Certain Coincidences of qualities not essential to any kind and sometimes prevailing to many different kinds.

(4) Constancy of relative position.

(५) विश्व एक नियामक संगठन है

जिस विश्व को हम देखते हैं है वह एक नियम-पूर्ण सगठन है। प्रथम, इसमे नियम हैं जो प्रकृति के भिन्न भिन्न विभागों का नियन्त्रण करते हैं। द्वितीय, भिन्न भिन्न विभाग एक दूसरे से सर्वथा प्रथक् नहीं है किन्तु एक सुव्यवस्थित पूर्णता के अश हैं। यथार्थ में विश्व एकानेक रूप है।

विश्व का नियन्त्रण नियमों द्वारा होता है। सबसे पहले हमे विश्व एक अव्यवस्थित वस्तु प्रतीत होती है जिसमें सब पदार्थ एक अद्भुत गडबड़ में दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु अच्छी तरह विचार करने पर मालूम होगा कि इस दृष्ट भेद के अन्दर अभेद की झलक है। इस प्रत्यक्ष गड़बड़ में कुछ न कुछ अवश्य क्रम है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ससार का नियत्रण नियमों द्वारा होता है। ससार में स्वेच्छाचारिता के लिये कहीं स्थान नहीं है। विश्व में कोई बात आकस्मिक नहीं होती। जब कभी हमें कहना होता है कि यह बात अवसर-प्राप्त थी—तो हमारा मतलब वहाँ केवल नियम के अज्ञान से है। विज्ञान के क्षेत्र में सहूलियत के लिये प्रकृति को अनेक विभागों में बाँट रक्खा है। प्रत्येक विभाग के अलग-अलग नियम होते हैं और वे अपने विभाग-विषयक पदार्थों का विवेचन और व्याख्या करते हैं। जैसे, भौतिक विज्ञान में, आकर्षण का नियम कार्य करता है जिसके अनुसार भौतिक पदार्थ एक दूसरे को खींचते हैं। रसायन-विज्ञान में नियत अनुपात के कई नियम हैं जिनके अनुसार रासायनिक द्रव्य तय्यार किये जाते हैं। प्राणिविज्ञान में सतान का नियम है जिसके अनुसार माता पिता के गुण बच्चों में आते हैं। ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों की गति को नियत्रण करनेवाले नियम हैं जिनके अनुसार वे सब सूर्य की चारों ओर घूमते रहते हैं। यान्त्रिक विज्ञान में अनेक प्रकार के नियम हैं जिनके अनुसार मशीनें चलती हैं, इत्यादि।

इस प्रकार हम देखेंगे कि विश्व का नियत्रण नियमों द्वारा ही नहीं होता, अपितु यह नियमों का एक सगठन है। सगठन के माइने हैं पूर्णत्व। इस पूर्णत्व से इसका प्रत्येक भाग सम्बन्धित रहता है तथा इसके अनेक

भाग ही इसके होते हुए व्यापक में सम्मिलित रहते हैं। पूर्णत्व अपने भागों को छोड़ कर नहीं रह सकता और न भाग पूर्णत्व के अभाव में रह सकते हैं। अतएव व्यापक में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। हमें संगठन को एक वस्तुओं के मेल से अलग समझना चाहिये क्योंकि मेल में कोई खास संबंध नहीं होता। यद्यपि सहूलियत के लिये विश्व को हमने भिन्न-भिन्न विभागों में बाँट रक्खा है और उनके अलग-अलग नियम भी हैं जो उन विभागों में लागू होते हैं, तथापि भिन्न-भिन्न नियम एक पूर्णत्व के अंश हैं। प्रकृति कोई असम्बद्ध भागों का गठबंधन नहीं है किन्तु वे सब भाग एक संगठन के अंश हैं जिन्हें कभी भी पूर्णत्व से अलग नहीं किया जा सकता। इस अर्थ में हम प्रकृति की एकरूपता को या मेल को ही अच्छा समझते हैं। इसी आधार पर हम प्राणि-विज्ञान की समस्याओं का रसायन-विज्ञान के नियमों के द्वारा व्याख्यान करते हैं और भौतिक-विज्ञान के तत्वों का प्राणिविज्ञान के नियमों से व्याख्यान करते हैं, इत्यादि।

भिन्न भिन्न विज्ञानों में भिन्न प्रकार के नियम होते हैं। उनमें कुछ अधिक सामान्य की मात्रा को लिये हुए होते हैं और कुछ कम जैसे प्राथमिक नियम और सहायक नियम। हम सहायक नियमों को प्राथमिक नियमों से निकाल सकते हैं और जिनको अभी तक उनमें सम्मिलित नहीं किया है जैसे, अनुभव-जन्य नियम। किन्तु अनुभव-जन्य नियमों को भी उच्चतर नियमों के अन्दर सम्मिलित किया जा सकता है। ज्यों ज्यों विज्ञान उन्नति करता जायगा त्यों त्यों निम्नतर नियमों का उच्चतर नियमों के द्वारा व्याख्यान किया जायगा। और निम्नतर नियम उसी प्रकार उच्चतर नियमों में से निकाले जायेंगे। इस प्रकार प्रतीत होगा कि विश्व के सब नियम एक दूसरे से अनुबिद्ध हैं। इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रकृति के भिन्न भिन्न विभागों में केवल नियम ही नहीं हैं अपितु वे सब एक दूसरे से संबन्धित हैं और वे सब मिलकर एक संगठन को बनाते हैं। प्रकृति, आखिरकार, अक्रम ही नहीं है इसमें क्रम भी है। यथार्थ में विश्व विप्लव नहीं है किन्तु संगठन है[1]।

---

(1) The universe is not a chaos but cosmos.

अभ्यास प्रश्न

(१) नियम का क्या अर्थ है ? नियम कितने प्रकार होते हैं ? प्रत्येक का लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(२) प्राकृतिक नियमों और नियामक शास्त्रों के नियमों में क्या अन्तर है ? उदाहरण देकर अपने उत्तर को स्पष्ट करो।

(३) स्वयसिद्ध किन्हें कहते है ? सामान्यानुमान के क्षेत्र में स्वयसिद्धों का क्या स्थान है ? कुछ स्वयसिद्धों के उदाहरण दो।

(४) राजनैतिक नियम, प्राकृतिक नियम और नैतिक नियमों में क्या अन्तर है ? प्रत्येक का उदाहरण देकर अपने उत्तर को स्पष्ट करो।

(५) नियमों का वर्गीकरण करके प्रत्येक प्रकार के नियमों का लक्षण लिखकर उत्तर दो।

(६) प्राकृतिक नियम का लक्षण क्या है ? प्राथमिक, सहायक और अनुभव-जन्य नियमों की व्याख्या करो।

(७) अपरिवर्तनीय और आसन्न-सामान्य-नियमों के लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(८) क्रमवर्ती और सहवर्ती नियम कौन से हैं ? उनके लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(९) 'विश्व एक नियामक सगठन है' इस वाक्य का क्या अभिप्राय है ? स्पष्ट उत्तर दो।

(१०) क्या विश्व में विघटन भी है ? सगठन और विघटन में सामञ्जस्य स्थापित करो।

(११) प्राकृतिक नियम का अनुभवजन्य नियम से किस प्रकार भेद दिखलाओगे ? नियम के अपवाद से विज्ञान क्या समझता है ?

(१२) 'अनुभव-जन्य नियम' का वाक्यांश आत्यन्तिक विरोध से परिपूर्ण है। इसका हल दो।

(१३) उन अवस्थाओं का प्रतिपादन करो जिनके द्वारा एक अनुभव जन्य-नियम को प्राकृतिक नियम में परिवर्तन कर सकते हो।

(१४) क्या प्राकृतिक-नियम किसी पूर्व-धारणा पर अवलम्बित रहते हैं? उदाहरण पूर्वक उत्पत्ति दो।

(१५) प्राकृतिक नियमों को केवल प्रवृत्ति रूप ही क्यों कहना चाहिये? इस पर विवेचनात्मक उत्तर दो।

अध्याय ११

(१) स्पष्टीकरण या व्याख्या

स्पष्टीकरण की समस्या उसी प्रकार की है जैसी कि सामान्यानुमान की। इस कारण हम स्पष्टीकरण को सामान्यानुमान का लक्ष्य मान सकते हैं। स्पष्टीकरण की प्रक्रिया में सामान्यानुमान और विशेषानुमान दोनों काम में आते हैं। किसी पदार्थ या घटना का स्पष्टीकरण करने के लिये हमें सर्व प्रथम प्राक्कल्पना करनी पड़ती है। प्राक्कल्पना द्वारा हम किसी घटना या पदार्थ को थोड़े काल के लिये स्पष्ट कर सकते हैं। पूर्ण स्पष्टीकरण के लिये हमें विशेषानुमान और समर्थन की आवश्यकता पड़ती है। स्पष्टीकरण का अन्त हमें तब प्राप्त होता है जब हम देखते हैं कि जिस प्राक्कल्पना द्वारा हमने पदार्थ या घटना की व्याख्या की है उसने अन्य प्राक्कल्पनाओं को हटाकर यह सिद्ध कर दिया है कि अमुक पदार्थ या घटना का स्पष्टीकरण इसी प्राक्कल्पना द्वारा हो सकता है अन्य से नहीं। कभी कभी हम साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान और उपमाजन्य सामान्यानुमान के द्वारा पदार्थों या घटनाओं की व्याख्या करते हैं और इनके आधार पर प्राक्कल्पनाएँ करते हैं। इन प्राक्कल्पनाओं के द्वारा ही पदार्थ या घटनाओं का स्पष्टीकरण किया जाता है। जब ये प्राक्कल्पनाएँ सामानुमान विधि और विशेषानुमान विधि दोनों के द्वारा सिद्ध कर दी जाती है तब हम वैज्ञानिक सामान्यानुमान पर पहुँचते हैं और यथार्थ में वैज्ञानिक सामान्यानुमान द्वारा ही हम पदार्थों या घटनाओं का स्पष्टीकरण कर सकते हैं।

स्पष्टीकरण (Explanation) का अर्थ है '**अस्पष्ट को स्पष्ट बनाकर रख देना**'। इंग्लिश में भी एक्सप्लेनेशन शब्द का शब्द-विचार की दृष्टि से यही अर्थ है—अस्पष्ट को स्पष्ट बनाना। अत: स्पष्टीकरण पूर्व की अस्पष्ट अवस्था की कल्पना करता है। उस अस्पष्ट अवस्था को स्पष्ट करना

स्पष्टीकरण का काम है। साधारण भाषा में स्पष्टीकरण का अर्थ है व्याख्या करना या मनुष्य को बौद्धिक सतोष प्रदान करना।

जीवन के विकास-क्षेत्र में मनुष्य का बौद्धिक संतोष भिन्न-भिन्न प्रकार से होता रहा है। जो स्पष्टीकरण एक साधारण मनुष्य या प्रमध्जन[1] के लिये पर्याप्त है वह एक वैज्ञानिक के लिये कभी भी मान्य नहीं हो सकता। प्राचीन समय में आँधी, तूफान, भूकम्प, महामारी आदि की घटनाओं का स्पष्टीकरण दैवी देवताओं द्वारा किया जाता था किन्तु आजकल और भी मनुष्य देवी देवताओं के आधार पर किये हुए स्पष्टीकरण को मानने के लिये तय्यार नहीं है। अन्ध-विश्वासी मनुष्य अब भी इस प्रकार की प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या के लिये देवी-देवताओं की कल्पना करते हैं और उनके द्वारा उनका स्पष्टीकरण करते हैं। जैसे भारत में ग्रहण की राहु और केतु द्वारा अब भी साधारण लोग व्याख्या करते हैं।

इस प्रकार की व्याख्यायें इस वैज्ञानिक युग में हास्यास्पद गिनी जाती हैं। अतः कहना पड़ता है कि जो व्याख्या एक साधारण मनुष्य को सतोष दे सकती है वह एक वैज्ञानिक को नहीं दे सकती। इसी कारण प्रत्येक स्पष्टीकरण में हमें कुछ न कुछ पेचीदापन या कठिनाई उपस्थित होती है और जब तक वह कठिनाई या पेचीदापन दूर नहीं हो जाता तब तक हमें चैन नहीं पड़ता। चैन तभी पड़ता है जब कुछ न कुछ उस पदार्थ या घटना का स्पष्टीकरण हो जाता है। इसलिये ही कहना पड़ता है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न स्पष्टीकरण होते हैं और उनका भिन्न भिन्न होना उन मनुष्यों की बुद्धि की सावधानता, शिक्षा या अन्य साधना पर अवलम्बित रहता है।

उपर्युक्त विचार के आधार पर ही स्पष्टीकरण के दो भेद कर दिये जाते हैं (१) साधारण स्पष्टीकरण और (२) वैज्ञानिक स्पष्टीकरण। दोनों का भेद उसी प्रकार का है जैसा कि साधारण ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान में भेद है। साधारणज्ञान(Ordinary knowledge) मात्र विच्छिन्न[2] घटनाओं का संकलन होता है; उसके अन्दर गहराई नहीं होती। इसके

(1) Ordinary person. (2) Isolated.

विपरीत वैज्ञानिक ज्ञान (Scientific knowledge) इस प्रकार की विच्छिन्न घटनाओं में सामान्य नियमों को ढूढता है और उन्हें सुसबद्ध रूप में उपस्थित करता है'। अब हम यहाँ दोनों में भेद दिखलाने लिये कुछ बातें बतलाते हैं —

(१) साधारण स्पष्टीकरण में केवल बाहिरी सादृश्यसूचक बातों पर ध्यान रखकर सतोष किया जाता है, तथा वैज्ञानिक स्पष्टीकरण गहरी सादृश्यसूचक बातों को लेकर चलता है।

(२) साधारण स्पष्टीकरण में बिना किसी हिचक के देवी-देवताओं के द्वारा पदार्थों या घटनाओं की व्याख्या की जाती है, किन्तु वैज्ञानिक स्पष्टीकरण में प्राकृतिक कारण या नियमों द्वारा व्याख्या की जाती है। साधारण रूप से हम चन्द्रग्रहण होने पर यह समझते हैं कि आकाश में केतु नाम का एक राक्षस है जो चन्द्रमा को ग्रस लेता है। किन्तु यह व्याख्या अवैज्ञानिक है इसकी वैज्ञानिक व्याख्या यह है कि ग्रहण तब पड़ता है जब चद्रमा पृथ्वी की परछाई से होकर गुजरता है।

(३) साधारण स्पष्टीकरण द्वारा हम विश्व के पदार्थ या घटनाओं का व्याख्यान करते हैं किन्तु वैज्ञानिक स्पष्टीकरण सामान्य नियमों की व्याख्या करता है।

यदि वैज्ञानिक स्पष्टीकरण किसी विशेष पदार्थ या घटना की व्याख्या भी करता हो तो वह साधारण स्पष्टीकरण की तरह किसी खास अवस्था का उल्लेख करके ही समाप्त नहीं हो जाता, अपितु उस पदार्थ या घटना के कारणों को बतलाता है। जैसे हमें कहा जलती हुई आग की व्याख्या करनी हो तो हम साधारण-रीति से यह कह देते हैं कि जलती हुई दियासलाई से यह उत्पन्न हुई है। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो मालूम होगा कि यह विध्यात्मक और निषेधात्मक अवस्थाओं के कारण उत्पन्न हुई है जो इसके कारण की ओर सकेत करती हैं। वैज्ञानिक स्पष्टीकरण केवल नियमों की ही व्याख्या करता है। आगे चल कर हम देखेंगे कि किसी नियम का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण तब होता है जब हम उसको किसी उच्चतर नियम के अन्दर ले आते हैं।

(२) वैज्ञानिक स्पष्टीकरण

वैज्ञानिक स्पष्टीकरण किसी वैयक्तिक पदार्थ या नियम की व्याख्या करता है। यद्यपि यह वैयक्तिक पदार्थ को छोड़कर नियम की अधिक व्याख्यान करता है।

जब हम किसी वैयक्तिक पदार्थ या घटना की व्याख्या करते हैं तब हम उसके कारण की खोज करते हैं अर्थात् हम उस कारण के नियम या नियमों का उल्लेख करते हैं जिनका यह पदार्थ या घटना, कार्य है। इसके नियम की खोज करने के पहले हम उसी प्रकार की अन्य वस्तुओं की तलाश करते हैं। इस विधि को 'समीकरण[1] की विधि कहते हैं। इस तरह जब फ्रेन्कलिन ने विद्युत्[2] की व्याख्या की तब बतलाया कि यह उसी प्रकार का पदार्थ है जैसा कि साधारण बिजली। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि विद्युत् का समीकरण बिजली के साथ किया गया। उसी प्रकार लोहे में जंग लगने की मोमबत्ती के जलने के समान बताकर उसकी व्याख्या करते हैं। इस तरह समान बातों को ढूँढ़ा जाता है और देखा जाता है कि वे उसी कारण के कार्य हैं उदाहरणार्थ, लोहे का जंग लगना और मोमबत्ती का जलना वायु में आक्सिजन की सत्ता के कारण होता है।

किसी नियम का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण तब किया जाता है जब हम किसी अन्य नियम या नियमों का उल्लेख करते हैं जिनका यह स्वयं परिणाम है और जिनसे हम इसको निकाल भी सकते हैं। जैसे, जब ग्रहों की गति को नियमन करने वाले नियम की व्याख्या की गई थी तब यह बतलाया गया था कि यह नियम उच्चतर नियम—आकर्षण के नियम का ही विशेष नियम है जो इससे निकाला हुआ है।

निम्नलिखित वाक्य जो वैज्ञानिक स्पष्टीकरण का कार्वेथ रीड ने दिया है, वह विचारणीय है :—

"वैज्ञानिक स्पष्टीकरण, पदार्थों के नियमों को खोजता है निकालता है और उनका समीकरण करता है।

---

(1) Assimilation (2) Lightning.

जब हम पदार्थों के नियमों की खोज करते हैं अर्थात् जब हम उन्हें बिलकुल नहीं जानते तब हम उनके बारे में प्राक्-कल्पना करना आरम्भ करते हैं और उनके कारण या नियम को खोजते हैं। इससे मालूम होता है कि स्पष्टीकरण का प्राक्-कल्पना से कितना घनिष्ट सम्बन्ध है। यथार्थ में प्राक् कल्पना का उद्देश्य ही स्पष्टीकरण है। आकर्षण-शक्ति के नियम के बारे में प्रथम प्राक् कल्पना करनी पड़ी पश्चात् उसके द्वारा सेव के गिरने की व्याख्या की गई।

स्पष्टीकरण में समीकरण भी आ जाता है। **'समीकरण का अर्थ है दूसरे पदार्थों के साथ समानता की बातें खोजना'**। किसी पदार्थ या नियम का दूसरे पदार्थ या नियम के साथ समीकरण तब होता है जब दोनों में कुछ समानता की बातें पाई जाती हैं। इस प्रकार ज्वार-भाटे को नियन्त्रण करने वाले नियमों का आकर्षण शक्ति के नियम के साथ समीकरण हो जाता है क्योंकि दोनों में आकर्षण के चिन्ह पाये जाते हैं। एक जेब्रा जन्तु का किसी घोड़े या गधे के साथ समीकरण किया जा सकता है, क्योंकि इसमें घोड़े या गधे के समान लक्षण पाये जाते हैं। इस दृष्टि में स्पष्टीकरण की वर्गीकरण से बहुत कुछ समानता है। वैज्ञानिक वर्गीकरण करने में अनेक महत्वपूर्ण समानता की बातों के आधार पर ही पदार्थों को सजाकर रक्खा जा सकता है। स्पष्टीकरण की वर्गीकरण के साथ समानता इसलिये भी है क्योंकि प्रश्नाङ्कित पदार्थ और दूसरे पदार्थों में अत्याधिक समानता पाई जाती है।

स्पष्टीकरण में सामान्यीकरण का भी अन्तर्भाव हो जाता है। सामान्यीकरण या सामान्यानुमान का अर्थ है विशेष उदाहरणों की परीक्षा करके सामान्य-वाक्य का निर्माण करना। यह हम तब कर सकते है जब विशेष उदाहरण कुछ सादृश सूचक बातें बतलाते हैं जिससे हम कारण-सम्बन्ध के विषय में अनुमान लगा सकें। इसी हेतु से स्पष्टीकरण और सामान्यीकरण में भी अत्यधिक समानता है। सामान्यानुमान का लक्ष्य है कारणता-सम्बन्ध की खोज करना और उसकी सिद्धि करना, जिससे पदार्थों का अच्छी

तरह से स्पष्टीकरण हो सके। स्पष्टीकरण वास्तव में लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति सामान्यानुमान के द्वारा ही सकती है।

अन्ततः स्पष्टीकरण में विशेषानुमान को भी सम्मिलित किया जाता है। किसी नियम की अच्छी व्याख्या तब समझी जाती है जब उसको किसी सामान्यनियम से निकाला जाता है। एक अनुभवजन्य नियम की व्याख्या तब समझी जाती है जब हम उसे उच्चतर नियम में से निकालते हैं। गिरते हुए भौतिक पदार्थ सम्बन्धी नियम की व्याख्या तब पूरा समझी जाती है जब यह दिखलाया जाता है कि यह आकर्षण के नियम का एक विशेष रूप है।

(३) वैज्ञानिक स्पष्टीकरण के रूप

मिल और बेन ने ३ प्रकार के स्पष्टीकरण बतलाये हैं। उनके नाम निम्नलिखित हैं —

(१) विश्लेषण

(२) कारण-समन्वेषण

(३) सामान्यान्तर्निवेशन

विश्लेषण (Analysis) स्पष्टीकरण का एक रूप है। जिसके द्वारा हम किसी सम्मिलित परिणाम वाले नियम को उसके कारणों के नियमों में और उन कारणों की घटनाओं में अलग अलग कर दिखलाते हैं। विश्लेषण का सामान्यरूप से यह रूप है कि इसमें हम यह दिखलाते हैं कि सम्मिलित कार्य को कई कारण इकट्ठे मिल कर पैदा करते हैं।

(१) प्रक्षेपात्मक (Projectile) के मार्ग की व्याख्या के लिये हम अलग-अलग कारणों का उल्लेख करते हैं जैसे आकर्षण का नियम, प्रारम्भिक-शक्ति[1] जिससे प्रक्षेपात्मक को फेंका गया है हवा के दबाव का नियम,इत्यादि। इसके अतिरिक्त हम यह कहते हैं कि ये भिन्न-भिन्न कारण मिल कर सम्मिलित कार्य को उत्पन्न करते हैं।

(1) In tial force.

(२) किसी ग्रह की कक्षा की व्याख्या के लिये प्रथम हम यह बतलाते हैं कि अमुक ग्रह की कक्षा आकर्षण के नियम से पैदा होती है और इस नियम से कि ग्रह सीधी रेखा में गमन करते हैं। द्वितीय, दोनों कारण सम्मिलित होकर ग्रहों पर कार्य करते हैं।

इस प्रकार का स्पष्टीकरण समान-जातीय-कार्य-समिश्रण की व्याख्या करने के लिये प्रयोग किया जाता है। इसमें दो बातें पाई जाती हैं।

(१) भिन्न भिन्न कार्यों के सरल-सरल नियमो का उल्लेख किया जाता है तथा (२) यह बतलाया जाता है कि उनकी सत्ता रहती है और वे एक साथ काम करते हैं। यदि इन बातों का ध्यान न दिया जायगा तो विपरीत परिणाम उत्पन्न होगा।

(२) **कारण-क्रमान्वेपण (Concatenation) स्पष्टीकरण का एक प्रकार है जिसमें कारण और उसके दूरवर्ती कार्य के मध्य हम कारणता के क्रमों का अन्वेपण कराते हैं।** इस प्रकार के स्पष्टीकरण में कार्य का साक्षात् कारण नहीं बतलाया जाता है किन्तु उस कारण के मध्यवर्ती कार्य से उसकी व्याख्या की जाती है। बजाय इसके कि 'क' और 'ग' में कारणता सिद्ध की जाय हम यह बतलाते हैं कि 'क' का कार्य 'ख' है और 'ख' का कार्य 'ग' है। यहाँ 'क' और 'ग' का सम्बन्ध 'ख' के द्वारा स्पष्ट किया गया है। इसके निम्नलिखित उदाहरण है.—

(१) बिजली (आकाशीय) के विषय में हमें यह मालूम पड़ता है कि बिजली में धड़ाका पैदा करने की शक्ति है किन्तु यथार्थ में बिजली गर्मी पैदा करती है और गर्मी के वायुमडल में एकदम फैलने के कारण एक प्रकार का उच्च घोष पैदा होता है। इस उदाहरण में गर्मी कारणता की जजीर में एक मध्यवर्ती कड़ी है।

(२) जब क्लोरीन का आविष्कार हुआ था तब यह पता लगा कि इसमें वस्तुओं को सफेद करने की अत्यधिक शक्ति है। किन्तु जाच करने पर मालूम हुआ कि वह क्लोरीन नहीं है जो रग को नष्ट कर डालती है किन्तु मध्यवर्ती कारण ऑक्सिजन है। क्लोरीन केवल पानी का विश्लेषण

कर डालती है और हाईड्रोजन को लेकर, क्लोरीन को एक नयी क्रिया की हालत में छोड़ देती है जो रंग के द्रव्य को नष्ट कर डालती है।

(३) सामान्यान्तर्निवेश (Subsumption) एक प्रकार का स्पष्टीकरण है जिसके द्वारा एक कम सामान्यनियम अधिक सामान्यनियम के अन्दर लाया जाता है। इस तरह हम देखेंगे कि कम सामान्यवाले नियमों की व्याख्या, उनको अधिक सामान्यवाले नियमों के उदाहरण बना कर की जाती है। इसके निम्नलिखित उदाहरण हैं :

(१) पृथ्वी के आकर्षण का नियम—कि पार्थिव वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती हैं—इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार हो सकता है कि यह केवल एक अधिक सामान्य वाले नियम का उदाहरण है।

(२) चुम्बक की शक्ति के नियम का स्पष्टीकरण—इस नियम को अधिक सामान्यवाले नियम की विद्युत् के प्रवाह को नियमित करते हैं, के अन्दर लाकर किया जाता है।

सामान्यान्तर्निवेश की प्रक्रिया का सहायक नियमों के साथ वही सम्बन्ध है जैसा उनका विशेष पदार्थों के साथ होता है। अनेक विशेष पदार्थों में रहनेवाले सामान्य को अक्सर नियम कहते हैं। यह प्रक्रिया चाहे ऊपर को जाती हो या नीचे को जाती हो वैज्ञानिक उन्नति का मूल यही है। कोई विज्ञान पूर्णता को तभी प्राप्त होता है जब वह अनेक पदार्थों को अपने अन्दर समावेश कर उनके विषय में सामान्य सिद्धान्त कायम करता है और बतलाता है कि उपर्युक्त पदार्थों से सम्बन्ध रखने वाले—अनेक छोटे-छोटे सामान्य नियम बनाए गये हैं जो उन पदार्थों में रहनेवाले सामान्य गुणों के द्योतक हैं।

(४) वैज्ञानिक स्पष्टीकरण की सीमाएँ—

यह एक सामान्य सिद्धान्त है कि जब पदार्थों में समानता की बात दृष्टिगोचर नहीं होती तब हम उनका स्पष्टीकरण नहीं कर सकते। वैज्ञानिक स्पष्टीकरण का यही उद्देश्य होता है कि हम पदार्थों में समानता की बातें खोजें और उनका अन्य पदार्थों या नियमों के साथ समीकरण करें। अतः समीकरण (Assimilation) की सीमाएँ स्पष्टीकरण की सीमाएँ हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि जहाँ हमें समानता के लक्षण या बातें प्राप्त नहीं होती वहाँ स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। इसलिये निम्नलिखितों का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता:—

(क) चैतन्य की मौलिक अवस्थाओं का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। जैसे रंग, ताप, गंध, शब्द, स्पर्श, दुख, सुख, इत्यादि। ये वस्तुएँ ऐसी हैं कि इनकी व्याख्या नहीं की जा सकती क्योंकि ये मौलिक अवस्थाएँ हैं। इनमें सामानता की बातें देखने में नहीं आतीं और ये एक दूसरे से अत्यन्त भेदकता को लिये हुए हैं। उदाहरणार्थ, रंग और ताप में कोई सामानता नहीं है जिससे हम रंग के नियमों को ताप के नियमों में परिविवर्तित कर सकें और विपरीतरूप में भी दिखला सकें।

(ख) मौलिक पदार्थों के प्राथमिक गुणों का भी स्पष्टीकरण नहीं हो सकता जैसे, फैलाव, आकृति, रुकावट, वज़न (भार) गति, इत्यादि। ये गुण आपस में भिन्न हैं, उनमें समानता की बातों का बिलकुल अभाव है। अत इनका स्पष्टीकरण नहीं हो सकता।

(ग) क्योंकि विशेष पदार्थों में अनन्त गुण होते हैं इसलिये उन सबका स्पष्टीकरण करना असंभव है। हमें किसी विशेष पदार्थ के बारे में कितना ही भौतिक, रासायनिक नियमों का ज्ञान क्यों न हो, फिर भी हम देखेंगे कि उनकी असंख्य विशेषताएं होती हैं जिनकी व्याख्या करना हमारे लिये असम्भव होता है, जैसे एक पत्थर का टुकड़ा। किसी मनुष्य के व्यक्तित्व के स्पष्टीकरण में भी हमें बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। जब हम उस मनुष्य के व्यक्तित्व की व्याख्या करना शुरू करते हैं तब हम देखेंगे कि हमें उसके जन्म, शिक्षा, पड़ोस आदि का ज्ञान होने पर भी उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं के असंख्य होने के कारण हम उनका स्पष्टीकरण नहीं कर सकते।

(घ) मौलिक सिद्धान्तों की व्याख्या नहीं की जा सकती। ये सबसे अधिक सामान्य वाले होते हैं। इनका सामान्य धर्म इतना अधिक होता है कि इनको, अन्य इनसे अधिक सामान्य धर्म वाले नियमों में, अन्तर्भूत नहीं किया जा सकता। इनका आपस में भी अन्तरभाव नहीं किया जा सकता।

जैसे, विचार के नियम प्रकृति की एक रूपता का नियम, इत्यादि नियम ऐसे हैं जिनकी व्याख्या नहीं हो सकती। क्योंकि इनके समान अन्य कोई वस्तु नहीं है और न इनका किसी अन्य नियम के अन्दर अन्तर्भूत किया जा सकता है।

(५) स्पष्टीकरण के दोष

वैज्ञानिक स्पष्टीकरण के नियमों को भंग करने से स्पष्टीकरण के दोष उत्पन्न होते हैं। यथार्थ में दोष-युक्त स्पष्टीकरण केवल आभास में स्पष्टीकरण कहलाता है यथार्थ में नहीं। यह व्याख्या किये बिना ही यह दिखलाता है कि वस्तुओं या नियमों की व्याख्या की गई है। तार्किक बैन इन प्रकार के दोष-युक्त स्पष्टीकरण के तीन प्रकार बतलाता है। वे निम्नलिखित हैं —

(१) प्रथम प्रकार का दोष-पूर्ण स्पष्टीकरण उसे कहते हैं जब हम एक पदार्थ को विभिन्न भाषा में, बिना एक सामान्यतर पदार्थ को दिये हुए केवल दुहराते हैं।

प्राय यह देखा जाता है कि जब हम किसी पदार्थ का स्पष्टीकरण करना चाहते हैं तब हम बजाय इसके कि उसकी वैज्ञानिक व्याख्या करें हम उसे किसी भिन्न भाषा में दुहराते हैं। जैसे, अफ़ीम की व्याख्या करने के लिये— अफ़ीम क्यों नशा लाती है? हम कह देते हैं कि इसमें नींद लाने वाले गुण हैं। इसी प्रकार हम कहते हैं कि भविष्य, अतीत के समान होता है क्योंकि प्रकृति एकरूप होती है। इस प्रकार के स्पष्टीकरणों का कोई मूल्य नहीं है क्योंकि इनमें उसी धर्म के दुहराने के अतिरिक्त कोई विशेष ज्ञान प्राप्त करने की बात नहीं कही गई है।

(२) द्वितीय प्रकार का दोष पूर्ण स्पष्टीकरण उसे कहते हैं जब हम किसी पदार्थ या घटना को साधारण समझ बैठते हैं क्योंकि उससे हम परिचित होते हैं।

हम प्रति दिन देखते हैं कि सेव वृक्ष से नीचे गिरते हैं। यह एक साधारण बात है, किन्तु न्यूटन महोदय के लिये यही एक विलक्षण समस्या थी और इस साधारण घटना के आधार पर ही उन्होंने आकर्षण का

सिद्धान्त स्थापित किया था जिसके द्वारा आज अधिक वस्तुओं की व्याख्या की जाती है।

(२) तृतीय प्रकार का दोष-पूर्ण स्पष्टीकरण तब उत्पन्न होता है जब हम यह इच्छा करते हैं कि हमारे जाने हुए पदार्थों में जो घटना क्रम हमने देखा है उसमें हमे उससे कुछ और अधिक प्राप्त हो सकता है।

मनुष्य के मस्तिष्क की यह माँग है कि वह अधिक से अधिक सामान्य धर्म वाले नियमों को स्थापित करे। कम सामान्य वाले नियम अधिक सामान्य वाले नियमों में अन्तर्भूत कर लिये जाते हैं और ये उनसे भी अधिक सामान्य धर्म वाले नियमों में अन्तर्गत कर लिये जाते हैं, इत्यादि। किन्तु जब हम चरम नियम पर पहुँच जाते हैं तब हमें सतोष करके बैठना पड़ता है और यह स्पष्टीकरण की अन्तिम सीमा होती है। लेकिन फिर भी वैज्ञानिक, और अधिक सामान्य धर्म वाले नियम की खोज में रहते हैं। न्यूटन आकर्षण को चरम या अन्तिम नियम मानने को तय्यार नहीं था और वह चाहता था कि इससे भी अधिक सामान्यधर्मवाले नियम की खोज की जाय। आज तक इस प्रकार के प्रयत्न में किसी को सफलता नहीं मिलती है। अन्त यह स्वीकार करना उचित है कि यह आत्यन्तिक नियम है जिसको किसी अन्य उच्चतर नियम के अन्दर नहीं लाया जा सकता।

इनके अतिरिक्त जितने जन साधारण के स्पष्टीकरण हैं वे सब दोष-पूर्ण स्पष्टीकरण हैं। अत केवल बाहिरी समानता की बातों के आधार पर जितने स्पष्टीकरण किये जायँगे वे सब दोषपूर्ण होंगे।

अभ्यास प्रश्न

(१) विज्ञान में स्पष्टीकरण का क्या अर्थ है ? वैज्ञानिक स्पष्टीकरण के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन उदाहरण पूर्वक करो।

(२) तार्किक स्पष्टीकरण किसे कहते हैं ? इसके मुख्य-मुख्य रूप क्या हैं ? उदाहरण देकर उनके लक्षण लिखो।

(३) वैज्ञानिक स्पष्टीकरण की सीमाएँ निरूपण करो। मिथ्या व दोष-पूर्ण स्पष्टीकरण के प्रकार उदाहरण पूर्वक बतलाओ।

(४) प्राक्-कल्पना का स्पष्टीकरण के साथ क्या सम्बन्ध है ? भिन्न भिन्न प्रकार के स्पष्टीकरणों के लक्षण लिखकर उनकी व्याख्या करो।

(५) ज्वारभाटा और वायुयान की गति की व्याख्या किस प्रकार करोगे ? दोनों के स्पष्टीकरणों में क्या अन्तर है ?

(६) 'किसी वस्तु का स्पष्टीकरण करना अर्थात् उसको किसी विशेष नियम के अन्दर लाना है' इसका क्या अर्थ है ? स्पष्ट करो।

(७) मिथ्या स्पष्टीकरणों के लक्षण लिखकर उनके उदाहरण दो।

(८) पृथक् जन या साधारण मनुष्य के स्पष्टीकरण क्यों दोष पूर्ण होते हैं ? इसका वैज्ञानिक कारण बतलाओ।

(९) 'किसी पदार्थ का स्पष्टीकरण करने का अर्थ है उसके कारण को जानना' इस कथन पर अपने विचार करो।

(१) 'विज्ञान का उद्देश्य पदार्थों और घटनाओं की व्याख्या करना है' इस वक्तव्य पर प्रकाश डालो।

(११) साधारण स्पष्टीकरण और वैज्ञानिक स्पष्टीकरण में अन्तर दिखलाकर वैज्ञानिक स्पष्टीकरण की विशेष व्याख्या करो।

(१२) कारण-समाभेदन तथा सामान्यान्तर्निवेशन के लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

अध्याय १२

(१) वर्गीकरण

वर्गीकरण की समस्या का, लक्षण और विभाग के साथ अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रथम भाग में लक्षण और विभाग के प्रश्न पर समुचित विचार किया जा चुका है। अब यहाँ वर्गीकरण के सिद्धान्त का विवेचन किया जाता है।

हम प्राय: विभाग और वर्गीकरण के विषय में विशेष ध्यान न रखते हुए दोनों प्रक्रियाओं को कुछ मिलती जुलती मानकर कार्य चला लेते है। किन्तु विचार पूर्वक देखने से प्रतीत होगा कि दोनों प्रक्रियाएँ सर्वथा भिन्न हैं। कारवेथ रीड ने वर्गीकरण का लक्षण यह दिया है :—

"वर्गीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें पदार्थ या वस्तुओं को, उनकी समानता और असमानता के आधार पर, मानसिक दृष्टि से एकत्रित किया जाता है जिससे हमारे कुछ उद्देश्य की पूर्ति हो सके।" इस लक्षण का इस प्रकार विश्लेषण किया जा सकता है :—

(१) सर्व प्रथम, वर्गीकरण मानसिक एकत्रीकरण है। अर्थात् इसमें वस्तुओं का मानसिक एकत्रीकरण किया जाता है। जैसे, वनस्पति विज्ञान में हम वृक्षों और पौधों का भिन्न-भिन्न वर्गों में एकत्रीकरण करते हैं। ऐसा करने में सब प्रकार के वृक्ष और पौधे हमारे सामने नहीं रहते हैं। इसलिये इसको हम मानसिक एकत्रीकरण कहते हैं।

(२) द्वितीय, वस्तुओं का वर्गीकरण उनकी समानता और असमानता के आधार पर किया जाता है। जो वस्तुएँ समान हैं उनको एक वर्ग में रक्खा जाता है और जो उनसे भेद रखती हैं उनको अन्य वर्ग में रक्खा जाता है।

(३) तृतीय, वर्गीकरण में कुछ न कुछ उद्देश्य रहता है। वर्गीकरण

करने में केवल एक ही उद्देश्य नहीं रहता है किन्तु अनेक उद्देश्य रहते हैं और उनके अनुसार उनका वर्गीकरण किया जाता है।

जहाँ तक उद्देश्यों का सम्बन्ध है वर्गीकरण में उद्देश्य साधारण या वैज्ञानिक हो सकता है अथवा विशेष या व्यावहारिक हो सकता है।

(२) स्वाभाविक और कृत्रिम वर्गीकरण

उद्देश्य के अनुसार ही वैज्ञानिकों ने दो प्रकार के वर्गीकरण माने हैं। (१) स्वाभाविक या वैज्ञानिक वर्गीकरण और (२) कृत्रिम या विशेष वर्गीकरण।

(१) वर्गीकरण का साधारण उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना होता है। विज्ञान में हमें वस्तुओं का सुसंगत ज्ञान प्राप्त होता है; जैसे वनस्पति विज्ञान में हम पौधों और वृक्षों का वर्गीकरण करते हैं जिससे हम उनके स्वभाव और अवस्थाओं को जान सकें। क्योंकि विज्ञान का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्ति है, अब वैज्ञानिक वर्गीकरण द्वारा हम अपने ज्ञान का विस्तार करना चाहते हैं। इसे हम वैज्ञानिक वर्गीकरण कहते हैं। इसका लक्षण इस प्रकार है —

"वैज्ञानिक वर्गीकरण' वस्तुओं के अत्यधिक समानता और असमानता की बातों के आधार पर, साधारण ज्ञान की प्राप्ति के लिये मानसिक सङ्कलन को कहते हैं।" इसको साधारण या स्वाभाविक वर्गीकरण भी कहते हैं।

(२) वर्गीकरण का उद्देश्य व्यावहारिक सुगमता भी होता है और उस अवस्था में हमारा उद्देश्य विशेष प्रकार का होता है। जहाँ हम पदार्थों का वर्गीकरण साधारण ज्ञान प्राप्त करने के लिये नहीं करते हैं, जैसे, एक लाइब्रेरियन अक्षर-क्रम से पुस्तकों का वर्गीकरण करता है। जिससे पाठक लोग सुगमता से पुस्तकों को प्राप्त कर सकें। वह व्यावहारिक या कृत्रिम वर्गीकरण कहलाता है। इसका लक्षण इस प्रकार है —

"कृत्रिम वर्गीकरण' वस्तुओं के, समानता की बातों के आधार पर जो विशेष उद्देश्य को लेकर यथेच्छारूपसे बाँटी गई

(1) Scientific Explanation (2) Artificial Explanation.

हों, मानसिक संकलन को कहते हैं।" इसको विशेष वर्गीकरण या व्यावहारिक वर्गीकरण भी कहते हैं।

(३) स्वाभाविक और कृत्रिम वर्गीकरण में भेद का अभाव

कुछ तार्किक लोग उक्त दोनों प्रकार के वर्गीकरण में भेद का अभाव बतलाते हैं और कहते हैं कि एक अर्थ में सब प्रकार के वर्गीकरण कृत्रिम ही होते हैं क्योंकि उन सबका हम निर्माण करते हैं। प्राय' करके हम वस्तुओं का मानसिक सकलन कर उनको भिन्न-भिन्न वर्गों में रखते हैं। यह नहीं है कि प्रकृति के द्वारा वे हमें भिन्न रूपों में बने-बनाए मिलते हैं। जब कोई वैज्ञानिक वर्गीकरण करना आरम्भ करता है तब वह अपनी इच्छानुसार समानता की बातों के आधार पर उपयोगी वर्गों का निर्माण करता है। अन्य तार्किकों का यह विचार है कि सब वर्गीकरण स्वाभाविक होते हैं, क्योंकि जिन समानता की बातों के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है, वे वास्तव में प्रकृति में पाई जाती हैं। जब हम पुस्तकालय में पुस्तकों का वर्गीकरण करते हैं तब उनमें भी बाहरी समानता पाई जाती है जिसको हमने नहीं बनाया है। अत स्वाभाविक और कृत्रिम वर्गीकरण में भेद की रेखा खींचना असम्भव है, तथा हमारे लिये यह भी कहना कठिन है कि कहाँ स्वाभाविकका का आरम्भ होता है और कहाँ कृत्रिमता का आरम्भ होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि दोनों मे भेद सिद्ध करना अनावश्यक है। अब हम यहाँ स्वाभाविक वर्गीकरण और 'स्वाभाविक प्रकार' के सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे।

(४) स्वाभाविक वर्गीकरण और स्वाभाविक प्रकार

पहले यह बतलाया गया है कि स्वाभाविक वर्गीकरण अनेक समानता की मुख्य बातों को लेकर किया जाता है। यदि केवल बाह्य समानता की बातें ही हों तो उनके आधार पर वर्गीकरण नहीं किया जा सकना। समानता की बातें खास होनी चाहियें। मिल महोदय के शब्दों में वे निम्नलिखित हैं **"खास समानता की बातें वे हैं जो स्वय अपने आप या अपने कार्यों द्वारा वस्तुओं को एक-सदृश बनाने में सहायक**

(६) नमूने या लक्षण के द्वारा वर्गीकरण

स्वाभाविक वर्गीकरण का आधार अत्यधिक मुख्य-मुख्य समानता की बातें हैं अतः इसमें लक्षण की आवश्यकता है। लक्षण में हम सम्पूर्ण भावार्थ लेते हैं। ह्वेवेल साहब का यह मत है कि वर्गीकरण का आधार नमूना[1] है। इसके विरुद्ध मिल महोदय का कहना है कि वर्गीकरण का आधार लक्षण[2] है। इसका अभिप्राय यह है कि स्वाभाविक पदार्थों का वर्गीकरण साधारण समानता की बातों के आधार पर, स्वाभाविक वर्गों में किया जाता है, न कि विशेष-विशेष मुख्य समानता की बातों पर किया जाता है।

नमूना (Type) किसी जाति के श्रेष्ठ व्यक्ति[3] को कहते हैं। यह उस जाति के समस्त गुणों को पूर्ण रूप से प्रकट करता है। ह्वेवेल महोदय का कहना है कि स्वाभाविक वर्ग इन नमूनों के आधार पर बने हुए होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार हम चीते को नमूना मानकर शेर और उस प्रकार के अन्य जन्तुओं को उसमें सम्मिलित कर सकते हैं, जैसे बिल्ली, तेंदुआ, बघेरा, वगैरह। इसके विपरीत मिल महोदय का यह कहना है कि नमूने के द्वारा हमें वर्गीकरण की सूचना मिल सकती है, किन्तु वर्गीकरण का निश्चय तो केवल लक्षण के द्वारा ही होता है। हमें चाहिये कि किसी जाति के व्यक्तियों के मुख्य-मुख्य गुणों को लेकर उसका वर्गीकरण करें, न कि नमूने को लेकर।

यहाँ यह बतलाना अनुचित न होगा कि ह्वेवेल साहब का मत सर्वसाधारण है किन्तु मिल महोदय का मत वैज्ञानिक है। साधारण रूप से हम साधारण समानता की बातों से संतुष्ट हो सकते हैं। लेकिन ये बातें केवल दिखावे के रूप में या ऊपरी हैं—इसका पता केवल लक्षण ही से लग सकता है। अतः वैज्ञानिक आधार पर यह कहा जा सकता है कि ह्वेवेल की अपेक्षा मिल महोदय का मत पुष्टतर है। क्योंकि नमूने के द्वारा वर्गीकरण वैज्ञानिक वर्गीकरण में सहायता तो कर सकता है किन्तु वैज्ञानिक रूप को धारण नहीं कर सकता।

(1) Type. (2) Definition. (3) Eminent member.

(७) श्रेणी के द्वारा वर्गीकरण

जब कोई गुण अनेक जातियों में भिन्न भिन्न परिमाण में दृष्टिगोचर होता है तब हम उन जातियों को श्रेणियों में रखते हैं। साधारण वर्गीकरण की प्रक्रिया में हम पदार्थों को उनकी समानता और असमानता के आधार पर वर्गों में विभाजित कर देते हैं। यदि उनमें समानता होती है तो हम उन्हें उसी वर्ग में रखते हैं और यदि भिन्नता होती है तो अन्य वर्ग में रखते हैं और जब यह देखते हैं कि कुछ जातियों में एक गुण भिन्न भिन्न परिमाण में पाया जाता है तब हम उनका वर्गीकरण श्रेणियों में करते हैं। श्रेणियों मे वर्गीकरण करने का यही अर्थ है कि पदार्थों की जातियों को उनके गुण के भिन्न भिन्न परिमाणों के अनुसार श्रेणियों मे रखना। मिल महोदय ने श्रेणी के द्वारा वर्गीकरण की दो आवश्यकताएँ बतलाई हैं।

(१) वे वस्तुएँ जो एक विशेष गुण को प्रकट करती हैं उनको हमें एक बड़ी जाति में रखना चाहिये।

(२) पश्चात् इन वस्तुओं को उस गुण के परिमाण के अनुसार–जिनमें यह गुण सबसे अधिक पाया जाता हो और जिनमें सबसे कम पाया जाता हो––भिन्न भिन्न श्रेणियों में विभाजित करके रखना चाहिये।

उदाहरणार्थ, इस प्रकार की जातियाँ जैसे, मनुष्य, पशु, पौधे इत्यादि, इन सबमें जीवन पाया जाता है, किन्तु इनमें जीवन के भिन्न भिन्न परिमाण होते हैं। हम इनको जातियों में रखते हैं और 'मनुष्य' को शीर्ष पर रखते हैं, पशुओं को बाद में और नीचे पौधों को। इस प्रकार श्रेणि के द्वारा वर्गीकरण उन मामलों में प्रयोग किया जाता है जहाँ एक गुण विशेष का किसी जाति में सर्वथा अभाव नहीं पाया जाता है, अपितु भिन्न-भिन्न परिमाण में सबमें पाया जाता है। इसी हेतु से इस प्रकार के वर्गीकरण में हम सह-परिवर्तन-विधि को प्रयोग में लाते हैं।

(८) वर्गीकरण और विभाग

यह हमने पहले बतलाया है कि वर्गीकरण और विभाग प्रायः एक

समान सी प्रक्रियाएँ हैं। तथापि दोनों में भेद अवश्य है। विभाग में हम एक सामान्य या जाति को लेकर उसकी उप-जातियों में उसका विभाग करते हैं। इसके अन्दर हम किसी एक गुण को ले लेते हैं जो कुछ व्यक्तियों में पाया जाता है और कुछ में नहीं पाया जाता है और इसको विभाग का सिद्धान्त मानकर हम उच्चतर जातियों या सामान्यों को उपजातियों में विभाजित कर डालते हैं। जैसे, हम उच्चतर जाति, जीव को, मनुष्य और अन्य जन्तुओं में विभाजित करते हैं। इसके विपरीत वर्गीकरण में हम कुछ पदार्थों को लेते हैं और उनकी उनकी समानता या विरुद्धता के आधार पर भिन्न-भिन्न वर्गों में रखते हैं। मनुष्य का वर्गीकरण करते हुए हम देखते हैं कि उनमें पशुओं के साथ कुछ खास विशेषताएँ पाई जाती हैं, अत: हम उन्हें 'जीव' जाति के अन्दर रखते हैं।

इस प्रकार विभाग में हम उच्चतर जाति से आरम्भ करते हैं और निम्नतर जाति की ओर चलते जाते हैं, तथा वर्गीकरण में हम व्यक्तियों से आरम्भ करते हैं और उन्हें उच्चतर जातियों या सामान्यों में रखते चले जाते हैं। इसी कारण से विभाग को विशेषानुमानीय कहा जाता है और वर्गीकरण को क्योंकि इसके द्वारा व्यक्तियों का वर्गों में रक्खा जाता है सामान्यानुमानीय कहा जाता है। विभाग और वर्गीकरण में एक प्रकार का और भी भेद पाया जाता है। विभाग कल्पनात्मक प्रक्रिया है तथा वर्गीकरण क्रियात्मक प्रक्रिया है। वर्गीकरण में हम यथार्थ वस्तुओं से काम लेते हैं किन्तु विभाग में हम तर्क-पूर्ण जाति को लेते हैं जिसे हम द्रव्यात्मक नहीं समझते, जैसे हम व्यक्तियों को द्रव्यात्मक समझते हैं। वर्गीकरण यथार्थ-क्रम से सम्बन्ध रखता है और विभाग विचारात्मक क्रम से सम्बन्ध रखता है।

मौलिक रूप से विचार करने पर प्रतीत होगा कि दोनों प्रक्रियाएँ एक-समान ही हैं। दोनों में हम पदार्थों को, जो समान हैं, एकत्रित करते हैं; और जो भिन्न हैं उन्हें अलग करते हैं। यथार्थ में दोनों प्रक्रियाएँ एकरूप नहीं हैं; किन्तु दोनों सह-सम्बन्धी[1] हैं।

---

(1) Co-related.

(६) वर्गीकरण और लक्षण

वैज्ञानिक वर्गीकरण में वस्तुओं को उनकी अत्यधिक और मुख्य-मुख्य समानता की बातों को लेकर वर्गों में रक्खा जाता है। लक्षण में इसके विपरीत, वस्तुओं के आवश्यक गुणों की निश्चिति की जाती है। अतः यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिक वर्गीकरण लक्षण पर निर्भर रहता है। हम वस्तुओं को तभी वर्गों में रख सकते हैं जब हमें उनके मुख्य-मुख्य गुणों का बोध हो। जहाँ तक व्यावहारिक या कृत्रिम वर्गीकरण का सम्बन्ध है हम यथेच्छा रूप से कुछ बाहिरी समानता की बातों को छाँट लेते हैं, इसलिये व्यवहारिक वर्गीकरण का लक्षण से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त वर्गीकरण, पद के द्रव्यार्थ से सम्बन्ध रखता है और लक्षण, पद के भावार्थ से सम्बन्ध रखता है। वर्गीकरण में हम वस्तुओं को जातियों में रखते हैं तथा लक्षण में हम उनके आवश्यक गुणों का निश्चय करते हैं। क्योंकि गुण, गुणी के अभाव में नहीं पाए जाते, इसलिए ये दोनों प्रक्रियाएँ सह सम्बन्धी कही जा सकती है।

वैज्ञानिक वर्गीकरण की सीमाएँ

वैज्ञानिक वर्गीकरण की निम्नलिखित सीमाएँ हैं —

(१) जो सबसे अधिक सामान्य है उसका वर्गीकरण नहीं हो सकता। वर्गीकरण में हम कम सामान्य से अधिक सामान्य की ओर चलते हैं। अत जो सबसे अधिक सामान्य है उसका वर्गीकरण नहीं हो सकता। अर्थात् महा सामान्य (Summum genus) का वर्गीकरण करना असम्भव है।

(२) तटवर्ती वस्तुओं का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता।, तटवर्ती वस्तुएँ वे कहलाती हैं जिनमें कुछ गुण तो एक जाति के पाए जाते हों, और कुछ गुण अन्य जाति के पाए जाते हों, जैसे, जैली (Jelly) एक पदार्थ है जिसमें घनत्व और तरलत्व दोनों गुण पाए जाते हैं। अतः इसका वर्गीकरण करना अत्यन्त कठिन है। स्पन्ज भी कुछ ऐसा ही पदार्थ है जिसको हम जन्तु भी कह सकते हैं और पौधा भी कह सकते हैं। वैज्ञानिक लोग इस प्रकार के पदार्थों का वर्गीकरण करने में अत्यन्त कठिनाई अनुभव करते हैं।

साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक वर्गीकरण लक्षण पर अवलम्बित है। अतः जो सीमाएँ लक्षण की हैं वही सीमाएँ वर्गीकरण की हैं। जिन वस्तुओं का लक्षण नहीं हो सकता; उन वस्तुओं का वर्गीकरण भी नहीं हो सकता। यदि हम संतोषपूर्वक व्यक्तिगत पदार्थों के गुणों का निश्चय नहीं कर सकते तो उनका जातियों में वर्गीकरण भी नहीं किया जा सकता। वर्गीकरण के लिये समानता और असमानता इन दोनों प्रकार के गुणों की अत्यन्त आवश्यकता है।

अभ्यास प्रश्न—

(१) वर्गीकरण का लक्षण लिखकर इसका प्रयोग बतलाओ। वर्गीकरण का विभाग से अन्तर बतलाओ।

(२) स्वाभाविक और कृत्रिम वर्गीकरण में क्या अन्तर है? क्या यह भेद माननीय है?

(३) कृत्रिम वर्गीकरण का लक्षण लिखकर उदाहरण दो। इसका क्यों उपयोग किया जाता है? स्पष्ट उत्तर दो।

(४) स्वाभाविक प्रकार के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? इसका स्वाभाविक वर्गीकरण से क्या सम्बन्ध है?

(५) वर्गीकरण का क्या नियम है? प्रत्येक का उल्लेख करके व्याख्यान करो।

(६) 'नमूना' वर्गीकरण में क्या कार्य करता है? नमूने के आधार पर वर्गीकरण की प्रक्रिया की सार्थकता सिद्ध करो।

(७) लक्षण और वर्गीकरण में क्या सम्बन्ध है? दोनों के लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(८) श्रेणी द्वारा वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है? क्या इस प्रकार की प्रक्रिया को वैज्ञानिक कहा जा सकता है?

(९) वैज्ञानिक वर्गीकरण की सीमाएँ निर्धारित करो। किन्हीं वस्तुओं का वर्गीकरण क्यों नहीं किया जा सकता?

(१०) चमकादड़ और मूंगा का वर्गीकरण किस प्रकार करोगे ? वैज्ञानिक वर्गीकरण के आधार पर उत्तर दो।

(११) लक्षण, विभाग, और वर्गीकरण इन तीनों का परस्पर सम्बन्ध स्थापित करो। तथा तीनों के लक्षण लिखकर उदाहरण भी दो।

(१२) वर्गीकरण में जाति, क्रम, उपराज्य, राज्य वगैरह पदों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक का लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(१३) 'लक्षण के निर्णय की प्रक्रिया वर्गीकरण से अभिन्न है' इस कथन पर अपने समालोचनात्मक विचार प्रकट करो।

अध्याय १३

(१) परिभाषा और नामकरण

विज्ञान के अन्दर जितने नामों का प्रयोग होता है उनका अच्छी तरह लक्षण किया जाता है और उनका अर्थ भी निश्चित होता है। जैसे, रेखा, बिन्दु, त्रिभुज, वृत्त इत्यादि शब्द रेखागणित में लक्षित होकर निश्चित अर्थ में प्रयुक्त किये जाते हैं। किन्तु जिन शब्दों का जनता की भाषा में प्रयोग किया जाता है उनके अर्थ समय के अनुसार बदलते रहते हैं। जैसे किसी समय देवानांप्रिय शब्द बड़े सुन्दर अर्थ में प्रयोग किया जाता था लेकिन वही शब्द श्रमण-ब्राह्मण संस्कृतियों के संघर्ष के कारण भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगा अर्थात् इसी शब्द का सुन्दर अर्थ 'देवों का प्रिय' बदलकर 'मूर्ख' बन गया। उसी प्रकार 'महाराज' शब्द जिसका अर्थ अच्छे विचार वाला मनुष्य होता है, बदलकर उस मनुष्य के अर्थ में हो गया जो सीधा-साधा अर्थात् मूर्ख हो। बनारस में 'महाराज' शब्द जैसे रसोइये के लिये प्रयोग होता है यद्यपि महाराज का अर्थ बड़ा राजा है। इन सब दृश्यों से यह स्पष्ट है कि शब्दों के अर्थ में किस प्रकार परिवर्तन हो जाता है। शब्दों के अन्दर या तो सामान्य रूप से परिवर्तन होता है या विशेष रूप से। जब शब्द सामान्य रूप में प्रयोग किये जाते हैं तब उनका भावार्थ कम हो जाता है जैसे अंग्रेजी भाषा में तैल (Oil) शब्द का प्रयोग प्रथम जैतून के तैल के अर्थ में प्रयोग किया गया था किन्तु बाद में वह सब प्रकार के तैलों के लिये प्रयोग किया जाने लगा। यह उदाहरण इस बात को बतलाने वाला है कि शब्द किस प्रकार सामान्य रूप से अपने अर्थ को बदल देते हैं। जब शब्द विशेष रूप से अर्थ को बदलते हैं तब उनका भावार्थ बढ़ जाता है। तार्किकों का कर्तव्य है कि वे शब्दों को सामान्य रूप में प्रयोग करें और उनके लक्षण बनाकर उनके अर्थों को निश्चित कर दें,

तभी उनका सुन्दर प्रयोग हो सकता है। अन्यथा एक ही शब्द के अनेक अर्थ होने से अनेकार्थक दोष उत्पन्न होने की सम्भावना हो जाती है।

नामों या शब्दों का वैज्ञानिक ढग से या तो (१) असाक्षात् प्रयोग होता है या (२) साक्षात्। असाक्षात् रूप से नाम इसलिये लाभ-दायक हैं क्योंकि वे विचारों के साधन होते हैं और साक्षात् रूप से इसलिये लाभ-दायक होते हैं क्योंकि वे सामान्य वाक्य बनाने में हमारी सहायता करते हैं।

(२) नामों का असाक्षात् प्रयोग

असाक्षात् रूप से नाम विचारों के साधन होने के कारण प्रयोग में लाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सामान्य नाम, शुद्ध विचारों को मिश्र विचारों में बाँध देते हैं और इस प्रकार विचार करने में अल्प समय लगता है। तथा इस प्रकार हमें इनके द्वारा विचारों को दूसरों तक पहुँचाने में आसानी होती है। ये मस्तिष्क में भी अधिक काल तक धारण किये जा सकते हैं और जब चाहें तब पुन इनको पैदा किया जा सकता है। हम 'सभ्यता' शब्द को ले सकते हैं। यह शब्द किस प्रकार हमें एक विशिष्ट अर्थ में बाँध देता है। इसी एक शब्द के अन्दर—एक बौद्धिक स्तर, एक आचरण का स्तर, तथा एक शिक्षा का स्तर—ये सब एकत्रित किये हुए प्रतीत होते हैं। यदि यह एक शब्द न हो तो हमें उन सब विचारों के लिये अलग अलग शब्दों का प्रयोग करना पड़े। सामान्य शब्द मस्तिष्क में वही कार्य करते हैं जैसा कि जिल्द पुस्तक का काम करती है। इसके बिना मस्तिष्क छिन्न-भिन्न रूप से कार्य कर सकता है न कि समष्टि रूप से।

(३) नामों का साक्षात् प्रयोग

साक्षात् रूप से नाम सामान्य वाक्यों के निर्माण में सहायक होते हैं। सामान्य वाक्यों द्वारा हम अतीत का इकट्ठा ज्ञान कर सकते हैं और मनुष्य जाति के सारे ज्ञान-विज्ञान को एक रूप में समझ सकते हैं और उसको हम एक वाक्य में रख कर स्मरण कर सकते हैं। एकरूपता के नियमों का भी ज्ञान इनके द्वारा हो सकता है। नामकरण का केवल यही उद्देश्य नहीं है कि यह हमें शब्दों की मितव्ययता में सहायक होता है जिससे हम अनन्त

वस्तुओं के लिये अलग-अलग नाम न देकर केवल कुछ सामान्य नामों से ही अपना कार्य चला लें; किन्तु नामकरण से हमारा उद्देश्य यही है कि हम अपने, तुलना से प्राप्त सामान्य नियमों का संकलन कर सकें। यदि हम विश्व की भिन्न-भिन्न वस्तुओं के लिये भिन्न-भिन्न नामों की भी योजना करें तो भी हम सामान्यनामों के अभाव में, तुलनात्मक सामान्य नियमों के परिणामों को एकत्रित नहीं कर सकते।

(४) वैज्ञानिक भाषा की आवश्यकताएँ

सामान्य नाम केवल इसलिये ही लाभप्रद नहीं हैं क्योंकि वे विचारों के ग्राहक होते हैं किन्तु वे इस कारण अधिक लाभ-दायक गिने जाते हैं क्योंकि इनके द्वारा हम सामान्य वाक्यों का निर्माण करने में सफल होते हैं। यहाँ प्रश्न यह है—वे कौनसी अवस्थाएँ हैं जिनके पूर्ण होने पर हम वैज्ञानिक क्षेत्र के अन्दर नामों की सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं? यही प्रश्न दूसरी प्रकार से भी रक्खा जा सकता है? विज्ञान का कार्य है सामान्य नियमों की खोज करना और उनकी सिद्धि करना। अतः इन सामान्य सत्यों को प्रतिपादन करने के लिये वैज्ञानिक भाषा में सामान्य नामों की वृद्धि होती है। यहाँ प्रश्न है—वे मुख्य आवश्यकताएँ कौन सी हैं जिनकी पूर्ति होने पर वैज्ञानिक भाषा का उद्देश्य पूर्ण हो सकता है?

संक्षेप में वैज्ञानिक भाषा की दो आवश्यकताएँ हैं—(१) प्रत्येक अर्थ को प्रकट करने के लिये एक नाम होना चाहिये (२) प्रत्येक सामान्य नाम का एक और सही अर्थ होना चाहिये।

(१) प्रथम, प्रत्येक मुख्य अर्थ को प्रकट करने के लिये एक नाम होना चाहिये।

हमें प्रत्येक मुख्य अर्थ को प्रकट करने के लिये एक नाम की आवश्यकता होती है। हमें ऐसे किसी अर्थ की कल्पना नहीं करनी चाहिये जिसको हम उचित नाम के बिना प्रकट न कर सकें। इसका अर्थ यह है कि वैज्ञानिक भाषा के लिये हमें नामकरण और परिभाषा की आवश्यकता है।

नामकरण, वस्तुओ की जातियों के नामों की पद्धति को कहते है जिसका प्रत्येक विज्ञान में समुचित उपयोग होता है। जैसे रसायन विज्ञान में अनेक तत्वों के लिये तथा उनके मिश्रणों के लिये नाम रक्खे जाते हैं। भूगर्भ-विज्ञान में चट्टानों की जातियों और स्तरों के लिये अलग-अलग नाम होते हैं। प्राणी-विज्ञान में अनेक प्रकार की प्राणियों की जातियों के लिये पृथक्-पृथक् नाम होते हैं। वनस्पति-विज्ञान में अनेक प्रकार के वृक्षों और पौवों की जातियों के लिये नाम होते हैं, इत्यादि।

परिभाषा, वस्तुओं के भाग, गुण, और क्रियाओं को वर्णन करने के लिये नाम रखने की पद्धति को कहते है।

इस प्रकार (१) किसी वस्तु के प्रत्येक सपूर्ण भाग को वर्णन करने के लिये नामों का प्रयोग करना चाहिये जैसे, जानवरों के सिर, अग, हृदय, नस, जोड आदि के लिये नाम होते हैं। पौधों में, डठल, पत्तियाँ फूल, कली आदि के नाम होते हैं। (२) किसी वस्तु के प्रत्येक गुण को वर्णन करने के लिये नाम होने चाहिये। जैसे, फैलाव या विस्तार, भार या वजन, ठोसपन, अभेदकता, लचीलापन, चिकनाहट इत्यादि। (३) किसी वस्तु की प्रत्येक क्रियाओं के लिये अलग-अलग नाम होने चाहिये जैसे, शरीर की स्वासक्रिया, रक्तसचारक्रिया, पाचनक्रिया, आकर्पण-क्रिया, आकुञ्चनक्रिया, गतिक्रिया इत्यादि।

नामकरण और परिभाषा का संतुलन

इस प्रकार नामकरण और परिभाषा ये दोनों नाम रखने की पद्धतियाँ हैं। दोनों में भेद केवल इतना ही है कि नामकरण वस्तु की जातियों के नाम रखने की पद्धति को कहते हैं, इसके विपरीत परिभाषा, वस्तु के भाग, अग, गुण और क्रियाओं के नाम रखने की पद्धति को कहते हैं। प्राणिविज्ञान में प्राणियों की अनेक जातियों के नाम रखने को नामकरण कहते हैं तथा प्राणियों के अग, उनके गुण, क्रिया, आदि के नाम रखने को परिभाषा कहते हैं। कभी-कभी तार्किक नामकरण और परिभाषा को

सामान्यार्थ में भी प्रयोग करते हैं और उसके द्वारा किसी विज्ञान के समस्त खास-खास नामों को ग्रहण कर लेते हैं।

(२) द्वितीय, प्रत्येक सामान्य नाम का निश्चित और स्पष्ट अर्थ होना चाहिये। वैज्ञानिक भाषा की दूसरी आवश्यकता यह है कि प्रत्येक शब्द को इसमें प्रयोग किया जाय उसका निश्चित और स्पष्ट अर्थ होना चाहिये। अर्थात् जो भी शब्द विज्ञानों में प्रयोग किये जांय वे सबका संदेह से निमुक्त होने चाहिये। कभी-कभी उसकी पूर्ति खास-खास शब्दों के निर्माण करने से होती है जो उसी समय काम में आते हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त प्रत्येक विज्ञान में ऐसे शब्दों को उधार लेना पड़ता है जो अब भी प्रचार में आ रहे हैं। ऐसी अवस्था में इन नामों का सम्यक् समरण करना चाहिये। यही कारण है कि नामकरण का समरण से विशेष सम्बन्ध है। किसी जाति या वस्तुओं के नाम मनमानी नहीं रख दिये जाते हैं; किन्तु उनका नाम-करण या परिभाषा उनके साधारण आवश्यक गुणों के आधार पर की जाती है।

नाम-करण का इस प्रकार वर्गीकरण से भी सम्बन्ध है। वर्ग चाहे वे कृत्रिम हों या स्वाभाविक जिनमें वस्तुओं को विभाजित किया है, न तो उन्हें स्मरण रखा जा सकता है और न उन्हें दूसरों तक भेजा जा सकता है, यदि उन्हें नामों के द्वारा संकेतित न किया जाय। नामकरण वस्तुओं की जातियों के नाम रखने की प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें वर्गों के नाम रखे जाते हैं। स्वाभाविक वर्गों की संख्या इतनी अधिक है कि उनमें से प्रत्येक वर्ग के लिये अलग-अलग नाम रखना असम्भव सा प्रतीत होता है। यदि इस प्रकार के नाम गढ़ भी लिये जांय तो उनको स्मरण रखना अत्यन्त कठिन होगा। सामान्यरूप से पौधों की संख्या करीब ६ के है। यदि उनको उपजातियों को भी शामिल किया जाय तो उपर्युक्त संख्या से कई गुनी संख्या बन जायगी। अतः कोई न कोई विधि आवश्यक है जिसके द्वारा हम इस संख्या को कम करने में समर्थ हो सकें। कुछ विज्ञानों के अन्दर जिस विधि का प्रयोग किया गया है उसे दुहरी पद्धति (Binary Method) कहते हैं। दुहरी पद्धति एक प्रकार से दो वर्ग करने की

पद्धति है जिसका प्रयोग वनस्पति-विज्ञान, प्राणिविज्ञान, रसायन-शास्त्र आदि में किया जाता है। वनस्पति-शास्त्र में किसी पौधे का नाम दो शब्दों का बना हुआ होता है—(१) सज्ञा या विशेष्य और (२) विशेषण। इसमें सज्ञा या विशेष्य जाति को बतलाता है और विशेषण उपजाति को बतलाता है। इस प्रकार जेरेनियम (Gerenium) नामक पौधे की १२ उपजातियाँ होनी हैं। जैसे, जेरेनिअम-फीनम, जेरेनिअम-नोडोसम, इत्यादि। रसायन विज्ञान में मिश्रणों का वर्णन करने के लिये द्विगुणित नाम प्रयोग किये जाते हैं। इसमें मूल धातु का नाम मिश्रण में दिखलाया जाता है, जैसे लोहे धातु के मिश्रणों का वर्णन करना हो तो हम उसकी सब उपजातियों में, जैसे फैरस आक्साइड (Ferrous Oxcide) आदि में लोह शब्द का प्रयोग करेंगे।

(५) शब्दों के अर्थ परिवर्तन का इतिहास

जिन शब्दों का साधारण जनता में व्यवहार होता है उनका अर्थ समय समय पर बदलता रहता है। इसके कई हेतु हैं। उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं।

(१) आकस्मिक भावार्थ (Accidental Connotation)। किसी शब्द के अर्थ के परिवर्तन में प्राय करके यह कारण होता है कि हम शब्द के अर्थ में किसी ऐमी अवस्था को शामिल कर लेते हैं जो मूल में केवल आकस्मिक अवस्था थी। यही नही होता कि आकस्मिक अवस्था को हम उसमें शामिल कर लेते हैं किन्तु कभी-कभी ऐमा होता है कि मूल का अर्थ बिलकुल अंधेरे में पड जाता है और कभी-कभी तो बिलकुल बदल जाता है। जैसे 'नास्तिक' शब्द पहले इस अर्थ में प्रयोग होता था कि जो मनुष्य परलोक आदि में विश्वास नही करता, वह नास्तिक है। बाद में नास्तिक का अर्थ यह हो गया कि नास्तिक वह है जो वेदों में विश्वास नही करता। अब वे सब नास्तिक गिने जाते हैं जो हिन्दू या वेद-धर्म में विश्वास नही करते। देवाना प्रिय शब्द का भी इतिहास करीब-करीब ऐसा ही है। जब ब्राह्मण धर्म का जोर था तब इसका अर्थ 'देवों का प्रिय' को छोडकर, मूर्ख, बन गया।

(२) शब्द का प्रयोग-संक्रमण (Transitive application of words)। दूसरा शब्द के अर्थ में परिवर्तन का हेतु शब्द का प्रयोग-सक्रमण

है। जब मनुष्य एक नवीन पदार्थ को देखते हैं तब प्रायः मनुष्यों में नये शब्द बनाने की प्रवृत्ति नहीं होती; वे, जो शब्द विद्यमान हैं उन्हीं में कुछ हेरफेर करके काम चलाने की कोशिश करते हैं। जैसे 'गाय' शब्द पहले से ही सास्नादिमान पदार्थ के लिये प्रयोग होता चला आया है किन्तु जब लोगों ने गाय के समान ही नीचे रंगवाले अन्य वस्तु को देखा तो लोगों ने उसका नाम नील-गाय रख दिया। अंग्रेज़ी भाषा में 'आयल' शब्द किसी समय जैतून के तेल के लिये प्रयोग होता था किन्तु आजकल यह सब प्रकार के तैलों के लिये प्रयोग होता है। इसका प्रयोग तो यहाँ तक बढ़ गया है कि कितनी ऐसी वस्तुओं को भी आयल कहा जाता है जिनकी सूरत तक तैल से सर्वथा भिन्न है। शब्दों में अर्थ परिवर्तन या तो सामान्यीकरण (Generalisation) द्वारा होता है या विशेषीकरण (Specialisation) द्वारा होता है, या दोनों द्वारा। सामान्यीकरण का अर्थ है शब्द का मौलिक अभ्यार्थ बढ़ा देना। जैसे, 'आयल' शब्द का मौलिक अर्थ था जैतून का तैल किन्तु अब यह शब्द सब प्रकार के तैलों के लिये प्रयुक्त होता है। उसी प्रकार नमक शब्द पहले केवल समुद्रीय नमक के लिये प्रयोग होता था किन्तु अब सब प्रकार के नमकों के लिये नमक शब्द का प्रयोग होता है। विशेषीकरण करण का अर्थ है शब्द के अभ्यार्थ को कम कर देना। उदाहरणार्थ 'कहानी' शब्द पहले एक छोटे से वर्णनात्मक आख्यान को कहते थे किन्तु अब यह शब्द झूठी काल्पनिक कहानियों के लिये प्रयुक्त होता है। जैसे बनारस में गुरु शब्द पहले अध्यापकों के लिये प्रयोग होता था किन्तु अब गुरु शब्द से लोग गुण्डा का अर्थ समझते हैं। पहले कुमारिल वगैरह बड़ बड़े विद्वान गुरु कहलाते थे किन्तु आजकल गुरु शब्द का अर्थ अधिकतर बनारस में गुण्डा ही लिया जाता है। इस प्रकार अर्थ में परिवर्तन होता रहता है। शब्द-शास्त्र में इसके अनेक उदाहरण मिल जावेंगे।

अभ्यास प्रश्न

(१) परिभाषा और व्याकरण में क्या अन्तर है? प्रत्येक का लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(२) नामों के असाक्षात् और साक्षात् प्रयोग से आपका क्या अभिप्राय है ? उदाहरण देकर समझाओ।

(३) वैज्ञानिक भाषा की क्या-क्या आवश्यकताएँ हैं ? सबका उल्लेख करके उनकी उपयोगिता सिद्ध करो।

(४) लक्षण और वर्गीकरण का नामकरण से क्या सम्बन्ध है ? इनके लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(५) शब्दों के अर्थ परिवर्तन के क्या कारण है ? इसकी ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालो।

अध्याय १४

(१) सामान्यानुमान के दोष

विशेषानुमान का विवेचन करते हुए प्रथम भाग के अन्त में हमने विशेषानुमान सम्बन्धी दोषों का पूर्ण रूप से व्याख्यान किया है और बतलाया है कि वे दोष विशेषानुमान के नियमों का उल्लंघन करने से उत्पन्न होते हैं। उसके साथ-साथ यह भी बतलाया गया है कि कुछ दोष भाषा के अयुक्त-प्रयोग से उत्पन्न होते हैं जिन्हें हम भाषा-तार्किक दोष कहते हैं। इस अध्याय में हम मुख्य-मुख्य सामान्यानुमान सम्बन्धी दोषों का वर्णन करेंगे। तथा इसी सम्बन्ध में कुछ अतार्किक या तर्कबाह्य दोषों का भी वर्णन करेंगे जो इस प्रकरण में उपयोगी हैं।

सामान्यानुमान के दोष दो प्रकार के होते हैं —(१) तर्क-सम्बन्धी और (२) अतर्क-सम्बन्धी। अतर्क-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य दोष निम्नलिखित हैं —

(१) लक्षण के दोष।
(२) वर्गीकरण के दोष।
(३) नामकरण के दोष।
(४) प्रत्यक्षीकरण के दोष।
(५) प्राक्-कल्पना के दोष।
(६) स्पष्टीकरण के दोष।

तर्क-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य दोष निम्नलिखित हैं —

(१) कारणता के दोष।
(२) सामान्यीकरण के दोष।
(३) उपमात्मक-सामान्यानुमान के दोष।

उपर्युक्त वर्गीकरण निम्नलिखित तालिका से बिलकुल स्पष्ट हो जायगा।
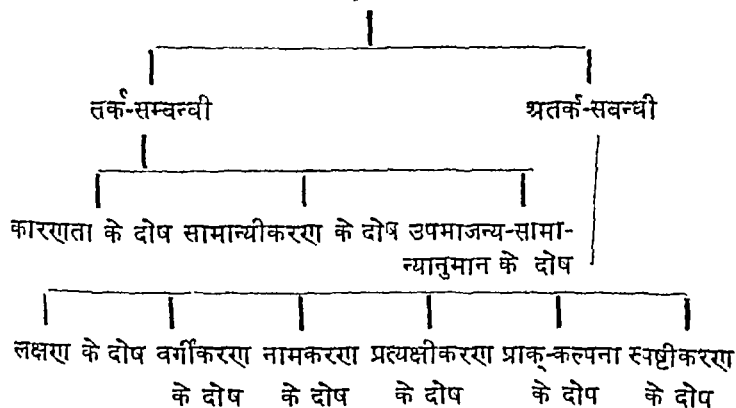
अतार्किक या तर्कवाह्य दोष कई प्रकार के होते हैं, जैसे, (१) स्वाश्रय दोष (Peticio Principii) (२) अर्थान्तर दोष या तर्काज्ञान दोष (Ignoratio Elenchi) (३) अनेक प्रश्नों का दोष (Fallacy of many questions) (४) अप्रतिज्ञा दोष (Non-sequitur) असत्कारण दोष (Non causa pro-causa)

अब हम सर्व-प्रथम अतर्क-सम्बन्धी दोषों का स्पष्टरूप से वर्णन करेंगे।

(२) अतर्क-सम्बन्धी सामान्यानुमानीय दोष

सामान्यानुमान के दोष या तो तर्क-सम्बन्धी हो सकते हैं या अतर्क-सम्बन्धी।

इनमें **अतर्क-सम्बन्धी सामान्यानुमानीय दोष वे हैं जो उन प्रक्रियाओं के नियमों के उल्लंघन से उत्पन्न होते हैं जिनका सामान्यानुमानीय तर्क से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता किन्तु किसी प्रकार इनसे लगे रहते हैं या उनके सहायक होते हैं।** सामान्यानुमान की सबसे अधिक सहायक प्रक्रियाएँ निम्नलिखित हैं—(१) वैषयिक लक्षण (Material Definition) अर्थात् पदों के भावों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद उनके लक्षण बनाने की प्रक्रिया (२) वर्गीकरण

(Classification) अर्थात् स्वाभाविक पदार्थों का उनकी समानता के अनुसार वर्गीकरण करने की प्रक्रिया और (२) नाम-करण (Nomenclature) अर्थात् वर्गों के लिये नाम-करण की प्रक्रिया अथवा परिभाषा (Terminology) अर्थात् पदार्थों के नामों के या गुणों के या क्रियाओं के नाम-करण की प्रक्रिया। इनमें से प्रत्येक प्रक्रिया के कुछ न कुछ नियम अवश्य हैं जिनसे इनकी व्यवस्था की जाती है। यदि उन नियमों का उल्लंघन किया जायगा तो अवश्य ही दोष उत्पन्न होंगे। यहाँ इसी हेतु से लक्षण वर्गीकरण और नामकरण के दोषों का उल्लेख किया गया है।

लक्षण के दोष (Fallacies of Definition) तब उत्पन्न होते हैं जब हम किसी पद के जिसका हम लक्षण बनाना चाहते हैं आवश्यक गुणों के निश्चय करने में गड़बड़ पैदा कर देते हैं। जब एक कामचलाऊ लक्षण बना लिया जाता है तब हमें उस लक्षण की लक्षण के नियमों के अनुसार अच्छी तरह परीक्षा करनी चाहिये। इसका विशेष विवेचन तर्कशास्त्र के प्रथम भाग (निगमनानुमान) में किया जा चुका है। इसका अध्ययन वहीं से कर लेना चाहिये।

वैज्ञानिक वर्गी करण के दोष तब उत्पन्न होते हैं जब हम पदार्थों का वर्गीकरण उनके अधिक-व्यापक और अत्यन्त आवश्यक समानता की बातों के आधार पर, करने में गलती करते हैं। यदि हमने कोई वर्गीकरण किया है तो हमारा कर्तव्य है कि हम उसकी जाँच उसके रूप-विषयक नियमों के अनुसार, अच्छी प्रकार कर डालें। यदि हम यथार्थ में वर्गीकरण के नियमों का उल्लंघन करते हैं तो अवश्य ही हमारा वर्गीकरण गलत होगा। इसके परीक्षण में हमें विभाग (Division) से भी सहायता ले-लेनी चाहिये क्योंकि वर्गीकरण और विभाग दोनों प्रक्रियाएं प्रायः एक सी ही हैं यदि उन पर भिन्न-भिन्न दृष्टि-बिन्दुओं से विचार किया जाय। इसका विशेष विवेचन तर्कशास्त्र के प्रथम भाग के 'विभाग' के अध्याय में किया जा चुका है।

नाम करण (Nominclature) और परिभाषा (Terminology) के दोष तब उत्पन्न होते हैं जब वर्गों या नामों के निश्चित अर्थ

नहीं किये जाते हैं अथवा जब उनका उपयुक्त अर्थ में प्रयोग नही किया जाता है। नामों को अवश्य ही कुछ अवस्थाओं[1] की पूर्ति करना चाहिये यदि वे विज्ञान के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध होना चाहते हैं। यदि वे उन शर्तों को पूरी करने में असमर्थ होते हैं तो उनका वैज्ञानिक क्षेत्र में कोई उपयोग नही।

अतर्क-सम्बन्धी सामान्यानुमानीय दोष तब पैदा होते हैं जब हम उन प्रक्रियाओं और नियमों का, जिनका सामान्यानुमानीय तर्कों से घनिष्ट सम्बन्ध है, उल्लघन करते हैं यद्यपि ये प्रक्रियाएँ स्वय अतर्कशील स्वभाव की होती हैं, जैसे, प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया, प्राकल्पना के निर्माण की प्रक्रिया या स्पष्टीकरण की प्रक्रिया।

यह हम पढ चुके हैं कि प्रत्यक्षीकरण, सामान्यानुमानीय प्रक्रिया के लिये मसाला या सामग्री प्रदान करता है। यह सत्य है कि प्रत्यक्षीकरण, प्रायः करके अज्ञात रूप से तर्क के तत्व में मिला हुआ रहता है किन्तु इसका मुख्य ध्येय सामान्यानुमानीय तर्क के लिये मसाला या पदार्थ इकट्ठे करना है। प्रत्यक्षीकरण के दोष दो प्रकार के हैं—(१) अप्रत्यक्षीकरण (Non observation) और (२) प्रत्यक्षीकरण (Mal-observation)। क्योंकि इन दोनों दोषों का प्रत्यक्षीकरण के अध्याय में अच्छी तरह विवेचन हो चुका है अत उसकी पुनरावर्तन करने की यहाँ कोई आवश्यकता नही। जहाँ तक 'प्राकल्पना' (Hypothesis) का सम्बन्ध है इसको भी अपने नियमों का पालन करना चाहिये जिनके अनुसार इसका निर्माण किया जाता है। यदि उन नियमों का उल्लघन किया जायगा तो हमारी प्राकल्पना अयुक्त या अनुचित प्राकल्पना (Illegitimate Hypothesis) कहलायगी।

स्पष्टीकरण (Explanation) के विषय में तो यह पहले बतलाया जा चुका है कि वैज्ञानिक-स्पष्टीकरण, जन-साधारण-स्पष्टीकरण से भिन्न होता है। जो स्पष्टीकरण जनसाधारण के लिये किया जाता है वह वैज्ञानिक दृष्टि से

---

(1) Conditions

अयुक्त स्पष्टीकरण कहलाता है। इसका पूर्ण पर्यालोचन स्पष्टीकरण के अध्याय में अच्छी तरह किया जा चुका है।

अब हम तर्क-सम्बन्धी सामान्यानुमानीय दोषों का विवेचन करना आरम्भ करते हैं।

(३) तर्क-सम्बन्धी सामान्यानुमानीय दोष—

तर्क-सम्बन्धी सामान्यानुमानीय दोष (Inferential Inductive-fallacies) सामान्यानुमानीय तर्कों के नियमों को उल्लंघन करने से होते हैं। मुक्त सामान्यानुमान तीन प्रकार का होता है (१) वैज्ञानिक सामान्यानुमान (Sceintific Induction) (२) साधारण-गणना-जन्य सामान्यानुमान (Induction per simple enumeration) और (३) उपमाजन्य-सामान्यानुमान (Analogy)। वैज्ञानिक सामान्यानुमान में हमारा तर्क कार्य-कारण-सम्बन्ध पर अवलम्बित रहता है, साधारण-गणना-जन्य सामान्यानुमान में हमारा तर्क केवल अबाधित अनुभव पर निर्भर रहता है तथा उपमाजन्य-सामान्यानुमान में हमारा तर्क अपूर्ण समानता पर आधारित रहता है। इनमें से प्रत्येक सामान्यानुमान के कुछ नियम हैं। यदि हम उनका उल्लंघन करें तो हम दोष पैदा करेंगे। अतः सामान्यानुमानीय दोष भी तीन प्रकार के होते हैं—(१) कारणता के दोष[1] (२) अनियमित सामान्यीकरण के दोष[2] (३) मिथ्या-उपमाजन्य-सामान्यानुमान[3] के दोष।

(१) कारणता के दोष

वैज्ञानिक दृष्टि से कारण अपरिवर्तनीय उपाधि-रहित अव्यवहित पूर्वावस्था-रूप होता है अथवा विध्यात्मक या निषेधात्मक अवस्थाओं के समूह को कारण कहते हैं। किन्तु साधारण रूप से हम कारण की किसी मुख्य या प्रभावक अवस्था के साथ सामञ्जस्यता स्थापित करते हैं जिसको हम अपनी इच्छा के अनुसार छाँट लेते हैं। यथार्थ में देखा जाय तो प्रतीत होगा कि जितने जन-साधारण के कारणता के बारे में मन्तव्य हैं वे सब वैज्ञानिक

---

(1) Fallacies of causation (2) Fallacies of illicit generalisation (3) Fallacies of false Analogy

दृष्टि से दोष युक्त हैं। इस प्रकार कारणता के दोष अनेक प्रकार से उत्पन्न होते हैं उनमें से मुख्य-मुख्य नीचे दिये जाते हैं।

(अ) काकातालीय दोष (Post hoc ergo propter hoc)।

कारण कार्य का पूर्ववर्ती होता है किन्तु प्रत्येक पूर्ववर्ती अवस्था कारण नहीं कहलाती। किसी भी पूर्ववर्ती अवस्था को कारण मान बैठना काकतालीय दोष को पैदा करना है जिसका पारिभाषिक अर्थ यह है— चूंकि इसके बाद उत्पन्न हुआ इसलिये इसका कारण यही होना चाहिये (After this, therefore on account of this) यह एक साधारण सी गलती है और इस प्रकार अनेक दोषों को जन्म देती है, जैसे, एक बार ऐसा हुआ कि आकाश में धूमकेतु (पुच्छलतारा) के उदय होने पर किसी राजा की मृत्यु हो गई। इससे अन्ध विश्वासी पुरुषों ने यह अनुमान लगा लिया कि धूमकेतु के उदय होने से राजा की मृत्यु होती है। इस दोष का अच्छा उदहरण हमें शेक्सपीयर के जुलिअस सीज़र (Julius Caesar) नामक नाटक में मिलता है। सीजर की धर्मपत्नी कलपूर्निया ने सीज़र को सेनेट में जाने से रोका क्योंकि उसने गत रात्रि में बुरा स्वप्न देखा था और कुछ अशुभ लक्षण भी देखे थे। जब सीज़र ने अपनी धर्मपत्नी से पूछा कि इन अशुभ स्वप्नों और लक्षणों का उसके साथ ही क्यों सम्बन्ध है और अन्य मनुष्यों के साथ क्यों नहीं? तब उसकी धर्मपत्नी ने उत्तर दिया—

'जब भिखारी मरते हैं तब धूमकेतु नहीं दिखाई देते हैं किन्तु राज कुमारों की मृत्यु की सूचना स्वर्गीय वस्तुएँ स्वय देती हैं'।

इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि धूमकेतुओं के उदयमें और राजाओं की मृत्यु में कुछ न कुछ अवश्य कार्य-कारण-सम्बन्ध है। हम अपने दैनिक जीवन में भी इस प्रकार के अन्ध-विश्वासों के आधार पर अनेक प्रकार के अन्दाज़े लगाया करते हैं जो इस प्रकार के दोषों को जन्म देते हैं। यदि कोई दुर्भाग्य पूर्ण घटना उत्पन्न होती है तो प्राय करके हम यह कह देते हैं कि हमने अमुक अशुभ दिन को यात्रा की इस-लिये ऐसा हुआ। या किसी ने चलते समय छींक दिया या रास्ते में किसी

विधवा के वराम हुए, इत्यादि। प्राचीन समय में राजा-लोग अपने दरबार में ज्योतिषियों या निमित्त-ज्ञानियों को रक्खा करते थे जो इस प्रकार की घटनाओं का व्याख्यान किया करते थे। स्वप्नों की भी व्याख्या इसी प्रकार हुआ करती थी किन्तु धीरे-धीरे वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ अन्ध-विश्वास समाप्त होते चले गये। किन्तु कुछ अन्धविश्वास अब भी जीवित हैं जिनका प्राय जनता में प्रचार है। और उनके प्रभाव से पढ़े लिखे मनुष्य भी अछूते नहीं हैं।

(ब) समग्र कारण के लिये केवल एक अवस्था को ही पर्याप्त समझना या दूरवर्ती अवस्था को ही कारण समझ बैठना।

यह पहले बतलाया जा चुका है कि कारण विध्यात्मक और निषेधात्मक अवस्थाओं के समूह को कहते हैं किन्तु यदि हम किसी एक मुख्य अवस्था को चाहे वह कितनी ही प्रबल क्यों न हो कारण मान बैठें तो अवश्य ही कारणता का दोष उत्पन्न होगा। उदाहरणार्थ कोई मनुष्य नसैनी (Ladder) से फिसल गया और मर गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि फिसलना मनुष्य की मृत्यु का कई कारणों में से एक कारण है किन्तु साधारण तौर से सब लोग यही समझते हैं कि उसका नसैनी से गिरना ही मृत्यु का कारण है। उसी प्रकार जब हम एक जलती हुई दियासलाई सूखे ईन्धन में लगाते हैं तब उसमें आग लग जाती है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि केवल जलती हुई दियासलाई का लगाना ही आग पैदा होने का कारण है। जब हम यह मान बैठते हैं कि जलती हुई दियासलाई ही केवल आग पैदा करने वाली है तब हम गलती करते हैं और हमारा तर्क दोष युक्त होता है। कुछ लोग अपनी असफलता का कारण अवसरों के अभाव को ही बतलाया करते हैं, इत्यादि। अतः कारण का ठीक अर्थ समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम सब अवस्थाओं पर उचित रूप से विचार करें और ऐसी गलती कभी न करें कि अनेक अवस्थाओं में से केवल एक अवस्था को ही कारण मान लें चाहे वह कितनी ही प्रभावक क्यों न हो।

कभी-कभी यह दोष तब उत्पन्न होता है जब हम किसी पूर्ववर्ती अवस्था

को ही किसी कार्य का कारण मान लेते हैं। जैसे, यह कहा जाता है कि रूस पर हिटलर की चढाई करना, उसके पतन का कारण था। यह सम्भव हो सकता है कि हिटलर का रूस पर चढाई करना उसके पतन का एक मुख्य कारण हो, किन्तु केवल यही एक पतन का कारण था, यह मानना सर्वथा ग़लत है। उसके पूर्ण पतन के अन्य अनेक कारण हो सकते हैं। इसी प्रकार कभी-कभी एक ही आकर्षक सफलता का उदाहरण, मनुष्य की उन्नति का कारण कहा जाता है और हम अन्य अवस्थाओं पर बिल्कुल विचार नही करते। किन्तु अन्य अवस्थाएँ भी उन्नति में उतनी ही सहायक होती हैं, जितनी कि वह। अत यह स्पष्ट है कि दूरवर्ती अवस्था को कारण मानकर जब हम किसी कार्य की व्याख्या करते हैं तो उपर्युक्त दोष उत्पन्न होता है।

(स) जब हम सहवर्ती घटनाओं को आपस में कार्य-कारण-भाव से सम्बन्धित बतलाते हैं तब भी कारणता का दोष उत्पन्न होता है। जैसे, कोई यनुष्य तावीज़ पहन कर किसी दुर्घटना से मुक्ति पा जाता है, जिसके अन्दर अन्य फस जाते हैं, तो वह तावीज़ का पहनना दुर्घटना से निर्मुक्ति का कारण समझता है। किन्तु यह कारणता का दोप है।

(ह) जब हम उमी कारण के सहभूकार्यो को एक दूसरे का कार्य-कारण मान लेते हैं तब भी यह दोष उत्पन्न होता है। जैसे, हम सोचते हैं कि गर्मी के मौसम में अत्यधिक गर्मी का कारण, थर्मामीटर में पारे का चढना है किन्तु इसके विपरीत यह बिलकुल ठीक है कि पारे का चढना और अत्यधिक गर्मी का होना दोनों उसी कारण के सहभूकार्य हैं—अर्थात् तापमान के बढने से ऐसा होता है। इसी प्रकार ज्वार का कारण भाटा कहा जा सकता है और भाटे का कारण ज्वार कहा जा सकता है, किन्तु यथार्थ में दोनों ही उसी कारण अर्थात् चन्द्र के प्रभाव के कारण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के समूह-कार्यो को उसी कारण से उत्पन्न होने से यदि उन दोनों का आपस में कार्य कारण-भाव माना जाता है तो हम कारणता का दोष उत्पन्न करते हैं।

(२) अनियमित सामान्यीकरण के दोष या सामान्यीकरण के दोष

साधारण-गणना-जन्य सामान्यानुमान में हम अबाधित अनुभव के आधार पर तर्क करते हैं और इस प्रकार के अनुमान का मूल्य विध्यात्मक उदाहरणों की संख्या पर तथा हमारे अनुभव के विस्तार पर निर्भर रहता है। किन्तु जन-साधारण कुछ थोड़े से ही उदाहरणों को देखकर बिना क्षेत्र संकुचित है सामान्यीकरण कर बैठते हैं। इस प्रकार करने से अनियमित-सामान्यीकरण[1] का दोष उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ जैसे एक व्यक्ति बनारस जाता है और उसे कुछ पंडे लोग ठग लेते हैं। वह इस प्रकार ठगा जाने पर सामान्यीकरण करता है और कहता है "बनारसी लोग सब ठग होते हैं"। इसी तरह कुछ सरकारी नौकरों को भ्रष्टाचारी पाकर यह कहना कि सब सरकारी कर्मचारी भ्रष्टाचारी होते हैं इसी प्रकार का सामान्यीकरण है। किसी समय मनुष्यों का विचार था कि हंस सफेद होते हैं किन्तु अब यह पता लग गया है कि हंस अन्य रंगों के भी पाये जाते हैं। ये सब उदाहरण अनियमित सामान्यीकरण के हैं।

यही कारण है कि अन्वयविधि (The method of agreement) कारणता के सिद्धान्त को पूर्णरूप से स्थापित नहीं कर सकती और इसी हेतु से इसके निष्कर्ष निश्चित नहीं होते किन्तु सम्भवनीय होते हैं। अतः हमें चाहिये कि अन्वयविधि से प्राप्त किये हुए सामान्यीकरणों की सत्यता में सर्वदा सतर्क रहें। अनुभव के आधार पर बनाए सामान्यीकरणों की सत्यता नजदीक के उदाहरणों में स्वीकार की जा सकती है किन्तु उनके निर्मित क्षेत्र के बाहर उनकी सत्यता हमेशा संदिग्ध होती है।

(३) मिथ्या-उपमाजन्य-सामान्यानुमान ।

मिथ्या-उपमाजन्य-सामान्यानुमान के दोष तब पैदा होते हैं जब हम उपमाजन्य-सामान्यानुमान का मिथ्या प्रयोग करते हैं। इसका विवेचन उपमाजन्य-सामान्यानुमान के अध्याय में अच्छी तरह किया जा चुका है।

(४) तर्कवाद या अतर्क सम्बन्धी दोष

सामान्यानुमान के दोष दो प्रकार के बतलाये थे (१) तर्क-सम्बन्धी

(1) Illicit generalisation

और (२) अतर्क-सम्बन्धी। इनमें से तर्क-सम्बन्धी दोषों का वर्णन हो चुका है। अब हम यहाँ अतर्क-सम्बन्धी दोषों का वर्णन करते हैं। अतर्क-सम्बन्धी दोष तार्किक नियमों के उल्लघन करने से उत्पन्न नही होते हैं किन्तु ये प्रतिज्ञा वाक्यों के अनुचित प्रयोग या प्रदत्त की अशुद्धि, या प्रतिज्ञा वाक्य और निष्कर्ष के मध्य सम्बन्ध-ज्ञान के अभाव से उत्पन्न होते हैं। अब हम इनके कुछ मुख्य-मुख्य उदाहरणों को उपस्थित करते हैं।

(१) स्वाश्रय दोष

स्वाश्रय दोष (Petitio principii) का वाच्यार्थ यह है—आरम्भ में विवाद के लिये जिस वस्तु को उपस्थित किया गया है उसको ही मानकर बैठ जाना या प्रश्न की भिक्षा माँगना (Begging tl e Question)। अत स्वाश्रय दोष उसे कहते हैं जिसमें या तो उस प्रतिज्ञा वाक्य को किसी रूप में मानकर बैठा जाता है जिसको हम सिद्ध करना चाहते हैं या उस प्रतिज्ञा वाक्य को मान लिया जाता है जिसकी सिद्धि केवल उसी के द्वारा हो सकती है।

इसका सबसे सरल रूप वह है जिसमें किसी प्रतिज्ञा-वाक्य को सिद्ध करने के लिये पर्यायवाची शब्द प्रयोग किये जाते हैं जिनको बेन्थम महोदय 'प्रश्नभिक्षापद' (Question-begging epithets) कहा करते हैं। जैसे 'अफीम नशा पैदा करती है' क्योंकि यह मादक गुण रखती है। इस उदाहरण में मादक वस्तु वही है जो नशा पैदा करती है। जब हम किसी बिल या धारा-सभा में निषेध करते हैं क्योंकि यह नियम-रहित नियम है या किसी मनुष्य के चरित्र को गर्हणीय कहते हैं क्योंकि यह अमानवीय है तब यह दोष पैदा होता है। इन उदाहरणों में हम जिस वस्तु को सिद्ध करना चाहते हैं उसे पहले से ही मान बैठते हैं।

कभी-कभी यह दोष बड़ा पेचीदा बन जाता है, उस समय हम इसे चक्रक दोष(Argument in a circle or Circulus in demonstrando) कहते हैं। यह दोष तब उत्पन्न होता है जब तर्क के अन्दर निष्कर्ष एक से अधिक क्रम को पार कर जाता है जिसको कि हमने मान रक्खा है। उस प्रकार प्लेटो आत्मा की अमरता को उसकी सरलता से सिद्ध करना चाहता

है और फिर आत्मा की सरलता को उसकी अमरता से सिद्ध करना चाहता है। इसी प्रकार मिल महोदय भी सिद्ध करना चाहते हैं कि प्रकृति की एकरूपता प्रत्येक सामान्यानुमान में अनुविद्ध रहती है और फिर भी वह यह बतलाना चाहते हैं कि प्रकृति की एकरूपता साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान द्वारा प्राप्त होती है। निम्नलिखित चक्रक दोष का सुन्दर उदाहरण है—

हम जानते हैं कि खुदा की सत्ता है।
क्योंकि कुरान हमें ऐसी बतलाता देती है।
क्यों कुछ कुरान में लिखा हुआ है वह सत्य है।
क्योंकि कुरान खुदा का कलाम है।

अरस्तू महोदय ने इस दोष के ५ प्रकार प्रतिपादन किये हैं। अर्थात् यह दोष ५ रूपों में उपस्थित हो सकता है—

(१) उसी प्रतिज्ञावाक्य को सत्य मान लेना जिसको कि हम सिद्ध करना चाहते हैं। यह दोष पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग करने से होता है। जैसे देश में शिक्षा के प्रचार के लिये धारा-सभा में एक बिल पेश किया गया है क्योंकि तमाम शिक्षा संस्थाओं में इसके द्वारा शिक्षा का मापदंड ऊँचा होगा। इसमें हम जिस बात को सिद्ध करना चाहते हैं उसको पहले से ही सत्य मान लेते हैं।

(२) एक विशेष उदाहरण की सिद्धि के लिये एक सामान्य सिद्धान्त को सत्य मान लेना जिसको स्वयं बिना उस विशेष उदाहरण की सिद्धि के जान के, सिद्ध नहीं किया जा सकता। जैसे राम की कायरता का अनुमान उसकी क्रूरता से किया जा सकता है; क्योंकि तमाम क्रूर लोग कायर होते हैं।

(३) सामान्य को सिद्ध करने के लिये (जिसमें विशेष सम्मिलित है) विशेष को सत्य मानना। यह साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान के साथ है। इस प्रकार का दोष यह सिद्ध करता है कि साधारण-गणना-द्वारा हम वास्तव में सामान्य वाक्य की सिद्धि कर सकते हैं। क्योंकि कुछ सदस्यों में एक गुण पाया जाता है अतः सब सदस्यों में वह गुण पाया जायगा।

(४) जिस प्रतिज्ञा-वाक्य को हम सिद्ध करना चाहते हैं उसको अवयव भागों में सत्य मान लेना। यह प्रथम दोष का केवल विशेष रूप है। यह

दोष तब उत्पन्न होता है जब हम एक सामान्य वाक्य को, उसकी सत्यता सिद्ध करने के लिये, उसके भागों में तोडकर उसके प्रत्येक भाग की सत्यता स्वीकार कर लेते हैं। इसको सिद्ध करने की कोशिश इस प्रकार की जाती है कि रोग को अच्छा करने का ज्ञान स्वास्थ्य-कर और अस्वास्थ्य-कर वस्तुओं के ज्ञान का नाम है, अत इसको क्रमशः प्रत्येक का ज्ञान मान लेना।

(५) किसी प्रतिज्ञा-वाक्य को बिना किसी स्वतत्र सिद्धि के मान लेना जिसका दूसरे वाक्य के साथ परस्पर सम्बन्ध है और जिसको सिद्ध करना है। उदाहरणार्थ, मोतीलाल जवाहरलाल के पिता थे इसलिये जवाहरलाल मोतीलाल के पुत्र हैं। इलाहाबाद बनारस के पश्चिम में है इसलिये बनारस इलाहाबाद के पूर्व में है।

(२) अर्थान्तर दोष

अर्थान्तरदोष या तर्कज्ञानदोष (Ignoratio Elenchi) का अक्षरशः अर्थ यह है—तर्क के खडन का पूरा अज्ञान। किसी तर्क को खडन करने का अभिप्राय यह है कि उसके सर्वथा विरुद्ध एक वाक्य को स्थापित करना। इसका अर्थ यह है कि यदि हम किसी व्यक्ति के तर्क का खडन करना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि उसके द्वारा उपस्थित किये हुए तर्क के सर्वथा विरुद्ध तर्क उपस्थित करें। यदि हम ऐसा करने में असमर्थ हैं तो इसका अर्थ यह है कि हमें उसके खडन करने का कोई उत्तम ज्ञान नही है।

आजकल तार्किक लोग इसका कुछ विस्तृत अर्थ लेते हैं —"उनके अनुसार अर्थान्तर दोष का अर्थ है कि जब हम यथार्थ तर्क को छोडकर तर्क करने लगते हैं अर्थात् आवश्यक निष्कर्ष की सिद्धि करने की अपेक्षा हम एक वाक्य को सिद्ध करने लगते हैं जो भूल से इसके लिये समझ लिया जाता है।" इसका अर्थ यह है कि जिस बात को हम सिद्ध करना चाहते हैं उसको अधेरे में डाल देते हैं और उसके स्थान पर कुछ और ही सिद्ध कर डालते हैं। अर्थान्तर दोष के कई रूप हैं जिनमें से मुख्य-मुख्य नीचे दिये जाते हैं —

(१) व्यक्ति के प्रति तर्क (Argumentum ad Hominem) यह एक प्रकार का अर्थान्तर दोष है जिसमें हम प्रतिवादी के विरुद्ध तर्क उपस्थित करते हैं न कि उसके तर्क के विरुद्ध तर्क उपस्थित करते हैं। उदाहरणार्थ हमको साध्य यह है कि अमुक व्यक्ति ने एक चोरी की है तो हमें सिद्ध करना चाहिये कि उसने चोरी की है। हम यह तो सिद्ध नहीं करते किन्तु यह सिद्ध करने लगते हैं कि वह वास्तव चोर है इसलिये उसने अवश्य चोरी की होगी। यह इस दोष का उदाहरण है। जो वकील एक कमजोर मामले को सिद्ध करना चाहते हैं तब अवश्य ही इस दोष को पैदा करते हैं। एक बार एक अटर्नी ने किसी मुकदमे में प्रतिवादी के लिये एक बैरिस्टर साहब के लिये निम्नलिखित संक्षिप्त मसौदा तय्यार कर भेजा था —

'मामले की परवा न करो केवल वादी के अटर्नी पर आक्रमण करो काम सिद्ध हो जायेगा। कनिङ्हम महोदय ने निम्नलिखित दिलचस्प उदाहरण दिया है —

Mr Kiefe O' kiefe
I see by your brief O brief
That you are a thief O' thief

इसका मि० ओ कीफ की चोरी करने से कोई सम्बन्ध नहीं था। इस प्रकार के तर्क ने जूरी के दिलों में हँसी उत्पन्न की और उन्होंने शीघ्र प्रतिवादी के पक्ष में निर्णय दे दिया।

इसी प्रकार का एक देशी उदाहरण भी है :—

अरे, सजनवाँ मोर
तेरी बात कहूँ को और
तू है चोरों का चोर।

इसमें 'सज्जन' नामक व्यक्ति के विरुद्ध ही कहा गया है। चोरी सिद्ध करने की कोई कोशिश नहीं की गई है अतः यह अर्थान्तर दोष का उदाहरण है।

लोक के प्रति तर्क—(Argumentum ad populum) यह

भी एक अर्थान्तर दोष का रूप है। इसमें हम भावना, पक्ष, दया आदि के लिये प्रार्थना करते हैं, तर्क को सिद्ध करने का कोई प्रयत्न नही किया जाता। इसको "छज्जे के प्रति प्रार्थना (Appeal to the gallery) भी कहते हैं क्योंकि इसमें जनता के भावों को उकसाया जाता है। यह तरीका प्रचारकों का शस्त्र कहा जाता है। मार्क अन्योनी का जूलियस सीजर की मृत्यु पर शोक प्रदर्शन करना इसी प्रकार का उदाहरण है। जब वह कहता है—

'मित्रो! रोमनो! देशवासियो! अपना ध्यान मेरी तरफ करो,
मैं सीजर को दफनाने को आया हूं न कि उसकी प्रशंसा करने के लिये,

. . . .

मैं, जो कुछ ब्रूटस ने कहा है उसका खंडन करने के लिये नही खड़ा हूं। किन्तु मैं यहाँ जो कुछ जानता हूं उसे बतलाना चाहता हूं। आप सब लोग उसे किसी दिन सकारण प्यार करते थे। लेकिन किस कारण से आज तुम उसके विलाप को रोक रहे हो। अरे न्याय! तुम दुष्ट पशुओं के पास भाग गये हो। और मनुष्य अपनी बुद्धि खो बैठे हैं, मेरे साथ चले चलो। मेरा हृदय सीजर के कफन के सन्दूक में निहित है। और मुझे विश्राम लेना चाहिये जब तक कि वह लौटकर नही आता है'।

यह सारा व्याख्यान केवल जनता की समवेदना को प्राप्त करने का उपाय है।

(३) **अज्ञान के प्रति तर्क** (Argumentum ad ignoratium) यह भी एक अर्थान्तर दोष का रूप है जिसमें सिद्धि का वजन अपने को छोड़कर प्रतिवादी पर फेंक दिया जाता है यदि प्रतिवादी तर्क को असिद्ध नही कर सकता, तो उसकी असमर्थता को ही हम सिद्धि समझ लेते हैं। इस दोष का नाम इसलिये पड़ा है क्योंकि इसमें हम प्रतिवादी के अज्ञान का लाभ उठाते हैं।

(४) **आप्त के प्रति तर्क** (Argumentum ad verecundium) यह भी एक अर्थान्तर दोष का विशेष रूप है। इसमें विशेष रूप से तर्क को सिद्ध न करते हुए आप्तत्व के प्रति प्रार्थना की जाती है। मध्य युग में

इस प्रकार की तर्क-प्रणाली अत्यन्त प्रचलित थी जब कि धर्म का साम्राज्य था और यदि कोई बात बाइबिल के विरुद्ध होती थी तो उसे बुरा समझा जाता था। इसी आशय के अनुसार विकास के सिद्धान्त (Theory of Evolution) का शुरू-शुरू में बड़े जोरों से विरोध किया गया था क्योंकि बाइबिल में नवृ स्वभाव का समर्थन किया गया है। इस्लामिक देशों में अब भी शरियत के विरुद्ध बातोंका निषेध किया जाता है।

(४) मुष्टि के साथ तर्क (Argumentum ad baculum) इसको तर्क कहना तर्क का अपमान करना है। इसमें प्रतिवादी को चुप रहने के लिये शक्ति का प्रयोग किया जाता है। इसको यदि यह कहा जाय कि यह 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला तर्क है तो अनुचित नहीं। इसको 'शेर का मेमने के प्रति तर्क' भी कहते हैं। इसका तब प्रयोग किया जाता है जब तर्क और नीति दोनों असफल हो जाते हैं और मुष्टि को बल से सिद्ध करने की चेष्टा की जाती है।

बहुप्रश्न दोष ((Plures Introgationes or fallacy of many questions)

यह दोष तब उत्पन्न होता है जब हम प्रतिवादी से 'हाँ' या 'ना' में स्पष्ट उत्तर चाहते हैं। यथार्थ में इसमें वादी पहले ही से सोच लेता है कि प्रतिवादी क्या उत्तर देगा ? जैसे किसी व्यक्ति से पूछा जाय—क्या तुमने अपनी मा को पीटना छोड़ दिया है ?—यदि वह इसका विधि में उत्तर देता है तो इसका अर्थ होगा कि तुम पहले अपनी मा को पीटा करते थे। और यदि निषेधात्मक उत्तर देता है तो इसका अर्थ यह है कि तुम अपनी मा को अब भी पीटते हो। उत्तर दाता दोनों प्रकार से फँसता है। इसी प्रकार—क्या तुमने शराब पीना छोड़ दिया है ? क्या तुमने झूठ बोलना छोड़ दिया है ? क्या वह समाज वादी है या प्रतिक्रिया वादी ? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर भी बहुप्रश्न के दोष के उदाहरण हैं। इन सब प्रश्नों में दो विकल्प हैं जिनके उत्तर देने पर दोनों प्रकार से प्रतिवादी फँसता है। इसकी अभिव्यक्ति सोत्तर-प्रश्न का दोष भी कहते हैं।

(४) विपरिणाम दोष (Fallacy of the consequent or Non sequitor)

विपरिणाम दोष का अर्थ है कि परिणाम ठीक नही है। इसको गलत परिणाम का दोष (The fallacy of the Consequent) भी कहते हैं क्योंकि इसमें हम हेतुहेतुमद् वाक्य के हेतु का, निष्कर्ष में, वाक्य में इसके हेतुमद् का विधान करके, विधान करते हैं। जैसे,

"यदि वर्षा हुई है तो मैदान भीगा है,
मैदान भीगा है
∴ वर्षा हुई है।"

इस प्रकार बहुप्रश्न का दोष तब उत्पन्न होता है जब हम हेतुमद् को हेतु के साथ परिवर्तन के योग्य समझते हैं।

(५) मिथ्या कारण (False cause or Non-causa Pro-causa) का दोष।

यह वह दोष है जिसमें ऐसे तर्क के वाक्य की सत्यता स्वीकार कर ली जाती है जिसका निष्कर्ष के साथ कोई सम्बन्ध नही होता। अरस्तू भी इसका यही अर्थ करता है। उसने इसके ऐसे उदाहरण उपस्थित किये हैं जिनमें हम मूर्खतापूर्ण निष्कर्ष (Reductio ad impossibile) निकाल लेते हैं या जिन्हें हम प्रतिलोम सिद्धि (Indirect proof) कहते हैं। इसमें हम एक वाक्य की असत्यता सिद्ध करते हैं यह दिखलाकर कि इसकी सत्यता से मूर्खतापूर्ण बातें सिद्ध होती हैं या हम एक वाक्य की सिद्धि करते हैं यह दिखलाकर कि इसकी असत्यता की स्वीकारता मूर्खता पूर्ण बातों को सिद्ध करती है। मिथ्याकारण का दोष तब उत्पन्न होता है जब मूर्खतापूर्ण निष्कर्ष हमारे माने हुए वाक्यों से नही उत्पन्न होते हैं, किन्तु कुछ बेकार वाक्यों से उत्पन्न होते हैं जिनको किसी-न-किसी प्रकार तर्क में शामिल कर लिया जाता है। यहाँ मूर्खतापूर्ण निष्कर्ष प्राथमिक कल्पना के आधार पर सिद्ध किया जाता है। जॉयमे महोदय का निम्नलिखित उदहरण उल्लेखनीय है। 'यदि हम सॉफिस्ट के प्रतिवादी को यह कहते हुए पाते हैं कि घातक के लिये मृत्यु दंड उचित है तो उसके विरुद्ध सॉफिस्ट तर्क कर सकता है।

यो इस प्रकार है—यह कहना मूर्खतापूर्ण है क्योंकि यदि यह मान लें कि मृत्यु दण्ड घातक के लिये उचित है और दंड हमें हमेशा रोधक-नीति के आधार पर ही नियमित करना चाहिये तो इससे हम यह भी परिणाम निकाल सकते हैं कि जेबकतरे के लिये भी मृत्यु दण्ड उचित है। यहाँ पर मूल कथन का, प्राप्त निष्कर्ष से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस सिद्धान्त से यही तात्पर्य निकलता है कि दंड का न्याय इसी आधार पर निर्भर है कि मनुष्यों को अपराध करने से किस प्रकार रोका जाय। यह वह कथन है जिसका घातक के लिये मृत्यु दंड देने के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार जिस अर्थ में अरस्तू ने इस दोष का वर्णन किया है उसे हम सामान्यानुमानीय दोष कह ही नहीं सकते। यद्यपि आज-कल हम इसको सामान्यानुमानीय दोषों में शामिल कर लेते हैं और इसको मिथ्या कारण का दोष कहा जाता है। यथार्थ में यह दोष वाक्य के समर्थन से सम्बन्ध रखता है न कि उदाहरण के प्रदर्शन से। हम इस दोष को तब पैदा करते हैं जब हम एक मिथ्याकारण को कारण मान बैठते हैं। यह दोष यथेष्ट-तर्क के सिद्धान्त[1] के न मानने से उत्पन्न होता है।

अभ्यास प्रश्न—

(१) दोष किसे कहते हैं ? सामान्यानुमानीय दोषों की तालिका दो।

(२) अव्यक्तीकरण और द्रुत-प्रत्यक्षीकरण के लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(३) मिथ्या-सामान्यी-करण का लक्षण लिखकर उदाहरण दो। यह दोष किस प्रकार होता है ?

(४) व्याप्यदोष किसे कहते हैं ? इसके कितने दोष हैं ? प्रत्येक का लक्षण लिखकर उदाहरण दो।

(५) अर्थान्तर दोष का लक्षण लिखकर उदाहरण दो। इसके कितने प्रकार हैं ? प्रत्येक का लक्षण दो।

(६) बहु प्रश्न दोष का स्वरूप क्या है ? यह दोष कब उत्पन्न होता है ? उदाहरण देकर समझाओ।

---

(1) The Principle of sufficient Reason.

(७) विपरिणाम दोष का लक्षण लिखकर उदाहरण दो ।

(८) मिथ्या कारण दोष का स्वरूप क्या है ? जायन्से ने उसका क्या उदाहरण दिया है ?

(९) निम्नलिखित तर्कों की परीक्षा करो —

(१) इङ्गलिस्तान के लोग धनवान हैं क्योंकि वे परिश्रमी हैं ।

(२) यदि धन को रखने में न्याय है तो न्यायी मनुष्य अवश्य चोर होना चाहिये । क्योंक जिस प्रकार की कुशलता धन को रखने में आवश्यक होती है उसी प्रकार की कुशलता उसको चुराने में आवश्यक होती है ।

(३) ज्योंही मैं आज सुबह अपने कमरे में पढने के लिये बैठा त्योंही मेरा पडोसी हारमोनियम बजाने लगा । वास्तव में वह मुझसे डाह रखता है ।

(४) यह पेटेन्ट दवाई बडी लाभप्रद है क्योंकि सब प्रमाण-पत्र इसकी प्रशंसा करते हैं ।

(५) हमें युद्ध नही करना चाहिये क्योंकि खून बहाना अच्छा नही होता ।

(६) अफीम नीद लाती है क्योंकि यह मादक वस्तु है ।

(७) किसी देश की राजधानी उसका हृदय होता है, अत राजधानी का बढना बीमारी से खाली नही है ।

(८) स्त्रियों ने आज तक मनुष्यों की बराबरी नही की है । इसलिये स्त्रियाँ मनुष्यों से हीन हैं ।

(९) आत्मा अवश्य ही सारे शरीर में फैला हुआ है क्योंकि इससे प्रत्येक अग सचेतन कहलाता है ।

(१०) वह मनुष्य अवश्य ही अच्छा होना चाहिये क्योंकि मुझे उसके कार्य बहुत अच्छे मालूम होते हैं ।

(११) यह मनुष्य अवश्य ही चोर होना चाहिये क्योंकि यह उस कमरे में था जिसमें से घडी चुराई गई है और ज्योंही कमरे में मैं घुसा त्योंही वह बाहर निकल आया ।

(१२) जब भिक्षुकों की मृत्यु होती है तब धूमकेतु का उदय नहीं होता है किन्तु जब राजाओं की मृत्यु होती है तब स्वयं से ही उसको घोषणा होती है।

(१३) क्योंकि हम सूर्य को प्रतिदिन डूबते और उगते हुए देखते हैं इसलिये यह डूबता और उगता है।

(१४) क्योंकि ब्याज लेना ठीक है इसलिये पिता से भी ब्याज लेना चाहिये।

(१५) महायुद्ध के बाद अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैली थीं, इसलिये महायुद्ध बीमारियों का कारण है।

(१६) सुधारों ने साम्यवाद के प्रचार को नष्ट कर दिया है, इसलिये मनुष्य अब भारत वर्ष में अच्छी हालत की आशा कर रहे हैं।

(१७) हमें महापुरुषों की मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिये क्योंकि 'योग्यतम के अवशेष' के सिद्धान्तानुसार यह ठीक ही हुआ है।

(१८) यह बाढ़ का कारण देवीकोप था क्योंकि जब तक देवता प्रसन्न रहे ऐसा कभी नहीं हुआ। अबकी देवता नाराज हो गये हैं इसलिये बाढ़ आ गई।

(१९) व्यक्ति की तरह किसी देश को भी वृद्धि प्रौढ़ता और नाश से गुजरना चाहिये।

(२) एक मनुष्य की रक्षा तावीज से हुई। तो क्या तावीज रक्षा का हेतु नहीं है।

(२१) मेरा मित्र अवश्य बुद्धिमान है क्योंकि उसके अन्दर कुछ अद्भुत बातें पाई जाती हैं। संसार में जितने बड़े मनुष्य होते हैं वे सब अद्भुत बातों से परिपूर्ण होते हैं।

(२२) सब चमगादड़ें चिड़ियाँ हैं क्योंकि उनके पर होते हैं।

(२३) शराब नुकसान देनेवाली नहीं है। यदि होती तो डाक्टर इसको पीने के लिये लाभप्रद न बतलाते।

(२४) सब धर्म भगवान या ईश्वर की ओर से आते हैं वैसे सब [illegible]

(२५) विश्वविद्यालय शिक्षा का मदिर है इसलिये इसमें राजनीति के लिये कोई स्थान नही है ।

(२६) आम खाने से फुन्सियाँ पैदा होती हैं इसलिये आम नही खाना चाहिये ।

(२७) ज्योंही मैं शिमला गया मेरा स्वास्थ्य सुधर गया, इसलिये शिमले को जाना स्वास्थ्य-वृद्धि का हेतु है ।

(२८) शिक्षा अशान्ति का कारण है क्योंकि पढे-लिखे आजीविका न मिलने पर मारे-मारे फिरते हैं ।

(२९) अमुक प्रोफेसर बडा विद्वान है क्योंकि उसके द्वारा बोले हुए शब्द अच्छे-अच्छे पडितों की समझ में नही आते ।

अध्याय १५

१-परिशिष्ट

प्राच्य और पाश्चात्य कारणता का सिद्धान्त

तर्कशास्त्र-सम्बन्धी अनेक समस्याओं पर विचार करते हुए कुछ भारतीय तर्क-शास्त्री प्राच्य और पाश्चात्य कारणता के सिद्धान्त पर तुलनात्मक विचार प्रकट करते हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है कि अनादि काल से ही मानव ने जब कभी संसार में परिवर्तन होते हुए देखे होंगे तब से ही उसने सोचा होगा कि ये परिवर्तन क्यों होते हैं ? 'परिवर्तन क्यों होते हैं ?'—इसमें ही कारणता के बीज हैं। यदि विश्व सर्वथा नित्य और स्थिर होता तो सम्भव है कोई व्यक्ति परिवर्तन का विचार ही नहीं करता। किन्तु जब मनुष्य, *जन्म मृत्यु, बुढ़ापा विनाश और व्याधियाँ देखता है* तब उसे यह सोचने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि आखिरकार यह सब क्यों होता है ? क्यों का उत्तर कारणता में है—अर्थात् संसार में कोई वस्तु निष्कारण या निष्प्रयोजन नहीं होती है; प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण या प्रयोजन अवश्य होता है।

विश्व की प्रत्येक वस्तु तीन अवस्थाओं से गुजरती रहती है। वे हैं; उत्पाद व्यय और ध्रौव्य। अभिप्राय यह है—प्रत्येक वस्तु उत्पन्न होती है प्रत्येक वस्तु का व्यय होता है और प्रत्येक वस्तु में नित्यता या ध्रौव्यता पाई जाती है। इसी ब्रह्मा, महेश और विष्णु तत्व में एकानेक नित्यानित्य, भावाभाव भेदाभेद आदि अनेक दार्शनिक सिद्धान्त छिपे हुए हैं। यदि विश्व में इस प्रकार अनेकान्त या व्यवस्थित क्रम नहीं होता तो कारणता के सिद्धान्त की सार्थकता नहीं होती। संसार में प्रत्येक तर्क शास्त्र के विधाता ने कारणता के सिद्धान्त का महत्व प्रतिपादन किया है और कहा है 'नाकारणं विषयः' अर्थात् कोई वस्तु अकारण नहीं होती।

ग्रीक तार्किक हिरेक्लिटस (Heraclitus) के समय से तथा यूरोपीय तार्किक वेकन (Bacon) के समय से कारणता के सिद्धान्त को लोग महत्व देते आ रहे हैं। मिल ने तो इस पर इतना सुन्दर प्रकाश डाला है कि वह वड़े-वड़े विद्वानों की चर्चा का विषय वन गया है।

वर्तमान युग में जव हम सामान्यानुमान का विवेचन करते हैं तव हम उसके दो आधार तत्व मानते हैं (१) रूपात्मक (Formal) और (२) विषयात्मक (Material)। इनमें रूपात्मक आधार-तत्व दो हैं (१) प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त (The Law of Uniformity of Nature) और (२) कारणता का सिद्धान्त (The Law of Causation)। विषयात्मक आधार तत्व के भी दो भेद हैं (१) प्रत्यक्षीकरण (Observation) और (२) प्रयोग (Experiment) इनका विशेष उपयोग विज्ञान के क्षेत्र में होता है। प्रस्तुत प्रकरण में हमें केवल कारणता के सिद्धान्त पर ही प्रकाश डालना है।

कारणता का मुख्य सिद्धान्त मिल महोदय का है। उन्होंने कहा है 'कारण किसी घटना की निरूपाधिक, अपरिवर्तनीय आसन्न पूर्वावस्था है या यह वह अवस्था है जिसमें विध्यात्मक और निषेधात्मक दोनों अवस्थाएँ सम्मिलित रहती हैं'। वैज्ञानिक लोग इसी की व्याख्या करते समय कहते हैं कि यह एक शक्ति का पूर्ववर्ती रूप है जो उत्तरवर्ती रूप में परिवर्तित होता रहता है। इस कारणता के सिद्धान्त का हम अपनी पुस्तक के कारणता के सिद्धान्त के प्रकरण में विशद रूप से विवेचन कर चुके हैं।

जहाँ तक भारतीय दृष्टि कोण का सम्वन्ध है, कारणता के सिद्धान्त पर न्याय, जैन और वौद्ध नैयायिकों ने उत्तम प्रकाश डाला है। इस विषय पर गौतम, कणाद, दिग्नाग, धर्मकीर्ति, माणिक्यनन्दि आदि ने अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं।

न्याय के अनुसार कारण वह है जो कार्य के नियत पूर्ववर्ती होता है। न्यायशास्त्र के प्रणेता इसके तीन भेद वतलाते हैं। (१) समवायी कारण (२) असमवायी कारण और (३) निमित्त कारण। समवायी कारण वह

है जिसके साथ कार्य उत्पन्न होता है, जैसे, वस्त्र के कारण तन्तु हैं या घट का कारण मृत्तिका है। असमवायी कारण वह है जो एक ही अर्थ में कार्य या कारण के साथ समवेत होकर रहता है; जैसे वस्त्र का तन्तु संयोग कारण है। निमित्त कारण वह है जो समवायी और असमवायी कारण से सर्वथा भिन्न होता है जैसे, वस्त्र के तुरी, वेम वगैरह कारण है। नैयायिकों ने कारण से करण की भेदकता दिखलाई है। वे कहते हैं कि इन तीन कारणों में से जो असाधारण कारण होता है उसे करण कहते हैं।

जैन और बौद्ध नैयायिकों ने कारण का लक्षण देते हुए लिखा है कि कारण वह है जिसके अभाव में कार्य की उत्पत्ति न हो सके। जैसे अग्नि के अभाव में धूम की उत्पत्ति नहीं हो सकती इसलिये अग्नि धूम का कारण है। बौद्ध लोग सहवर्ती और क्रमवर्ती दोनों अवस्थाओं में कारणता को सम्बन्ध मानते हैं किन्तु जैनों का क्रमवर्ती पदार्थों में ही कार्य कारण भाव होता है। कार्य कारण भाव को निश्चित करने के लिये उन्होंने लिखा है—'अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभाव' अर्थात् कार्य कारण भाव की निश्चिति अन्वय-व्यतिरेक द्वारा होती है। जिसके होने पर जिसका होना पाया जाय उसे अन्वय कहते हैं और जिसके अभाव में जिसका अभाव पाया जाय उसे व्यतिरेक कहते हैं; जैसे अग्नि के होने पर धूम उत्पन्न होता है और अग्नि के अभाव में धूम उत्पन्न नहीं होता है। इसलिये धूम और अग्नि कार्य-कारण-भाव से सम्बन्धित हैं। इनमें भी व्यतिरेक कार्य-कारण-भाव का अधिक निश्चायक होता है। अन्वय और व्यतिरेक भिन्न की विधियों से पर्याप्त समानता रखते हैं।

जैनों और बौद्धों के अनुसार कारण तीन प्रकार का है (१) उपादान कारण (२) निमित्त कारण और (३) सहकारी कारण। उपादान कारण वह है जिसका कार्य बनता है, जैसे मट्टी घड़े का उपादान कारण है। निमित्त कारण वह है जो कार्य की उत्पत्ति में निमित्त होता है, जैसे घड़े के बनाने में कुम्भकार निमित्त कारण होता है। सहकारी कारण वे हैं जो कार्य की उत्पत्ति में सहायक होते हैं; जैसे घड़े की उत्पत्ति में चक्र, चीवर वगैरह कारण होते हैं।

इन्ही विचारों के समान अरस्तू ने भी कारण का विचार करते हुए चार कारणों का प्रतिपादन किया है। वे निम्नलिखित हैं—

(१) द्रव्य कारण (Material cause) वह है जिस द्रव्य या पदार्थ से जो कार्य उत्पन्न होता है, जैसे, मूर्ति का कारण पत्थर है।

(२) रूप कारण (Formal cause) वह है जो रूप पदार्थ या द्रव्य को दिया जाता है, जैसे, पत्थर को मूर्ति का रूप दिया गया है।

(३) योग्य कारण (Efficient cause) वह है जो परिश्रम, चतुराई शक्ति आदि कार्य की उत्पत्ति में लगाई जाती है। कभी कभी यह कार्य का कर्ता भी होता है, जैसे, कलाकार मूर्ति का कारण है।

(४) अन्तिम कारण (Formal cause) वह है जो वस्तु में या कार्य में परिवर्तन हुआ है वह किसी लक्ष्य या उद्देश्य को लेकर हुआ है, जैसे, मूर्तिका निर्माण, किसी देवता की प्रतिष्ठा के लिये किया गया है, घड़े का निर्माण, जल भरने के लिये किया गया है।

इनमें द्रव्य और रूप कारण आन्तरिक कारण कहलाते हैं, क्योंकि ये वस्तु के आन्तर स्वरूप में देखे जाते हैं तथा योग्य और अन्तिम कारण वाह्य कहलाते हैं, क्योंकि ये बाहिर से प्रतीत होते हैं। कही कही कारण और अवस्थाओं में भेद भी बतलाया है। इन सब विषयों पर हम पुस्तक में ही प्रकाश डाल चुके हैं। पाठक उनका अध्ययन वही से कर लें।

२—अभ्यास प्रश्न

(१) प्राच्य और पाश्चात्य कारणता के सिद्धान्तों पर तुलनात्मक विवेचन करो।

(२) न्याय, जैन और बौद्धों के अनुसार कारणता के सिद्धान्त पर विचार प्रकट करो।

(३) अन्वय और व्यतिरेक का स्वरूप लिख कर मिल की विधियों के साथ इनकी तुलना करो।

(४) अन्वय और व्यतिरेक को कार्य-कारण-भाव का नियामक क्यों माना गया है ? अपने विचार प्रकट करो ।

(५) अन्वय और व्यतिरेक में कौन बलवान है ? दोनों का आपेक्षिक महत्त्व प्रतिपादन करो ।

(६) अरस्तू के कारणों का विचार करके उनकी भारतीय कारणता के भेदों से तुलना करो ।

(७) कारण और करण में भेद बतलाओ ।

परिभाषिक शब्दों की सूची

अगति सम्बन्धी (Potential)—सम्भाव्यशक्ति १२४

अणुवीक्षण-यन्त्र (Microscope) १४४

अतलान्तिक (Atlantic) १३

अतिभौतिक शास्त्र (Metaphysics) १०६

अर्थान्तर-दोष या तर्काज्ञान दोष (Ignoratio Elenchi) ३३७, ३४७

अधिकारी उदाहरण (Prerogative Instance) ८७

अधःस्तर (Low standard) १३४

अनवस्था (Regressus ad Infinitum) ७

अनवबुद्ध (Unconscious) १४२

अनियमित-सामान्यीकरण (Illicit Generalisation) ३४४

अनुचित-प्राक्कल्पना (Illegitimate Hypothesis) ३३६

अनुभव (Experience) ८

अनुभव से सिद्धि (Proof from Experience) ८५

अनुभवगम्य (Based on Experience)४

अनुभवजन्य-सिद्धि (Proof by Experience) २२

अनुभव-जन्य-नियम (Empirical Law) २६५

अनुभववाद (Empiricism) ६६, १०६

अनुभववादी (Empiricist) ८६

अनुवलय (Parabola) २५१

अनुसन्धान क्षेत्र (Field of Investigation) २२४

अनेक प्रश्नों का दोष (Fallacy of Many Questions) ३३७

अन्तरिक्ष-विद्याधिपति (Meteorologist) १५२

अन्तस्तत्व (Inner Reality) ११

अन्तर्दर्शन (Introspection) १४२

अन्तर्ज्ञान (Intuition) २०४

अन्तर्दर्शन-सम्बन्धी-सिद्धान्त (A priori Theory) १ ८
अन्तिम-कारण (Final Cause) ११८
अन्वय (Agreement) ८०
अन्वयविधि (Method of Agreemenr) १६६,२ १,२ ५,२ ६,२१ १४
अन्वयविध्याश्रित-सामान्य-नियम (Certain Laws Based on the Method of Agreement) ३
अपरिवर्तनीय (Invariable) १ ६
अपरिवर्तनीय-सामान्य नियम (Invartable Generalisation) २६७
अपवाद (Exception) १
अपूर्ण-गणना (Imperfect Enumeration) ३६ ४५
अपूर्ण सामान्यानुमान (Incomplete Induction) २१
अप्रत्यक्षीकरण (Non-observation) १८० ११६
अप्रतिज्ञातदोष (Non-sequitur) ११७
अमुख्य (Secondary) २६१
अयुक्त (Improperly-so-called) २ २१
अल्पदृष्टि (Myopia) १५४
अवधारित (Established) १७३
अवसर-गणना (Calculation of Chances) २७०
अवशेष-विधि (Method of Residue) २१ २१४
अवस्था (Conditions) ११६, ११६
अवस्थाओं को बदलने की प्रक्रिया (Varying the circumstances) ५१
अवैज्ञानिक-सामान्यानुमान (Unsclentific Induction) १८
असत्कारणदोष (Non-causa pro-causa) ११७
असाक्षात् (Indirect) ५६ २८१
अज्ञान के प्रति तर्क (Argumentum ad Ignoratium) २४६
अंश (Numerator) २१
आकस्मिक-भावार्थ (Accidental Connotation) १११
आन्तरिक कारण (Internal cause) ११८

आत्यन्तिक-विरोधका सिद्धान्त (The Principle of Contradiction) ६, २६४
आपेक्षिक-नियम (Conditional Rules) २६२
आप्त के प्रति तर्क (Argumentum ad Verecundium)
आत्म-सम्बन्धी (Subjective) ६२
आत्मीय (Subjective) २६१
आरम्भिक शक्ति (Initial Force) ३१०
आवश्यक (Necessary) ४६
आसन्न-सामान्य-नियम (Approximate generalisation) २६८
उदाहरण से तर्क करने की विधि (Paradigma) २७६
उदाहरणों का अप्रत्यक्षीकरण (Non-observation of instances) १४८
उदाहरणों का एकत्रीकरण (Collection of instances) ८६
उपमा-जन्य-सामान्यानुमान (Analogy) ३७, ४६, ४७, १७१, २७३, २७४, २७६, २७६, २८१, २८२
उपराज्य (Sub-kingdom) ३२१
उष्णता-मापक यन्त्र (Thermometer) १४५
ऊर्ध्व रेखाएँ (Perpendicular lines) २२६
ऋतुदर्शक यन्त्र (Barometer) १५२
एकप्रकारादृष्टि-सहवर्तिगुणान्येषु-दृश्यमान-नियम (Certain Coincidences of qualities not essential to any kind and sometimes prevailing among many different kinds) ३००
एकरूपता का सिद्धान्त (The Principle of Uniformity of Nature) ८२
एकरूपता में विश्वास (Belief in Uniformity) ६४
एकाकी-समानता की विधि (The method of single agreement) २०५
एनोफील्स (Anopheles) एक प्रकार के कीटाणु ६०
अंश (Numerator) २६०
करणीय (Patient) १२३
कर्ता (Agent) १२३
कम्पास (Compass) ८८

क्रम (Order) १२१
क्रम (Succession) १ १
क्रम (Stages or steps) ५१
क्रमबद्ध-गणना (Statistics) आंकड़े २६६
क्रम-रहित (Orderless) ७५
क्रमवर्ती-सहायक-नियम (Secondary laws of succession) २६६
कृत्रिम-वर्गीकरण (Artificial classification) १२८, १२६
काकतालीय-दोष (Post hoc ergo propter hoc) २१६, २४१
कामचलाऊ-प्राक्कल्पना (Working Hypothesis) १७४ १८०, १६१
कारण-समुच्चय (Conjunction of causes) ११
कारण-रचना (Composition of causes) १११
कारण-बहुत्व (Plurality of causes) ११७ २४१
कारण-क्रमान्वेषण (Concatenation) ११ ११?
कारणता (Causality) १ १ १ ७ ११५
कारणता का सिद्धान्त (The principle of Causation) ११ १० १ ११
कार्य-संलग्नता (Perseverance) ११
कार्य-संमिश्रण (Inter-mixture of causes) ११ १४१ २४०
कल्पना की सृष्टि न करना (Hypothesis non-fingo) ८६
काल सम्बन्ध (Time-relation)
कुदान (Leap) १८
गणना-जन्य सामान्यानुमान (Induction per simple Enumeration) १०
गणित-सम्बन्धी-सामान्यानुमान (Mathematical Induction) ११
गणित की रेखा (Mathematical line) १ ६
गतिमयी-शक्ति (Moving power) १२१
गति-सम्बन्धी (Kinetic) ११४
ग्राहक (Receiver) ११८
गुरुत्वाकर्षण (The Law of Gravitation) १९८
घटना-संकलन (Colligation of facts) १४ १५, ११

चक्रक-दोष (Argument in a circle) ३४५
चुनाव (Selection) १४२
चुनाव-वाला (Selective) १४८
छज्जे की प्रार्थना (Appeal to the gallery) २४६
छूट (Exception) ६७
जटिल-सिद्धि (Complex proof) ७६
जाति (Tribe) ३२१
जूडी का बुखार (Malarial Fever) ५७, ५६, ६०
जेरेनिअम (Jerenium) ३३२
जैली (Jelly) एक प्रकार का तरल और ठोस पदार्थ ३२५
नर्क-निष्ठ-समानता जन्य-सामान्यानुमान (Induction by Parity of Reasoning) २८, २६ ३०
तर्कसम्बन्धी सामान्यानुमानीय दोष (Inferential Inductive Fallacies) ३४०
ताँबे का द्रव्य (Oxide of Copper) २३१
तिर्यक् रेखा (Horizontal line) २२६
नीन तालिकाओं द्वारा चुनाव (Sorting according to three tables) ८६
द्रव्य-कारण (Material Cause) ११७
दुराग्रह (Idolas) ८६
दुष्ट-प्रत्यक्षीकरण (Malobservation) १४६, १५०
दुहरी पद्धति (Binary Method) ३३२
दूरवीक्षण यन्त्र (Telescope) १४४
देश-सम्बन्ध (Space-relation) ८६
दोष (Fallacy) ३१४
ध्यान (Attention) ११
धैर्य (Patience) ६३
नमूना (Type) ३२२
नामकरण (Nomenclature) ३२८, ३३१, ३३८,
नित्य (Permanent) १३६

नित्य कारण (Permanent cause) २८८
निर्दोष (Perfect) १६
निर्दोष सामान्यानुमान (Perfect Induction) ११, २४, ९६, २६
निर्भर (Dependent) २६७
नियम (Law) ९६ २८८
निश्चय (Certainty) २६४
निश्चिति (Certainty) ४१
निःशेष (Exhaustive) ८१
निष्कासित नियम (Derivative Laws) १६६
निषेधात्मक (Negative) ११६, ११
निगमन (Deduction) विशेषानुमान, निगमन १
निगमन विधि (Deductive Method) २
नैतिक (Ethical or moral) १४६
नीतिशास्त्र (Ethics) २६१
पक्ष (Side) २६२
पक्षपात से निर्मुक्ति (Freedom from Prejudice) ६१
परिगणना (Permutation) २६६
परिणाम-सम्बन्धी सिद्धान्त (A posteriori) १ ४
परिभाषा (Terminology) ११८, ११८
परिवर्तनीय (Variable) १ ६
परीक्षण (Experimentum) ८४
पूर्ण-सामान्यानुमान (Complete Induction) ११
पूर्ण-गणना-जन्य सामान्यानुमान (Induction by complete Enumeration) २४ ९५
पूर्ण-गणना (Complete Enumeration) ४५
पूर्ण-विधि (Complete method) ६१
पूर्व-परीक्षा (Anticipation) ८७
पोतवाहक (Navigator) १५

प्रतिनिध्यात्मक-कल्पना (Representative Fiction) १८८
प्रतिलोम-सिद्ध (Indirect Proof) ३५१
प्रथक्-जन (Ordinary Person) ३०६
प्रथक्-करण (Elimination) ५३, १६४, १६६, २५८
प्रथक्-करण (Rejection or Exclusion) ८७, १९७
प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त (The Principle of Uniformity of Nature) ११, २७, ९४, १०२, १०३
प्रगतिशील कार्य (Progressive Effects) १३६
प्रतिज्ञात (Assertory) ५६
प्रत्यक्षीकरण (Observation) ५२, १४०, १४१, १४४, १४७, १५०, १५६, १५८
प्रयोग (Experiment) १५०, १५६, १५७, १५८
प्रवृत्ति (Tendency) १३५
प्रस्थापना (Proposition) ६४
प्रश्न-भिक्षा-प्रद (Question-begging epithet) ३४५
प्रश्न की भिक्ष (Begging the question) ३४५
प्रक्षेपान्तक (Projectile) ३१०
प्राक्-कल्पना (Hypothesis) ५१, ५४, ६१, ६२, १६३, २६९, १७२, १७७, १८९, १९४, ३३९
प्राक्-कल्पना का निर्माण (Framing a Hypothesis) ५४
प्राथमिक (Primary) २९३, २९४
प्रायोगिक-प्रत्यक्ष (Experimental Observation) १५५
फेरस ऑक्साइड (Ferrous Oxide) ३३२
वहुकारणवाद (Plurality of causes) १२७
वहुप्रश्नदोष (Fallacy of many questions) ३५०
बातें (Facts) ३६
भावात्मक विशेषानुमानीय विधि (The Abstract Deductive method) २५३
भाव-प्रथक्-करण (Abstraction) १८९

भिन्न (Fraction) २६
भिन्न-जातीय-कार्य-संमिश्रण (Heterogeneous Intermixture of effects) ११२
भौतिक (Physical) १४
भौतिकविज्ञानवेत्ता (Physicist) १५१
मध्यम-पक्ष-परिहार का सिद्धान्त (The Principle of Excluded middle) ६, २६४
मनोविज्ञान (Psychology) १ ६
मध्यवर्ती-स्वयंसिद्ध (Media axiomata) १६६
महा-सामान्य (Summum genus) १२६
मार्ग-दर्शक-स्तम्भ (Finger post) २११, २१६
मात्राएँ (Degrees) ४१
मिथ्या-उपमा-जन्य-सामान्यानुमान (Bad Analogy) २८८, २८६
मिथ्याकारण (Non causa Pro causa) २६०
मिथ्या-धारणा (Idola) ६१
मिश्रकार्य (Complex Effect) २४०
मिश्रितरूप (Complex) ५२
मूल प्रवृत्ति (Instinct) १ ६
मूलहेतु (Ground) ६१
मुष्टि के साथ तर्क (Argumentum ad Baculum) २५
मूढता-पूर्ण-निष्कर्ष (Reductio ad impossible) ११०
यकृत (Liver) २४८
यथार्थ (Real) २६१
यथेष्ट-तर्क का सिद्धान्त (The Principle of Sufficient Reason) ११०
युक्त (Proper) २ ११
युक्तितर्क (Ratiocination) २४६, २५
युक्त-सामान्यानुमान (Proper Induction) ११, १ १७ २०४
योग्य-कारण (Efficient Cause) ११७

योग्य-प्राक्कल्पना (Legitimate Hypothesis) १७६, १६२
रसायन शास्त्री (Chemist) १५६
राज्य (Kingdom) ३२१
रूप (Form) ६६
रूप-कारण (Formal cause) ११३
रूप विषयक-सत्यता (Formal Truth) २
रूप-स्वभाव (Formal Character) २२४
लगातार (Continuous) ५३
लक्षण (Definition) १३, १६, ३२२
लक्षण के दोष (Fallacies of Definition) ३३६, ३३८
लोक के प्रति तर्क (Argumentum ad Populum) ३४८
वर्गीकरण (Classification) ३१७, ३३८
वर्णनात्मक-प्राक्कल्पना (Descriptive Hypothesis) १८८
व्यक्ति के प्रति तर्क (Argumentum ad Hominem) ३४८
व्यत्ययवर्ग (Inverse Square) १७५
व्यत्ययानुपात (Inverse Ratio) २२८
व्यत्यय-विशेषानुमानीय-विधि (Inverse Deductive method) २५१
व्यतिरेक (Difference) ८७
व्यतिरेकान्वय की सम्मिलित विधि (Joint Method of Difference and Agreement) २२३
व्यतिरेक-विधि (The Method of Difference) २१६, २२०
व्यवस्थित (Orderly) ७५
व्यस्त (Part) ६६
व्याख्यात्मक प्राक्कल्पना (Explanatory Hypothesis) १८८
वातावरण-मापक यन्त्र (Barometer) १४५
बाह्यकारण (External cause) ११८
विकास-सिद्धान्त (Theory of Evolution) ३५०
विकास-सम्बन्धी (Evolutional) १०६

विचार (Thought) ११
विचार-प्रक्रिया (Thought Process) १८
विच्छिन्न (Isolated) १ १
विद्युत् (Lightning) १ ८
विधि (Procedure) ६१
विध्यात्मक (Positive) ११६, १२०
विधेय-परिमाण का सिद्धान्त (The doctrine of the quantification of the Predicate) ७६
विपरिणाम-दोष (Non-sequitur) १५१
विपर्यावस्था (In chaotic condition) ७५
विभाग (Division) १२१ ११८
विलोम-प्रक्रिया (Inverse-process) ७२
विशेषानुमान (Deduction) १ १ ६४ ६५
विशेषानुमानीय विधि (Deductive method) ६१ ६६, २४६
विशेषीकरण (Specialisation) ११४
विश्लेषण (Analysis) ६२ ११
विश्लेषणात्मक (Analytical) ५
विश्लेषणात्मक वाक्य (Analytical proposition) ५, १४
विषय (Object) (Matter) ६६ ६ ११२
विषय-विषयक-सत्यता (Material Truth) १ १४
विषय-सम्बन्धी (Objective) ६२
वैकल्पिक निर्णय (Disjunctive Judgement) २६५
वैषयिक (Objective) २६१ २६२
वैषयिक-लक्षण (Material Definition) ११७
वैज्ञानिक यंत्र (Scientific Instrument) १४४
वैज्ञानिक-वर्गीकरण (Scientific classification) ११८ ११६
वैज्ञानिक सामान्यानुमान (Scientific Induction) १२ २४
वैज्ञानिक ज्ञान (Scientific Knowledge) १ ७

शक्य (Possible) २६०
शब्द का प्रयोग-सक्रमण (Transitive Application of words)
शक्ति (Energy) ११२,११३
शक्ति की यथावस्थितता का सिद्धान्त (The Law of Conservatio of Energy) ११३,१२६
शक्ति की स्थिरता (Conservrtion of Energy) २००
शारीरिक (Physical) १४६
श्रेष्ठ व्यक्ति (Eminent member) ३२२
श्रेणि (Series) ३२३
शोधक उदाहरण (Crucial instance) १८३,१८४
शोधक-प्रयोग (Crucial Experiment) १८३
सदोष सामान्यानुमान (Imperfect Induction) २१,२२
सत्यकारण (Vera causa) १७८,१८६
सन्निकट-सामान्यीकरण (Approximate Generalisation) २७०
सम्भावना का सिद्धान्त (Theory of Probability) २४७
समर्थन (Verification) ५६,६२,१८०,१८१,२४६,२५०
समय-क्रम (Order-in-time) १०१
समस्त (Whole) ६६
सम्वन्ववाचक (Conjunction) १६
सभावना (Probability) २५६,२६३
सम्भावनात्मक तर्क (Probable Argument) २६६
समान जातीय-कार्य-समिश्रण (Homogeneous Intermixture of effects) १३१
समानता (Resemblance) २७६
सम्मिलित विधि (Joint method) १६६,२०८
समीकरण (Assimilation ३०८,३१२
सहगामि-विचरण-विधि (The method of concomitant variatior १६६,२२४,२२८

सहअस्तित्व (Co-existence) २०६
सह-सम्बन्ध (Co-relation) ११४
सहवर्ती सहायक नियम (Secondary Laws of coexistence) २६६
सहायक (Secondary) २६५
स्पष्टीकरण (Explanation) १०५,११६
स्तर (Level) १
स्वयं-सिद्ध (Axiom) ३,२६३
सादृश्य-मूलक-प्राक्कल्पना (Analogical Hypothesis) १७५
साधारण-गणना-जन्य-सामान्यानुमान (Induction Per Simple Enumeration) १७, १८, १६, ४ , ४२, ४३, ४५, २२१, २४
साधारण-प्रत्यक्ष (Simple observation) १५५
सामग्री (Collocation) १९२
सामञ्जस्य (Conformity) (Harmony) २
सामान्य (Universal) २६१
सामान्यानुमान (Induction) १, ७ ८, १२, १५, १६, १७, १८, २ , २६, ३५, ४०, ३ ३१ ३४, ३५, ७३, ८२, ६०, २१६, ११६, ११७
सामान्यान्तर्निवेषण (subsumption) ११ ,११२
सामान्यानुमानीय विधि (Inductive method) ३३
सामान्यानुमान का विरोध (Paradox of Induction) ६८,१०५
सामान्यानुमानों की अनुरूपता (Concilience of Induction) १८५
सामान्य-प्रत्यक्षीकरण (Common Observation) ४
सामान्य वाक्य (General Proposition) ५,३
सामान्यानुमानीय कुदान (Inductive Leap) १५,८
सामान्यीकरण (Generalisation) ६,१५,१६,११४,१४४
सारांश (Summary) ८
तादात्म्यता का सिद्धान्त (The Principle of Identity) ३ २६४
साक्षात् (Direct) ५३,१८२
साक्षात्-विशेषानुमानीय-विधि (Direct Deductive method) २४६

स्वात्यन्तिक-विरोध (Self contradiction) १७६
स्वाभाविक प्रकार (Natural kinds) ३१६, ३२०
स्वाभाविक-प्रयोग (Natural Experiment) १५६
स्वाभाविक-प्रकाराश्रित-गुण-सहवर्तित्व-प्रतिपादक-नियम (Coexistence of properties in the Natural kinds) ३००
स्वाश्रय-दोष (Petitio Principii) ३३७, ३४५
सूक्ष्म-श्रवण-यन्त्र (Microphone) ध्वनि यन्त्र १४४
संयोग (Chance) २५५, २५८
संवेदन (Feeling) ८६
संश्लेषणात्मक (Synthetic) ८
संश्लेषणात्मक वाक्य (Synthetic Proposition) ५, १४
संश्लेषणात्मक सामान्यवाक्य (Synthetic General Proposition) ५
हर (Denominator) २६०
हृदय-गति-मापक-यन्त्र (Stethoscope) १४५
क्षणिक (Temporary) १३६
क्षेत्र (Scope) २